श्रीरामचन्द्रिका

सटीक

महाकवि केशवदास-विरचित

जिसमें

श्रीदशरथकुमार राजराजेन्द्र श्रीमहाराज रामचन्द्रकी जन्म से लेकर सब कथा नाना प्रकार के अति-रोचक छन्दों में विस्तार के साथ वर्णित है।

जिसको

अत्यन्त कठिन जानकर श्रीरामचरण-पराग-मधुकर मैथिलि-चरण-समाश्रित जानकीप्रसाद ने अत्युत्तम हिंदी-भाषा में तिलक किया

और

माधुरी-संपादक, कविरत्न

पं० रूपनारायणजी पांडेय से संशोधित किया।

लखनऊ

श्रीकेसरीदास सेठ, सुपरिंटेंडेंट द्वारा

नवलकिशोर-प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित।

आठवीं बार] [सन् १९२३ ई०

भूमिका ।

हिंदी के काव्य-जगत् में महाकवि केशवदास का स्थान 'सूर' और 'तुलसी' के बाद ही माना जाता है, जिसका प्रमाण दोहे का यह आधा अंश है—

"सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगण केसवदास;"

केशवदासजी की कविता पांडित्य से पूर्ण और साधारण जनों या अधकचरे कवियों के लिये दुर्बोध अवश्य है, और इसीसे किसीने कहा है—

"दीबो न चाहे बिदाई नरेस तो पूछत केसव की कबिताई ।"

जिसने गुरुमुख से दशांग साहित्य नहीं पढ़ा, वह केशव की कविता क्या समझेगा और क्या समझावेगा ? केशवदासजी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, उनके पूर्वज संस्कृत-कविता का ही पठन-पाठन और निर्माण करते आ रहे थे। अचानक बीच में केशवदास का झुकाव भाषा-काव्य की ओर होगया। भाषा में कविता करने के कारण केशवदास ने ग्लानि भी प्रकट की है। अस्तु। केशव ने संस्कृत के प्रामाणिक रीति-ग्रन्थों के आधार पर भाषा में कविप्रिया, रसिकप्रिया आदि का निर्माण किया। उनमें, ख़ास कर रामचंद्रिका और विज्ञान-गीता में, संस्कृत के कठिन शब्द और समासयुक्त पद बहुत हैं। यही कारण है, जिससे केशव की कविता क्लिष्ट और रूखी-सी प्रतीत होती है। भाषा-लालित्य, यमक, अनुप्रास आदि के चमत्कार में भले ही अन्य अनेक कवियों की कविता आगे बढ़ गई हो, परन्तु भाषा-काव्य के आचार्य अथवा पथ-प्रदर्शक किंवा पथनिर्माता होने की दृष्टि से केशव का महत्त्व सूर और तुलसी से कम नहीं है। केशवदासजी ने संस्कृत से बहुत-से भाव लिए हैं। उनकी रामचंद्रिका में बाणभट्ट की कादंबरी और जयदेव कवि के प्रसन्नराघव-नामक नाटक के अनेक स्थल अविकल अनुवाद करके रख दिए गए हैं। परन्तु इसमें केशव का कोई वैसा दोष नहीं है। जब हिंदी के इने-गिने कवि और प्रेमी थे, जब हिंदी में रचना करना मानो अपने हाथों अपने अपमान को न्योता देना था, जब हिंदी अर्थात् "भाषा" में कविता करनेवाला बेचारा, वह चाहे जगद्वरेण्य गोस्वामी तुलसीदास ही क्यों न हो, पंडितों की दृष्टि में हेय ही नहीं, पातकी-सम समझा जाता था, तब—उस युग में—भाषा के कवि और ग्रंथकार अपनी रचनाओं का आधार संस्कृत में ही खोजें, तो कुछ अस्वाभाविक नहीं। भाषा का आधार संस्कृत होने पर कदाचित् कवि के प्रति परिहास की मात्रा कुछ कम और

नरम रहती होगी। इसके अलावा, हमारी राय में, केशव ने संस्कृत की भारी विद्वत्ता करगत करके भी भाषा को इसी लिये अपनाया कि उनके इस प्रयास से संस्कृत न जाननेवाले प्रतिभाशाली लोग भी काव्य-रचना करने और काव्य का मर्म समझने में समर्थ होसकें। इसी दृष्टि से उन्होंने रीति-ग्रंथों का निर्माण (संस्कृत-ग्रंथों के आधार पर, या उनका संपूर्ण अनुवाद करके) कर डाला। उधर रामचंद्रिका-सदृश ग्रंथ में भी कादंबरी, हनुमन्नाटक, प्रसन्न-राघव नाटक आदि श्रेष्ठ ग्रंथों के स्थल-विशेष की उत्कृष्ट उक्तियाँ और वर्णन अनुवाद-रूप में उद्धृत किए विना उनसे नहीं रहा गया। यदि यह कहा जाय कि इस तरह अक्षरशः पराया माल अपने मकान में उठाकर रख लेना और उसे अप्रकट रखना चोरी ही है, और वह—चाहे केशव की हो, चाहे देव और विहारी की—अक्षम्य तथा उनके यशोरूप राकेश का कलंक है, तो इसके उत्तर में हमारा यही वक्तव्य है कि उस ज़माने में इस तरह पराई रचना का अक्षरशः अनुवाद (भी) अपनी रचना के अंतर्गत कर लेना कदाचित् बुरा नहीं समझा जाता था। अगर अब की तरह उस ज़माने में भी यह अभ्यास घृणा की दृष्टि से देखा जाता होता, तो कविकुलकुमुदकलाधर, वाणी के वरेण्य वरपुत्र महात्मा गोस्वामी जी पद-पद पर पराई विभूति से अपनी आराध्य देवी माता सरस्वती का शृंगार कभी न करते ; विहारीलाल के समान अमर कवीन्द्र गीतगोविन्द के भाव-भाण्डार में हाथ की सफ़ाई कभी न दिखाते। कहाँ तक कहें, उस युग के अधिकांश भाषा-कवि ऐसे ही निकलेंगे, जिन्होंने पूर्ववर्ती कवियों की सुंदर सूक्तियाँ (ठीक उसी रूप में भी और कुछ रूपान्तर करके भी) अपने ग्रंथों में रख ली हैं। अस्तु। अब हम यहाँ पर पाठकों के मनोरंजनार्थ कुछ ऐसे सुंदर स्थल रामचंद्रिका से उद्धृत करते हैं, जो प्रसन्नराघव का अनुवादमात्र हैं। साथ ही संस्कृत आधार भी रहेगा। इससे तुलना करने में सुवीता होगा।

प्रसन्नराघव नाटक में सूत्रधार कहता है—

येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिताः
तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः॥

केशवदास रामचंद्रिका में विश्वामित्र के मुख से दशरथ के प्रति कहलाते हैं—

जिन हाथन हठि हरषि हनत हरिनी रिपुनन्दनि।

तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयंदनि ॥
जिन बेधत सुख लच्छ लच्छ नृपकुँअर कुँअरमनि ।
तिन बाननि बाराह बाघ मारत नहिं सिंहनि ॥

और भी देखिए—

नटति नरकराग्रव्यग्रसूत्राग्रलग्न-
द्विपदशनशलाकामंचपाञ्चालिकेयम् ।
त्रिपुरमथनचापारोपणोत्कण्ठिताना-
मतिरभसवतीव क्ष्माभृतां चित्तवृत्तिः ॥ (प्र० रा०)

नवति मंचपंचालिका करसंकलित अपार ।
नाचति है जनु नृपति की चित्तवृत्ति सुकुमार ॥ (रा० चं०)

इसके आगे राजों का सब वर्णन प्रसन्नराघव के आधार पर है। उसमें के कुछ स्थल और दिखाते हैं—

पश्य पश्य सुभटैः स्फुटभावं भक्तिरेव गमिता न तु शक्तिः ।
अञ्जलिर्विरचितो न तु मुष्टिर्मौलिरेव नमितो न तु चापः॥ (प्र० रा०)
सक्ति करी नहिं भक्ति करी अब। सो न नयो पल सीस नये सब ।
देख्यो मैं राजकुमारनके घर। चाप चढ़्यो नहिं आपचढ़े खर॥(रा. चं.)

× × ×

पितुः पादाम्भोजप्रणतिरभसोत्सिक्तहृदयः
प्रयातः पातालं न कतिकतिवारानकरवम् ।
सहस्रे बाहूनां क्षितिवलयमासज्य सकलं
जगद्भारोद्वेलां फणफलकमालां फणिपतेः ॥ (प्र० रा०)

हौं जब-ही-जब पूजन जात पितापद पावन पापप्रनासी ।
देखि फिरौं तब-ही-तब रावन सातों रसातल के जे बिलासी॥
लै अपने भुजदंड अखंड करौं छितिमण्डल छत्रप्रभा-सी ।
जाने को केसव केतिक बार मैं सेस के सीसन दीन्ही उसासी॥

× × ×

अंगैरंगीकृता यत्र षड्भिः सप्तभिरष्टभिः ।
त्रयी च राज्यलक्ष्मीश्च योगविद्या च दीव्यति॥(प्र० रा०)

अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता सुभ जोगमई है ॥(रा० चं०)

× × ×

यः काञ्चनमिवात्मानं निक्षिप्याग्नौ तपोमये ।
वर्णोत्कर्षं गतः सोऽयं विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ (प्र० रा०)
जिन अपनो तन स्वर्न, मेलि तपोमय अग्नि में ।
कीन्हो उत्तम वर्न, तेई विश्वामित्र ये ॥ (रा० चं०)

× × ×

छत्रच्छाया तिरयति न यत् यन्न च स्प्रष्टुमीष्टे
दृप्यद्गन्धद्विपमदमषीपंकनामा कलङ्कः ।
लीलालोलः शमयति न यच्चामराणां समीरः
स्फीतं ज्योतिः किमपि तदमी भूभुजः शीलयन्ति ॥(प्र० रा०)
सब छात्रिन आदि दै काहू छुई न छुए बिजनादिक बात डगै ।
न घटै न बढ़ै निसिबासर केसव लोकन को तमतोम भगै ॥
भवभूषन भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै ।
जलहू थलहू परिपूरन श्रीनिमिके कुल अद्भुत जोति जगै ॥(रा० चं०)

स्थानाभाव के कारण हम कादंबरी और हनुमन्नाटक के उन स्थलों को उद्धृत नहीं करते, जिनका अनुवाद रामचंद्रिका में किया गया है । इतने ही उदाहरणों से पाठकों को हमारे कथन की सचाई मालूम होगई होगी । किंतु साथ ही यह भी हम कह देना चाहते हैं कि इससे केशवदास की योग्यता में बट्टा नहीं लगता, बल्कि उनके पांडित्य का ही पता चलता है। उनका अनुवाद बहुत सुंदर हुआ है, और मौलिक रचना का मज़ा देता है । फिर सर्वत्र कोरा अनुवाद भी नहीं है । केशव की भी अपनी प्रतिभा झलकती है ।

अच्छा, अब केशवदास का भी परिचय पढ़िए । जनश्रुतियोंके आधार पर मालूम होता है कि केशवदास ओड़छे में, विक्रम की १७ वीं सदी में, सनाढ्य-ब्राह्मणों के मिश्र-कुल में उत्पन्न हुए थे । मान्य मिश्रबंधुओं का अनुमान है कि वि० सं० १६०८ (ई०सन् १५५२) में केशव का जन्म हुआ होगा । इनके पिता का नाम काशिनाथ और पितामह का कृष्णदत्त था । इस कुल में सभी विद्वान्, प्रतिष्ठित और प्रतिभाशाली होते रहे । इस कुल के नौकर-चाकर भी संस्कृत में ही बातचीत करते थे । केशवदास के पिता शायद वही काशिनाथ हैं, जो ज्योतिष का सहज ग्रंथ शीघ्रबोध बनाने के कारण आज भी समाजसुधारकों की गालियाँ खा रहे हैं । ओड़छा बुंदेलखंड में एक राज्य है । वहाँ के प्रतापी राजा इंद्रजीतसिंह, जो अकबर के समकालीन थे,

केशव पर गुरुवत् श्रद्धा, भक्ति और प्रीति रखते थे। वही इनके आश्रयदाता थे। राजा इंद्रजीतसिंह के पूर्वज बड़े बहादुर बुँदेले थे। वे दिल्ली के मुग़ल बादशाहों तक को शिकस्त देकर पस्त करते थे। अकबर अपने दरबार में इंद्रजीत के बड़े भाई रामसिंह को बैठने का आसन देता था, यद्यपि अन्य राजों को खड़े रहना पड़ता था। इंद्रजीत के यहाँ केशव का बड़ा मान था। केशवजी राजा के गुरु, मित्र, मुसाहब, कवि और मंत्री सब कुछ थे। इंद्रजीत की प्रेमिका रायप्रवीन थी, जो रूपवती युवती होने के अलावा बुद्धिमती और गुणवती भी एक ही थी। वह एक सहृदय और उत्कृष्ट कवि का-सा हृदय और मस्तिष्क रखती थी। वह इंद्रजीत को पतिवत् मानती और अपने को पूरी पतिव्रता समझती थी। जब अकबर बादशाह ने रायप्रवीन के रूप-गुण की प्रशंसा पर मुग्ध होकर उसे अपने दरबार में भेज देने का हुक्म इंद्रजीत के पास भेजा था, तब रायप्रवीन ने एक सवैया रचकर इंद्रजीत के आगे यही भाव प्रकट किया था। यथा—

आई हौं बूझन मंत्र तुम्हैं, निज सासन सों सिगरी मति खोई।
देह तजौं कि तजौं कुलकानि, हिए न लजौं, लजिहैं सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को गथ, चित्त बिचारि कहौ अब सोई।
जामें रहै प्रभुकी प्रभुता अरु, मोर पतिव्रत भंग न होई॥

इस छंद की प्रार्थना सुनकर राजा ने शाह की आज्ञा की अवहेलना की। अकबरने हुक्म-अदूली की बेअदबी पर आग होकर एक करोड़ रुपए का जुरमाना राजा पर कर दिया। जुरमाना वसूल करने के लिये शाही चढ़ाई होने भी न पाई थी कि उक्त समाचार पाकर कविवर केशव आगरे में बीरबल के पास दाख़िल हो गए। बीरबल स्वयं अच्छे कवि और हिंदू थे। केशव ने "दियो करतार दुओ कर तारी" वाला सवैया बना कर बीरबल की तारीफ़ में कहा। बीरबल रीझ गए। बीरबल का वह ज़माना था; अकबर उनकी बात नहीं टालते थे। बीरबल ने जुरमाना तो माफ़ करा दिया, पर रायप्रवीन को अकबर के आगे हाज़िर होना ही पड़ा। उस समय रायप्रबीन ने जो अनमोल दोहा सुनाकर अपनी गहरी सूझ का परिचय दिया, और अकबर को झिपा दिया, वह इस प्रकार है—

बिनती रायप्रबीन की, सुनिए साह सुजान;
जूठी पतरी खात हैं, बारी, बायस, स्वान।

कैसा माकूल जवाब है! कितना करारा तमाचा है! किंतु ढंग कितना

खूबसूरत है। रायप्रबीन की इसी प्रतिभा पर केशवदास मुग्ध थे, और उसकी बड़ी इज्ज़त करते थे। उसके लिये एक ग्रंथ ही बना डाला है। केशवदास रायप्रबीन की कितनी इज्ज़त करते थे, इसका पता नीचे लिखे दोहों से लगता है—

रतनाकरलालित सदा परमानंदहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर रमा कि रायप्रबीन॥
रायप्रबीन कि सारदा सुचि रुचि रंजित अंग।
बीनापुस्तकधारिनी राजहंस-सुत संग॥
बृषभबाहिनी अंगजुत बासुकि लसत प्रबीन।
सिव सँग सोहति सर्बदा सिवा कि रायप्रबीन॥
(कविप्रिया)

केशवदास के प्रसिद्ध ४ ग्रंथ हैं—कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका और विज्ञानगीता।

काशी की नागरीप्रचारिणी सभा जो हिंदी की पुरानी पुस्तकों की खोज कराया करती है, उसमें केशव के शायद और तीन ग्रंथों का पता चला है, ऐसा सुन पड़ता है। वे ग्रंथ हैं—वीरसिंह देव चरित्र, जहाँगीर-चंद्रिका और नखशिख। रसिकप्रिया का रचनाकाल संवत् १६४८ वि० है।

रसिकप्रिया और कविप्रिया के कारण ही केशव की गणना आचार्यों में की जाती है। किंतु हमें तो केशव का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ रामचंद्रिका ही जान पड़ती है। रामचंद्रिका की गणना महाकाव्यों में की जा सकती है। रामचंद्रिका की एक विशेषता तो यही है कि वह रामचरित-विषयक रचना है। इसके सिवा उसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर विविध छंद बदल कर कवि ने अपनी रचना-शक्ति का पूर्ण परिचय दिया है। कुछ लोग कहते हैं कि केशव की कविता में कर्णकटु-दोष अधिक है। पर हम इसके क़ायल नहीं। यदि यह दोष यत्र-तत्र है भी, तो वह अन्य गुणों में छिप-सा गया है। हमारे मत में केशव की भाषा, ख़ासकर रामचंद्रिका की भाषा, बहुत अच्छी है। रामचंद्रिका के वर्णन इतने रोचक और मनोहर हैं कि पढ़नेवाला तल्लीन होजाता है। इसमें कवि ने काव्य की छटा दिखाने में अपनी सारी योग्यता ख़र्च कर दी है। इसे हिंदी का नैषध-काव्य कहना अनुचित न होगा। दोनों में पांडित्य और क्लिष्टता का समावेश है। मिश्रबंधुओं की राय में केशवदासजी भाषा के मिल्टन हैं। इसे हम मानते हैं, पर उनका यह कथन हमें कुछ अनुपयुक्त-

सा प्रतीत होता है कि केशवदास स्वभाव-कवि न थे। अस्तु। केशव की कविता की आलोचना करने के लिये यहाँ स्थान नहीं है। संक्षेप में हमने कवि और उसकी रचना के गुण-दोषों का परिचयमात्र करा दिया है। रामचंद्रिका उत्कृष्ट होने पर भी क्लिष्ट है, इसीसे इसका प्रचार रामचरितमानस के समान क्या, उसका शतांश भी नहीं है। गोस्वामीजी की रचना को एक साधारण कहार तक पढ़ता नज़र आता है, पर रामचंद्रिका का पठन-पाठन पंडितों में भी विरल है। विद्वद्वर पं० जानकीप्रसादजी की यह रामचंद्रिका की टीका बहुत अच्छी है। इसकी सहायता से रामचंद्रिका के सभी स्थल अच्छी तरह समझे जा सकते हैं। परन्तु इसमें भी एक कमी यह है कि यह बोल-चाल की हिंदी में नहीं है। इसकी हिंदी में सर्वत्र बातचीत नहीं की जाती। तथापि यह टीका ग़नीमत है। अब तो ऐसा समय आलगा है कि अगर कोई आदमी किसी काव्य-ग्रंथ का अध्ययन करना चाहे, तो उसे पढ़ानेवाला ही मुशकिल से मिलेगा। कहाँ से मिले ? न राजे-महाराजे अब कवियों की कदर करते हैं, और न सर्वसाधारण से ही कवियों को कुछ सहायता मिलती है। इस कारण काव्यों का पठन-पाठन उठता जाता है। अब तो स्वयंभू कवियों की भरमार नज़र आती है। न दशांग साहित्य पढ़ने की ज़रूरत है, न पुराने कवियों के ग्रंथ देखने की ज़रूरत है। आज कल के पैदायशी कवियों ने चट क़लम उठाकर उसे सरपट चलाना शुरू कर दिया, और वह तुकबंदी फ़ौरन छपने के लिये किसी पत्र-पत्रिका में भेज दी। ईश्वर की कृपा से पत्रों की भी हिंदी में भरमार होरही है, और बहुधा उनके संपादक भी कविता के विषय में वैसे ही बहुज्ञ नज़र आते हैं। बस, जिसकी कविता (?) छप गई, वही चट कोई अमल, विमल, कंटक, मोटक, तोटक या ऐसाही कोई उपनाम रख कर सुकवि बन बैठा। इष्ट-मित्रों की कृपा से उसके साहित्य-सिंधु, कवि-दिग्गज आदि होने में भी देर नहीं लगती! इस युग का यही हाल है। परंतु अब भी पुराने ग्रंथ पढ़ने के शौक़ीनों, यथार्थ सहृदयों और रसिकों का अत्यंताभाव नहीं हुआ है। उन्हीं की सुविधा के लिये इस सुप्रसिद्ध प्राचीन प्रेस के स्वत्वाधिकारियों ने, अपने यहाँ की अन्यान्य पुस्तकों की तरह, रामचंद्रिका का भी यह पुनःसंपादित, सुसंशोधित संस्करण निकाला है। आशा है, हिंदी-काव्य-रसिक और उसके पठन-पाठन के प्रेमी लोग इस समीचीन उद्योग का सर्वथा अभिनन्दन करते हुए स्वयं लाभ उठावेंगे।

अब हम केशवदास की मृत्यु के संबंध की किंवदन्ती का उल्लेख करके इस भूमिका को समाप्त करते हैं। कहा जाता है, केशवदास, रायप्रवीन, महाराज इंद्रजीतसिंह आदि में इतनी घनिष्ठता और पारस्परिक स्नेह था कि उन्हें मृत्यु के उपरान्त वियोग न होने देने का उपाय सोचने की फिक्र पड़ी। अंत को यह तय पाया कि प्रेतविधि से मृत्यु होने पर प्रेत होकर सब एकत्र रह सकेंगे। तदनुसार विष्ठा का चौका देकर, नखों में नील लगाकर, इसी प्रकार के और भी गंदे अनुष्ठान करके, इस मंडली ने प्राण दिए। औरों के बारे में तो कुछ नहीं सुना जाता, पर केशवदास के बारे में सुना जाता है कि वह मर कर ब्रह्मराक्षस हुए। केशवदास एक कूप में रहने लगे। संयोगवश उधर से एक दिन गोस्वामी तुलसीदासजी निकले। उन्होंने पानी भरने के लिये कुएँ में लोटा लटकाया, तो केशव ने उसको पकड़ लिया। तुलसीदासजी के बार-बार कहने पर केशव ने अपना सब हाल कहकर यह प्रार्थना की कि मुझे किसी तरह इस बुरी योनि से मुक्त कीजिए। मैं बड़े कष्ट में हूँ। गोस्वामीजी ने सब सुनकर कहा—तुम रामचंद्रिका के २१ या १०८ पाठ कर डालो, तो मुक्ति होजायगी। केशव को बहुत स्मरण करने पर भी रामचंद्रिका का पहला छंद न याद आया। तब गोस्वामीजी ने स्मरण करा दिया, और केशवदास रामचंद्रिका का पाठ करके मुक्त होगए। मालूम नहीं, इस दन्त-कथा में कहाँ तक अथवा कितना सत्य का अंश है।

मिश्रबन्धुओं ने अपने हिन्दी-नवरत्न में लिखा है कि वह खुद ओड़छे में केशव का निवास-स्थान देखने गए थे। पर वहाँ कुछ पता न लगा। पूछताछ करने पर भी आप लोगों को केशवदास के बारे में वहाँ विशेष कुछ मालूम न होसका। अन्त को लोगों से इतना मालूम हुआ कि इनके निवास-स्थान के पास केवल एक इमली का पेड़ रह गया है। कुछ भी हो, संसार में केशवदास का शरीर और निवास-स्थान न रह जाने पर भी, वह अमर हैं। जब तक उनके ग्रंथ रहेंगे, तब तक उनकी कीर्ति रहेगी। और, कीर्ति जिसकी विद्यमान है, वह अमर है। किसीने बहुत ठीक कहा है—"कीर्तिर्यस्य स जीवति।"

रानीकटरा,
लखनऊ,
चैत्र-शुक्ल १, शनिवार
सं० १९८१ वि०

रूपनारायण पाण्डेय
(माधुरी-संपादक)

श्रीगणेशाय नमः ।

रामचन्द्रिका सटीक ॥

बालक मृणालनि ज्यों तोरिडारै सब काल कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को । विपति हरत हठि पद्मिनी के पातसम पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को ॥ दूरिकै कलंक अंक भवशीशशशिसम राखत हैं केशोदास दास के बपुख को । सांकरे की सांकर न सनमुख होतही तो दशमुख मुख जोवै गजमुखमुख को १ ॥

बालक पांच वर्ष को हाथीसों जैसे मृणाल पौनारों को सब काल में तोरि डारत है तैसे गणेश कठिन औ कराल भयानक औ अकाल कहे असमय को जो दीह कहे बड़ो पुत्रमरणादि दासन को दुख है ताको तोरत हैं औ जैसे बालक पद्मिनी कमलिनी के पात को हरत तोरत है तैसे ये विपत्ति दरिद्रादि को हरत हैं औ बालक जैसे पग सों दाबि पंक कहे कीच को पेलिकै पाताल को पठावत है तैसे ये कलुष जे पाप हैं तिनको पठावत हैं इहां गजराज को त्यागकरि बालकसम यासों कह्यो पद्मिनी पत्रादि तोरन में बालक को उत्साह रहत है तैसे गणेशजू को विपत्त्यादि विदारण में बड़ो उत्साह रहत है कौतुकही विदारत हैं औ गणेशजू दासन के कलंक को अंक कहे चिह्न को दूरि करिकै जैसे भव महादेव के शीश को शशि है कलंकरहित ताही विधि दासन के वपुष शरीर को राखत हैं औ जिनके सन्मुख होतही सांकर राजभयादि ताकी सांकर बंधन कही जंजीर सो नहीं रहति ऐसे जे गजमुख गणेश हैं तिनके मुख को दशमुख जे ब्रह्मा विष्णु

महेश तिनके मुख जोवै कहे निरखते हैं स्तुति करत हैं अथवा दशमुख जे दशौ दिशा हैं तिनके मुख हैं अर्थ यह दशौंदिशन के प्राणी स्तुति करत हैं ॥ पञ्चवर्षो गजो बाल इत्यभिधानचिन्तामणिः ॥ तो इहां स्तुतिसों अभिकांक्षित वस्तु को मांगिबो सूचित भयो तासों आशीर्वादात्मक मंगल है दूसरो अर्थ जो ग्रंथ कवि लोग करत हैं ताकी कथा प्रथम संक्षेप सों कहत हैं सो युक्तिसों याही मंगलाचरण में कह्यो है बालक या पदते श्रीरामचन्द्र को जन्म सूचित भयो औ सबको कालरूप जे सुबाहु ताड़कादि हैं तिन्हैं मृणालन पौनारिन के समान सहजही तोरि डारत भये मारत भये औ कठिन औ कराल कहे भयानक ऐसा जो धनुष है औ अकाल कहे कुसमय को जो दीह बड़ो दुख है व्याहकृत उत्सव में परशुरामकृत दुख गर्वगति समेत तिनहुनको त्यों कहे ताही प्रकार तो मृणालन बहुवचन है तासों ताड़कादि वध धनुभंग परशुरामगतिभंग सर्वत्र समता कियो इति बालकांडकथा ॥ औ राज्यत्यागरूप जो विपत्ति है ताको हठिकै हरत कहे ग्रहण करत भये भरतादि को कह्यो न मान्यो आप पद्मिनी कमलिनी के पात कहे पुष्प पत्रसम सुकुमार हैं इति अयोध्याकांडकथा ॥ औ पंक ज्यों कहे पंक के सदृश नीच ऐसा जो विराध है ताको पेलिकै पाताल को पठावत भये वाल्मीकीय रामायण में लिख्यो है कि काहू अस्त्र शस्त्र सों न मरै तब रामचन्द्र जीवत ही गाड़ि लियो ताही प्रकार कलुष पापरूप जे खरदूषणादि हैं तिनहुन को मारयो इति आरण्यकांडकथा ॥ औ कलंक को है अंक चिह्न जाके ऐसा जो बंधुपत्नीभोगी बालि है ताको दूरि करत मारत भये औ दास जो सुग्रीव है ताको भव महादेव के शीश के शशि के सम राखत भये जैसे भवशीशशशि को राहु को भय नहीं रहत तैसे शत्रुभयरहित सुग्रीव को कियो अथवा महादेव के माथे में द्वितीया को चन्द्रमा है यासों या जनायो कि अब संसार को राज्य पाइ सुग्रीव की और बढ़ती ह्वैहै इति किष्किन्धाकांड तथा याही पद स सुन्दरकांड है ॥ केशव जे रामचन्द्र हैं तिनके दास जे सुग्रीव हैं तिनके दास जे हनुमान् हैं ताके वपुष शरीर को भवशीशशशि सम राखत भये कि लंका में प्रकाशित करत भये कलंकरूप जे सिंहिका अक्षयकुमारादि हैं तिनको दूरि करिकै कहे मारिकै इति सुन्दरकांडकथा ॥ औ रामचन्द्र के सन्मुख होतही विभीषण के सांकर कष्ट की जो सांकर जंजीर रही शीत कहे न रहत भई रामचन्द्र के दर्शनही सों

विभीषण को दुख दूरिभयो तब दशमुख जो ब्रह्मा विष्णु महेश हैं ते विभीषण को मुख जोवत भये कि धन्य है विभीषण जाको रामचन्द्र अङ्गीकार कस्यो औ गजमुख जो गणेश हैं तिन मुख कहे आदि दै और देवता हैं ते को कहे कहा हैं अर्थ यह गणेशादि देवता तो जोवतही भये औ सांकर जे यमादिक हैं तिनको सांकर कहे कष्टदेवैया ऐसा जो रावण है सो रामचन्द्र के सन्मुख होतही न रहतभयो गजमुख जे गणेश हैं तिनके मुख कहे श्रेष्ठ ऐसे जो रामचन्द्र हैं तिनके मुखको जोवत भयो अर्थ यह उनके लोकको प्राप्त भयो अथवा मुख जोवै कहे मुख में लीन होत भयो तुलसीकृत रामायण में लिख्यो है कि ॥ तासु तेज प्रभु वदन समाना। सुर नर सबन अचंभौ माना ॥ इति युद्धकांडकथा ॥ औ सांकर जो रावण है ताके सांकर जो रामचन्द्र हैं तिन्हैं अयोध्याके सन्मुख होतही दशमुख जे ब्रह्मा विष्णु महेश हैं ते मुख कहे मुख्य औ गजमुख जे गणेश हैं ते रामचन्द्रको मुख जोवैं कहे स्तुति करत हैं अथवा दशमुख कहे दशौ दिशाके मुख औ गजमुख मुख कहे हाथिन में मुख्य ते मुख जोवैं कहे रामचन्द्रको मुख निहारत हैं इति उत्तरकांडकथा ॥ कोऊ कहै कि एक पदमें कैयो फेरि अर्थ कियो सो संक्षेप कथा है तासों दूषण नहीं है याही विधि रामायणादिक तिलककारन अर्थ कियो है याहूपर कोऊ हठ करै ता लिये द्वितीय प्रकार सों अर्थ बालक जो है शिशु सो जैसे बालखेलमें मृणालनको विनहीं श्रम तोरिडारै कहे तोरि डारत है इहां बालकपदमें जाति में एकवचन है त्यों कहे ताही विधि कठिन अतिकठोर औ भयानक ऐसा जो शम्भुधनुष है ताको बाल अवस्था में बालखेलसम रामचन्द्र तोस्यो त्यहि मुख कहे आदि दै ताड़कावधादि सीयविवाहादि जे बालकांडकी संपूर्ण कथाहैं तिनको इहां मुखपद क्रमकी आदि भो नहीं है श्रेष्ठतामो है औ अकाल कहे कुसमयको जो दीह दुख है अर्थ राम राज्याभिषेक में केकयीको वर मांगिवो रामवनगमन दशरथमरण भरतको व्रत करि नन्दीग्राम में वसन या प्रकारको जो अकाल दुख है त्यहिमुख जे चित्रकूट गमनादि अयोध्याकांडकथा हैं तिनको औ विराध खरदूषणादि राक्षसनको मारिकै ऋषिलोगनकी विपत्तिको सहजही पद्मिनीके पातसम हरत कहे दूरिकरत पंकरत पंक जे पाप हैं तिनको जैसे पेलिकै पातालको पठवै कहे पठै देत हैं अर्थ आपने दासनके जैसे पातक नाश करत हैं ताही विधि कलुष कहे पापरूप बंधुपत्नीभोगी जो बालि है ताको पठायो

अर्थ मारयो तिन मुख जे आरण्यकांड औ किष्किन्धाकांड की कथा हैं तिनको ऋषिनकी विपत्तिहरणादि आरण्यकांड कथा जानौ आदि पदत सीयहरणादि जानौ औ वालिवधादि किष्किन्धाकांड कथा जानौ आदि पदते सप्तताल वेधन सुग्रीव राज्याभिषेकादि जानौ औ क जो है अग्नि तासों लंकके जे अंक कही ध्वजादि चिह्न हैं तिन्हैं दूरिकै कहे विध्वंस करिकै जारिकै इति अर्थ हनुमान् के करसों लंका जारिकै दास जो विभीषण है ताके वपुप को आजु पर्यंत राखत हैं रक्षा करत हैं अर्थ रावणादिको मारि जो विभीषण को लंकाको राज्य दियो तामें आजुलों रक्षा करत हैं तिन मुख कथन को हनुमान् के करसों लंकादाहादि सुन्दर-कांडकी कथा जानौ औ रावणादि को वधकरि विभीषणको राज्यदानादि लंकाकांड कथा जानौ औ भरतको जो सांकर कहे नन्दीग्राम में यतीवेष बसिवेको कष्ट है ताही को जो सांकर कहे बंधन जंजीर है ताको जो नशन कहे नाश करिवो है अर्थ रामचन्द्र आइकै जो भरत के यतीवेष को क्लेश दूरि करयो है तेहि मुख कस है आदि दै औ ज कहे यज्ञ मुख कहे आदि दै अर्थ अश्वमेधादि जे मुख कहे मुख्य कथा हैं तिनको जोग कहे गीत हैं अर्थ कथन है ताको जे जोवै कहे देखत हैं अर्थ इन कथन सों युक्त रामच-न्द्रिका को जे पढ़त हैं तेही कहे निश्चय करिकै दशमुख मुख होते हैं अर्थ वक्तृत्व करिकै दशमुख के सदृश जिनको एक मुख होत है बड़े वक्ता होत हैं ॥ मयूरेग्नौ च पुंसि स्यात्सुखशीर्षजलेषु कम् ॥ इति मेदिनी ॥ गंगीतं गातुगाता च गौश्च धेनुः सरस्वतीत्येकाक्षरीयजनैयः समाख्यातः इत्येकाक्षरी १ ॥

बानी जगरानी की उदारता वखानी जाइ ऐसी मति कहौ धौं उदार कौनकी भई । देवता प्रसिद्ध सिद्ध ऋषिराज तपवृद्ध कहि कहि हारे सब कहि न कहूं लई ॥ भावी भूत वर्तमान जगत वखानत है केशोदास केहू न वखानी काहू पै गई । वर्णै पति चारिमुख पूत वर्णैं पांचमुख नाती वर्णैं षटमुख तदपि नई नई २ ॥

जगरानी कहे जगमें श्रेष्ठ ऐसी जे वाणी सरस्वती हैं तिनकी उदारता वड़ाई जासों वखानी जाइ कहौ ऐसी मति बुद्धि उदार वड़ी कौने प्राणीकी

भई है अर्थ काहूकी नहीं भई देवता बृहस्पति आदि औ प्रसिद्ध ज सिद्ध देवयोनि विशेष हैं अथवा भग आदि ऋषिराज वाल्मीक्यादि अथवा सिद्ध जे ऋषिराज हैं तपवृद्ध लोमश मार्कण्डेय आदि जाकी उदारताको कहि कहि कहे वर्णिवर्णिकै सब हारे हैं काहिकै सब उदारता काहू न लई कहे पाई अर्थ उदारता को अंत न पायो हारे यासों कह्यो कि अब नाहीं बखानत औ भावी कहे जे ह्वैहैं औ भूत जे ह्वैगये वर्तमान जे हैं जगत् कहे जगके जे प्राणी ते बखानत हैं सो केशवदास कहते हैं कि केहूं कहे काहू प्रकार सों काहू प्राणी सों उदारता न बखानी गई औ पति जे ब्रह्मा हैं ते चारि मुख सों औ पूत महादेव पांच मुखसों नाती स्वामिकार्त्तिक षण्मुखसों वर्णत हैं ताहूपर नई नई कहे नवीन नवीन रहति है अर्थ यह कि यहि प्रकार मुख वृद्धिसों वर्णत हैं परंतु इनको वर्णन जाकी उदारताको छुइ नहीं सकत अथवा ज्यहि वाणी के पति को चारिमुख औ पूतको पांचमुख नातीको षण्मुख सब वर्णन करत हैं यासों या जनायो कि चारिमुख सों संपूर्ण जगत् उत्पत्ति के कर्ता पंचमुच सों नाशकर्ता षण्मुख सों देवतन के रक्षक ऐसे पति पुत्र नाती हैं जाके यासों बड़ी बड़ाई जनायो औ ताहूपर नवीन नवीन होति जाति है २ और अर्थ जा मति सों वाणी जो सरस्वती है तासों जगरानी सीताजूकी उदारता बखानी जाइ ऐसी मति वाणी के कौन की कीन्हीं भई है अर्थ कौने ऐसी मति वाणी को दीन्हीं औ जा वाणी के पति पुत्रादि चतुरादि मुखसों वर्णत हैं और अर्थ एकही है अथवा सरस्वती की उक्ति है कि वाणी जो मैं हौं तासों जगरानी सीताजूकी उदारता बखानी जाइ कहे जाति है काकु सों अर्थ यह कि मोसों नहीं बखानी जाति काहेते कि ऐसी कौनकी उदारमति भई है कि जो बखानै काहे ते कि देवतादि औ मेरे पति पुत्रादि सब बखानत हैं ताहूपर नई नई रहति है ऐसी सरस्वती को अथवा सीताजूको नमस्कार करत हौं इति शेषः यामें नमस्कारात्मक मंगल है २ ॥

अन्यच्च ॥ पूरण पुराण अरु पुरुषपुराण परिपूरण बतावैं न बतावैं और उक्ति को। दरशन देत जिन्हें दरशन समुझै न नेति नेति कहै वेद छांड़ि भेदयुक्ति को ॥ योनि यह केशोदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।

रूप देहि अणिमाहि गुण देहि गरिमाहि भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को ३॥

जिन रामचन्द्र को पूरण कहे संपूर्ण अठारहो पुराण अथवा पूरण कहे जे कछु वस्तु चाहत नहीं शुकादि पुराण स्कंदादि औ पुरुषपुराण लोमश मार्कंडेय आदि ते परिपूर्ण कहे सर्वत्र व्याप्त बतावत हैं और उक्ति कहे कथा को नहीं बतावत अर्थ की ओर तर्क नहीं करत श्रीरामचन्द्रजी जाको दर्शन देत हैं ताको फेरि दर्शन की समुझ ज्ञान नहीं रहति अर्थ जाको रामचन्द्र को दर्शन होत है सो तिनमें लीन है जात है सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होत है अथवा और दर्शन स्त्री पुत्रादि की समझ नहीं रहति अर्थ संसार को बंधन मोह छूटि जात है रामरूपही ध्यान में निरखत है औ वेद जिनको अनेक भेदसों गान करि नेति नेति कहे न इति न इति कहे याही प्रकार को है सो न कहे नहीं हम जानत या प्रकार सब भेद की युक्ति को छोड़ि कहत है अर्थ यह कि जिनको प्रमाण वेदऊ नहीं जानत रूप जो रामचन्द्र को है सो अणिमा सिद्धि को देत है औ गुण जे हैं ते गरिमा सिद्धि देत हैं औ भक्ति महिमा सिद्धि को देति है औ नाम मुक्तिको देत है यह जानिकै काव्य रीति में एकई वस्तु को द्वैवार कहौं तौ पुनरुक्ति दूषण होत है ताको भय छोड़ि कै मुक्ति की इच्छा करि अनुदिन रोज रोज राम नाम को रटत हौं 'अर्थी दोषं न पश्यतीति प्रमाणात्' और अर्थ जो राम नाम को पुराणादि परिपूर्ण कहे भुक्ति मुक्त्यादि सब वस्तु सों पूरित अथवा सर्वत्र व्याप्त बखानत हैं सर्वत्र रहत हैं जहां चाहिये तहां लीजिये सब स्थान में मिलत हैं औ जिनको दर्शन कहे षट्शास्त्र तिनकी समुझ नहीं है तिनको रामचन्द्र दर्शन देत हैं अतिमूर्ख वाल्मीक्यादि नामहीं के जप सों रामचन्द्र को दर्शन पायो अथवा दर्शन ज्ञान देत हैं नेति नेति कहे न इति न इति कि सम्पूर्णार्थ इनहीं से कहे कि वाल्मीकै से हीन गति का यवनादि अनेकन पतितनको रामनामै सिद्धता को प्राप्त कीन है जाति कुल विद्या के भेद की युक्ति को छांड़िकै कछू जाति कुल विद्या पर नहीं है जोई नामोच्चारण करै सोई सिद्ध होइ या प्रकार वेद कहत है अथवा प्रथमहीं को अर्थ जानो जा नाम के माहात्म्यको वेद नहीं जानत फेरि नाम कैसो है रूप सौन्दर्य औ अणिमा सिद्धि औ अनेक गुण औ गरिमा सिद्धि औ महिमा सिद्धि औ नाम

कहे यश औ मुक्ति को देत है तौ सौन्दर्यादि जे दृष्टफल हैं ते जहां देखिय तहां रामनामहीं के प्रभावसों जानियो औ मुक्ति अदृष्टफल है ताके अर्थ अन्त्य अवस्था में सब रामनाम कहावत हैं यह सनातन रीति चली आवति है तासों जानियत है कि मुक्ति को दाता रामनाम छोड़ि दूसरो नहीं है अथवा रूप जो है वेष तामें अणिमादि सिद्धि देते हैं जैसो सूक्ष्मरूप चाहैं तैसो धरैं औ गुणन में गरिमा सिद्धि देत हैं रामनाम के जपप्रभावते सब गुण विद्यादि गुरु होत हैं औ भक्ति में महिमा सिद्धि बड़ाई देत है जो राम नाम जपत है सो बड़ो भक्त कहावत है औ नाम में मुक्ति को देत है अर्थ रामभक्तन प्राणिन की मुक्तिको जीवन में सब नाम गनत हैं अथवा नाम यश औ मुक्ति को देत है सो यह कहे ऐसो प्रभाव जानिकै केशवदास जो है सो पुनरुक्ति भय छांड़िकै अनुदिन राम नाम को रटत है या ग्रन्थ में राम नाम वस्तु है ताको निर्देश कथनमात्र है तासों वस्तु निर्देशात्मक मंगल है ३ ॥

सुगीतछंद ॥ सनाढ्यजाति गुनाढ्य हैं जगसिद्ध शुद्ध स्वभाव। कृष्णदत्त प्रसिद्ध हैं महि मिश्र पंडितराव ॥ गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध। अशेषशास्त्र बिचारिकै जिन जानियो मत साध ४ दोहा ॥ उपज्यो तेहि कुल मन्द-मति शठ कविकेशवदास ॥ रामचन्द्रकी चन्द्रिका भाषा करी प्रकाश ५ सोरहसै अट्ठावन कातिकसुदि बुधवार ॥ रामचन्द्रकी चन्द्रिका तब लीन्ह्यो अवतार ६ बालमीकिमुनि स्वप्न में दीन्हो दरशन चारु। केशव तिनसों यों कह्यो क्यों पाऊं सुखसारु ७ मुनि-श्रीछंद ॥ सिद्धि ऋद्धि ८ सारछंद ॥ राम-नाम सत्यधाम ९ और नामको न काम १० ॥

गुणाढ्य गुणनसों पूरित औ साधुमत उत्तमसत छंद उपजाति है जा छंद में और और द्वै आदि छंद के चरण होइँ सो छंद उपजाति कहावतिहै ४।५ जो मैं तिथि नहीं कह्यो सो वार पदते सात वार हैं तासों सप्तमी तिथि सब कहते हैं परंतु ज्योतिष के ग्रन्थ ग्रहलाघवादि के मत सों कल्पांत अहर्गण किये बुधवार पंचमी औ द्वादशी को आवत है सो द्वादशी भद्रातिथि है और

बुधे भद्रा सिद्धियोग होत है औ कार्त्तिक सुदी एकादशी को विष्णु जागत हैं विष्णु के जागे के उपरान्त ग्रन्थारम्भ करचो तौ चैत्रादिमास गणना सों कार्त्तिक पर्यंत आठ औ रविवारादि वारगणना सों बुधपर्यंत चारि जोरि द्वादशी तिथि जानो ६ सुखसार मुक्ति चौबीसयें प्रकाश में रामचन्द्र कह्यो है कि जगछूटे सुख योग तासों जानों ७ तीनि छंदकी अन्वय एक है सिद्धि जो आठ अणिमादिक हैं और ऋद्धि सम्पत्ति औ सत्य को धाम ऐसो जो रामनाम है तासों सुखसार पैहौ सुखसार देवेको और नामको काम नहीं है तौ सिद्धिको धाम कहि ऐहिक सुखप्रद जनायो औ सत्तको धाम कहि सत्यही ब्रह्म है तासों ब्रह्मरूपप्रद जनायो अर्थ जीवत में या लोक में सुखद है औ अन्तमें ब्रह्मपदप्रद है ८ । ९ । १० ॥

केशव-रमणछंद ॥ दुख क्यों टरी है ॥ मुनि-हरिजू हरी है ११ मुनि-तरणिजाछंद ॥ बरणिबे बरणसो ॥ जगत को शरणसों १२ प्रियाछंद ॥ सुखकंद है रघुनंदजू ॥ जग यों कहै जगबंदजू १३ सोमराजीछंद ॥ गुनो एकरूपी सुनो वेद गावैं ॥ महादेव जाको सदा चित्तलावैं १४ कुमारललिताछंद॥ विरंचि गुण देखै । गिरा गुणनि लेखै ॥ अनंत मुख गावै। विशेष यही न पावै १५ ॥

केशव पूछ्यो कि लोभ मोहादि कृत जो दुख है सो कैसे टरिहै तब मुनि कह्यो कि जब तू रामनाम ग्रहण करिहै तब रामचन्द्र हरिहैं छोड़ाइहैं इहां हरिशब्द यासों कह्यो कि 'हरति दुःखमिति हरिः' अर्थ दुखहरिबो उनके नामहीं को अर्थ है ११ दुख छोड़ाइ रामचन्द्र मुक्ति देहैं या निश्चय के अर्थ रामचन्द्र को ईश्वरत्व केशवको मुनि चारि छंद में देखावत हैं जो जगत्को शरणरक्षक है सो बरण रूप राम रूप अथवा रामनामांक तुम करिकै बर्णिबे है अर्थ रामचन्द्रको रूप अथवा राम नाम वर्णन करो १२ सब जग कहत है कि रघुनन्दन जे रामचन्द्र हैं ते सुख के कंद कहे मूल हैं इनहीं के आश्रित सब सुख हैं औ जगवंद हैं सब जग जिनको वंदना करत है सुखकंद कहि या जनायो कि सुखसार रामचन्द्रही सों पाइहै और देव देवे को समर्थ नहीं हैं १३ जिन रामचन्द्र को वेद जो हैं सो

एकरूपी कहे जो सदा एकरूप रहत हैं ब्रह्मज्योति जासों गुन्यो कहे ठहरायो है सो गान करत हैं सो हम वेदवाक्य सों गुन्यो है अथवा एक कहे जिनसम दूसरो नहीं है औ रूपी कहे अनेक रूपसों सर्वत्र व्याप्त हैं फिरि कैसे हैं जिनको महादेव सदा ध्यावते हैं १४ यामें रामचन्द्र के गुणन को माहात्म्य है अनंत शेप विशेष निर्णय १५॥

नगस्वरूपिणीछंद॥ भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै॥ न रामदेव गाइहै। न देवलोक पाइहै १६ षट्पद॥ बोलि न बोल्यो बोल दयो फिरि ताहि न दीन्हो। मारि न मार्यो शत्रु क्रोध मन वृथा न कीन्हो॥ जुरि न मुरे संग्राम लोककी लीक न लोपी। दान सत्य सन्मान सुयश दिशि विदिशाओपी॥ मन लोभ मोह मद कामवश भयो न केशवदास भणि। सोइ परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतारमणि १७ दोहा॥ मुनिपति यह उपदेश दै जबहीं भयो अदृष्ट॥ केशवदास तहीं कर्यो रामचन्द्रजू इष्ट १८॥

तू अनेक कथा वृथा कह्यो सुनो करतहै आपनो भलो बुरो नहीं गुनतो विचारतो जवलौं जैसे पूर्व कहिआये ऐसे रामदेवको न गाइहै तबलौं अनेक कथनसों देवलोक न पैहै इहां देवलोक वैकुंठ जानो वैकुंठ देवे की शक्ति रामचन्द्रही में है और देव नहीं देसकत कहूं रामलोक पाइ हैं पाठ है तो रामलोक वैकुंठ १६ प्रथम ईशत्व वर्णन कर्यो अब यामें रामचन्द्र को स्वभाव गुण वरण्यो है रामचन्द्र जू बोले सो फेरि नहीं वोले अर्थ जो एकवात कह्यो सोई कर्यो है फेरि बदलिकै और बात नहीं कह्यो वनगमनादि वचन ते जानो औ जाको दान दियो ताको फेरि वही दीन्हो अर्थ एकही बार ऐसो दियो जामें वाके फेरि मांगिवे की इच्छा नहीं रही विभीषणादि को लंकादानादि ते जानो और शत्रुको एकही बार ऐसो मारिकै नाश कियो जामें फेरि नहीं मारिबे पर्यो खरदूपण रावणादि बधते जानो औ संग्राम में जुरिकै नहीं मुरे खरदूपण रावणादिके युद्धते जानो औ लोककी लीक मर्यादाको लोप नहीं कियो रावणके वधसों ब्रह्मदोष मानि अश्वमेध करनादि सों जानो औ दान औ सत्य औ सन्मान के सुयश करिकै दिशा औ विदिशा ओपी

हैं अर्थ जिनको सुयश दिशि विदिशन में छाइ रह्यो है औ जिनको मन लोभ औ मोह औ मद औ काम के वश नहीं भयो राज्य त्यागादि सों लाभ विवश जानो माता पिताको दुखित हुये देखि वनगमन करनादि सों मोह विवश जानो औ अगस्त्यादि ऋषिन के यथोचित सत्कार सों मद विवश जानो एक पत्नीव्रतसों काम विवश जानो जाके ऐसे स्वभाव गुण हैं सोई श्रीराम वाराहादि अवतारन में मुनिश्रेष्ठ अवतारी कहे अवतार को धरे साक्षात् परब्रह्म हैं अथवा श्रीराम अवतारी कहे अनेक अवतारन को धरत हैं औ परब्रह्म हैं १७ अदृष्ट अन्तर्धान इष्ट पूज्य देवता १८ ॥

गाहाछंद ॥ रामचन्द्रपदपद्मं वृंदारकवृंदाभिवंदनीयम् ॥ केशवमतिभूतनयालोचनं चंचरीकायते १९ ॥ चतुष्पदीछंद ॥ जिनको यश हंसा जगत प्रशंसा मुनिजन मानसरंता । लोचन अनुरूपनि श्यामस्वरूपनि अंजनअंजित संता ॥ कालत्रयदर्शी निर्गुणपर्शी होत विलम्ब न लागै । तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै २० ॥

वृंदारक जे देवता हैं तिनके वृंद समूह तिन करिकै अभिवंदनीय अर्थ जिनको अनेक देवता वंदना करत हैं ऐसे जे रामचन्द्र के पदपद्म पदकमल हैं तिन तन प्रति केशवदास की मतिरूपी जो भूतनया सीता हैं ताके लोचन चंचरीकायते कहे चंचरीक भ्रमर के ऐसे आचरण करत हैं अर्थ जब मुनि की आज्ञा सों रामचन्द्रको इष्टदेवता कर्‌यो तब सीतासम सदा राम निकटवर्तिनी हमारी मति के लोचन कमल में भ्रमर सदृश रामचन्द्र-चरण में अनेक कौतुक करने लगे १९ मानस मानसर औ मन आय आपने लोचननके अनुरूप कहे योग्य और के लोचनके योग्य कज्ज-लादि अंजन है संतन के लोचनन के योग्य रामरूपही है ऐसे जे जिन रामचन्द्र के अनेक प्रतिबिंब श्यामस्वरूपरूपी अंजन है तिन करि जे संत अंजित हैं अर्थ रामचन्द्र के प्रतिबिंब रूपनको जे संतजन ध्यान में आनत हैं अथवा श्यामस्वरूपनि कहे श्यामरूपतारूपी जो अंजन है ताकरिकै जे संत अंजित हैं तिन संतनको त्रिकालदर्शी औ निर्गुणपर्शी नेत्रन करि ज्योति स्पर्श करै या अर्थ ब्रह्मज्योति के द्रष्टा होत बेर नहीं लागति जे रामचन्द्रको ध्यान करत हैं ते त्रिकालदर्शी होत हैं औ ब्रह्मज्योति को

देखते हैं इति भावार्थः अथवा निर्गुणपर्शी होत कहे निर्गुण ज्योति में मिलिजात वेर नहीं लागति अथवा निर्गुणते पर अन्य विष्णुकी श्री शोभा होत वेर नहीं लागति पुरातन पूर्वकृत २० ॥

दोहा ॥ जागति जाकी ज्योति जग एकरूप स्वच्छंद ॥ रामचन्द्रकी चन्द्रिका बरणतहौं बहुछंद २१ रोलाछंद ॥ शुभ सूरजकुलकलशनृपतिदशरथ भये भूपति । तिनके सुत भये चारि चतुर चित चारु चारु मति ॥ रामचन्द्र भुवचन्द्र भरत भारतभुवभूषण । लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न दीह दानव दलदूषण २२ छत्ताछंद ॥ सरयू सरिता तट नगर बसै अवध नाम यश धामधर ॥ अघओघविनाशी सब पुरवासी अमर-लोक मानहु नगर २३ ॥

ज्योति ब्रह्मज्योति अथवा अंगछवि औ बहुछंद कहे अनेक रंग तौ जा रामरूपी चन्द्रकी ज्योति तौ एकरूप है ताकी चन्द्रिका अनेक रंग द्वैवो आश्चर्य है यह युक्ति है औ अर्थ यह कि बहुत छंद जे दोहादि हैं तिनसों युक्त २१ सूर्यकुल के कलश जे नृपति अजादि हैं तिनमें दशरथ भूपति राजा भये भारत भरतखंड २२ यशको धाम कहे घर है धरा पृथ्वी जाकी औ जा पुरीके वासी देवतन सरिस अघ पापनके ओघ समूहन के विनाशी हैं तासों देवलोक सम है २३ ॥

छप्पै ॥ गाधिराजको पुत्र साधि सब मित्रशत्रुबल । दान कृपान विधान वश्य कीन्हो भुवमंडल ॥ कै मन अपने हाथ जीति जग इंद्रिनगन अति । तपबल याही देह भये क्षत्रिय ते ऋषिपति ॥ तेहि पुर प्रसिद्ध केशव सुमति काल अ-तीतागतानि गुनि । तहँ अद्भुतगति पगुधारियो विश्वामित्र पवित्र मुनि २४ प्रझटिकाछंद ॥ पुनि आये सरयू सरित तीर । तहँ देखे उज्ज्वल अमल नीर ॥ नव निरखि निरखि द्युति गति गँभीर । कछु बरणन लागे सुमतिधीर २५ ॥

अतिनिपट कुटिलगति यदपि आप। वह देत शुद्धगति छुवत आप॥ कछु आपुन अधअधगति चलंति। फलपति तन को ऊरधफलंति २६ मदमत्त यदपि मातंग संग। अति तदपि पतितपावन तरंग॥ बहु न्हाइ न्हाइ जेहि जल सनेह। सब जात स्वर्ग शूकर सुदेह २७॥

त्रिकालदर्शीत्वते जेतो काल बीते रामचन्द्र को अवतार होनो रहै सो काल अतीत कहे बीतो जानिकै औ जा काल में रामचन्द्रजू यज्ञरक्षा करन लायक भये सो काल आगत आयो गुनिकै २४। २५ दुवौ छंदन में विरोधाभास है आप कहे अपना औ आप कहे जल के छुवतही शुद्धगति मुक्ति देत है अथवा जाके जल को कहूं अनतहूं छुवौ तौ शुद्धगति देत है ऊरध पदते स्वर्ग जानो २६ मद मदिरा सों मत्त यद्यपि मातंग चाण्डालन को संग है विरुद्धार्थः "मातङ्गः श्वपची हस्तीत्यभिधानचिन्तामणिः" औ मत्त गज जामें स्नान करते हैं इत्यविरोधः॥ पतितपावन कहे पतितनको पवित्रकर्ता स्नेहनसों ताके जल में न्हाइ न्हाइकै शूकर पर्यन्त बहु प्राणी सुंदर देहको धरि सब स्वर्ग जातहैं अथवा सनेह कहे अप्सरादिकनके इति शेषः॥ स्नेह सहित अर्थ अप्सरादि स्नेह सहित ताको स्वर्ग लै जाती हैं अथवा तेहिके जलके स्नेहहू सों कहूं होइ सरयूजलमें स्नेह करै स्वर्ग जाइ कहूं सदेहपात है देह सहित स्वर्ग जाइ अर्थ याही देहमें देवरूप ताको प्राप्त ह्वै जात हैं जिनको देह त्यागहू को कष्ट नहीं होत इति भावार्थः अथवा शूकर देह सहित जे जीवहैं ते स्वर्ग जात हैं और देहधारी तौ जातही हैं २७॥

नवपदीछंद॥ जहँ तहँ लसत महामदमत्त। वरबारन बारनदलदत्त॥ अंगअंग चरचे अतिचंदन। मुंडनभुरकेदेखियबंदन २८ दोहा॥ दीह दीह दिग्गजनके केशव मनहुँ कुमार॥ दीन्हे राजा दशरथहि दिगपालन उपहार २९ अरिल्लछंद॥ देखि बाग अनुराग उपज्जिय। बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय॥ राजति रतिकी सखी सुवेषनि। मनहुँ बहति मनमथ संदेशनि ३०॥

ग्राम बाहर जहां तहां महावत हाथिनको फेरत हैं तिनका वर्णन है सुभावोक्ति है अथवा स्थानपर बँधे हैं वारण हाथी तिनके दल चमूको अकेलेइ दलिडारत हैं यासों अतिबली जानो अथवा वार कहे बेर नहीं लागति शत्रुदल को दलिडारत हैं भुरके लगाये चंदन रोरी २८ दिक्पाल इंद्रादि उपहार भेंट २९ कल अव्यक्त मधुर ३० ॥

फूलिफूलि तरु फूल बढ़ावत । मोदत महामोद उपजावत ॥ उड़त पराग न चित्त उठावत । भँवर भ्रमत नहिं जीव भ्रमावत ३१ पादाकुलकछंद ॥ शुभसर शोभै । मुनिमन लोभै ॥ सरसिज फूले । अलि रसभूले ॥ जलचर डोलैं । बहु खग बोलैं ॥ वरणि न जाहीं । उर अरुझाहीं ३२ चतुष्पदी छंद ॥ देखी वनवारी चंचलभारी तदपि तपोधन मानी । अतितपमय लेखी गृहथित पेखी जगत दिगंबर जानी ॥ जग यदपि दिगंबर पुष्पवती नर निरखि निरखि मन मोहै । पुनि पुष्पवतीतन अति अतिपावन गर्भसहित सभ सोहै ३३ पुनि गर्भसंयोगी रतिरसभोगी जगजनलीन कहावै । गुणि जग जललीना नगरप्रवीना अतिपतिके चित भावै ॥ अति पतिहि रमावै चित्तभ्रमावै सौतिन प्रेम बढ़ावै । अब यों दिन रातिन अद्भुत भांतिन कविकुल कीरति गावै ३४ ॥

मोदत कहे सुगंध को पसारत ३१ । ३२ द्वैछंद को अन्वय एक है वनवारी कहे उपवन औ श्लेष ते वनकी वारी कुमारी कुमारी पक्ष विरोध है वाटिका पक्ष शुद्धार्थ है विरोधाभास अलंकार है चंचलस्वभाव चंचल औ वायुयोगसों चंचल हैं पत्तजा भारी कहे गरू है देह जाकी औ दीर्घ वृत्तयुक्त तपोधन तपस्विनी औ तपस्वी सम शीत घाम तोय दुख सहति है गृह घर औ परिखा आरदीवालीति दिगंबर वस्त्र रहित दुवौ पक्ष में पुष्पवती रजोधर्मिणी औ प्रफुल्लित तन अति कहे स्थूलकाय औ बहुत भूमि में विस्तार है जाको अतिपावन पवित्र अति दुवौ पक्ष में गर्भ सहित गुर्विणी औ फल गर्भ सहित यासों सदा फलोत्पत्ति जनायो रतिरस

सुरति औ प्रीति जगजनलीना अनेकपुरुषभोगिनी परकीया इति । औ जगके जनन करिकै युक्त अर्थ अतिसुख पाइ जगजन बैठत हैं जामें प्रवीणा दोष रहित और सर्वोत्तमा नवीना पाठ होइ तौ नवोढ़ा औ नूतन याने आपनो पुरुष औ राजा सौंपी पतिकी और स्त्री औ राजपत्नी ३३ । ३४ ॥

हाकलिकाछंद ॥ संग लिये ऋषि शिष्यन घने । पावकसे तपतेजनि सने ॥ देखत सरिता उपवन भले । देखन अवध-पुरी कहँ चले ३५ मधुभारछंद ॥ ऊँचे अवास । बहुध्वज प्रकास ॥ शोभाविलास । शोभै अकास ३६ आभीरछंद ॥ अतिसुंदर अतिसाधु । थिर न रहत पल आधु ॥ परम तपोमय मानि । दंडधारिणी जानि ३७ हरिगीतछंद ॥ शुभ द्रोणगिरिगणशिखर ऊपर उदित औषधिसी गनो । बहु वायुवश वारिद बहोरहि अरुझि दामिनिद्युति मनो ॥ अति किधौं रुचिर प्रताप पावक प्रकट सुरपुरको चली । यह किधौं सरित सुदेश मेरी करी दिवि खेलति भली ३८ ॥

उपवन वाटिका ३५ अवास पर ३६ दंडधारिणी हैं दंडिन के व्रतको धरे हैं दंडी दंड धरे रहते हैं ये दंड कहे ध्वजदंड धरे हैं कैसो है ध्वजा औ दंडी अतिसुंदर हैं सुवस्त्र रचित औ तप तेज करि भव्यरूप हैं साधु राग द्वेष रहित दुवौ हैं थिर न रहत वायु योग सों चंचल रहती हैं औ अनेकतीर्थन में फिर्यो करत हैं औ परम तपोमय हैं सदा शीत घाम तोय सहती हैं औ प्राणायामादि अनेक तप करत हैं और अर्थ विरोधाभास है विरोधार्थ अतिसाधु हैं औ पल आधु थिर नहीं रहतीं तौ साधु बिषे चंच-लता विरोध है औ परम तपोमय कहे बड़े तपको करती हैं औ दंडधा-रिणी हैं दंड कहे राजदंड डांड़इति धारण करता है लेता है तौ तपस्वी को दंड लेवो विरोध है अविरुद्धार्थ प्रथम को ते जानो ३७ द्रोणगिरि सदृश मंदिर हैं शिखर अग्रभाग औषधि सरिस कर्यो तासों अरुणपताका वर्णन जानो औ कि दामिनी विजुली की द्युति हैं अरुझिरही हैं तिनको वारिद के वश्य है अर्थ वारिदकी आज्ञासों वायु वश कहे अनेक प्रकारसों बहो-रत है मेघनके पास लै जावो चहत है यासों मंदिरन की अतिउच्चता

जनायो प्रताप पावक रघुवंशिन को इति शेषः या प्रकार अरुण पताका पंक्तिको वर्णन करि यह पदसों दूसरी श्वेतपताका पंक्तिको अवलोकि वर्णन लगे सो जानो मेरी करी कहे वनाई विश्वामित्र सृष्टि करन लागे हैं तब नदी वनायो है सो आकाशमें है पुराणोक्त है कविप्रियाहू में कह्यो है कि "ऊंचे ऊंचे अटनि पताका अति ऊंची जनु कौशिककी कीन्ही गंग खेलैं ये तरलतर।" अथवा मेरी कहे हमारी भगिनी भागिनीति शेषः। दिवि कहे दिव्यरूप कहे खेलति है आकाशमें कौशिकी नदी है सो विश्वामित्र की भगिनी है ३८॥

दोहा॥ जीति जीति कीरति लई शत्रुनकी बहुभांति॥ पुरपर बांधी शोभिजे मानो तिनकी पांति ३९ त्रिभंगीछंद॥ सम सब घर शोभैं मुनिमन लोभैं रिपुगण क्षोभैं देखि सबै। बहु दुंदुभि बाजैं जनु घन गाजैं दिग्गज लाजैं सुनत जबै॥ जहँतहँ श्रुति पढ़हीं विघन न बढ़हीं जय यश मढ़हीं सकल दिशा। सबई सब विधि छम बसत यथाक्रम देवपुरीसम दिवसनिशा ४०॥

ताही श्वेतपताका पंक्तिमें फेरि तर्क है ३९ द्वैछंदको अन्वय एक है क्षोभैं डरत हैं हम समर्थ रातिउ दिन देवपुरी सम है यामें श्लेषार्थहू है कैसी देवपुरी औ अयोध्या है सम बरावरि है दिन राति जामें घटत बढ़त नहीं छः महीना उत्तरायण दिन रहत है दक्षिणायन राति रहत है औ सम है तुल्य आनन्ददायक है रातिउ दिन जामें रात्रिहूको चौरादिको भय नाहीं होत और अर्थ दुवौ पक्ष एकही है ४०॥

कविकुलविद्याधर सकलकलाधर राजराज वर वेष बने। गणपति सुखदायक पशुपति लायक सूर सहायक कौन गने॥ सेनापति बुधजन मंगल गुरुजन धर्मराज मन बुद्धि घनी। बहु शुभ मनसाकर करुणामय अरु सुरतरंगिणी शोभसनी ४१॥

फेरि कैसी है देवपुरी कवि शुक्र औ कुलकहे समूह विद्याधरनके विद्याधर देवयोनि विशेष है औ सकलकलाधर चन्द्रमा औ राजराज कुबेर ये सब वरवेष कहे सुंदर वेष कहे रूपसों वने हैं औ सुखदायक जो गणपति गणेश हैं औ लायक कहे श्रेष्ठ पशुपति महादेव हैं औ सूर कहे सूर्य और

जे इंद्रसहायक कामादि हैं तिन्हैं को गनै अर्थ कि अनेक हैं सेनापति स्वामिकार्त्तिक औ बुधजन चन्द्रपुत्र जनपद इहां स्वरूपको वाची है औ मंगल भौम औ गुरु बृहस्पति औ गण कहे गणदेवता "आदित्यविश्ववसवस्तुषिता भास्वरानिलाः । महाराजिकसाध्याश्च रुद्राश्च गणदेवता इत्यमरः ॥" औ मनमें बुद्धि है घनी जिनके ऐसे धर्मराज कहे यमराज हैं बहुशुभयुक्त हैं मनसाकर कहे कल्पवृक्ष औ करुणामय कहे विष्णु औ सुरतरंगिणी आकाशगंगा इन सबकी शोभासों सनी हैं अर्थ ये सब वसत हैं यामें अयोध्या कैसी है कवि काव्यकर्ता वाल्मीकि सदृश औ विद्या चतुर्दश "अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः । पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्याश्चैताश्चतुर्दश ॥ इति मनुः" अथवा धनुर्विद्यादि तिनके धर्ता औ सकल कहे चौंसठिहू कलन के धर्ता औ राजराज कहे वड़े राजाते वरवेष सों बने हैं अनेक राजा राजा दशरथ की सेवामें हाजिर पुरीमें बसे रहत हैं औ सुखदायक गणपति कहे यूथप औ लायक श्रेष्ठ पशुपति गोपालादि अथवा गजादि औ सहायक कहे जे सबकी सहाय करत हैं ऐसे जे शूर योधा हैं तिन्हैं को गनै बहुत हैं औ सेनापति चमूनाथ बुधजन पंडित औ मंगल कहे मंगलपाठी औ गुरुगण वशिष्ठादि अथवा मंगलकर्त्ता जे गुरुगण वशिष्ठादि हैं औ मनमें बुद्धि है घनी जाके ऐसो धर्मराज कहे न्यायदर्शी हैं कोतवालेति औ बहुत प्राणी शुभ जो मनसा मनोभिलाष है ताके करनहार हैं अर्थ मनोरथके दाता हैं औ बहुत करुणामय कहे दयाशील हैं औ सुरतरंगिणी सरयू इनकी शोभासों सनी हैं अर्थ इन सबसों युक्त है ४१ ॥

हीरकछंद ॥ पंडितगण मंडितगुण दंडितमति देखिये । क्षत्रियवर धर्मप्रवर क्रुद्धसमर लेखिये ॥ वैश्य सहित सत्य रहित पाप प्रकट मानिये । शूद्रशकति विप्रभगति जीव जगति जानिये ४२ ॥

पंडित पद ते ब्राह्मण जानौ ते अनेक गुण जे शास्त्रादि हैं तिनसों मंडित युक्त हैं औ दंडित हैं शिक्षित है मति जिनकी अर्थ सतमति सों युक्त हैं औ क्षत्रिय क्षत्रधर्म करिकै प्रवर बली हैं औ समरही में क्रोध करत हैं औ वैश्य बनियां सत्यसों युक्त हैं औ पापसों रहित हैं औ शूद्रनके जीव में ब्राह्मणकी भक्ति जगति है ताही में तिनकी शक्ति बल जानियत है अर्थ शूद्र

भक्तियुक्त ब्राह्मणनकी सेवा करत हैं अथवा शूद्रन के जीवमें शक्ति कहे देवी औ विप्रकी भक्ति जगति है शूद्रनको देवी औ ब्राह्मणनकी उपास वासना उचितहै या प्रकार आपने आपने धर्मसों युक्त चारोंवर्ण बहत हैं यामें ४२ ॥

सिंहविलोकितछंद ॥ अतिमुनि तन मन तहँ मोहि रह्यो। कछु बुधि बल वचन न जाय कह्यो ॥ पशु पक्षि नारि नर निरखि तबै। दिन रामचन्द्र गुण गनत सबै ४३ मरहट्टाछंद ॥ अतिउच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चिंतामणि नारि। बहु सतमखधूपनि धूपित अंगनि हरिकीसी अनुहारि ॥ चित्रीबहुचित्रनि परमविचित्रनि केशवदास निहारि। जनु विस्वरूपको अमल आरसी रची विरंचि विचारि ४४ सोरठा ॥ जग यशवंत विशाल राजादशरथ की पुरी ॥ चन्द्रसहित सबकाल भालथली जनु ईशकी ४५ ॥

दिन कहे दिनप्रति ४३ बहुत जे अतिउच्च अपारघर हैं बहु पदको संबंध सर्वत्र है तिनकी जे बनी पगार परिखा हैं छारदेवालीति कहूं शिरवन्दी कहत हैं तिनमें लगी अनेक पुरकौतुक देखिबेको चिंतामणि सदृश नारी स्त्री ठाढ़ी हैं चिंतामणि सदृश जिनको देखि मनोभिलाष पूरे होत हैं या प्रकारके स्त्रीभवन हैं औ बहुत घर सत कहे उत्तम जे मखयज्ञ हैं तिनके धूपनकहे धूमन करिकै धूपित अंगनि सों युक्त हैं ते हरि विष्णु के अनुहारि हैं अर्थ श्यामरूप हैं ऐसे यज्ञशाला हैं औ बहुत घर परम विचित्र कहे अद्भुत चित्रनिसों चित्रित हैं तिन्हैं मानो विरंचि ब्रह्मा विचारि एकाग्र चित्त करिकै विश्वरूप जो संसार है अथवा विराटरूप ताकी आरसी ऐना बनायो है जैसे ऐनामें बिंब सदृश प्रतिबिंब देखिपरत है तैसे संसारमें जो वस्तु है सो सब मंदिरनमें चित्रित है ऐसे चित्रशाला हैं पुरी में पैठि तिन्हैं विश्वामित्र निहारि कहे देखत भये ४४ जगमें विशाल सुंदर औ यशवंत कहे यशयुक्त जो राजा दशरथकी पुरी है सो सबकाल चन्द्रमा सहित मानो ईश महादेवकी भालथली है चन्द्र सरिस यश है विशाल दुवौ हैं यासों सदा निष्कलंक यशयुक्त पुरी को जनायो ४५ ॥

कुंडलिया ॥ पंडित अति सिगरी पुरी मनहुँ गिरागति

गूढ़ । सिंहनियुत जनु चंडिका मोहति मूढ़ अमूढ़ ॥ मोहति मूढ़ अमूढ़ देवसँग दितिसों सोहै । सब शृंगार सदेह मनो रति मन्मथ मोहै ॥ सब शृंगार सदेह सकल सुख सुखमा-मंडित । मनो शची विधि रची विविध विधि वरणत पंडित ४६ ॥

सिगरी पुरी अतिपण्डित है अर्थ पुरीके निवासी जन सब पण्डित हैं यासों मानों गति कहे दशा है गूढ़ जाकी अर्थरूप पुरी है अपनी दशा को छपाये मानों गिरा सरस्वती हैं गिराहू के आशते जन अतिपण्डित होत हैं अथवा मनहूं को औ गिरा कहे वचननहूं की गति है गूढ़ जाकी अर्थ जाकी दशा को अन्त मन वचन नहीं पावत चण्डिकाको सिंह वाहन है औ विकरालरूप देखि मूढ़ औ अमूढ़के भय से मोह होत है पुरी पुरुषसिंहन सों युक्त है औ अतिविचित्र शोभा निरखि मूढ़ अमूढ़ के आनन्द से मोह होत है अदिति के देवता पुत्र हैं तासों संग में देव रहत हैं इहां अदिति पदकी अकारको लोप है भाषा के कविनको नियम है कहूं अकारादि पद की अकारको लोपकरि डारत हैं यथा । विहारीकृत सप्तशतिकायाम् "अधिक अँधेरो जग करै मिलि मावस रविचंद ॥" अथवा दिति दैत्यमाता सम है जैसे दिति सों बड़े वीर दैत्य भये हैं तैसे अयोध्याहू में अनेक वीर उत्पन्न होत हैं रति मन्मथ कामकी स्त्री है तासों मनको मोहति है पुरी शोभासों कामहूको मन मोहति है तासों अतिशोभायुक्त जानौ शची इंद्राणि हूं राज्यादि सब सुख औ सब सुखमा शोभासों मण्डितहै औ अनेकविधि सों पण्डित वर्णन करत हैं ऐसी पुरीहू है अथवा सुखमासों मण्डित युक्त सकल जे सुख हैं तिनसों सची कहे संचित पूंजीभूत मानों विधातैं रच्यो है अर्थ पूर्णसुख औ पूर्णशोभा एकत्रकरि ताहीको पुरी बनायो है ४६ ॥

काव्यछंद ॥ मूलनहींको जहां अधोगति केशव गाइय । होमहुताशनधूम नगर एकै मलिनाइय ॥ दुर्गति दुर्गनहीं जो कुटिलगति सरितनही में । श्रीफलको अभिलाष प्रकट कविकुल के जीमें ४७ दोहा ॥ अतिचंचल जहँ चलदलै विधवा बनी न नारि ॥ मन मोह्यो ऋषिराजको

अद्भुत नगर निहारि ४८ सोरठा ॥ नागर नगर अपार महामोहतम मित्रसे ॥ तृष्णालताकुठार लोभसमुद्रअगस्त्य से ४९ दोहा ॥ विश्वामित्र पवित्र मुनि केशव बुद्धिउदार ॥ देखत शोभा नगरकी गये राजदरबार ५० ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां विश्वामित्रस्याऽयोध्यागमनंनाम प्रथमः प्रकाशः ॥ १ ॥

मूल जर अधोगति नरक औ नीचेकी गति गमन हुताशन अग्नि दुर्गति नरक औ दुष्करि कहे गति जिनमें कुटिलता इति श्रीफल द्रव्य औ बिल्वफल कुचनकी उपमा देबेको परिसंख्यालंकार है ४७ चलदल पीपरवृक्ष वनी वाटिका सोई विधवा है याहू में परिसंख्या है ४८ नागर प्रवीन मित्र सूर्य जो सदा सब वस्तु पाइबे की इच्छा है सो तृष्णा जानौ औ जो कछू वस्तु देखि सुनिकै इच्छा चलै सो लोभ जानौ ४९ । ५० ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादायजनजानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां प्रथमः प्रकाशः ॥ १ ॥

दोहा ॥ या दूसरे प्रकाश में मुनि आगमन प्रकाश ॥ राजासों रचना वचन राघव चलन विलास १ हंसछंद ॥ आवत जात राजके लोग ॥ मूरति धारी मानहु भाग २ मालतीछंद ॥ तहँ दरबारी । सब सुखकारी ॥ कृतयुग कैसे । जनु जन वैसे ३ दोहा ॥ महिष मेष मृग वृषभ कहुँ भिरत मल्ल गजराज ॥ लरत कहूं पायक नटत बहुनर्तक नटराज ४ समानिकाछंद ॥ देखि देखिकै सभा । विप्र मोहियो प्रभा ॥ राजमंडली लसै । देवलोकको हँसै ५ मल्लिकाछंद ॥ देशदेशके नरेश । शोभिजै सबै सुवेश ॥ जानिये न आदि अंत । कौन दास कौन संत ६ दोहा ॥ शोभित बैठे तेहि सभा सातद्वीप के भूप ॥ तहँ राजादशरथ लसैं देवदेवअनु-

रूप ७ देखि तिन्हैं तब दूरिते गुदरानो प्रतिहार ॥ आये विश्वामित्रजू जनु दूजो करतार ८ उठि दौरे नृप सुनतही जाइ गये तव पाँइ ॥ लैआये भीतर भवन ज्यों सुरगुरु सुरराइ ६ सोरठा ॥ सभामध्य बैताल ताहि समय सो पढ़ि उठ्यो ॥ केशव बुद्धि विशाल सुंदर शूरो भूप सो १० ॥

१ । २ कृतयुग सत्ययुग ३ मल्लवाहु युद्धकर पायक पटेबाज नटत कहे नाचत हैं नर्तक नृत्यकारी ४ । ५ जहां सिंहासनमें राजा दशरथ बैठे हैं सो आदि है तहांते जहां पर्यंत दरबारी बैठे हैं सो अन्त है सो आदि ते अंत तक दरबारिनमें कौन दास कहे सेवक है औ कौन संत कहे स्वामी है यह नहीं जानियत अर्थ सब दरबारी राजसाज सँवारे हैं "सद्विद्यमाने सत्ये च प्रशस्तार्चितसाधुषु इत्यभिधानचिंतामणिः ॥" इहां अर्चितपदको पर्याय स्वामी जानौ ६ देवदेव इन्द्र ७ गुदरानो जाहिर कियो कर्तार ब्रह्मा ८ । ६ बैताल भाट १० ॥

बैताल–घनाक्षरी ॥ विधिके समान हैं विमानी कृतराज हंस विविध विबुधयुत मेरुसों अचल है । दीपति दिपति अति सातौ द्वीपदीपियत दूसरो दिलीपसों सुदक्षिणा को बल है ॥ सागर उजागरकी वहु वाहिनी को पति छनदान प्रिय किधौं सूरज अमल है । सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ भगीरथ पथगामी गंगाकैसो जल है ११ दोहा ॥ यद्यपि ईंधन जरि गये अरिगण केशवदाश ॥ तदपि प्रतापानलन के पलपल बढ़त प्रकाश १२ तोमरछंद ॥ बहुभांतिपूजि सुराइ । करजोरिकै परिपाइ ॥ हँसिकै करयो ऋषि मित्र । अब बैठ राज पवित्र १३ मुनि–सुनि दान मानसहंस । रघुवंश के अवतंस ॥ मनमांह जो अतिनेहु । यकवात मांगे देहु १४॥

विमानीकृत कहे वाहनीकृतहैं राजहंस जिन करिकै ब्रह्माको हंस वाहन है और राजा विमानीकृत कहे मानरहित किये हैं राजनके हंस जीव

जिन करिकै अथवा विमानीकृत वाहिनीकृत हैं राजन के हंस जीव जिन करिकै अर्थ शत्रु भय सों मित्र प्रेमसों मनमें चढ़ाये रहत हैं विबुध देवता औ पण्डित दिलीपकी स्त्री को सुदक्षिणा नाम रह्यो ताके पातिव्रत को बल रहो औ सुष्ठु जो दक्षिणा दान द्रव्य है वाहिनी नदी औ चमू छनदा रात्रि न हों हे प्रिय । जाकी सूर्यके अमल में अर्थ सूर्य के प्रकाश में रात्रिको नाश होत है अथवा छनदान कहे जलांजलिदान औ क्षणक्षण प्रति दानही प्रिय जिनको क्षणक्षण में दानदीबो करत हैं गङ्गाजल सगरके सुतनके तारिबे को भगीरथके पीछे पीछे आयो है औ राजा कुल पंथगामी हैं श्लेषधर्मोपमा है कोऊ परंपरित रूपक कहत हैं ११। १२ ऋपिनमों मित्र सूर्य सम हैं १३ दानरूपी जो मानस मानसर है ताके तुम हंसहौ अर्थ दानही में है विहार जिनको बड़े दाताहौ अवतंस कर्णभूषण १४ ॥

राजा–अमृतगतिछंद ॥ सुमति महामुनि सुनिये । तन मन धन सब गुनिये ॥ मनमहँ होइ सो कहिये । धनि जो आपुन लहिये १५ ऋषि–दोधकछंद ॥ राम गये जबते वन माहीं । राकस वैर करैं बहुधाहीं ॥ रामकुमार हमैं नृप दीजै । तौ परिपूरण यज्ञकरीजै १६ तोटकछंद ॥ यह बात सुनी नृपनाथ जबै । शरसे लगे आखर चित्त सबै ॥ मुखते कछु बात न जाइकही । अपराध विना ऋषि देहदही १७ राजा–अतिकोमलकै सब बालकता । बहु दुष्कर राक्षस घालकता ॥ हमहीं चलिहैं ऋषि संग अबै । सजि सैन चलै चतुरंग सबै १८ विश्वामित्र–षट्पद ॥ जिन हाथन हठि हरषि हनत हरिणी रिपुनन्दनि । तिनन करत संहार कहा मद मत्तगयन्दनि ॥ जिन बेधत सुख लक्षलक्ष नृपकुँवर कुँवरमानि । तिन बाणनि वाराह बाघ मारत नहिं सिंहानि ॥ नृपनाथ नाथ दशरथ सुनिय अकथकथा यह मानिये । मृगराज राजकुल कलश अब बालक वृद्ध न जानिये १९ ॥

जो वस्तु आप लहिये लीजिये सो धन्य है १५ राम परशुराम १६ । १७ हाथी घोड़ा रथ पियादा चारों सेनाके अङ्ग हैं १८ हरिणी के साहचर्यते रिपु पदते हरिणीरिपु कहे सिंह जानौ जिन हाथन सिंह हरिणी मारत हैं तिन सों कहा गजनको नहीं मारत अर्थ गजहू मारत हैं औ कुँवरन में मणिश्रेष्ठ ऐसे नृपकुँवर जिन बाणनि सुख कहे सहजही लक्ष कहे लाखन लक्ष निशाना वेधत हैं तिनसों वाराह बाघ सिंहनहूको नहीं मारत अर्थ मारत हैं हे नृपनाथ ! यह कथा अकथ कहे अतर्क मानौ निश्चय इति अथवा अकथ कहे अद्भुत जो यह कथा है ताको मानिवे कहे निश्चय मानौ आशय यह रामचन्द्र राक्षसन को वध करिहैं यामें सन्देह ना करौ १६ ॥

सुन्दरीछंद ॥ राजनमें तुम राज बड़े अति । मैं मुखमांगौं सो देहु महामति ॥ देवसहाय कहौ नृपनायक । है यह काज रामहिं लायक २० राजा—मैं जो कह्यो ऋषि देन सो लीजिय । काज करो हठ भूलि न कीजिय ॥ प्राण दिये धन जाहिं दिये सब । केशव राम न जाहिं दिये अब २१ ऋषि-राज तज्यो धन धाम तज्यो सब । नारि तजी सुत शोच तज्यो तब ॥ आपनपौ जो तज्यो जगबन्द है । सत्य न एक तज्यो हरिचन्द है २२ ॥

एक समय इंद्र नारदसों हरिश्चन्द्रके सत्त प्रतापादिको माहात्म्य सुनि इंद्रासन लेवेको भयमानि दुःखित भये हैं तब ब्रह्मादि देवन इंद्रको धैर्य दैकै हरिश्चन्द्र का सत्य भंग करिवे के लिये नारदको विश्वामित्रके पास पठयो विश्वामित्र नारदमुखसों देवनकी आज्ञा सुनि काहू कामरूपी राक्षसको बोलाइ कह्यो कि तू शूकररूप ह्वै अयोध्यामें जाइ राजा हरिश्चन्द्रको मृगया-मिस हमारे आश्रम में ल्याउ राक्षस सो कियो विश्वामित्रके आश्रम में राजा को ल्याइ लुप्त भयो आश्चर्ययुक्त ह्वै राजा आश्रम नदी में नहाइ कपटद्विज-रूप धरि विश्वामित्रको सब पृथ्वी औ सर्वस्वदान कस्यो है फेरि विश्वामित्र कह्यो है कि शतभार सुवर्ण दक्षिणा देहि तौ सर्वस्व लेहैं नाहीं तौ सत्यको छोड़ो तब काशीमें जाइकै मदनानाम स्त्री औ रोहिताश्व नाम पुत्र को देवशर्मा ब्राह्मण के हाथ साठिभार सुवर्ण को बेंच्यो है और चालीसभार

सुवर्णको कालसेन चांडालके हाथ अपना बिकाइ सौभार सुवर्ण विश्वामित्र को दियो फेरि चांडाल की आज्ञा ते श्मशान घाटपर उचित द्रव्य लेवेको बैठे हैं कछू दिनमें पुष्प तोरत में रोहिताश्वको सर्प काट्यो मस्यो ताको लै मदना वहाइवे को गई तहां चांडालको उचित पंचमुद्रा लैहीके वहावन दियो है याप्रकार सुतको शोच छोड़्यो सत्य पाल्यो यह संक्षेप कथा लिख्यो है विशेष सों हरिश्चन्द्रोपाख्यान पुराणन में प्रसिद्ध है २० । २१ । २२ ॥

राज वहै वह साज वहै पुर । नाम वहै वह धाम वहै गुर ॥ झूठेसों झूठइ बांधत हौ मन । छोड़तहौ नृप सत्यसनातन २३ दोहा ॥ जान्यो विश्वामित्र के कोप बढ़्यो उर आइ । राजादशरथ सों कह्यो वचन वशिष्ठ बनाइ २४ षट्पद ॥ इनहीं के तप तेज यज्ञकी रक्षा करि हैं । इनहीं के तप तेज सकल राक्षसबल हरि हैं ॥ इनहीं के तप तेज तेज बढ़िहैं तन तूरण । इनहीं के तप तेज होहिंगे मंगल पूरण ॥ कहि केशव जय युत आइहैं इनहीं के तप तेज घर । नृप वेगि राम लक्ष्मण दुवौ सौंपौ विश्वामित्रकर २५ ॥

साज छत्र चामर चमू आदि नाम यश गुरु वशिष्ठ झूठे जे पुत्रादि हैं तिन सों झूठई कहे वृथाही मनको बांधत हौ लगावत हौ अथवा झूठेसों कहे झूठेन सहित है अर्थ पुत्रादि झूठे माया के प्रपंच हैं तिनसों मिलिके झूठई जो झुठाई है तासों मनको बांधत हौ अर्थ कि ना बांधौ अथवा झूठेकीसों कहे झूठेकी तरह जैसे झूठा प्राणी झुठाईमें मन लगावत है तैसे तुमहूं लगावत हौ औ सनातन कहे परम्परा को सत्य छांड़त हौ देनकहि अब नहीं देत सो न चाहिये २३ । २४ तेज प्रताप तरण जल्दी मंगल विवाहादि २५ ॥

सोरठा ॥ राजा और न मित्र जानहु विश्वामित्र से ॥ जिनको अमित चरित्र रामचन्द्रमय मानिये २६ दोहा ॥ नृप पै वचन वशिष्ठको कैसे मेट्यो जाइ । सौंप्यौ विश्वामित्र कर रामचन्द्र अकुलाइ २७ पंकजवाटिकाछंद ॥ राम चलत नृप के युगलोचन । वारिभरित भये वारिदरोचन ॥ पांयनपरि

ऋषिके सजि मौनहिं । केशव उठि गये भीतर भौनहिं २८
चामरछंद ॥ वेदमंत्रतंत्रशोधि अस्त्रशस्त्रदै भले । रामचन्द्र लक्ष्मणौ सो विप्र क्षिप्र लैचले ॥ लोभ क्षोभ मोह गर्व काम कामनाहई । नींद भूख प्यास त्रास वासना सवै गई २९ ॥

राक्षसवधमें अमित कहे संपूर्ण जो चरित्रहैं सो रामचन्द्रमय कहे रामचन्द्रचरितमय रामचन्द्रचरितस्वरूपनि जिनको विश्वामित्रहीको चरित्र मानौ अर्थ जो राक्षसवधमें वा वेधनादिकृत रामचन्द्र करि हैं सो कृत रामचन्द्रद्वारा है विश्वामित्रही करिहैं आशय यह कि यामें कछु श्रम रामचन्द्रको नहीं है ये केवल तुम्हारे पुत्रको यश दियो चाहत हैं याते इनसम मित्र दूसरो न जानो अथवा रामचन्द्रमय कहे रामचन्द्र प्रति समर्पित मानिये अर्थ जो करत हैं सो रामचन्द्रको समर्पण करत हैं २६ । २७ वारिजल सों भरित रोचनको वारिद मेघ भये अरुण रंगहै आंसुनकी वर्षा करन लागे २८ वेदके मंत्र औ तंत्रशास्त्रके मंत्र शोधि शोधिके दियो अथवा वेदके मंत्र दिये वलातिवलाविद्या दियो है सो वाल्मीकीयरामायणमें लिख्यो है औ तन्त्रशास्त्रके मंत्रन सों शोधि शोधिके मन्त्रित करिकै अस्त्र शस्त्र दिये क्षिप्र कहे जल्दी तिन विप्रनके प्रभाव सों लोभादिकी वासना दूरि भई ॥ यथा रघुवंशे "तौ वलातिवलयोः प्रभावतः विद्ययोः पथि मुनिप्रदिष्टयोः । मम्लतुर्न मणिकुट्टिमोचितौ मातृपार्श्वपरिवर्तिनाविव" २९ ॥

निशिपालिकाछंद ॥ कामवन राम सब वास तरु देखियो । नैन सुखदैन मन मैनमय लेखियो ॥ ईश जहँ कामतनु कै अतनु डारियो । छोड़ि वह यज्ञथल केशव निहारियो ३०
दोहा ॥ रामचन्द्र लक्ष्मणसहित तन मन अतिसुखपाइ ॥ देख्यो विश्वामित्रको परम तपोवन जाइ ३१ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणि श्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां रामचन्द्रलक्ष्मणयोर्विश्वामित्रतपोवनगमनंनाम
द्वितीयः प्रकाशः ॥ २ ॥

जा वनमें महादेव कामको जारयो है ताको कामवन नाम है अथवा कामवन कहे अभिलाषको दाता वन ता वन में रामचन्द्र सब वास कहे ऋषिनके वास कुटीति औ तरु वृक्ष देख्यो अथवा वास तरु सुगंधयुक्त तरु मैनमय कहे कामस्वरूप ता वनमें ईश महादेव जहां जा स्थान में कामको जारयो है ता स्थानको देखि छोड़िकै विश्वामित्रको यज्ञथल जाइकै देख्यो ३०।३१॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादायजनजानकीप्रसाद निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां द्वितीयः प्रकाशः॥ २॥

दोहा॥ कथा तृतीय प्रकाश में वन वरणन शुभ जानि॥ रक्षण यज्ञ मुनीशको श्रवण स्वयंवर मानि १ षट्पद॥ तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर। मंजुल बंजुल तिलक लकुचकुल नारिकेर वर॥ एला ललितलवंग संग पुंगीफल सोहै। सारी शुककुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै॥ शुभ राजहंस कलहंसकुल नाचत मत्त मयूर गन। अतिप्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र वन २ सुप्रियाछंद॥ कहुँ द्विजगण मिलि सुख श्रुतिपढ़हीं। कहुँ हरिहरि हरहर रटरटहीं॥ कहुँ मृगपति मृगशिशु पय पियहीं। कहुँ मुनिगण चितवत हरि हियहीं ३ नाराचछंद॥ विचारमान ब्रह्मदेव अर्चमान मानिये। अदीयमान दुःख सुःख दीयमान जानिये॥ अदण्ड्यमान दीन गर्व दण्ड्यमान भेद वै। अपठ्यमान पापग्रन्थ पठ्यमान वेद वै ४॥

१ तालीस वृक्षविशेष हिंताल खजूरि बंजुल अशोक लकुच बड़हर २ मृगपति पदते सिंहकी स्त्री पुरुष जातिमात्र जानौ अर्थ सिंहिनिन को पय दूध मृगबालक पियत हैं यासों या जनायो कि जहां सहजहूं वैर नहीं है कृत्रिमकी कहावतहै औ कहूँ तेई मृगशिशु मुनिनके हियको हरिकै मुनिनके ओर चितवत हैं यासों मृगबालकन की अति सुंदरता जानो ३ जहां सदा ब्रह्म जो वेदहै सोई विचार्यमान है विचारयो जात है अथवा परब्रह्म देव पदते यहां विष्णु जानौ अथवा सदेव यासों या जनायो कि सुदेव सेवा में सब रहत हैं

कोऊ कुदेव यक्षिणी आदिकी सेवा नहीं करत औ दुःख अदीयमानहै कोऊ काहूको दुःख नहीं देत सुख दीयमान है औ दीन अदंडमान है दीनको कोऊ दंड ताड़न नहीं करत औ वै कहे निश्चयकरि गर्व औ भेद दंडमान है पापग्रंथ मारण मोहनादि के ग्रंथ अपठ्यमान हैं कोऊ नहीं पठत ४॥

विशेषछंद॥ साधुकथा कथिये तहँ केशवदास जहां। विग्रह केवल है मनको दिनमान तहां॥ पावन वास सदा ऋषिको सुखको वरषै। को वरणै कवि ताहि विलोकत जी हरषै ५ चंचला॥ रक्षिबेको यज्ञकूल बैठे वीर सावधान। होन लागे होमके जहां तहां सबै विधान॥ भीमभांति ताड़का सो भंग लागि कर्न आइ। बान तानि रामपै न नारि जानि छांड़िजाइ ६ ऋषि–सोरठा॥ कर्म करति यह घोर विप्रनको दशहूदिशा॥ मत्त सहस गज जोर नारी जानि न छांड़िये ७ राम–शशिवदना॥ सुनु मुनिराई। जग दुखदाई॥ कहि अब सोई। जेहि यश होई ८ ऋषि–कुंडलिया॥ सुता विरोचनकी हुती दीरघ जिह्वा नाम। सुरनायक वह संहरी परमपापिनी वाम॥ परमपापिनी वाम बहुरि उपजी कवि माता। नारायण सो हती चक्र चिन्तामणिदाता॥ नारायण सो हती सकलद्विजदूषणसंयुत। त्यों अब त्रिभुवननाथ ताड़का तारहु सह सुत ९॥

साधुकथा उत्तमकथा विष्णुविषयकिनी आदि अथवा साधु जे संतजन हैं नारदादि तिनकी कथा तहां तेहि आश्रममें मुनिजनन करिकै कथिये कथन करियत है औ जहां केवल मनहीं को निग्रहहै मन इंद्रिनको राजा है मनके निग्रहसों सब इंद्रिनको निग्रह जानौ औ तहां मान दिनहीके है और काहूके नहींहै दिनपक्ष में मान प्रमाण दिनमान केतौ है यह पूछिबेकी रीति लोकमें प्रसिद्ध है अन्यत्र मानगर्व परिसंख्यालंकार है अथवा दिनहीको मान आदर है यज्ञादि सत्कर्म दिनही में होते हैं तासों ५। ६। ७। ८ विरोचन बलिके पिताकी सुता दीर्घजिह्वा नाम पापिनी रही ताको सुरनायक इंद्र माऱ्यो है

औ फेरि अतिपापिनी कवि जे शुक्र हैं तिनकी माता भई ताको नारायण मारयो है एकसमय देवनके युद्धमें हारिकै दैत्य ब्राह्मणके शरणमें बचिबो जानिकै शुक्रमाताके शरण जाइ लुकाने तहां शत्रुको रक्षक जानि इंद्रकी आज्ञा सों विष्णु शुक्रमाताका शिर चक्रसों खंडन करि दैत्यनको मारयो है ताही कोपसों भृगुमुनि जाइ विष्णुके उरमें लात मारयोहै और आपने पुत्र शुक्रको दैत्यगुरु कियो है यह कथा पुराणनमें प्रसिद्धहै कैसे हैं नारायण चिंतामणिके दाता हैं अथवा चिंतामणि सरिस दाता हैं सकल द्विजदूषणसंयुक्त ताड़का को विशेषण है औ सहसुत कहे मारीच सहित यासों या जनायो कि इंद्र विष्णुहूं दुष्ट स्त्री वध कियो है ९ ॥

दोहा ॥ द्विजदोषी न विचारिये कहा पुरुष कह नारि ॥ राम विराम न कीजिये वामताड़का तारि १० मरहट्टाछंद ॥ यह सुनि गुरुबानी धनुगुनतानी जानी द्विजदुखदानि। ताड़का सँहारी दारुणभारी नारी अतिबल जानि ॥ मारीच विडारयो जलधि उतारयो मारयो सबल सुबाहु। देवनिगुण पर्ष्यो पुष्पनि वर्ष्यो हर्ष्यो अति सुरनाहु ११ दोहा ॥ पूरण यज्ञ भयो जहीं जान्यो विश्वामित्र ॥ धनुषयज्ञकी शुभकथा लाग सुनन विचित्र १२ ॥

विराम कहे वेर १० ताड़कादि वधसों गुणनकी परीक्षा कियो कि ये गुण विष्णुही में हैं तासों विष्णुको अवतार भयो अब रावणवध ह्वैहै यह जानि इंद्र हर्षित भये ११ । १२ ॥

चंचरीछंद ॥ आइयो तेहि काल ब्राह्मण यज्ञको थल देखिकै। ताहि पूछत बोलिकै ऋषि भांति भांति विशेखिकै ॥ संग सुंदर राम लक्ष्मण देखि देखि सो हर्षई। बैठिकै सोइ राजमंडल वर्णई सुख वर्षई १३ ब्राह्मण-शार्दूलविक्रीड़ित छंद ॥ सीता शोभन व्याह उत्सव सभा संभारसंभावना। तत्तत्कार्यसमग्रव्यग्र मिथिलावासी जना सोभना ॥ राजा

राजपुरोहितादि सुहृदो मंत्री महामंत्रदा। नानादेश समागता नृपगणा पूज्या परा सर्वदा १४॥

जनकपुरको ब्राह्मण सीयस्वयंवर के अर्थ काहू राजाको निमंत्रण लिये जातरह्यो सो यज्ञको स्थान देखिवेको स्वभावही आयो अथवा ऋषिही को निमंत्रण ल्यायो है अथवा कोऊ साधारण पथिक ब्राह्मण है ताको निकट बोलि कहे बोलाइ कै विश्वामित्र भांतिभांति विशेषसों जनकपुरकी कथा पूंछत हैं सो ब्राह्मण ऋषि के संग राम लक्ष्मणको देखि ऋषिकी स्त्रीके वचन सत्य जानि अब सीताको ब्याह ह्वैहै यह निश्चयकरि हर्षित आनन्दित होतहै काहेते पंचम प्रकाशमें तृतीय छन्दमें ब्राह्मण कहिहै कि काहू ऋषिकी स्त्री चित्र में सीताका ऐसो कोऊ वरु लिखि सुहाई जैसो रामचन्द्रको देखियत है १३ सीताको जो शोभन कहे सुन्दर ब्याहहै और जो उत्सवसभा कहे कौतुकसभा है स्वयंवरसभा इति ताके जे अनेक संभार सामग्री हैं अनेक राजसत्कारादि वस्तु तिनकी जो संभावना विचार है तासों राजा जनक औ राजपुरोहित शतानंद तिन्हैं आदि दै और जे सुहृद् मित्रहैं औ महामंत्रके देनहार जे मंत्री हैं औ समग्र कहे संपूर्ण मिथिलावासी जे शोभन कहे सुबुद्धिजन हैं ते सब तत्त्कार्य कहे आपने आपने उचितकार्य में व्यग्र कहे आसक्तहैं संलग्न इति अथवा आकुल हैं "व्यग्रो व्यासक्त आकुले इति मेदिनी।" औ सर्वदा पूज्य औ पर कहे उत्कृष्ट ऐसे नानादेश अनेकदेशके नृपगण समागत कहे आये हैं १४॥

दोहा॥ खंडपरेको शोभिजै सभामध्य कोदंड॥ मानहुँ शेष अशेषधर धरनहार बरिबंड १५ सवैया॥ शोभित मंचनकी अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल छाई। ईश मनो वसुधा में सुधारि सुधाधरमंडल मंडि जुन्हाई॥ तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई। देवनसों जनु देवसभा शुभ सीयस्वयंवर देखन आई १६ दोहा॥ नवति मंच पंचालिका कर संकलित अपार॥ नाचति है जनु नृपतिकी चित्तवृत्ति सुकुमार १७ सोरठा॥ सभामध्य गुणग्राम वंदीसुत द्वै शोभहीं॥ सुमति विमति यह नाम राजनको वर्णन

करैं १८ सुमति-दोहा ॥ को यह निरखत आपनी पुलकित बाहु विशाल ॥ सुरभि स्वयंवर जनु करो मुकुलित शाखरसाल १९ ॥

जामें देशांतरनके राजालोग आय आय बैठत हैं ऐसी स्वयंवरसभा में चारों ओर मंच कहे मचानन की अवली पंक्ति बनति है १५ सो मंचावली सीयस्वयंवर में गजदंत हाथीदांतनकी बनी है तामें ब्राह्मण उत्प्रेक्षा करत है कि ईश जे विधाता हैं ते मानो जुन्हाई सों मंडिकै युक्त करिकै वसुधा पृथ्वी में सुधाधर चन्द्रमाको मंडल कहे परिवेष सुधारि कहे सुधास्यो बनायो है ज्योत्स्नायुक्त चन्द्रपरिवेष सम कहे मंचावली की अतिश्वेतता जनायो ईश बनायो सम कहे अतिरुचिर रचना जनायो औ देवसरिस राजकुमार हैं देवसभा सरिस मंचावली जानो १६ पंचालिका नृत्यकी जातिविशेष है अपारकर कहे हस्तक भेदसों संकलित युक्त १७ । १८ सुरभि कहे वसंतरूपी जो स्वयंवरहै त्यहि मानो रसाल आंबकी शाखको मुकुलित बौरयुक्त कस्यो है जैसे वसंत में आंबकी शाख बौरति है तैसे धनुष उठाइबे को मोदकरि बाहु रोमांचित भयो अथवा सुरभिरूपी जो है स्वयं कहे अपना त्यहि वर कहे सुन्दर रसालशाख को मुकुलित कियो है १९ ॥

विमति-सोरठा ॥ ज्यहि यशपरिमलमत्त चंचरीक चारण फिरत ॥ दिशि विदिशन अनुरक्त सुतौ मल्लिकापीड़ नृप २० सुमति-दोहा ॥ जाके सुखमुखबासुते बासित होत दिगंत ॥ सो पुनि कहु यह कौन नृप शोभित शोभ अनंत २१ विमति-सोरठा ॥ राजराज दिगवाम भाललाल लोभी सदा ॥ अतिप्रसिद्ध जग नाम काशमीर को तिलक यह २२ ॥

पांच छंदन में विमतिके पांच प्रश्नोंको श्लेषसों उत्तर दियो है मल्लिकनाम जो पर्वत है ताको आपीड़ कहे शिखाभूषण है अर्थ मल्लिक पर्वत को राजा है । यथा च पद्मपुराणे " मल्लिकाख्यो महाशैलो मोक्षदः पश्यतां नृणाम् । यत्राङ्गेषु नृणां तोयं श्यामं वा निर्मलं भवेत् ॥ पातकस्यापहारीदं मया दृष्टं तु तीर्थकम् ४ " औ मल्लिका जो चँबेली है ताको आपीड़ शिखाभूषण वेणी मालादि "शिखा स्वापीडशेखरौ इत्यमरः" कैसोहै राजा औ मालती माला ज्येहि के यशरूपी जो परिमल सुगंध है तासों मत्त चंचरीक भ्रमर सदृश जे

चारण भाट हैं ते दिशि विदिशन में अनुरक्त संलग्न फिरत हैं अर्थ जाको यश दिशि विदिशन में भाट गावत फिरत हैं औ यशसदृश जो परिमल सुगंध है तामें मत्त चारणसदृश जे चंचरीक भ्रमर हैं ते दिशि विदिशन में अनुरक्त फिरत हैं अर्थ जाके सुगंध में मत्त है भ्रमर दिशि विदिशन में उड़त फिरत हैं २० सुखकहे सहज मुख के बासु सुगन्धते २१ काशमीर को तिलक कहे काशमीर देशको राजा औ काशमीर कहे केशरिको तिलक कैसो है राजा औ तिलक राजराज जे कुबेर हैं तिनकी दिशा उत्तर दिशारूपी जो वाम स्त्री है ताके भालको लालरक्त जो सुमेरुहै सो है लोभी सदा ज्यहि राजाको अर्थ सुमेरु के यह इच्छा रहति है कि इंद्र को राज छोड़ि या राजाको राज हमपर होय यासों या जनायो कि राजा रूप गुण करि इंद्रहू सों अधिकहै अथवा यह राज सुमेरु को सदा लोभी है इंद्रको जीति सुमेरुपर राज्य करिबे की इच्छा राखतहै औंर राजराज दिक्सदृश जे वाम स्त्री हैं राजराज दिक् सदृश कहे या जनायो जैसे द्रव्यरूप लक्ष्मी सों युक्त उत्तरदिशा है तैसे शोभारूप लक्ष्मी सों युक्त स्त्री है तिनके भाल को जो लालरत्न है शोभा है सदा जा तिलकको अर्थ जो तिलक लालहूकी शोभा बढ़ावतहै तासों तिलक के निकट रहिबेकी भाल लालके इच्छा रहति है आशय यह कि अतिभूषणनसों भूषित औ अतिसुन्दरीहू स्त्रिन कै शोभा बढ़ावत है साधारण नहीं है औ अर्थ राजराज कहे राजन को राजा है और दिशारूपी जो वाम स्त्री है ताके भाल को लाल है औ लोभी है सदा कहे याचकनकी याचकताको याचकन को याचिबो सर्वदा जाको भावत है अर्थ बड़ो दाता है सदा पर सो मैं याचकता की कहतहौं और अर्थ राजादिक् जो उत्तरदिशा है ताके वामभाग जो पूर्वदिशा है ताके भालको लाल सूर्य ताको सदा लोभी ऐसा जो काशमीर देश है ताको राजा है अति जाड़े सों जा देशवासिन के सदा सूर्योदय की इच्छा रहति है २२ ॥

सुमति-दोहा ॥ निजप्रताप दिनकर करत लोचन कमल प्रकाश ॥ पान खात मुसुकात मृदु को यह केशवदास २३ ॥

अर्थ यह जाके अंगन में प्रताप कांति की झलक सब लोचन पसारिकै निहारत हैं २३ ॥

विमति-सोरठा ॥ नृप माणिक्य सुदेश दक्षिणातिय जिय भावतो ॥ कटितटसुपटसुवेश कलकांची शुभ मंडई २४ ॥

सुमति–दोहा॥ कुंडलपरसत मिस कहत कहौ कौन यह राज॥ शंभुशरासनगुनकरो कर्णालंबित आज २५ विमति–सोरठा॥ जानहिं बुद्धिनिधान मत्स्यराज यहि राजको॥ समर समुद्र समान जानत सब अवगाहि कै २६ सुमति–दोहा॥ अंगरागरंजित रुचिर भूषणभूषित देह॥ कहत विदूषक सों कछू सो पुनि को नृप येह २७॥

नृपमाणिक्य नृपश्रेष्ठ औ उत्तम माणिक्य राजा कैसो है कि सुंदर है देश द्राविड़ादि जामें ऐसी जो दक्षिणदिशारूपी तिय है ताको अतिभावत है जा दक्षिण दिशाके कटितट में कहे मध्यभाग में सुंदर हैं पटपद्धति जाको औ कल कहे दुःख रहित ऐसी जो कांचीनाम पुरी है ताको मंडत है भूषित करत है अर्थ कि याके देशमें मध्यभाग में विष्णुकांची शिवकांची पुरी है तामें जाको वास है माणिक्य कैसो है कि सुदेश कहे सुंदरी दक्षिण कहे प्रवीण जे तिय स्त्री हैं तिनको अतिभावतो है फेरि कैसो है कि सुष्ठुपट वस्त्रयुक्त जो कटितट है तामें कल कहे अव्यक्त मधुर स्वरयुक्त जो कांची क्षुद्रघंटिका है ताको मंडई कहे भूषित शोभित करै है २४ कर्णालंबित करो कर्णपर्यंत खैंचो २५ मत्स्यनाम जो देशविशेष है मछरीवंदर करि प्रसिद्ध है ताको यह राजा है और मत्स्यराज राघव मत्स्य सो जैसे समुद्र को अवगाहि मँझाइकै सब जानत हैं ऐसे राजा समररूपीसमुद्र को मँझाइ कै सब समर भेद को जानत है अर्थ कि वड़ो शूर है "मत्स्यो मीने पुमान् भूम्नि देशे इति मेदनी" २६ विदूषक मसखरा "हास्यकारी विदूषक इत्यमरः" २७॥

विमति–सोरठा॥ चंदनचित्र तरंग सिंधुराज यह जानिये॥ बहुत वाहिनी संग मुक्तामाल विशालउर २८ दोहा॥ सिगरे राजसमाज के कहे गोत गुणग्राम॥ देश स्वभाव प्रभाव अरु कुल बल विक्रम नाम २९ घनाक्षरी॥ पावक पवन मणि पन्नग पतंग पितृ जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिषिन गाये हैं। असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिंधु केशव चराचर जे वेदन बताये हैं॥ अजर अमर अज अंगी औ

अनंगी सब वरणि सुनावै ऐसे कौने गुण पाये हैं । सीताके स्वयंवरको रूप अवलोकिबे को भूपनको रूपधरि विश्वरूप आये हैं ३० सोरठा ॥ कह्यो विमति यह टेरि सकलसभाहि सुनाइकै ॥ चहूं ओर कर फेरि सबही को समुझाइकै ३१ गीतिकाछंद ॥ कोइ आजु राजसमाजमें बल शम्भु को धनु कर्षि है। पुनि श्रवण के परिमाण तानि सो चित्त में अति हर्षि है ॥ वह राज होइ कि रंक केशवदास सो सुख पाइहै। नृपकन्यका यह तासुके उर पुष्पमालहि नाइ है ३२ ॥

सिंधुराज सिंधुदेश लाहौरको राजा औ समुद्र चंदनके चित्रकी तरंग हैं अंगन में जाके अर्थ चित्र विचित्र चंदन अंगन में लाये है औ चंदन वृक्षनसों चित्र विचित्रहै तरंग जाकी अनेक चंदन वृक्ष जाकी तरंगनमें बहत हैं वाहिनी चमू औ नदी मुक्तनकी माला पहिरेहै औ मुक्तनकी माला पंगति समूहेति सोहै उरमें वदनमें जाके "सिंधुर्वमथुदेशाब्धिनदे ना सरति स्त्रियामितिमेदिनी" २८बल अंगबल, विक्रम बुद्धिबल २९ पन्नग सर्प शेषादि पतंग पक्षी गरुड़ादि असुर दैत्य राक्षस बाणासुर रावणादि सिद्ध देवजाति विशेष अथवा तपस्वी अजर कहे जरा बुढ़ाईसों रहित देवता अमर हनूमानादि अज ब्रह्मादि अंगी अंगधारी अनंगी कामादि विश्वरूप संसारभरके रूपप्राणी ३०।३१ कर्षिहै उठाइहै ३२॥

दोहा ॥ नेक शरासन आसनै तजै न केशवदास ॥ उद्यम कै थाक्यो सबै राजसमाज प्रकास ३३ विमति-सुंदरीछंद ॥ शक्ति करी नहिं भक्ति करी अब।सो न नयो पल शीश नये सब ॥ देख्यों मैं राजकुमारनके वर । चाप चढ़यो नहिं आप चढ़े खर ३४ विजय ॥ दिक्पालनकी भुवपालनकी लोकपालनहू कि न मातु गईच्वै । भांड़भये उठि आसनते कहि केशव शम्भु शरासनको छ्वै॥काहू चढ़ायो न काहू नवायो सुकाहू उठायो न आंगुरहू द्वै। स्वारथ भो न भयो परमारथ आये है वीर चले वनिता ह्वै ३५ ॥

इति श्रीस्वयंवरसभावर्णनंनाम तृतीयः प्रकाशः ३ ॥.

जो या धनुषको उठाइ है ताको नृपकन्या व्यर्थ पुष्पमाला पहिराइ है ऐसे विमति के वचन सुनि सव राजसमाज समूह धनुष उठाइबे में उद्यम कहे उपाइ करतभये परंतु शरासन नेकु आसनकोहू न छोड़त भयो अर्थ रंचकहू ना उठ्यो ३२ जव धनुष काहू सों न उठ्यो तव क्रोधयुक्त ह्वै विमति कह्यो धनुष उठाइवेमें राजकुमारन शक्ति वल नहीं कियो धनुषकी भक्ति कियोहै काहे कि धनुष न नयो औ पलमात्र सबके शीश नवत भये तौ जाकी जो भक्ति करतहैं ताको शीश नावत प्रणाम करत हैं तासों आप खर गर्दभ में चढ़े अर्थ गर्दभ में चढ़े प्राणी सव निन्दितभये ३४ किन च्वै गई कहे गर्भपतन काहे ना भयो ३५ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादायजनजानकी-प्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां तृतीयः प्रकाशः ॥ ३ ॥

दोहा ॥ कथा चतुर्थ प्रकाशमें बाणासुरसंवाद ॥ रावण सों अरु धनुष सों दशमुखबाणविषाद १ सबही को समुझेउ सबन बलविक्रम परिमाण ॥ सभामध्य ताही समय आये रावण बाण २ अडिल्लछंद ॥ नरनारि सबै। भयभीत तबै ॥ अचरिज्जु यहै। सब देखि कहै ३ दोहा ॥ है राक्स दश-शीश को दैयत बाहु हजार ॥ कियो सबनि के चित्त रस अद्भुत भय संसार ४ रावण—बिजोहाछंद ॥ शंभुकोदंड दै। राजपुत्री कितै ॥ टूक द्वै तीनिकै। जाहुँ लंकाहि लै ५ विमति—शशिवदनाछंद ॥ दशशिर आवो। धनुष उठावो ॥ कछु बल कीजै। जग यश लीजै ६ बाण—गीतिकाछंद ॥ दशकंठरे शठ छांड़ि दे हठ बारबार न बोलिये। अब आजु राजसमाज में बल साजु चित्त न डोलिये॥ गिरिराज ते गुरु जानिये सुरराजको धनु हाथलै। सुख पाय ताहिं चढ़ाय कै घरजाहि रे यश साथलै ७ ॥

रावणसों बाणासुरको संवाद है ना उठ्यो तासों दशमुख औ बाणको धनुष सों विषाद दुःख है १। २ बाण रावणको देखि सव प्राणी आश्चर्य यहै शब्द कहत भये ३ दशशीशको राक्षस औ हज़ार बाहुको दैत्य सवनके

चित्तमें अद्भुत औ भयरसकों संसार रच्यो अर्थ अति आश्चर्य औ भय सों युक्त कियो दशशिर हज़ारबाहु देखि अद्भुतरस भयो भयानकरूप देखि भयरस भयो ४ रावण विमति सों कह्यो कि शम्भुकोदण्ड हमको दै कहे दीजिये औ राजपुत्री कहां है ताको बताओ धनुष तोरि राजपुत्री लै लंकहि जाउँ ५ । ६ विमति सों कहत ऐसे सवन के गर्ववचन सुनि रोषकरि बाण बोलत भये राजसभा में बलको साज पराक्रम करु चित्त करिकै ना डोलु अर्थ मनोरथ ना करु अथवा बलकी साज सों अथवा बल औ साज सैन्यादि सों चित्त ना डोलावो मनोरथ ना करौ अर्थ यहां तुम्हारो बल ना चलि है सुरराज महादेव के गिरिराज ते कैलास ते सुरराजको धनुष गुरु गरू जानौ सुरराज पद को संबंध गिरिराजहू में है ७ ॥

मंथनाछंद ॥ बाणी कही बान । कीन्हीं न सो कान ॥ अद्यापि आनी न । रेबंदि कानीन ८ बाण-मालतीछंद ॥ जो पै जिय जोर । तजौ सब शोर ॥ शरासन तोरि । लहौ सुख कोरि ९ रावण-दंडक ॥ वज्रको अखर्वगर्व गंज्यो ज्यहि पर्वतारि जीत्यो है सुपर्व सर्व भाजे लै लै अंगना । खंडित अखंड आशु कीन्हों है जलेशपाशु चंदनसी चन्द्रिका सों कीन्हीं चंद वंदना ॥ दंडकमें कीन्हों कालदंडहूको मानखंड मानो कोहू कालही की कालखंडखंडना । केशव कोदंड विशदंड ऐसी खंडे अब मेरे भुजदंडनकी बड़ी है विडंबना १० ॥

अतिगर्व सों बाणकी बाणी कान में ना कस्यो अर्थ ना सुन्यो फेरि विमति सों कह्यो कि रे कानीन, क्षुद्रबन्दि ! अद्यापि राजपुत्री को ना ल्यायो ८ अर्थ राजपुत्री प्राप्तरूपी सुख शरासन तोरे विना न पैहै ९ जिन भुजदंडन वज्र को जो अखर्व बड़ो गर्व है ताको गंज्यो विदारयो अर्थ इंद्रकी रक्षा औ शत्रुवध करिवे में वज्र के अमोघताको गर्व रह्यो सो इनमें निष्फल भयो पर्वतारि इंद्र को इन जीत्यो तब सर्व सुपर्व देवता अपनी अपनी स्त्री लैलै भागत भये फेरि अखंड काहूके खंडिवे योग्य नहीं ऐसो जो जलेश वरुण को पाशु फांस है ताको आशु जल्दी जिन खंडन कियो तोस्यो औ जिनकी वंदना पूजा चंदनसी चन्द्रिका सों चन्द्र करयो अर्थ अतिभय मानि चन्द्रमा

नें जिनको सुखद चांदनीसों सुख दियो युद्ध ना कियो औ कालदंड यमराज को आयुध ताके यमराजरक्षा शत्रुवध करिबे को मान गर्व रह्यो ताको खंडन कियो औ काल जे यमराज हैं तिनहीं को खंड खंडना इन ऐसी कियो मानो काल कहे यमके काल ईश्वर कीन्हों अर्थ जैसे यमको काल निभर्य है यमके खंडन करत है तैसे कर्‍यो यासों या जनायो कि मैं इन भुजदंडनसों इनको सबको जीत्यों है केशवकवि कोदंड धनुष विश जो नारी विडंबना निंदा १०॥

बाण—तुरंगमछंद ॥ बहुत वदन जाके। विविध वचन ताके ॥ रावण ॥ बहुभुजयुत जोई। सबल कहिय सोई ११ दोहा ॥ अति असार भुजभारहीं बली होहुगे बान ॥ बाण ॥ मम बाहुन को जगत में सुनु दशकंठ विधान १२ सवैया ॥ हौं जबहीं जब पूजन जात पितापद पावन पापप्रनासी। देखि फिरौं तबहीं तब रावण सातौ रसातलके जे विलासी ॥ लै अपने भुजदंड अखंड करौं क्षितिमंडल छत्रप्रभासी। जानै को केशव केतिक बार मैं शेशके शीशन दीन उसासी १३ रावण—कमलछंद ॥ तुम प्रबल जो हुते। भुजबलनि संयुते ॥ पितहि भुव ल्यावते। जगत यश पावते १४ बाण—तोमरछंद ॥ पितु आनिये किहि ओक। दिय दक्षिणा सब लोक ॥ यह जानिये वन दीन। पितु ब्रह्मके रसलीन १५॥

रावण के वचन में काकूक्तिहै ११ असार बलरहित १२ अखंड संपूर्ण १३। १४ हे रावण! दीन हमारो पिता ब्रह्म परब्रह्म के रस स्वाद में लीन है तू यह जानि कहे जानु १५ ॥

सवैया ॥ कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुर सो ज्यहि मार्‍यो। लोक चतुर्दश रक्षक केशव पूरण वेद पुराण विचार्‍यो ॥ श्रीकमलाकुचकुंकुममंडित पंडित देव अदेव निहार्‍यो। सो कर माँगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसार्‍यो १६ रावण—दोहा ॥ हमैं तुम्हैं नहिं बूझिये विक्रम वाद

अखंड ॥ अब जो यह कहि देहिगो मदनकदन कोदंड १७ संयुतछंद ॥ व्रत बाण रावणकी सुन्यो । शिर राजमंडल में धुन्यो ॥ विमति ॥ जगदीश अब रक्षा करौ । विपरीत बात सबै हरौ १८ दोहा ॥ रावण बाण महाबली जानत सब संसार ॥ जो दोऊ धनु कर्षि हैं ताको कहा विचार १९ बाण-सवैया ॥ केशव औरते और भई गति जानि न जाइ कछू करतारी । शूरनके मिलिबे कहँ आय मिल्यो दशकंठ सदा अविचारी ॥ बाढ़िगयो बकवाद वृथा यह भूलि न भाट सुनावहिं गारी । चाप चढ़ाइहौं कीरतिको यह राजकरै तेरी राजकुमारी २० ॥

जा कर ने कैटभादि बली दैत्यनको मार्‍यो फेरि चौदहो लोककी रक्षा करत हैं यों कहिकर कि बड़ी शक्ति जनायो फेरि श्रीकमला लक्ष्मी के कुचनमें कुंकुम केशर के मंडित में भूपित करैमें अर्थ मकरिकापत्र बनावै मों पंडित है यासों या जनायो कि जिन विष्णु की लक्ष्मी स्त्री हैं तासों सब सब पदार्थ सों पूरण जानो यामें येती शक्ति है शारदकर हाथ करतार जे ब्रह्माहैं तिनहुँनके करतार जे विष्णु हैं तिन बलिपै मांगिवेको पसार्‍यो ऐसे बली विष्णु बलि पै भिक्षाही मांगिपायो जीतिकै न पाई तासों विष्णुहूसों अधिक बली औ दाता जानो इति भावार्थः १६ । १७ व्रत धनुष उठाइबे की प्रतिज्ञा १८।१९ विमतिके ऐसे विकल वचन सुनि बाण कह्यो कि हे भाट ! सीताके ब्याहिबे को बाण धनुष उठावत है ऐसी जो गारी है ताको भूलिहू ना सुनाउ सीता हमारी माताहैं उनतिसयें दोहा में कह्यो है कि सीता मेरी माइ २० ॥

रावण–मधुछंद ॥ मोकहँ रोंकि सकै कहि को रे । युद्ध जुरे यमहूं कर जोरे ॥ राजसभा तिनुका करि लेखों । देखिकै राजसुता धनु देखों २१ सवैया ॥ बाण कह्यो तब रावणसों अब बेगि चढ़ाउ शरासनको । बातैं बनाइ बनाइ कहा कहै छोड़िदे आसन वासनको ॥ जानतहै किधौं जावत नाहिंन

तू अपने मदनासनको। ऐसेहि कैसे मनोरथ पूजत पूजे विना नृपशासनको २२ रावण—बंधुछंद॥ बाण न बात तुम्हैं कहि आवै। बाण॥ सोई कहौं जिय तोहिं जो भावै॥ रावण॥ का करिहौ हम योंही बरैंगे। बाण॥ हैहयराज करी सो करैंगे २३ रावण—दंडक॥ भौंर ज्यों भँवत भूत वासुकी गणेश-युत मानो मकरंदबुंद माल गंगाजलकी। उड़त पराग पटनालसी विशालबाहु कहा कहौं केशौदास शोभा पलपल की॥ आयुध सघन सर्वमङ्गलासमेत शर्व पर्वत उठाइ गति कीन्हीं है कमलकी। जानत सकल लोक लोकपाल दिक-पाल जानत न बाण बात मेरे बाहुबलकी २४॥

२१ आसन विछावने औ वासन वस्त्रनको छोड़िदे अर्थ मल्लरूप काछि धनुष उठावो आइ अथवा सीताके लीवेकी जे आशा हैं तिनकी वासना स्मरण छोड़िदे अपने मदनाशनको मोको तू जानत है कि नहीं जानत जो ऐसी बात कहत है कि सीता को विना धनुष तोरेही बरिहैं अथवा अपने मदनाशनको धनुषको अर्थ यह धनुष तुम्हारे मदको नाश करि है नृपशा-सन धनुष उठाइवो २२ हैहयराज सहस्रार्जुन २३ वासुकी सर्प औ गणेश सहित भूतगण जा पर्वत में कमल के भौंरसम भँवत भये औ महादेव के शीश को जो गंगाजल गिर्‌यो ताकी माल मकरंद पुष्परस भयो औ उ-ड़त जे पार्वती आदिके पट वस्त्र हैं तेई पराग पुष्पधूलि औ मेरो बाहु जो है सो नाल कमलदंड भयो एते में या जनायो कि जब मैं कैलास उठायो तब अतिभयसों गणेशादि भ्रमत भये औ अतिशीघ्र उठायो तासों शंभु शीशको गंगाजल गिर्‌यो औ वस्त्र उड़त भये औ आयुध सघन कहि या जनायो कि तुम एक शंभु धनुष उठाइवो कठिन मानतहौ वा पर्वत में ऐसे अनेक आयुध रहे सर्वमंगला पार्वती २४॥

मधुभारछंद॥ तजिकै सुरारि। रिस चित्तमारि॥ दश-कंठ आनि। धनु छुयो पानि २५ विमति॥ तुम बलनिधान। धनु अतिपुरान॥ पीसजहु अंग। नहिं होहि भंग २६ सवैया॥

खंडित मान भयो सबको नृपमंडल हारि रह्यो जगतीको । व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि थक्यो बल विक्रम लंकपती को ॥ कोटि उपाय किये कहि केशव केहूं न छांड़त भूमि रतीको । भूरि विभूति प्रभाव सुभावहि ज्यों न चलै चित योग यतीको २७ पद्धटिका ॥ धनु अतिपुरान लंकेश जानि । यह बात बाणसों कही आनि ॥ हौं पलकमाहँ लैहौं चढ़ाइ । कछु तुमहूं तौ देखो उठाइ २८ ॥

सु कहे सो रारि वाग्विवाद अथवा सुरारि बाणासुर २५ । २६ निराकुल शिथिल बल देहबल विक्रम उपाय विभूति ऐश्वर्य सुवर्ण रत्न गजादियोग यती योगी २७ धनुष मोसों उठनलायक नहीं है यह जानिकै लंकेश रावण अपना भरम राखि धनुष छोड़ि आइ बाणसों यह बात कह्यो कि धनुष अतिपुरान है २८ ॥

बाण–दोहा ॥ मेरे गुरु को धनुष यह सीता मेरी माइ ॥ दुहूँ भांति असमंजसै बाण चले सुखपाइ २९ रावण–तोटक छंद ॥ अब सीय लिये बिन हौं न टरौं । कहुँ जाहुँ न तौलगि नेम धरौं ॥ जबलौं न सुनौं अपने जनको । अतिआरत शब्द हते तनको ३० ब्राह्मण–मोदकछंद ॥ काहू कहूं शर आसर मारिय । आरत शब्द अकाश पुकारिय ॥ रावण के वह कान पर्यो जब । छोड़ि स्वयंवर जात भयो तब ३१ दोहा ॥ जब जान्यो सबको भयो सबही विधि व्रतभंग ॥ धनुष धर्यो लै भवनमें राजाजनक अनंग ३२ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्र-
चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां बाणरावणयोर्वा-
ग्विवादवर्णनंनाम चतुर्थःप्रकाशः ॥ ४ ॥

२९ हते कहे बाणादिसों बेधे अर्थ मेरे दास यहां उहां यज्ञादि विघ्नकरत फिरत हैं तिनको जो कोऊ सताइ है तौ तिनकी रक्षाको जैहौं ३० जब

मारीचादिको रामचन्द्र मारयोहै तब तिनको आरत पीड़ित दुःखितेति शब्द सुनि रावण स्वयंवर सभाते गयो सो भेद कछू ब्राह्मण तौ जानत नहीं तासों संदेहविशिष्ट है कहत है कि काहू बली कहूं कौन्यो स्थानमें शर बाण सों आसर कहे काहू राक्षस को मारयो " क्रव्यादोऽस्रप आसर इत्यमरः " सुदभासुर मारिय कहूं यह पाठ है तौ सुदनामा राक्षस ते भा कहे उत्पन्न जो असुर राक्षस है मारीच ताको सुदनाम राक्षसकी स्त्री ताड़का है ताको पुत्र मारीच है औ कहूं शरमारिच मारिय पाठ है तौ शरसों मारीच नाम राक्षसको मारयो २१ अनंग विदेह २२ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादायजनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां चतुर्थः प्रकाशः ॥ ४ ॥

दोहा ॥ यह प्रकाश पंचम कथा रामगंवन मिथिलाहि ॥ उद्धारण गौतमघरणि स्तुति अरुणोदय आहि १ मिथिलापतिके वचन अरु धनुभंजन उरधार ॥ जैमाला दुंदुभि अमर वर्षन फूल अपार २ ब्राह्मण—तारकछंद ॥ जब आनि भई सबको दुचिताई। कहि केशव काहुपै मेटि न जाई ॥ सिय संगलिये ऋषिकी तिय आई। इक राजकुमार महा सुखदाई ३ मोहनछंद ॥ सुंदरवपु अतिश्यामल सोहै। देखत सुर नर को मन मोहै ॥ आनिय लिखि सियको वरु ऐसो। रामकुमारहि देखिय जैसो ४ तोटकछंद ॥ ऋषिराज सुनी यह बात जहीं । सुखपाय चले मिथिलाहि तहीं ॥ वन राम शिला दरशी जबहीं। तिय सुंदररूप भई तबहीं ५ विश्वामित्र—सोरठा ॥ गौतमकी यह नारि इंद्रदोष दुर्गति गई ॥ देखि तुम्हैं नरकारि परमपतित पावन भई ६ कुसुमविचित्रा छंद ॥ तेंहि अतिरूरे रघुपति देख्यो। सब गुणपूरे तनमन लेख्यो ॥ यह वर माँग्यो दियो न काहू। तुम मम मनते कहूं न जाहू ७ कलहंसछंद ॥ तहँ ताहिदै बरुको चले रघुनाथजू। अतिशूर सुंदर यों लसैं ऋषिसाथजू ॥ जनु सिंहके सुत दोउ

सिद्धी श्रीरये । वनजीव देखत यों सबै मिथिला गये ८ ॥

१ । २ जब धनुष काहूसों न उठ्यो तब सबके जनकादि के मनमें दुचितांई भई कि सीताको ब्याह अब ना है है ता दुचिताई मेटिबेके लिये त्रिकालदर्शिनी काहू ऋषिकी स्त्री एक राजकुमार सीताके संग चित्रमें लिखिकै ल्याई कि सीताको या प्रकार को वरु मिलिहै आशय कि जब या प्रकारको राजकुमार आवै तब शंभुधनुष चढ़ाइकै सीताको ब्याहै ३ सो हे ऋषि ! जैसो इन राजकुमारको देखियतहै तैसोई वरु ऋषिकी स्त्री सीताको लिखिल्याई ४ । ५ दुर्गति दुर्दशाको गई-कहे प्राप्त भई ६ रूरे सुंदर ७ अतिशूर औ सुन्दर दुवौ राम लक्ष्मण ऋषिके साथ में ऐसे शोभित भये मानो सिद्धि जो तप सिद्धि है ताकी श्री शोभामें रमे कहे अनुरागे सिंह के सुत पुत्र हैं सिंहादि वनजीव तपस्विन के वश्य होत हैं यह प्रसिद्ध है औ सिद्ध हैं श्रीरये पाठ होइ तौ सिद्ध स्वाभाविक श्री शोभासों रये युक्त ८ ॥

दोहा ॥ काहूको न भयो कहूं ऐसो सगुन न होत ॥ पुर पैठत श्रीराम के भयो मित्र उद्दोत ९ राम.-चौपाई ॥ कछु राजत सूरज अरुण खरे । जनु लक्ष्मणके अनुराग भरे ॥ चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै । चोर चकोर चितासी लसै १० लक्ष्मण.-षट्पद ॥ अरुणगात अति प्रात पद्मिनीप्राणनाथ भय । मानहुँ केशवदास कोकनद कोक प्रेममय ॥ परिपूरण सिंदूर पूर कैधौं मंगलघट । किधौं शक्रको छत्र मढ्यो माणिक मयूखपट ॥ कै शोणितकलित कपाल यह किल कपालिका कालको । यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनिके भालको ११ ॥

९ अति अनुराग करि पुरमें पैठतही लक्ष्मणके सगुनार्थ उदित भये ताही अनुराग प्रेमसों मानो भरे कहे पूरित हैं अथवा लक्ष्मणको व्याजकरि सगुन समय उदयसों आपने ऊपर सूर्य को प्रेम जनायो यह कहनूति लोकरीति है १० पद्मिनीप्राणनाथ सूर्य अरुणतामें तर्क है कोकनद कमलनको फुलावत हैं कोक चकवानको संयोगी करतहैं तासों मानो तिनके प्रेममयी हैं अर्थ तिनप्रति जो प्रेम है सो ऊपर छाइ रह्यो है सिंदूरकी पूर प्रवाह

जलेति अर्थ सिंदूरमिश्रित जलसों भरयो अथवा परिपूर्ण सिंदूरसों पूर कहे पूरित अर्थ सिंदूरही सों भरयो अथवा सिंदूरसों रँग्यो कै मंगल विवाहादि को घटपूजन कलश हैं माणिक रत्नकी मयूख किरण तिनको बीन्यो पट वस्त्र औ किल कहे निश्चय करि यह कपालिका काली पै शोणित रुधिर कलित कालको कपाल शीश है अथवा कपालिकाको व काल को शोणित कलित कपाल है काली को रुधिर मांसभक्षक तासों कालको सर्वभक्षक तासों "कालो जगद्भक्षक इति प्रमाणात्" ११ ॥

तोटकछंद ॥ पसरे कर कुमुदिनिकाज मनो । किधौं पद्मिनिको सुखदेन घनो ॥ जनु ऋक्ष सबै यहि त्रास भगे । जिय जानि चकोर फँदान ठगे १२ रामचन्द्र–चंचरीकछंद ॥ व्योम में मुनि देखिये अतिलाल श्रीसुखसाजहीं । सिंधु में बड़वाग्निकी जनु ज्वालमाल विराजहीं ॥ पद्मरागनिको किधौं दिवि धूरि पूरित शोभई । शूरवाजिनकी खुरी अतितीक्षता तिनकी हई १३ विश्वामित्र–सोरठा ॥ चढ़यो गगन तरु धाय दिनकर वानर अरुणमुख ॥ कीन्हो झुकि झहराय सकलतारका कुसुम विन १४ ॥

कुमुदिनि कोईंके काज कहे गहिवेको कुमुदिनी भय सों संकोचको प्राप्त होती है तासों ऋक्ष नक्षत्र यदि त्रास कहे फंदा भगके त्रास १२ यामें आकाश में सूर्यकी लाली छाइरही है ताको वर्णन है मुनि विश्वामित्रको संबोधन है १३ सूर्योदय सों नक्षत्र अस्तभये तामें विश्वामित्र ने तर्क करयो दिनकर सूर्यरूपी जो अरुणमुख वानर है सो गगन आकाशरूपी तरु वृक्षमें धायकै चढ़यो है सो झुकि कहे रिसायकै झहराय कहे हलायकै सकल तारका नक्षत्ररूपी जे कुसुम फूले हैं तिन विन कीन्हीं सकल नक्षत्र अस्त भयो तासों झुकि पद कह्यो १४ ॥

लक्ष्मण–दोहा ॥ जहीं वारुणीकी करी रंचक रुचि द्विजराज ॥ तहीं कियो भगवन्त विन संपतिशोभासाज १५ तोमरछंद ॥ चहुँभाग बाग तड़ाग । अब देखिये बड़भाग ॥

फलफूलसों संयुक्त । अलि यों रमैं जनमुक्त १६ राम- दोहा ॥ तिन नगरी तिन नागरी प्रतिपद हंसकहीन ॥ जलजहारशोभित जहाँ प्रकट पयोधरपीन १७ ॥

वारुणी पश्चिमदिशा औ मदिरा द्विजराज चन्द्रमा औ ब्राह्मण भगवंत सूर्य औ ईश्वर संपत्ति चांदनी औ द्रव्य शोभा अंगछवि दुवौ में जानौ सूर्य्योदय सों पश्चिमदिशा में शोभारहित चन्द्रविंब देखि श्लेषोक्ति सों वर्णन करयो जो ब्राह्मण मदिरा की रुचि इच्छा करत है ताको ईश्वर संपत्त्यादि सों हीन करत हैं १५ चहुँभाग चारौ वीर मुक्त साधुजन १६ जो जनकदेश गे ते नगरी पुरी औ ते नागरी स्त्री नहीं हैं जे प्रतिपद स्थान स्थान प्रति औ चरण चरण प्रति हंसपक्षी औ क कहे जल औ हंसक विछु- वनसों हीन हैं औ जहां कहे जिनमें पीन बड़े पयोधर वापी तड़ागादि औ कुचन में जलज कमल औ मोतिन के हारसमूह औ माला नहीं शोभित अर्थ सब नगरिनमें जलाशय जलयुक्त हैं तिनमें कमल फूले हैं औ हंस बसत हैं स्त्री मोतिन के माला औ विछुवा पहिरे हैं यासों या जनायो कि विधवा नहीं हैं और अर्थ जो देश तिन नगरिन औ तिन नागरिनसों युक्त है युक्तेति शेषः । जिनके प्रतिपद कहे मगराज मार्गेति औ पग चिह्न जे धूरि में अंकित होत हैं तेई हंसपक्षी औ क जल औ विछुवन करि हीन हैं अर्थ नगरिन में राजमार्ग छोड़ि अन्यत्र हंसयुक्त जल शोभित है औ जिनके पगचिह्नही में विछुवा नहीं हैं औ पगन में सब विछुवा पहिरे हैं औ जहँ कहे जिन नगरिन में औ जिनमें शोभित न जलजहार न कमल समूह न औ मोती मालनसों युक्त पीन बड़े पयोधर तड़ागादि औ कुच हैं १७ ॥

सवैया ॥ सातहु द्वीपनके अवनीपति हारि रहे जियमें जब जाने । बीसबिसे व्रतभंग भयो सो कहौ अब केशव को धनुताने ॥ शोककि आगिलगी परिपूरण आइगये घनश्याम विहाने । जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु पुण्य पुराने १८ दोधकछंद ॥ आइगये ऋषि राजहि लीने । मुख्यसतानँद विप्रप्रवीने ॥ देखि दुवो भये पाँयन लीने ।

आशिष सो ऋषि बासुलै दीने १६ विश्वामित्र-सवैया॥
केशव ये मिथिलाधिप हैं जगमें जिन कीरतिबेलि बई है।
दान कृपान विधातनसों सिगरी वसुधा जिन हाथ लई है॥
अंग छ सातक आठकसों भव तीनिहुँ लोकमें सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राजशिरी परिपूरणता शुभ योगमई है २०॥

घनश्याम रामचन्द्र औ सजलमेघ जैसे सजलमेघनके आगमनसों वृक्षन की दावाग्नि बुझाति है औ हरित ह्वैजात हैं तैसे धनुष काहूसों न उठ्यो अब सीता को ब्याह ना ह्वैहै ऐसे गाढ़ समयमों हम कछू सहाय ना कियो यह जासों कहै ताको आगि जनकादिके पुण्य वृक्षनमों लगीरहै सो रामागमनसों धनुष उठिबो निश्चय करि बुझानी और फूलि उठे प्रफुल्लित ह्वै उठे हरित ह्वै उठे १८ मुख्य जे सतानंद प्रवीने विप्र ऋषि हैं ते राजा जनक को लीन्हें विश्वामित्रको आगे ह्वै लेबे को आइगये विश्वामित्रको देखि दुवौ सतानंद औ जनक पांयन में लीन भये विश्वामित्र शीश सूंघि आशिष दियो १६ विश्वामित्र रामादिसों जनककी बड़ाई करत हैं वेदत्रयी कहे तीनोंवेद ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद तिनके छः अंगसों औ राजश्री के सात अंगसों औ योगके आठ अंगसों भव जो संसार है तामें तीनिहुँ लोक में जनककी सिद्धि कार्यसिद्धि भई है यासों या जनायो षडंगयुक्त वेद सप्तांगयुक्त राज्य अष्टांगयुक्त योगसाधन करतहैं वेदांगानि यथा-शिक्षा १ कल्प २ व्याकरण ३ निरुक्ति ४ ज्योतिष ५ छन्द ६ "यथोक्तं पदपश्चाशिकायां भट्टोत्पलटीकायां-शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति" राज्यांगानि यथा-राजा १ मन्त्री २ मित्र ३ खजाना ४ देश ५ कोट ६ सैन्य ७ "स्वाम्यमात्यसुहृत् कोशं राष्ट्रदुर्गबलानि च। राज्यांगानीत्यमरः"। योगांगानि यथा-यम १ नियम २ आसन ३ प्राणायाम ४ प्रत्याहार ५ ध्यान ६ धारणा ७ समाधि ८ "यथोक्तं प्रबोधचन्द्रोदये-यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधयश्च" २० ॥

जनक-सोरठा॥ जिन अपनो तन स्वर्ण मेलि तापमय अग्निमें॥ कीन्हो उत्तमवर्ण तेई विश्वामित्र ये २१ लक्ष्मण-मोहनछंद॥ जन राजवंत। जग योगवंत॥ तिनको उदोत।

केहि भांति होत २२ श्रीराम-विजय ॥ सब क्षत्रिन आदिदै काहू छुई न छुये बिजनादिक वात डगै । न घटै न बढ़ै निशि-वासर केशव लोकनको तमतेज भगै ॥ भवभूषण भूषित होत नहीं मदमत्तगजादि मषी न लगै । जलहू थलहू परिपूरण श्रीनिमिके कुल अद्भुतज्योति जगै २३ ॥

जब विश्वामित्र जनककी स्तुति करचुके तब जनक अपने मंत्री आदिसों विश्वामित्र की बड़ाई करत हैं उत्तमवर्ण ब्राह्मण औ अरुणरंग अर्थ तपस्या करि क्षत्रियसों ब्राह्मण भये २१ जब विश्वामित्र जनकके राज्य औ योगकी स्तुति कियो तब संदेहयुक्त है लक्ष्मण पूंछ्यो कि जे जन जगत् में राज्य औ योग दुवौ साधत हैं ते कैसे उदयको प्राप्त होत हैं काहेते राज्य औ योग पर-स्पर कर्म विरुद्ध हैं २२ लक्ष्मण पूंछ्यो कि जे जन राजवंत योगवंतहैं तिनको उदोत कैसे होत है सो सुनिकै कहिबे की अद्भुत युक्ति मन में प्राप्तभई तासों विश्वामित्रसों प्रथमही रामचन्द्रही उदोत के हेतु कहन लगे उदोत ज्योति को होत है तालिये ज्योतिरूप करि कहत हैं कि निमि जे जनक के पुरिखा हैं तिनके कुलकी जो ज्योति प्रकाशकी शिखा है सो अद्भुत जगै कहे जगति है दीपित है इति अर्थ और दीपज्योतिके सम नहीं है सो अद्भुतता कहत हैं कि दीपज्योतिको और दीपज्योति छ्वैसकति है अर्थ समता करि सकति है अर्थ जैसे एक दीपकी ज्योति होति है तैसी सजातीय औरहू दीप की होति है औ या निमि कुलकी ज्योतिको आदि दै कहे आदिहीसों जबसों प्रकटभई है अर्थ जबसों निमि वंशभयो तबसों काहू क्षत्रिन नहीं छुयो अर्थ समता कर्‌यो फेरि कैसी है कि और ज्योति व्यजनादि वातसों डगमगाति है यह ज्योति व्यजनादि वातसों नहीं डगति आदि पदते चामरादि जानो अर्थ व्यजनादि वात भोगादिको सुख जामें लिप्त नहीं है सकत फेरि कैसी है कि और दीपज्योति दिनमें घटति है औ यह निशिवासर कहे रातिउ दिन घटति बढ़ति नहीं है अर्थ सब प्राणी जा वंश में बराबर होतजात हैं तासों घटति नहीं औ पूर्णताको प्राप्तहै तासों बढ़ति नहीं और दीपज्योतिसों थल-मात्रही को तम अंधकार दूरि होत है यासों कनकोत्तम तेज कहे अज्ञानको तेज दूरि होत है अर्थ जिनके उपदेश सों अथवा गानकरे सों अथवा कथा सुनिकै लोकनके प्राणिनको अज्ञान दूरि होत है ज्ञानी होत हैं फेरि कैसी

है कि दीपज्योति भवभूषण जो भस्म है तासों अर्थ गुनसों भूषित होति है औ यह भव जो संसार है ताके जे भूषण कुंडलादि हैं तिनसों नहीं भूषित होति अर्थ कुंडलादि धारण सुखमें नहीं लिप्त होति औ दीपज्योति में मषी जो मसि है कज्जलरतिसों लगति है अरु थामें गजादिरूपी जो माहिषी है सो नहीं लागति अर्थ गजादि आरोहन सुख भोगमें लिप्त नहीं होति आदि पदते रथाश्वादि जानो औ दीपज्योति थलही में पूरण रहति है औ यह जलहू थल में परिपूरण है अर्थ जल थल में प्रसिद्ध हैं योगसों जीवन्मुक्त हैं तासों राज्यसुखमें लिप्त नहीं होत इति भावार्थः २३ ॥

जनक–तारक ॥ यह कीरति और नरेशन सोहै। सुनि देव अदेवन को मन मोहै ॥ हमको बपुरा सुनियें ऋषिराई। सब गाउँ छसातककी ठकुराई २४ विश्वामित्र–विजय ॥ आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुवपालैं सदाई। केवल नामहींके भुवपाल कहावत हैं भुवपालि न जाई ॥ भूपनिकी तुमहीं धरि देह विदेहन में कलकीरति गाई। केशव भूषणकी भवभूषण भूतन में तनया उपजाई २५ ॥

जा प्रकार तुम वरण्यो यह कीरति और बड़े राजन में सोहति है या लायक हम नहीं हैं २४ पतिको धर्म है स्त्रीसों पुत्र कन्या उपजाइवो सो भूमिरूपी स्त्री है तासों और काहू भूपति नहीं उपजायो तासों केवल नामहीं के भूपाल हैं भूपति की देह कोऊ नहीं धरे औ तुम भवसंसार में भूषणहू को भूषण अर्थ जाते भूषण शोभा पावत हैं अतिसुंदरीति ऐसी तनया पुत्री भूतन पृथ्वी के तन देहते उपजायो तासों भूपनकी देह केवल तुमहीं धरेहौ औ ताहूपर तुम्हारी कल कहे निर्दोष कीरति विदेहनमें गाई है कहावत विदेह हौ थासों या जनायो कि भोगराज को करत हौ यश जीवन्मुक्त तपस्विन में गायो है याते तुमसम कोऊ राजा नहीं है २५ ॥

जनक–दोहा ॥ इहि विधिकी चित चातुरी तिनको कहा अकत्थ ॥ लोकनकी रचना रुचिर रचिबेको समरत्थ २६ सवैया ॥ लोकनकी रचना रचिबेको जहाँ परिपूरण बुद्धि

बिचारी। ह्वैगइ केशवदास तहीं सब भूमि अकाश प्रकाशित भारी॥ शुद्ध शलाकसमान लसी अतिरोषमयी दृग दीठि तिहारी। होत भये तब सूर सुधाधर पावक शुभ्र सुधा रँगधारी २७॥ दोहा॥ केशव विश्वामित्र के रोषमयी दृग जानि॥ संध्यासी तिहुँलोक में किहिनि उपासी आनि २८ जनक-दोधकछंद॥ ये सुत कौनके शोभहिं साजे। सुंदर श्यामलगौर बिराजे॥ जानत हौं जिय सोदर दोऊ। कै कमला विमलापति कोऊ २९॥

जिनके लोक रचना रचिवेकी सामर्थ्य है तिनको वचन रचना करिवो कहा है २६ परिपूरण बुद्धि कहे निश्चय बुद्धिसों बुद्धि भूमि औ आकाशमें प्रकाशित भई अर्थ फैलत भई अथवा भूमि आकाशसहित प्रकाशितभई प्रकट भई अर्थ सब विषय हस्तामलकवत् देखि पस्यो तासमय शुद्ध कहे तीक्ष्ण शलाका बाण समान तिहारी रोषमयी दृष्टि लसी तासों सूर सूर्य सुधाधर चन्द्रमा सरिस भयो औ अग्नि अमृतके रंग भये अर्थ अतिभयसों तेजहीन श्वेत भये "शलाकाशल्यमदनशारिकाशल्यकीषु च छत्रादिकाष्ठीशरयोरिति मेदिनी" २७ संध्यासम अरुणनेत्र भये तब जैसे तीनोंलोक में सब दोष निवारणार्थ संध्याकी उपासना करत हैं तैसे रोषनिवारणार्थ ब्रह्मादि सब उपासना करत भये अर्थ सब आधीन ह्वै स्तुति करत भये २८ दुहुँनको सम सौंदर्यादि देखि यह मैं जी में जानत हौं कि ये दूनों सहोदर सगेभाई हैं औ कै कोऊ कहे कौनो रूपधारी कमलापति विष्णु विमलापति ब्रह्मा हैं आशय यह कि इनमें विष्णु ब्रह्मासम सौंदर्यादि गुण हैं २९॥

विश्वामित्र॥ सुंदर श्यामल राम सुजानो। गौर सुलक्ष्मणनाम बखानो॥ आशिष देहु इन्हैं सब कोऊ। सूरजके कुलमंडन दोऊ ३० दोहा॥ नृपमणि दशरथ नृपतिके प्रकटे चारि कुमार॥ राम भरत लक्ष्मण ललित अरु शत्रुघ्न उदार ३१ घनाक्षरी॥ दानिनके शीलपर दानके प्रहारी दीन दानवारि ज्यों निदान देखिये सुभायके। दीपदीपहूके

अवनीपनके अवनीप पृथुसम केशवदास दास द्विज गाय के ॥ आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये परदारप्रिय साधु मन बच कायके। देह धर्मधारी पै विदेहराजजू से राज राजत कुमार ऐसे दशरथरायके ३२ ॥

३० । ३१ यामें विरोधाभास है दानी जे हरिश्चन्द्रादि राजाहैं तिनके ऐसे शील स्वभाव हैं जिनके अपर जे शत्रु हैं तिनसों दान दंडके प्रहारी लेवैया हैं औ दिनप्रति दानवारि विष्णुके जैसे सुभाय हैं ऐसे सुभायनके निदान कहे आदि कारण हैं अर्थ विष्णुके ऐसे सौंदर्यादि सुभायनको प्रकट करत हैं औ दीपक हैं प्रकाश कहँ दीपकहूके अर्थ अति कान्तियुक्त हैं औ अवनीपनके अवनीप राजा हैं अथवा दीप दीपके अवनीपनके अवनीप राजा हैं अर्थ सातोदीपनके राजनके राजा हैं औ राजा पृथुके समान हैं औ गो ब्राह्मणके दासहैं तौ एते बड़े राजाको अतिदीन गोब्राह्मणकी सेवा विरोध है अविरोध यह गोब्राह्मणकी सेवा क्षत्रीको उचित है परदार लक्ष्मी अथवा पृथ्वी विदेहराज काम अथवा जन व राजाजनक को संबोधन है दानवारि सम सुभाव कहि औ लक्ष्मीप्रिय कहि जनकको जनायो कि ये विष्णु अवतार हैं अथवा ऐसे जे दशरथराय हैं तिनके ये कुमार राजत हैं सुरपाल कैसे हैं बालकही ते ये दशरथराय जिनको वर्णन करियत हैं ३२ ॥

सोरठा ॥ जबते बैठे राज राजादशरथ भूमिमें ॥ सुख सोयो सुरराज तादिनते सुरलोकमें ३३ स्वागता छंद ॥ राज राज दशरत्थतनैजू। रामचंद्र भुवचंद्र बनैजू ॥ त्यों विदेह तुमहूं अरु सीता। ज्यों चकोरतनया शुभगीता ३४ तारकछंद ॥ रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो। अतिदुष्कर राजसमाजनि लेख्यो ॥ जनक ॥ ऋषिहै वह मन्दिर मांझ मँगाऊं। गहि ल्यावहिं हौं जनयूथ बुलाऊं ३५ पद्धटिकाछंद ॥ अब लोग कहाकरिबे अपार। ऋषिराज कही यह बार बार ॥ इन राजकुमारहि देहु जान। सब जानतहैं बलके निधान ३६ जनक-दंडक ॥ वज्रते कठोर है कैलासते विशाल

कालदंडते कराल सब कालकालगावई । केशव त्रिलोक के विलोकि हारे भूप सब छोड़ि एक चंद्रचूड़ औरको चढ़ावई ॥ पन्नगप्रचंडपति प्रभुकीपनच पीन पर्वतारि पर्वतप्रभा न मान पावई । विनायक एकहू पै आवै न पिनाक ताहि कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई ३७ ॥

यासों या जनायो कि इंद्रकी सहाय करत हैं ३२ राजनके राजा दशरथ के तनय पुत्र रामचन्द्र जैसे भूतलके चन्द्रमा बनेहैं अर्थ राजनको राजा ऐसो तौ जाको पिता है आपु चन्द्रमा सरिस सबको सुखद हैं औ चांदनीसम यशप्रकाशक हैं याते बड़े भाग्यवान् हैं इति भावार्थः तैसे हे विदेह ! तुमहूं औ सीता हौ अर्थ तुम राजन के राजा हौ औ सीता चकोरतनया सरिस शुभगीता हैं तौ जाको तुमसों पिता है आप ऐसे यशको प्राप्त हैं तैसे सीताहू बड़ी भाग्यवती है इति भावार्थः औ चकोरी को औ चन्द्रही को प्रेम उचित है तैसे सीताको औ रामचन्द्रको ह्वै है इति व्यंग्यार्थः ३४ । ३५ इनको बल के निधान अर्थ बड़ेबलवान् सब जानत हैं औ विधान पाठ होइ तौ विधान कहे विधि जहां जा प्रकार चाहिये तहां ता प्रकार बल करबी ३६ या प्रकार जाको सब प्राणी काल काल में कहे समय समयमों गावत हैं अथवा काल जे यम हैं तिनहूं को काल नाशकर्ता चन्द्रचूड़ महादेव प्रचंड जे पन्नग सर्पन के पति हैं बड़े सर्प तिनहुँनके जे प्रभु वासुकी हैं तिनहीं की पीन कहे मोटी पनच रोदा है अथवा पन्नगप्रचंडपति जे वासुकी हैं तेई प्रभुकी महादेव की पनच हैं आशय यह और रोदा जाको बल नहीं सहिसकत औ पर्वतारि इंद्र और जे पर्वतनके प्रभा सदृश हैं दैत्यादि ते जाके गरुआई के मान प्रमाल को नहीं पावत औ एक कहे अकेले जो विनायक गणेशहू ल्यायो चहैं तौ नाहीं आइसकत ३७ ॥

मुनि-दोहा ॥ राम हत्यो मारीच ज्यहि अरु ताड़का सुबाहु ॥ लक्ष्मणको वह धनुषदै तुम पिनाकको जाहु ३८ जनक-त्रिभंगीछंद ॥ सिगरे नरनायक असुर विनायक राक्षसपति हिय हारिगये । काहू न उठायो थल न छुड़ायो

टरयो न टारयो भीत भये॥ इन राजकुमाररनि अति सुकुमारनि लै आयो है पैज करे। व्रतभंग हमारो भयो तुम्हारो ऋषि तपतेज न जानिपरे ३६ विश्वामित्र–तोमर॥ सुनि रामचन्द्रकुमार। धनु आनिये यहि बार॥ पुनि बेगि ताहि चढ़ाव। यश लोकलोक बढ़ाव ४०॥

जनक कोमल पाणि कह्यो ता लिये मारीचादि को वध सुनाइ कठोरपाणि जनायो ३८ असुर बाणासुरादि विनायक गणेश अथवा असुरनमें विनायक श्रेष्ठ बाणासुर औ राक्षसपति रावण पैज कहे धनुष उठाइवे में पराक्रम करिवे को लै आयेहैं अथवा पैज कहे श्रमको करिकै तुम इन्हैं ल्याये हौ अथवा पैज प्रतिज्ञा ३६। ४०॥

दोहा॥ ऋषिहि देखि हरषै हियो राम देखि कुम्हिलाइ॥ धनुष देखि डरपै महा चिंताचित्तडोलाइ ४१ स्वागताछंद॥ रामचन्द्र कटिसों पट्ट बांध्यो। लीलयैव हरको धनु साध्यो॥ नेकु ताहि करपल्लव सों छ्वै। फूलमूलजिमि टूक करयो द्वै ४२ सवैया॥ उत्तमगाथ सनाथ जबै धनु श्रीरघुनाथजु हाथ कै लीनो। निर्गुणते गुणवंत कियो सुख केशव संत अनंतन दीनो॥ ऐंचो जहीं तबहीं कियो संयुत तीक्ष्णकटाक्ष नराच नवीनो। राजकुमार निहारि सनेह सों शंभुको सांचो शरासन कीनो ४३ प्रथम टंकोर झुकि झारि संसारमद चंड को दंड रह्यो मंडि नवखंड को। चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल पालि ऋषिराजके वचन परचंड को॥ शोधु दै ईशको बोधु जगदीशको क्रोध उपजाइ भृगुनंद बरिबंडको। बांधि वर स्वर्गको साधि अपवर्ग धनुभंगको शब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को ४४॥

४१ कटिसों कहे कटिमें फूलमूल पौनारी लीलहिसों हरको धनु साध्यो

यहौ पाठ है ४२ उत्तमगाथ कहे गान जिनको औ सनाथ विश्वामित्र सहित गुणवंत रोदायुक्त औ धनुष खैंचत में तिरछी दृष्टि परति है सोई नाराच बाण हैं तासों संयुत कियो राजकुमार जे रामचन्द्र हैं ते स्नेह सहित निहारिकै शम्भुको शरासन सांचो कीन्हों " शरान् अस्यति क्षिपतीति शरासनः" अर्थ धन्वी शरन को चलावत है जासों तासों शरासन कहावत है सो कटाक्षरूपी शर युक्तकरि सत्य कियो ४३ धनुभंग को जो शब्द है सो चंड कहे प्रचंड जो कोदंड धनुष है ताको जो प्रथम टंकोर खैंचिवेको शब्दहै ताके साथही इतिशेषः यासों प्रथम टंकोरहीके संग धनुष टूटिवो जनायो भुँकि कहे क्रुद्ध ह्वै अर्थ क्रूरताको प्राप्त ह्वैकै संसार को मद भारिकै अर्थ संसार के सब प्राणिनको कादर करिकै नवहू खंडमें मंडि कहे छायरह्यो औ फेरि अचला जो पृथ्वी है औ अचल पर्वतनको चालि कहे चलाइकै औ दिकपाल इंद्रादिकनके बलको घालिकै अर्थ विह्वल करिकै औ रामचन्द्र धनुष उठाइ हैं यह वचन विश्वामित्र को जनकप्रति कह्यो ताको पालिकै औ ईश महादेव को शोध कहे खोज संदेश इति दैकै औ क्षीरसागर में सोवत जे जगदीश विष्णु हैं तिन्हैं बोधि कहे जगाइकै औ भृगुनंदन परशुराम के क्रोध उपजाइकै औ स्वर्ग को बांधिकै कहे स्वर्गभरे मों व्याप्त ह्वैकै औ बाधि पाठ होइ तो स्वर्गको बाधा करिकै अर्थ वेधिकै अथवा स्वर्ग के प्राणिन को विह्वल करिकै या प्रकार ब्रह्मांड को वेधि कै मुक्ति को साधि साधन करिकै गयो अर्थ ब्रह्मांड फोरि विष्णुलोकको प्राप्तभयो ऐसो उच्चशब्द भयो इति भावार्थः औ रामचन्द्र के करस्पर्शसों याही विधि सबको मुक्ति मिलति है इति व्यंग्यार्थः ४४ ॥

जनक–दोहा ॥ शतानंद आनंद मति तुमजु हुते उन साथ ॥ बरज्यो काहेन धनुष जब तोस्यो श्रीरघुनाथ ४५ शतानंद–तोमर ॥ सुनि राजराज विदेह । जबहीं गयो वहि गेह ॥ कछु मैं न जानी बात । कब तोरियो धनु तात ४६ दोहा ॥ सीताजू रघुनाथ को अमलकमलकी माल ॥ पहिराई जनु सबनकी हृदयावलि भूपाल ४७ चित्रपदा छंद ॥ सीय जहीं पहिराई । रामहिं माल सुहाई ॥ दुंदुभि देव बजाये । फूल तहीं बरसाये ४८ ॥

इति धनुर्भङ्गवर्णनं नाम पञ्चमः प्रकाशः ॥ ५ ॥

४५ । ४६ सीता में भूपालन के हृदय लगे रहैं तिनको बेधि माल बनाई मानो रामचन्द्रको पहिरायो हृदयको कमलसदृश वर्णन है तासों ४७ । ४८ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानिकीजानिप्रसादायजनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां पञ्चमः प्रकाशः ॥ ५ ॥

दोहा ॥ छठैं प्रकाश कथा रुचिर दशरथ आगम जानि ॥ लगनोत्सव श्रीरामकी ब्याहविधान बखानि १ शतानंद-तोटकछंद ॥ बिनती ऋषिराजकि चित्त धरौ । चहुँभैयन के अब ब्याह करौ ॥ अब बोलहु बेगि बरात सबै । दुहिता समदौ सुत पाइ अबै २ दोहा ॥ पठई तबहीं लगन लिखि अवधपुरी सब बात ॥ राजादशरथ सुनतही चाह्यो चली बरात ३ मोटकछंद ॥ आये दशरत्थ बरात सजे । दिकपाल गयंदानि देखि लजे ॥ चार्यो दल दूलह चारु बने । मोहे सुर औरनि कौन गने ४ ॥

१ दशरथकी प्रभुता सुनि औ रामचन्द्र को पराक्रम देखि जनक चारों सुतनके ब्याह करिबेको विश्वामित्रसों बिनती कीन्हीं सो शतानंद विश्वामित्र को समुझावत हैं कि हे ऋषिराज ! जनककी बिनती चित्तमें धरौ समदौ बिवाहौ २ राजादशरथ के लग्नपत्री सुनतही चारों बरातैं चलीं अर्थ चारों बरातैं साजि राजादशरथ ब्याहिबे को चले ३ । ४ ॥

तारकछंद ॥ बनि चारि बरात चहूंदिशि आईं । नृप चारि चमू अगवान पठाईं ॥ जनु सागर को सरिता पगु-धारी । तिनके मिलबे कहँ बाँह पसारी ५ दोहा ॥ बारोठे को चारु करि कहिकै सब अनुरूप ॥ द्विज दूलह पहिराइयो पहिराये सब भूप ६ त्रिभंगीछंद ॥ दशरत्थसँघाती सकल बराती बनिबनि मंडपमाँह गये । आकाशविलासी प्रभा-प्रकाशी जलजगुच्छ जनु नखत नये ॥ अति सुंदर नारी सब सुखकारी मंगलगारी देनलगीं । बाजे बहुबाजत जनु

घनगाजत जहां तहां शुभशोभजगीं ७ दोहा ॥ रामचन्द्र सीतासहित शोभत हैं त्यहि ठौर ॥ सुबरणमय मणिमय खचित शुभ सुंदर शिरमौर ८ ॥

जो एकही दिशासों चारों वरातैं आवतीं तो एकएक वरातकी अगवानी में बेर होती ब्याहकी लग्न टरिजाती तासों एकहीवार अगवानी होवे के लिये चारों बरातैं चारों दिशा है आईं सागर सरिस राजाजनकहैं सरिता सरिस चारों बरातैं हैं वाँह सरिस अगवानी की चारों चमूहैं ५ बारोठेको चारु कहे द्वारपूजा अनुरूप यथोचित पहिराइयो पद्ते भूषण वस्त्र पहिराइयो जानो ६ बारोठेको चारु करि जनवास मंदिरको गये इति कथाशेषः जनवास मंदिरते भांवरि करिवेके लिये मंडप कहे माड़वमें गये सो मंडप कैसो है आकाशविलासी कहे आकाशको ऐसो है विलास कौतुक जाको अर्थ अतिदीर्घ अतिउच्च है औ आकाशमें नक्षत्र हैं इहां झालरन में लगे प्रभाप्रकाशी कहे अतिशोभायुक्त जे जलज मोतिन के गुच्छ हैं तेई नये नवीन नखत हैं ७ खचित कहे चित्रित ८ ॥

षट्पद ॥ बैठे मागध सूत विविध विद्याधर चारण । केशवदास प्रसिद्ध सिद्ध शुभ अशुभ निवारण ॥ भरद्वाज जाबालि अत्रि गौतम कश्यप मुनि । विश्वामित्र पवित्र चित्रमति वामदेव पुनि ॥ सबभांति प्रतिष्ठित निष्ठमति तहँ वसिष्ठ पूजत कलस । शुभ शतानंद मिलि उच्चरत शाखोच्चार सबै सरस ९ अनुकूलछंद ॥ पावक पूज्यो समिध सुधारी । आहुति दीनी सब सुखकारी ॥ दै तब कन्या बहुधन दीन्हो । भांवरि पारि जगत यश लीन्हो १० स्वागताछंद ॥ राजपुत्रकनिसों छवि छाये । राजराज सब डेरहि आये ॥ हीर चीर गज वाजि लुटाये । सुंदरीन बहुमंगल गाये ११ सोरठा ॥ वासर चौथे याम शतानंद आगू दिये ॥ दशरथ नृपके धाम आये सकल विदेह बनि १२ भुजंगप्रयातछंद ॥ कहूं शोभना दुंदभी दीह बाजैं । कहूं भीमभंकार कर्नाल साजैं ॥ कहूं

सुंदरी बेनु बीना बजावैं। कहूं किन्नरी किन्नरी लै सुगावैं १३ कहूं नृत्यकारी नचैं शोभ साजैं। कहूं भांड़ बोलैं कहूं मल्ल गाजैं॥ कहूं भाट भाट्यो करैं मान पावैं। कहूं लोलिनी बेड़िनी गीत गावैं १४ कहूं बैल भैंसा भिरैं भीमभारे। कहूं एन एनीनके हेतकारे॥ कहूं बोकबांके कहूं मेप शूरे। कहूं मत्तदन्ती लरैं लोहपूरे १५॥

मागध वंशावली वर्णन करैया सूत स्तुति करैया चारण प्रेष्य ये भाटकी जाति हैं शुभ अशुभ निवारण कहे शुभ में अशुभ के निवारण मेटनहार निष्ठमति कहे उत्तममति ६ समिध होमकी लकरी १०। ११ वासर के चौथे याम कहे तीनपहर दिन बीते के उपरांत दशरथ के धाम कहे जनवास मन्दिर में विदेह कहे जनकके गोत्री १२ तीनि छंदको अन्वय एक है राजा दशरथकी फ़ौजमें ऐसो कौतुक देखत भये किन्नरी सारंगी, एनी हरिणीनसों हेतकरि एन हरिण परस्पर भिरत हैं भिरत पदको अनुषंग एतहू में है मेष भेड़ा लोहपूरे जंजीरहूको पहिरे अथवा वीरतासों युक्त १३। १४। १५॥

दोहा॥ आगे है दशरथ लियो भूपति आवत देखि॥ राजराज मिलि बैठियो ब्रह्म ब्रह्मऋषि लेखि १६ शतानंद-शोभनाछंद॥ मुनि भरद्वाज वसिष्ठ अरु जाबालि विश्वामित्र। सबै हो तुम ब्रह्मऋषि संसारशुद्धचरित्र॥ कीन्हो जो तुम या वंशपै कहि एक अंश न जाइ। स्वाद कहिबे को समर्थ न गूंग ज्यों गुरखाइ १७ अन्यच्च-सुखदाछंद॥ ज्यों अतिप्यासो पावै मगमें गंगजल। प्यास न एक बुझाइ बुझै त्रैतापबल॥ त्यों तुमते हमको न भयो अब एक सुख। पूजे मनके काम जो देख्यो राममुख १८॥

राजर्षि दशरथादि राजर्षि जनकादिकनसों मिलिकै बैठे ब्रह्मर्षि वसिष्ठादि ब्रह्मर्षि शतानंदादिकनसों मिलिकै बैठे ऋषिपदका अनुषंग राजपदमहँ है १६ संसार में शुद्ध है चरित्र जिनको अथवा संसारको शुद्धकर्ता है चरित्र

जिनको अर्थ जिनके चरित्र कहि सुनि संसार के प्राणी शुद्ध होते हैं. १७ जैसे मगमें अतिप्यासो प्राणी जलमात्रको चाहत है औ वह भाग्ययोग ते गंगाजल पावै तौ वाकी एक प्यासही नहीं बुझाति दैहिक दैविक भौतिक जे तीना ताप हैं तिनको बल बुझात है अर्थ त्रयताप दूरि होत हैं तैसे केवल धनुप चढ़ावै ताही को ब्याह करिये हमारी इतनीही प्रतिज्ञापूर्वक इच्छा रही सो तुमते हमको केवल ब्याह इच्छापूर्णरूपही सुख नहीं भयो रामचन्द्र को मुख देखि रूप बल विद्या कुलादि के काम अभिलाष पूजे पूर्ण भये १८॥

जनक–सवैया ॥ सिद्धसमाज सजैं अजहूं न कहूं जग योगिन देखन पाई । रुद्रके चित्त समुद्र बसैं नित ब्रह्महु पै बरणी जो न जाई ॥ रूप न रंग न रेख विशेख न आदि अनंत जो वेदन गाई । केशव गाधिके नंद हमैं वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखाई १९ अन्यच्च–तारकछंद ॥ जिनके पुरिखा भुव गंगहि ल्याये । नगरी शुभस्वर्ग सदेह सिधाये ॥ जिनके सुत पाहनते तिय कीनी । हरको धनुभंग भ्रमे पुर तीनी २० जिन आपु अदेव अनेक सँहारे । सबकाल पुरंदरके रखवारे ॥ जिनकी महिमाहिको अंत न पायो । हमको बपुरा यश वेदनि गायो २१ बिनती करिये जन ज्यों जिय लेखो । दुख देख्यो ज्यों काल्हि त्यों आजहु देखो ॥ यह जानि हिये ढिठई मुखभाषी । हम हैं चरणोदकके अभिलाषी २२ ॥

रुद्र महादेव के चित्तरूपी समुद्रमें जो बसत हैं अर्थ जाको महादेव आराधन करत हैं १९ तीनि छंदको अन्वय एक है भगीरथ सगर के सुतन के तारिवेको गंगाको ल्याये हैं औ हरिश्चन्द्र नगरी अयोध्यासहित स्वर्ग को गये दुवौ कथा प्रसिद्ध हैं औ जिनके सुत रामचन्द्र गौतमीको पाहनसों स्त्री कीन्हीं और हरका धनुषभंग कीन्हो जा धनुष में तीनिपुर कहे तीनि लोक भ्रमे अर्थ जा धनुषको तीनों लोकके प्राणिन उठायो ना उठ्यो तब भ्रमे कहे संदेहको प्राप्त भये अथवा ऐसी अवस्था में ऐसो धनुप तोस्यो यासों तीनिहू लोक भ्रमे औ आपु कैसे हैं कि जिन अनेक अदेव दैत्यन

को मार्‍यो है औ सदा पुरंदर इंद्रकी रक्षा करतहौ यासों या जनायो कि ऐसे उद्धतकर्म करिबेको तुम्हारे घरकी परंपराकी रीति है अनन्त शेष औ जिनकी महिमा महि अन्त न पायो पाठ होइ तौ मही भरे के प्राणिन की महिमा को अंत नहीं पायो यह विनती करियत है कि हमको अपने जन सेवक के समान जियमें लेखो कहे जानौ औ जैसे काल्हि हमारे इहां वास करि दुःख देख्योहै तैसे आजहूं देखो अर्थ आजहूं वास करौ हम चरणोदक कहे चरणजल के अभिलापी हैं तासों एती ढिठाई मुखसों भाख्यो है यह तुम जीमें जानि कहे जानौ चरणोदक के अभिलापी कहि या जनायो कि हमारे घर में चलि भोजन करौ जाते हम चरण धोइ चरणोदक लेइँ जाते हमारे गृहादि पवित्र होइँ या भांति निमंत्रण दियो २० । २१ । २२॥

तामरसछंद ॥ जब ऋषिराज बिनयकरि लीनो । सुनि सबके करुणारस भीनो ॥ दशरथराय यहै जिय जानी । यह वह एक भई रजधानी २३ दशरथ-दोहा ॥ हमको तुमसे नृपतिकी दासी दुर्लभ राज ॥ पुनि तुम दीनी कन्यका त्रिभुवनकी सिरताज २४ भारद्वाज–तामरसछंद ॥ सुख दुख आदि सबै तुम जीते । सुरनरको बपुरा बलरीते ॥ कुलमा होहि बड़ो लघु कोई । प्रतिपुरुषान बड़ो सो बड़ोई २५ ॥

ऋषि शतानंद राजा जनक २३ । २४ अतिबली जे दुःख सुखादि हैं आदि पद ते काम क्रोधादिहू जानौ तिनहीं को तुम जीते हौ अर्थ दुःख सुखादि के वश्य नहीं हौ तौ बलकरिकै रीते कहे खाली बपुरा कहे दीन जे सुर औ नर हैं ते तुमको जीतिबेको कहे कहां हैं औ कुल में चाहे प्रतापादि करि बड़ो होइ चाहे छोटोई जो प्रतिपुरुषन बड़ो होत है सो बड़ाई रहत है यासों या जनायो कि जो प्रतिपुरुष बड़ो है ताके कुल में लघुहू होइ तौ बड़ो है औ तुम प्रतिपुरुपान हूं बड़े हौ औ तुम्हारे दुःख सुखादि जीतिबे की सामर्थ्य है तासों तुम समान कोऊ नहीं है अथवा और कोई अपने कुलमें बड़ो लघु होत है अर्थ कोऊ प्राणी बड़ो भयो कोऊ छोटो भयो औ ई कहे जनक प्रतिपुरुषान बड़ो सो बड़ो कहे बड़े ते बड़े हैं अर्थ इनके कुल में क्रमसों एक से एक बड़े होत आवत हैं २५ ॥

वसिष्ठ-विजयछंद ॥ एक सुखी यहि लोक बिलोकिये हैं वहि लोक निरै पगुधारी। एक इहां दुख देखत केशव होत उहां सुरलोकविहारी ॥ एक इहांऊ उहां अतिदीन सो देत दुहूं दिशिके जन गारी। एकहि भांति सदा सबलोकनि है प्रभुता मिथिलेश तिहारी २६ जाबालि-विजयछंद ॥ ज्यों मणिमय अतिज्योतिहुती रविते कछु और महाछविछाई। चंद्रहि बंदत हैं सब केशव ईशते बन्दनता अति पाई॥ भागीरथीहुति पै अतिपावन बावन ते अति पावनताई। त्यों निमिवंश बड़ोई हतो भइ सीय सँयोग बड़ीयबड़ाई २७ विश्वामित्र-मालिनीछंद ॥ गुणगणमणिमाला। चित्तचातुर्य शाला ॥ जनक सुखद गीता। पुत्रिका पाइ सीता॥ अखिल भुवनभर्ता। ब्रह्मरुद्रादिकर्ता ॥ थिरचरअभिरामी। कीय जामातु नामी २८ दोहा ॥ पूजि राजऋषि ब्रह्मऋषि दुंदुभि दीन्हि बजाइ ॥ जनक कनक मंदिर गये गुरुसमेत सुख पाइ २९ ॥

२६ ईश महादेव २७ जनक संबोधन है गुणगणरूपी जे मणि मुक्तादि हैं तिनकी माला है अर्थ अनेक गुणनसों युक्त है औ चित्त को जो चातुर्य चातुरी है ताकी शाला वर है अथवा चित्त है चातुर्य को शाला जाको अथवा चित्त की चातुर्य से शाला कहे गृहि रच्यो है औ सुखद है गीता गान जाको अर्थ जाको गान करे सुने सबको सुख होत है ऐसी सीतानाम्नी पुत्रिका को पाइकै अथवा ये तीनों लक्ष्मी के विशेषण हैं विशेषणनहीं सो लक्ष्मी जनायो कि ऐसी जो लक्ष्मी हैं ताको सीतानाम पुत्रिका पाइकै अखिल संपूर्ण भुवन कहे चौदहों भुवन के भर्ता पोषक औ ब्रह्मरुद्रादिके कर्ता औ थिर वृक्षादि चर मनुष्यादि सबमें अभिरामी कहे वासकर्ता अथवा शोभाकर्ता औ नामी कहे यशी ऐसो जामातु तुम कीय कहे कस्यो जैसे तीनों विशेषण सों लक्ष्मी जनायो तैसे चारों विशेषणन सों विष्णु जानो

तौ लक्ष्मी जाकी पुत्रिका भई औ विष्णु जामातु भये तासों अति भाग्यवान् हौ इति भावार्थः अथवा विश्वामित्र कहत हैं कि जनकसुखद जे ईश्वर हैं जिन करिकै गीता कहे गाई अर्थ जाको विष्णुहू गान करत हैं यासों लक्ष्मी जनायो और अर्थ एकई है ऐसी जो सीतानाम्नी तुम्हारी पुत्रिका है ताको हम पायो औ सो जामातु तुम कीय कहे कस्यो यासों या जनायो कि दूनों तरफ बड़ा लाभ भयो २८। २६॥

चामरछंद॥ आसमुद्रके क्षितीश और ज़ाति को गनै। राजभौन भोजको सबै जने गये बनै॥ भांतिभांति अन्नपान व्यञ्जनादि जेवहीं। देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भेवहीं ३०

हरिगीतछंद॥ अब गारि तुम कहँ देहिं हम कहि कहा दूलह रामजू। कछु बापप्रिय परदार सुनियत करी कहत कुवामजू॥ को गनै कितने पुरुष कीन्हें कहत सब संसारजू। सुनि कुँवर चितदै बरणि ताको कहिय सब ब्योहारजू ३१॥

आसमुद्र के कहे समुद्रपर्यंत अर्थ पृथ्वी भरे के भूरि भूरि भेवहीं कहे अनेक भेद सों ३० सात हरिगीतछंद को अन्वय एकहै यामें श्लेषसों आशीर्वादात्मक व्याजस्तुति है परदार कहे परस्त्री उत्कृष्टदार कुवाम कुत्सित वाम औ कु कहे पृथ्वीरूप वाम ब्योहार कहे संबंध मित्रता इति कुवाम पक्षरत्नाकर कहे अनेक रत्नयुक्त पृथ्वी यह समुद्र शीश पश्चिम करिकै औ पाँय पूरब करिकै प्रलयकालके उपरांत जब शेषके फणि कहे फणनि की मणिमाला मणिसमूह की पलिका अथवा शेष जे फणि कहे सर्प हैं तिनको मणिमाला की पलिका में परति पौढ़ति है तब अनेक पुरुषन को युद्धादि कराइ ग्रहण त्यागरूप प्रबंध कियो करति है गात हैं सहजेही सुगंध युक्त जाके गंधवती पृथ्वीति न्यायशास्त्रोक्तत्वात् जा प्रबंधसों हिरण्याक्षादि जो पुरुष कस्यो सो क्रमही गनायो सरवस कहे सब सार कहे रसस्वादेति औ द्रव्य भ्रमि कहे भूलिहू कै ज्यों कहे जाते और पति को मुख न निरखै त्यों कहे ता प्रकारसों तुम ताको राखियो जा स्त्रीको दशरथ राख्यो ताको तुम राखियो यह परिहास है औ ताही पृथ्वीकी रक्षा तुम करियो यह आशीर्वादहै ३१॥

बहुरूप सों नवयौवना बहुरत्नमय वपु मानिये। पुनि वसन

रत्नाकर बन्यो अति चित्त चंचल जानिये ॥ शुभ शेषफणि मणिमाल पलिका परति करति प्रबन्धजू । करि शीश पश्चिम पांय पूरब गात सहज सुगन्धजू ३२ वह हरी हठि हिरण्याक्ष दैयत देखि सुंदर देह सों । वर वीर यज्ञ वराह बरही लई छीनि सनेह सों ॥ है गई विह्वल अंग पृथु फिर सजे सकल शृंगारजू । पुनि कछुक दिन वश भई ताके लियो सरबस सारजू ३३ वह गयो प्रभु परलोक कीन्हो हिरणकश्यप नाथजू । तेहि भांति भांतिन भोगयो भ्रमि पल न छोड़्यो साथजू ॥ वह असुर श्रीनरसिंह मार्यो लई प्रबल छड़ाइकै । लैदई हरि हरिचन्द्र राजहिं बहुत जो सुख पाइकै ३४ हरिचन्द्र विश्वामित्र को दई दुष्टता जिय जानिकै । तेहि बरो बरिवंडबरहीं विप्र तपसी जानिकै ॥ बलिबांधि छल बल लई बावन दई इंद्रहि आनिकै । तेहि इंद्र तजि पति कर्यो अर्जुन सहसभुजको जानिकै ३५ तब तासु मद छवि छक्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जमदग्निजू । परशुराम सो सकुल जार्यो प्रबल वलकी अग्निजू ॥ तेहि वेर तबहीं सकल क्षत्रिन मारि मारि बनाइकै । यकईस वेरा दई विप्रन रुधिरजल अन्हवाइकै ३६ वह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थूंकिकै । अरु कहत हैं सब रावणादिक रहे ताकहँ ढूंढ़िकै ॥ यहि लाज मरियत ताहि तुमसों भयो नातो नाथजू ॥ अब और मुख निरखैं न ज्यों त्यों राखियो रघुनाथजू ३७ सोरठा ॥ प्रातभये सब भूप वनि बनि मंडप में गये ॥ जहां रूप अनुरूप ठौर ठौर सब शोभिजें ३८ नाराचछंद ॥ रची विरंचि वाससी निथंभराजिका भली । जहां तहां बिछावने बने घने थली

थली। वितान श्वेत श्याम पीत लाल नीलका रँगे। मनो दुहूं दिशान के समान बिंब से जगे ३९॥

३२। ३३। ३४। ३५। ३६। ३७ रूप जो सौंदर्य है ताके अनुरूप सदृश अर्थ अतिसुंदर ३८ जा मंडप में विरंचि जे ब्रह्मा हैं तिनके वासगृह की ऐसी निथंभ कहे थंभन की राजिका पंगति रची है अर्थ ब्रह्मा के मंदिर सदृश मंडप बन्यो है विचित्र वाससीनि पाठ होइ तौ विचित्र वाससीनि कहे विचित्र वस्त्रन करिकै अर्थ परदान करिकै थंभराजिका रची है बनीहै अर्थ अनेक रंग के परदा लगे हैं बितान चँदोवा श्याम कहे बैंजनी नीलिका जो लील है तासों रँगे हरिण जानो मानो भू आकाश जे दूनों दिशा हैं तिनके परस्पर समान बिंब कहे प्रतिबिंब से जगे हैं अर्थ भूमें जे बिछावने हैं तिनके प्रतिबिंब आकाश में जगे हैं और आकाश में वितानहैं तिनके प्रतिबिंब भूमें जगे हैं यासों या जानो जहां जा रंग को बितान तन्यो है तहां ताही रंगके बिछावने हैं "बिम्बन्तु प्रतिबिम्बेपीति मेदिनी" ३९॥

पद्धटिकाछंद॥ गजमोतिन की अवली अपार। तहँ कलशन पर उरमति सुढार॥ शुभपूरित रति जनु रुचिरधार। जहँ तहँ अकाशगंगा उदार ४० गजदंतनकी अवली सुदेश। तहँ कुसुमराजि राजित सुवेश॥ शुभ नृपकुमारिका करति गान। जनु देविन के पुष्पकविमान ४१ तामरसछंद॥ इत उत शोभित सुंदरि डोलैं। अर्थ अनेकनि बोलनि बोलैं॥ सुखमुखमंडल चित्तनिमोहैं। मनहुँ अनेक कलानिधि सोहैं ४२ भृकुटी विलास प्रकाशित देखे। धनुष मनोज मनोमय लेखे॥ चरचितहासचन्द्रिकनि मानो। सुखमुख वासनि वासित जानो ४३॥

मंडप की रति कहे प्रीतिसों पूरित मानो रुचिरधार कहे प्रवाहन करिकै मंडप में जहां तहां उदार सुंदर आकाशगंगा हैं अर्थ गजमोतिन की मालाहैं ते मानो अनेक धारा है मंडप में आकाशगंगा राजती हैं ४० गजदंत जे टोड़ाहैं तिनकी अवली सुदेश कहे सुंदर रौसयुक्त बनीहैं पुष्पयुक्त आकाश

में वर्तमान विमान सदृश गजदंत के रौसहैं देवीसरिस नृपकुमारिका हैं ॥ "नागदंतो हस्तिदन्ते गेहान्निःसृतदारुणीत्यभिधानचिन्तामणिः" ४१ कलानिधि कहे चन्द्रमा ४२ मानो मनोजमय कहे मनोजप्रधान मनोज जो कंदर्प है सोई है प्रधान देवता जिनके ऐसे धनुष हैं अर्थ मानो कामके धनुष हैं यह लेखे कहे ठहरायो है अथवा मनोमय कहे अनेक मनन करिकै युक्त अर्थ सुंदरता सों जिनमें अनेक मन वसे हैं ऐसे मनोजके धनुषहैं चर्चित पूजित युक्तेति सुख कहे स्वाभाविक ४३ ॥

दोहा ॥ अमल कपोलै आरसी बाहू चंपकमार ॥ अवलोकनै विलोकिये मृगमदमय घनसार ४४ गतिको भार महावरै अंगअंगको भार ॥ केशव नखशिख शोभिजै शोभाई शृंगार ४५ सवैया ॥ बैठे जरायजरे पलिकापर राम सिया सबको मनमोहैं । ज्योतिसमूहरहे मढ़िकै सुर भूलिरहे बपुरो नरको हैं ॥ केशव तीनिहुँ लोकनकी अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं । शोभन सूरजमंडलमांझ मनो कमला कमलापति सोहैं ४६ दोहा ॥ गंगाजीकी पाग शिर सोहत श्रीरघुनाथ ॥ शिव शिरगंगाजल किधौं चन्द्र चन्द्रिका साथ ४७ तोमर छंद ॥ कछु भृकुटि कुटिल सुवेश । अति अमल सुमिलसुदेश ॥ विधि लिख्यो शोभिसुतंत्र । जनु जयाजयके मंत्र ४८ ॥

४४ । ४५ टोहैं कहे खोजत हैं ४६ गंगाजल कपरा पश्चिम में प्रसिद्ध है तो बड़ेलोग ब्याह समयही में पीतपाग बांधत हैं औ यह विदा के रोज को वर्णन है तासों श्वेतपाग कह्यो अथवा चौदहें प्रकाश में कह्यो है कि "समुझै न सूरप्रकाश । आकाश वलित विलास ॥ पुनिऋक्षलक्षनि संग । जनुजलधि गंगतरंग" औ पन्द्रहें प्रकाश में कह्यो है कि "बीच बीच हैं कपीस बीच बीच ऋक्षजाल । लंक कन्यका गरे कि पीत नील कंठमाल" तौ पीत वानरन को गंगतरंग सम कह्यो तैसे ह्वेऊं पीतपाग को गंगाजल सम कह्यो तासों श्वेत पीत की औ हरित श्याम की कहूं समता करत हैं यह कवि नियम है ४७ सुमिल चिक्कण सुदेश सुंदर सुतंत्र कहे स्वच्छंद

जे विधि हैं तिन लिख्यो है अथवा सुष्ठु जो तंत्रशास्त्र है तासों शोधिकै ढूंढ़िकै अथवा शुद्ध करिकै मानो विधातैं जाके पास होइ ताके जयको शत्रु के अजय को मंत्र लिख्यो है अथवा जयके अर्थ अजय कहे काहूके जीतबे योग्य नहीं ऐसे जे रामचन्द्र हैं तिनको जय कहे जीति को मंत्र विधि लिखिदियो है जासों रामचन्द्र सबको जीततहैं वश्य करतहैं अथवा जया जो पार्वती हैं तिनहूं के जयको जीतिबे को मंत्र लिख्यो है यासों या जनायो पतिव्रतन में अग्रगणनीय जो पार्वती हैं तेऊ जिनको देखि वश्य होयँ तो और स्त्री पुरुषकी कहा वातहै आशय कि अतिसुंदर हैं "जया जयन्ती तिथिभित्पथोमातत्सखीषु च इति मेदिनी" ४८ ॥

दोहा ॥ यदपि भृकुटि रघुनाथकी कुटिल देखियत ज्योति ॥ तदपि सुरासुर नरनकी निरखि शुद्धगति होति ४९ श्रवण मकर कुण्डल लसत मुख सुखमा एकत्र ॥ शशिसमीप सोहत मनो श्रवणमकर नक्षत्र ५० पद्धटिकाछंद ॥ अतिवदन सोभ सरसी सुरंग । तहँ कमलनयन नासातरंग ॥ जनु युवतिचित्तविभ्रमविलास । त्यइ भ्रमरभँवत रसरूपआस ५१ ॥

मानो शशि के समीप कहे दोनों और निकट उदित द्वै श्रवण नक्षत्र में द्वै मकर राशि शोभित हैं नक्षत्रपदको संबंध श्रवणमों है अथवा श्रवण मों मकरराशिस्वरूपके नक्षत्र कहे तारा मकरराशि स्वरूपेति शोभित हैं युक्ति यह कि उत्तराषाढ़ श्रवण धनिष्ठा तीनि नक्षत्रन में मकरराशि को वासहै सो मानो श्रवणही में वर्तमान द्वै शशिके दुवौ ओर शोभित हैं श्रवण नक्षत्र की औ कर्ण की शब्दसाम्य है औ मकरराशिकी औ कुंडलकी रूपसाम्य है शशिसदृश मुख है ४९ । ५० सरसी तड़ाग सुरंग निर्मल रामचन्द्र के नेत्र शोभा में भ्रमते हैं विलास कौतुक जिनको ऐसे जे युवतिनके चित्त हैं तेई भ्रमर भँवत हैं रस मकरंदरूपी जो रूप शोभा है ताकी आशासों अर्थ जैसे मकरंद की आश करि तड़ाग में भँवर भँवत हैं तैसे रूपकी आशकरि रामचन्द्र के मुखपर स्त्रिनके चित्त भ्रमतहैं ५१ ॥

निशिपालिकाछंद ॥ शोभिजाति दन्तरुचि शुभ्र उर आनिये । सत्य जनुरूप अनु रूपक बखानिये ॥ ओठ रुचि रेख

सविशेख शुभ श्रीरये । शोधि जनु ईश शुभलक्षण सबै दये ५२ दोहा ॥ ग्रीवा श्रीरघुनाथ की लसत कंबुवर बेख ॥ साधु मनो वच कायकी मानो लिखी त्रिरेख ५३ सुंदरीछंद ॥ शोभन दीरघ बाहु विराजत । देवसिहात अदेवते लाजत ॥ वैरिनको अहिराज बखानहु । है हितकारिन की ध्वज मानहु ५४ यों उर में भृगुलात बखानहु । श्रीकरको सरसीरुह मानहु ॥ सोहति है उर में मणि यों जनु । जानकी को अनुरागि रह्यो मनु ५५ दोहा ॥ सोहत जन रतराम उर देखत जिनको भाग ॥ आइगयो ऊपर मनो अंतर को अनुराग ५६ ॥

शुभ्र श्वेत सत्य कहे निश्चय जानो रूप सुंदरताके अनुरूपक कहे प्रतिमा बखानियतहै अथवा जानो सत्य जो पदार्थहै ताके रूपके अनुरूपक प्रतिमा हैं सत्यको रूप श्वेत है ५२ कंबु शंख मनसा वाचा कमर्णा करिकै जो रामचन्द्र साधु हैं तिन तीनों की मानों विधातैं तीनि रेखा लिखिदियो है निश्चय बातको रेखाखांचि कहिबेकी रीति लोक में प्रसिद्ध है ५३ । ५४ रामचन्द्र के उरमें लक्ष्मी वास किये हैं ताके करको मानो कमल हैं मणि कौस्तुभ मणि अनुरागी मन सदृश कह्यो तासों अरुण जानो ५५ वाही मणि की फेरि उत्प्रेक्षा करत हैं जन जे दास हैं तिनमें रत कहे संलग्न जो अनुराग रामचन्द्र के उरमें शोभित है सो बांटिकै उर अंतरते मानो ऊपर आइगयो है ताको जे देखत हैं तिनके बड़ेभाग हैं ५६ ॥

पद्धटिकाछंद ॥ शुभमोतिन की दुलरी सुदेश । जनु वेदनके अक्षा सुवेश ॥ गजमोतिनकी माला विशाल । मनमानहु संतनके मराल ५७ विशेषकछंद ॥ श्याम दुवौपग लाल लसै द्युति यों तलकी । मानहु सेवति ज्योति गिरा यमुना जलकी ॥ पाटजटी अतिश्वेत सो हीरनकी अवली । देवनदीकन मानहु सेवत भांति भली ५८ दोहा ॥ को वरणै रघुनाथ

छवि केशव बुद्धि उदार ॥ जाकी किरपा शोभिजति शोभा सब संसार ५६ दंडक ॥ को है दमयंती इंदुमती रति राति दिन होहि न छबीली छबि इन जो शृँगारिये । केशव लजात जलजात जातवेद ओपजात रूप बापुरे विरूपसो निहारिये ॥ मदन निरूपमा निरूपण निरूप भयो चंद बहुरूप अनुरूप कै विचारिये । सीताजू के रूपपर देवता कुरूप को हैं रूपही के रूपक तौ वारि वारि डारिये ६० ॥

मरालहंस ५७ या प्रकार मानो त्रिवेणी रामचन्द्रके चरण सेवतिहैं पाठ पदश्लेप है रेशम औ दुवौ कूलको अंतर ५८ बुद्धि तुपार पाठ होइ तौ बुद्धि है तुपार हिवारसम क्षणभंगुर जाकी ५६ दमयंती नलकी स्त्री इंदुमती अजकी स्त्री रति काम की स्त्री इनको राति दिन शृंगारिये तौ सीताकी छविसमान इनकी छवि न होय जातवेद अग्नि जातरूप सुवर्ण निरूपम कहे जाके उपमा कोऊ नहीं अर्थ अतिसुंदर जो मदन है सो सीताजूके रूप समता के निरूपण के निर्णय में लाजसों निरूप कहे निःस्वरूप निर्देहेति भयो औ घटि बढ़िकै अनेक रूपको धर्ता जो चन्द्र है ताको अनुरूप कै कहे असदृशै विचारियत है रूप जो सौंदर्य है ताही के रूपक कहे साम्य को वारि वारि डारियत है ६० ॥

गीतिकाछंद ॥ सी शोभिजै सखि सुंदरी जनु दामिनी वपुमंडिकै । घनश्यामको जनुसेवहीं जड़ मेघ ओघन छंडिकै ॥ यक अंग चर्चित चारु चंदन चान्द्रिका तजि चंद को । जनु राहुके भयसे वहीं रघुनाथ आनँद कन्दको ६१ मुख एक है नतलोक लोचन लोललोचन को हरे । जनु जानकी सँग शोभिजै शुभ लाज देहनको धरे ॥ तहँ एक फूलनके विभूपण एक मोतिनके किये । जनु क्षीरसागरदेवतातन क्षीर छींटनिको छिये ६२ सोरठा ॥ पहिरे वसन सुरङ्ग पावक युत स्वाहा मनो ॥ सहज सुगंधित अंग मानो देवी मलय की ६३

चामरछंद ॥ मत्तदंति राज राजि वाजि राज राजि कै । हेम हीर मुक्तचीर चारु साज साजिकै ॥ वेषवेष वाहिनी अशेष वस्तु शोधियो । दाइजो विदेहराज भांति भांतिको दियो ६४ वस्त्र भौन स्यो वितान आसने विछावने । अस्त्र शस्त्र अंगत्रान भाजनादि को गने ॥ दासि दास वासि वास रोमपाट को कियो । दाइजो विदेहराज भांति भांतिको दियो ६५ ॥

वपुमंडिके यह चन्द्रिकाहू में जानो ६१ एकनके मुख नतकहे लाजसों नीचे को नये हैं ते लोललोचन करिकै लोकलोचननको हरती हैं ६२ स्वाहा अग्नि की स्त्री पावकसम वह्न है स्वाहासम स्त्री है ६३ मत्त जे दंतिराज गजराज हैं तिनकी राजि कहे समूह औ वाजिराज घोड़ेन की राजिका कहे समूह औ जे दाैवेके उचित वस्तु हैं तिन्हैं शोधियो कहे दीवेके लिये ढूंढ़ि२ मँगायो ६४ वितान कहे चँदोवा सामियानेति आसन भूषासन गद्दीति विछावने फरश स्यो कहे सहित वस्त्रभौन कहे पाल डेरा इति दियो अंगत्राण वख़्तर भाजन सुवर्णादि के पात्र वासि सुगंधसों युक्त करिकै रोमवास उत्तम कंवलादि पाटवास पीताम्वरादि दियो ६५ ॥

दोहा ॥ जनकराज पहिराइयो राजा दशरथ साथ ॥ छत्र चमर गज वाजिदै आसमुद्र क्षितिनाथ ६६ निशिपालिका छंद ॥ दान दिय राज दशरत्थ सुखपाइकै । शोधि ऋषि ब्रह्मऋषिराजनि बुलाइकै ॥ तोषि याचक सकल दादुर मयूरसे । मेघ जिमि वर्षि गज वाजिय मयूर से ६७ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां सीतारामविवाहवर्णनंनाम षष्ठः प्रकाशः ॥ ६ ॥

राजा दशरथके साथ जे आसमुद्र के क्षितिनाथरहे तिन्हें राजादशरथ के साथ जनकराज वरतौनी पहिरायो विदा समय की पहिरावनि वरतौनी नाम करि परिचमसों प्रसिद्ध है ६६ वरतौनी की पहिरावनिके वादि जनकपुर-

आसिन को राजादशरथ यथोचित दान दियो ऋषिराज तपस्वी ब्रह्म ऋषिराज ब्राह्मण राजपद को अलुपंग ऋषिहूमों है ६७ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां सीतारामविवाहवर्णनं नाम षष्ठः प्रकाशः ६ ॥

दोहा ॥ या प्रकाश सप्तम कथा परशुराम संवाद ॥ रघुवर सों अरु रोष त्यहि भंजनमान विषाद १ विश्वामित्र बिदाभये जनक फिरे पहुँचाय ॥ मिले आगिली फौज को परशुराम अकुलाइ २ चंचरीकछंद ॥ मत्तदंति अमत्त होइगये देखि देखि न गज्जहीं। ठौर ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहिं बज्जहीं ॥ डारि डारि हथ्यार शूरज जीव लैलै भज्जहीं। काटिकै तन त्राण इक तिन नारिवेषन सज्जहीं ३ दोहा ॥ वामदेव ऋषि सों कह्यो परशुराम रणधीर ॥ महादेव को धनुष यह को तोरेउ बलवीर ४ वामदेव ॥ महादेवको धनुष यह परशुराम ऋषिराज ॥ तोरेउ राजा कहतहीं समझेउ रावणराज ५ परशुराम ॥ अति कोमल नृपसुतनकी ग्रीवादली अपार ॥ अब कठोर दशकंठ के काटहुँ कंठ कुठार ६ परशुराम-विजय छंद ॥ बांधिकै बाँध्यो जो बालि बली पलनापर लै सुतको हितठाढ़े। हैहयराज लियो गहि केशव आयोहो क्षुद्र जो छिद्रनि डाढ़े ॥ बाहिर काढ़िदियो बलिदासिन जाइपरेउ जो पतालको बाढ़े। तोको कुठार बड़ाई कहा कहि ता दशकंठ के कंठ न काढ़े ७ ॥

या प्रकाश में परशुराम सों औ रघुवर सों संवाद है औ ताही रघुवर के रोष करिकै परशुराम के मान को औ आपने सैन्य के विषाद के दुःख को भंजन है १। २ यामें परशुराम के तेजको वर्णन है कि जिन परशुराम को देखि भयसों दशरथ चमूमें या दशा भई शूरज कहे शूरन के पुत्र अर्थ

परंपराके शूर अथवा सूरज सूर्यवंशी ३ । ४ । ५ । ६ बांध्यो कहे माखो सुत जो अंगद है ताको पलना परसों अंक में लैकै ताको हित कौतुक रावण में ठाख्यो अर्थ रावण को बालखेल बनायो सो कथा प्रसिद्ध है बालको अंक में लैकै कौतुक देखाइबो लोकरीति है छिद्रनि को डाढ़े कहे देखे अर्थ समय विचारि कै हैहयराज सहस्रार्जुन पै युद्ध करिबे को आयो हो आयो रहै अथवा जाको हैहयराज गहिलियो सो क्षुद्र छिद्रनि को डाढ़े अर्थ या समय जनकपुर में परशुराम नहीं हैं ऐसे अवसर को विचारि कै आयो रहै ताके कंठ जो तू न काटै तौ तोको कहा बड़ाई है अथवा ताके कंठन को जो तू काटै तौ तोको कहा बड़ाई है जाकी बालि आदि ऐसी दुर्दशाकरी ताको कंठ काटिबो सहज है इति भावार्थः ७ ॥

सोरठा ॥ यद्यपि है अति दीन मोहि तऊ खल मारने ॥ गुरुअपराधहि लीन केशव क्योंकरि छांड़िये ८ चन्द्रकला छंद ॥ वरबाण शिखीन अशेषसमुद्रहि सोखि सखा सुख हम तरिहौं । पुनि लंकहि औटि कलंकितकै फिर पंककलंकहिकी भरिहौं ॥ भल भूजिकै राकस खाक सकै दुख दीरघ देवन को हरिहौं । सितकंठके कंठनको कठुला दशकंठके कंठनका करिहौं ९ परशुराम-संयुताछंद ॥ यह कौनको दल देखिये । वामदेव ॥ यह राम को प्रभु लेखिये ॥ परशुराम ॥ कहि कौन राम न जानियो । वामदेव ॥ शरताड़ुका जिन मारियो १० परशुराम-विनय छंद ॥ ताड़ुकासँहारी तिय न विचारी कौन बड़ाई ताहि हने । वामदेव ॥ मारीचहु ते संग प्रबल सकलखल अरु सुबाहु काहू न गने ॥ करि क्रतु रखवारी गुरु सुखकारी गौतम की तिय शुद्ध करी । जिन रघुकुल मंड्यो हर धनु खंड्यो सीय स्वयंवर मांझ बरी ११ ॥

जो ऐसो दीन है ताको मारिबो अनुचित है ता लिये कहत हैं ८ शिखीन कहे अग्निसों सखा कुठारको सम्बोधन है सुखही कहे सहजही ९ । १०

गुरु जे विश्वामित्र हैं तिनको सुखकारी क्रतु जो यज्ञ है ताको रखवारी करिकै ११ ॥

दोहा ॥ हरहू होतो दंड द्वै धनुष चढ़ावत कष्ट ॥ देखो महिमा काल की कियो सो नरशिशु नष्ट १२ विजय छंद ॥ बोरौं सबै रघुवंश कुठार कि धारमें वारन वाजि सरत्थहि । बाण कि वायु उड़ाइकैलक्षन लक्ष करौं अरिहा समरत्थहि ॥ रामहि वाम समेत पठै वन कोपके भार में भूजौं भरत्थहि । जो धनु हाथ लियो रघुनाथ तो आजु अनाथ करौं दशरत्थहि १३ ॥

१२ सरस्वती उक्तार्थः से कहे सहित वै कहे निश्चय अर्थ निचरय करि रघुवंश के जे कुठार शत्रु हैं तिन्हैं वारन वाजि रथ सहित की कहे समुद्रादि जलाशय की धार प्रवाहमें बोरौं कं जलमस्मिन्नस्तीति की अर्थ जामें जल रहै सो की कहावै वंशपदश्लेष है बांसहू को नाम है ताकुठार पद कह्यो वारन वाजि रथ कहि या जनायो कि जामें उनको चिह्नऊ न रहै औ लक्षन कहे लाखन जे रघुवंशके शत्रु हैं तिन्हैं बाणकी वायुसों उड़ाइकै हा कहे हाइ हाइ जो शब्द है ताही में समरत्थ लक्ष कहे निशाना करौं अर्थ ऐसी बाणवृष्टि करौं जामें केवल हाइ हाइ करै और पराक्रम करिबे लायक ना रहै औ जय रामहि कहे केवल रामचन्द्रहीसों वाम कहे कुटिलतासमेति हैं अर्थ जे रामही के शत्रु हैं तिन्हैं वनको पठैदेउँ औ जे भरत्थहि वाम समेति हैं अर्थ भरतके शत्रु हैं तिन्हैं शोकके भारमें भूजौं औ जो धनुषको रघुनाथ हाथ में लियो कहे उठायो तौ आजु दशरथको अनाथ कहे जाको नाथ कोऊ नहीं अर्थ सबको नाथ करौं कहे करि मानौं तौ सबके नाथ जे विष्णु हैं तिनहीं के शम्भुधनुष तोरिबे की सामर्थ्य है ताते तेई विष्णु रामरूप ह्वै दशरथ के पुत्र भये यह निश्चयकरि दशरथ को सर्वोपरि मानौं इति भावार्थः १३ ॥

सोरठा ॥ राम देखि रघुनाथ रथते उतरे बेगिदै ॥ गहे भरतको हाथ आवत राम विलोकियो १४ परशुराम—दंडक ॥

अमल सजल घनश्यामवपु केशौदास चन्द्रहूते चारु मुख सुखमा को ग्राम है । कोमलकमलदलदीरघविलोचनानि सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है ॥ वालक विलोकियत पूरण पुरुषगुण मेरो मत मोहियत ऐसो एक याम है । वैर मानि वामदेवको धनुष तोरो इन जानतहौं वीस विसे राम-वेष काम है १५ भरत–गीतिकाछंद ॥ कुश मुद्रिका समिधैं स्रवा कुश औ कमंडलको लिये । कर मूल शर घन तर्कसी भृगुलातसी दरशै हिये ॥ धनु वाण तिक्षकुठार केशव मेखला मृगचर्म सों । रघुवीरको यह देखिये रसवीर सात्त्विकधर्मसों १६ राम–नाराचछंद ॥ प्रचंड हैहयादिराज दंडमान जानिये । अखंडकीर्ति लेयभूमि देयमान मानिये ॥ अदेव देवजे अभीत रक्षमान लेखिये । अमेय तेज भर्गभक्त भार्गवेश देखिये १७ ॥

राम परशुराम १४ पूरणपुरुष विष्णु याम पहर वामदेव महादेव १५ कुश मुद्रिका कहे पैंती समिधैं होमकी लकरी करमूल कहे कांधा में हैं शरघन घने वाणनसों पूरित तरकस जाके मेखला कटि भूषण धनुर्वाणधारणादि वीररसको धर्म है औ कुशमुद्रिकाधारणादि सात्त्विक प्राणीको धर्म है १६ प्रचंड जे हैहयादि सहस्रार्जुनादि राजा हैं तिनके दंडकर्ता हैं अर्थ सहस्रार्जुनादिकन को नाश इनहिन कियो है औ अखंड कहे पूर्ण कीर्ति के लेयमान लेवैया हैं औ अखंड भूमि के देयमान कहे देवैया हैं अखंडपद को संबंध भूमिहू में है अदेव दैत्य औ देवन के जेयमान जीतनहार हैं मानपदको संबंध लेय जेयहू में है औ भीत जे युक्त हैं तिनके रक्षमान रक्षक हैं अमेय कहे अपरिमान वड़ो इति है तेज जिनको औ भर्ग महादेव के भक्त हैं औ भार्गव जे भृगुवंशी हैं तिन के ईश हैं अर्थ भृगुवंश में ये वड़े ऐश्वर्ययुक्त हैं १७ ॥

तोमरछंद ॥ सहभरत लक्ष्मणराम । चहुँ किये आनि

प्रणाम ॥ भृगुनंद आशिषदीन । रणं होहु अजय प्रवीन १८ परशुराम ॥ सुनि रामचन्द्र कुमार । मनवचन कीर्ति उदार ॥ राम ॥ भृगुवंशके अवतंस । मनवृत्ति है क्यहि अंस १९ परशुराम–मदिराछंद ॥ तोरि शरासन शंकरको शुभ तीय स्वयंवर मांझ बरी । ताते बढ़्यो अभिमान महा मन मेरियो नेक न शंक करी ॥ राम ॥ सो अपराध परो हमसों अब क्यों सुधरै तुमहूं धों कहो । परशुराम ॥ बाहु दै दोऊ कुठार हि केशव आपने धामको पंथ गहो २० ॥

अजय कहे जाको कोऊ न जीति सकै १८ हमारे वचन सुनो औ उदारकीर्ति सुनो अथवा कीर्ति है उदार जिनकी ऐसे हमारे वचन सुनो अथवा कीर्तिउदार रामचन्द्र को संबोधन है तुम्हारो मन वृत्तिके केहि अंश कहे भागमों है अर्थ मनोभिलाप कहा है जो होइ सो कहौ १९ सरस्वती उक्तार्थः अनेक राजा जामें हारिगये ता शरासन को तोर्‍यो स्वयंवर के मध्य में सीताको बर्‍यो तासों तुम्हारे बड़ो अभिमान बढ़्यो है सो उचितही है जो एतो पराक्रम करै ताके अभिमान बढ़्योई चाहै औ सकल क्षत्रिनको नाशकर्ता जो मैं हौं ताहूकी शंका तुम ना करी तासों तुम्हारे बलको समुझि हमारे भय भयो है तासों सकल क्षत्रिन के नाशको हमारो दोष क्षमाकरि हमारे दोऊ बाहु औ हमारो कुठार आपनो करि हमको दैकै आपने घरको जाउ इनहीं करनसों याही कुठारसों क्षत्रियनको क्षय कर्‍यो है तासों तुम करिकै बाहु कुठार खंडिबे की शंका है सो तुम वचन करि हमको दैकै निर्भय करौ इति भावार्थः अथवा या कुठारको दोऊ बांह दैकै आपने धामको जाउ बांह वीर देबेकी रीति लोक में प्रसिद्ध है कुठार को बड़ो दोष है तासों दोऊ बांह देबे कह्यो २० ॥

राम–कुंडलिया ॥ टूटै टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोष । त्यों अब हरके धनुषको हमपर कीजत रोष ॥ हमपर कीजत रोष कालगति जानि न जाई । होनहार ह्वैरहै मिटै मेटे न

मिटाई ॥ होनहार ह्वैरहै मोह मद सबको छूटै । होइ तिनूका वज्र वज्र तिनुका ह्वै टूटै २१ परशुराम-विजयछंद ॥ केशव हैहयराजको मांस हलाहलकौरन खाइलियोरे । तालगि मेद महीपनको घृत घोरि दियो न सिरानो हियोरे ॥ खीर षड़ाननको मद केशव सो पलमें करि पानलियोरे । तौलौं नहीं सुख जौलहुँ तू रघुवंशको शोनु सुधान पियोरे २२ ॥

२१ हैहयराज को मांसरूपी जो हलाहल विष है मेद चरबी खीर दूध षड़ानन स्वामिकार्त्तिक या युक्तिसों आपनो सकल बलकृत सुनाय भाव दिखायो सरस्वती उक्तार्थः हे कुठार ! यद्यपि तू ऐसे क्रतु कस्यो है परंतु जबलग स्ववश जे रामचन्द्र हैं तिनको सो कहे तिनको ऐसो न कहे स्तुत्य मधुर इति सुधासरिस वचन नहीं पियो तौलौं तोको सुख नहीं है इहां सुधा जो उपमान है ताके उच्चार सों मधुरवचन उपमेय को ग्रहण कियो तू सकल क्षत्रिन को क्षय कस्यो है औ ये अतिबलवान् क्षत्रवंशमें उत्पन्न भये सो वैर समुझि तेरो नाश करिबे को समर्थ हैं ताते ये जबलौं मधुरवचन सों तेरो दोष क्षमा नहीं करत तौलौं तोको सुख नहीं है इति भावार्थः "न पुण्यान्सुगते वन्धे द्विरण्डे प्रस्तुतेऽपि चेति मेदिनी" २२ ॥

भरत-तंत्रीछंद ॥ बोलत कैसे भृगुपति सुनिये सो कहिये तनबनिआवै । आदि बड़ेहौ बड़प्पन राखौ जाते सब जग यश पावै ॥ चंदनहू में अतितन धरिये आगि उठै यह गुण सब लीजै । हैहयमारे नृपतिसँहारे सो यश लै किन युग जीजै २३ परशुराम-नाराचछंद ॥ भलीकही भरत्थ तैं उठाय आगि अंगतैं । चढ़ाउ चोपिचाप आप बाणले निषंग तैं ॥ प्रभाउ आपनो दिखाउ छोड़ि बाल भाइकै । रिझाउ राज पुत्र मोहिं राम लै छड़ाइकै २४ सोरठा ॥ लियो चाप जब हाथ तीनिहुँ भैयन रोष करि ॥ बरज्यो श्रीरघुनाथ

तुम बालक जानत कहा २५ राम–दोहा ॥ भगवंतनसों जीतिये कबहुँ न कीने शक्ति ॥ जीतिय एकै बातमें केवल कीने भक्ति २६ हरिगीतछंद ॥ जब हन्यो हैहयराज इन बिन क्षत्र क्षितिमंडल करेउ। गिरिवेध षरामुख जीति तारक नंदको जब ज्यों हरेउ ॥ सुत मैं न जायो रामसों यह कह्यो पर्वतनंदिनी। वह रेणुका तिय धन्य धरणीमें भई जग वंदिनी २७॥

सो बात कहौ जो तनसों बनिआवै अर्थ करत बनिपरै यासों या जनायो कि जो कहत हौ सो तुम का हमहूं सों करिवेको दुर्लभ है २३ भरत कह्यो है कि घसत घसत चंदनहूं में आगि उठति है तासों परशुराम कह्यो कि अंग सों आगि उठावो सरस्वती उक्तार्थः कि हमारे संग परशुराम सों रामचन्द्र लरिहैं यह जो रामचन्द्र प्रति तुम्हारो लै कहे चोप है ताको छड़ाइ कहे त्यागिकै तुम हमका आपनी कृत देखायकै रिझाउ कहे प्रसन्न करो अर्थ रामचन्द्रको भरोसो छोड़ि हमसों तुम लरौ तौ हम लरैं रामचन्द्र सों लरिवे लायक हम नहीं हैं २४ । २५ । २६ क्रौंचनाम जे गिरि हैं ताके वेधनहार जे षरामुख कहे स्वामिकार्तिक हैं तिनको जीतिकै तारकासुर को जो नंदपुत्र है ताको ज्यों हत्यो मार्यो ऐसे २ इनके कृत देखिकै पार्वती कह्यो कि ऐसो पुत्र हमारे न भयो तव रेणुका परशुरामकी माता जगवंदिनी भई औ धन्य भई ऐसे पराक्रम परशुराम के देखिकै रेणुका को सब जगवंदना करिकै कह्यो धन्य है रेणुका जाके ऐसो पुत्र भयो या प्रकार रामचन्द्र परशुराम की स्तुति कियो २७ ॥

परशुराम–तोमर छंद ॥ सुनु राम शीलसमुद्र। तव बंधुहै अतिक्षुद्र ॥ मम बाड़वानलकोप। अबकियो चाहत लोप २८ शत्रुघ्न–दोधक ॥ हौ भृगुनन्द बली जगमाहीं। राम बिदाकरिये घर जाहीं ॥ हौं तुमसों फिर युद्धहि मांड़ौं। क्षत्रियवंशको वैर लै छांड़ौं २९ तोटकछंद ॥ यह बात सुनी

भृगुनाथ जबै । कहि रामहिं लै घर जाहु अबै ॥ इनपै जग जीवत जो बचिहौं । रणहौं तुमसों फिरिकै रचिहौं ३० दोहा ॥ निजअपराधी क्यों हतौं गुरुअपराधी छाँड़ि ॥ तातें कठिन कुठार अब रामहिं सो रणमाँड़ि ३१ ॥

वड़वानलरूपी जो हमारो कोप है सो इनको लोप भस्म कियो चाहत है २८ । २९ शत्रुघ्न की यह बात सुनि भरत सों कह्यो कि तुम रामचन्द्र को लैकै घर जाहु इन पै शत्रुघ्न पै युद्धकरि जो जीवत बचिहौं तब तुम सों रण करिहौं ३० गुरु अपराधी रामचन्द्र निज अपराधी शत्रुघ्न सरस्वती उक्तार्थः निजते अपनाते हमते इति है अपराध कहे अन्य अधिक इति है धी बुद्धि जिनकी इहां बुद्धि उपलक्षणमात्र है बुद्धिपद ते बुद्धिबल विद्यादि जानो ऐसे जे रामचन्द्र हैं तिनको कैसे मारौं अर्थ इनके मारिवे को समर्थ नहीं हौं फेरि कैसे हैं ये गुरु जे शिव हैं तिनहुँन ते अपराधी कहे बल विद्यादि करि अधिक हैं जिनको शिवहू ध्यान करत हैं ताते मारिवे की आशा करि छांड़िकै हे कठिनकुठार ! रामचन्द्रहीको सोरण कहे स्तुति सों रणसों मांड़ि कहे युक्त करौ अर्थ रामचन्द्रकी स्तुति करौ जो कहौ कुठार तौ बोलत नहीं कैसै स्तुति करि है तो सब में अभिमानी देवता रहत हैं ता करिकै स्तुति करिवे को समर्थ है जैसे समुद्र को अभिमानी देवता रामचन्द्र की स्तुति करयो है औ लंका हनुमान् को रोंक्यो है ३१ ॥

परशुराम-विजयछंद ॥ भूतलके सब भूपनको मद भोजन तौ बहुभांति कियोई । मोदसों तारकनन्दको मेद पच्यावरि पान सिरायो हियोई ॥ खीर षडाननको मद केशव सो पलमें करि पान लियोई । राम तिहारेइ कंठको शोणित पानको चाहै कुठार कियोई ३२ लक्ष्मण-तोटक ॥ जिनको सुअनुग्रह वृद्धि करै । तिनको किमि निग्रह चित्त परै ॥ जिनके जग अक्षत शीश धरै । तिनको तन सक्षत कौन करै ३३ राम-मदिराछंद ॥ कण्ठकुठार यशै अवहार

कि फूलो अशोक सशोक समूरो । कै चित्रसारी चढ़ै कि चिता तन चंदन-चित्र कि पावक पूरो ॥ लोक में लोक बड़ो अपलोक सु केशवदास जो होउ सो होऊ । विप्रन के कुल को भृगुनन्दन सूरज के कुल शूर न कोऊ ॥ ३४ ॥

पछ्यावरि, सिखरनि को भेद है । खीर, दूध । सरस्वती उक्तार्थ—हे राम, तिहारे कंठ को कहे शब्द को अर्थात् मधुर वचन पानी को सो कुठार तिनहीं पियो पान करयो चाहत है, अर्थात् सुन्यो चाहत है । "कंठो गले सन्निधाने ध्वनौ मदनपादपे" इति मेदिनी ॥ ३२ ॥ जिन ब्राह्मणन की अनुग्रह कृपा सब की वृद्धि करत है, तिनको निग्रह दंड हमारे चित्त में कैसे परै कहे आवै । और जिनके शीश में जगत् अक्षत धरत हैं, अर्थात् पूजन करत है, तिनको तन सक्षत कहे खंडित को करै । यासों या जनायो कि ब्राह्मण अवध्य हैं, तासों तुमको नहीं मारत ॥ ३३ ॥ चहै अशोक सुख, चहै शोक दुःख, फूलो कहे होइ । लोक, यश; अपलोक अयश ॥ ३४ ॥

परशुराम—विशेषक छंद ॥ हाथ धरे हथियार सबै तुम सोभत हौ । मारनहारहि देखि कहा मन छोभत हौ ॥ छत्रिय के कुल ह्वै किमि बैनन दीन रचौ । कोरि करौ उपचार न कैसेहु मीच बचौ ॥ ३५ ॥ लक्ष्मण ॥ छत्रिय ह्वै गुरु लोगन के प्रतिपाल करै । भूलिहु तौ तिनके गुन औगुन जी न धरै ॥ तौ हम को गुरु-दोष नहीं अब एक रती । जो अपनी जननी तुमहीं सुखपाइ हती ॥ ३६ ॥

लक्ष्मण और रामचन्द्र के नम्र वचन सुनिकै भययुक्त जानि परशुराम कह्यो कि मारनहार जो मैं हौं ताको देखिकै कहा क्षोभत डरात हौ । सरस्वती उक्तार्थ—सबै कहे चारौ भाई तुम हाथन में हथियार धरे ऐसे शोभत हौ कि मारनहार जे यमराज हैं तिनहुँन को देखिकै कहा क्षोभत डरात हौ, अर्थ यह कि तुम यमराजहू को नहीं डरात हौ । और क्षत्रिय के कुल में ह्वै कै किमि कहे काहे दीन बैन हम सों न रचो; ब्राह्मण सों क्षत्रिय को अधीन रहिबोई उचित धर्म है । कछू भय सों तुम दीन वचन नहीं कहत । काहे ते

कि कोरि उपचार यत्न, करौ कहे करै, अर्थात् ब्रह्मादि हू की शरण में जाइ, और तुम मीचु को मारो चहौ तौ कैसे हू न बचो कहे बचै ॥ ३५ ॥ जो तुमहीं अपनी जननी माता को सुख पाइकै मारयो, तुम को कुछ गुरु-दोष ना भयो, तौ तुम्हारे मारे सों हमहूँ को रत्तिहू भरि गुरु-दोष नहीं है। जननी को वध जनाइ या जनायो कि तुम ऐसेई स्त्रीवधादि पराक्रम करयो है। अथवा गुरुदोषी जनायो ॥ ३६ ॥

परशुराम—विजय छंद ॥ लक्ष्मण के पुरिखान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई। बेष वनाइ कियो बनितान को देखत केशव ह्यो हरई ॥ क्रूर कुठार निहारि तजै फल ता को यहै जो हियो जरई। आजु ते केवल तो को महाधिक छत्रिन पै जो दया करई ॥ ३७ ॥ गीतिका छंद ॥ तव एकविंशति बेर मैं बिन छत्र की पृथिवी रची। बहु कुंड शोणित सों भरे पितृतर्पणादि क्रिया सची ॥ उबरे जे छत्रिय छुद्र भूतल सोधि सोधि सँहारिहौं। अब बाल वृद्ध न ज्वान छाड़हुँ धर्म निर्दय पारिहौं ॥ ३८ ॥

सरस्वती उक्तार्थ—लक्ष्मण के पुरिखान बड़ेन जो पुरुषार्थ कियो है, सो कह्यो नहीं परत। कहा पुरुषार्थ कस्यो? जिन वनितन को वेष बनायो, अर्थात् वनिता रच्यो, गौतम की स्त्री को पाथर सों स्त्री बनायो। जाको देखत हियो हरि जात है, अर्थात् अतिसुंदरी बनायो। तौ या जनायो कि सृष्टि करिबे को समर्थ हैं। याही विधि दशरथ भगीरथ आदि के कृत्य गंगा ल्याइवो आदि जानौ। सो हे क्रूर कुठार, तिनको निहारि कै तजै कहे छोड़ै, अर्थात् इनके समीप ते अन्यत्र जाइ। तौ ताको इनके वियोग को यहै फल है, जो हृदय जरई कहे जरत है। अर्थात् अतिसुंदर रूप जे ये हैं तिनके वियोग सों हृदय जरत है। इनके वियोग को यहै फल है। तासों जो तेरो इन को वियोग ह्वैहै, तौ तैसे हियो जरिहै। सो आज केवल कहे एक तोको महाअधिक कहे महाउत्तम है, जो क्षत्रियन के ऊपर दया करु। आजतक क्षत्रियन को वध कस्यो, त्यहि क्षत्रवर्ण में ये ऐसे रूप-गुण-बलादि-पूरित भये, तासों अब क्षत्रियवर्ण की रक्षा करिबो तोहिं

उचित है । तिन के निकट रहि, सहायता करि । क्षत्रियवर्ग तोको रक्षणीय है ॥ ३७ ॥ सची कहे करी ॥ ३८ ॥

राम–दोहा ॥ भृगुकुलकमलदिनेश सुनि जीति सकल संसार ॥ क्यों चलिहै इन शिशुन पै डारत हौ यशभार ॥ ३९ ॥ परशुराम–सोरठा ॥ राम सबंधु सँभारि छोड़त हौं शर प्राण हर ॥ देहु हथ्यारन डारि हाथ समेतनि बेगि दै ॥ ४० ॥ राम–पद्धटिका छंद ॥ सुनि सकललोकगुरु जामदग्नि । तपविशिख अशेषन की जो अग्नि ॥ सब विशिख छाँड़ि सहिहौं अखंड । हरधनुष कस्यो जिन खंड खंड ॥ ४१ ॥ परशुराम–सवैया ॥ बाण हमारेन के तनत्राण बिचारि बिचारि बिरंचि करे हैं । गोकुल ब्राह्मण नारि नपुंसक जे जग दीन-सुभाव भरे हैं ॥ राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव डरे हैं । गाधि के नंद तिहारे गुरू जिनते ऋषि बेष किये उबरे हैं ॥ ४२ ॥

सकल संसार को जीतिकै जो यश एकत्र कस्यो है, सो इनसों लरिकै हारिकै ता यश को बोझ इन बालनपै डारतहौ, इन सों कैसे चलि है । इन सों लरिहौ तौ हारि जैहौ, इति भावार्थः ॥ ३९ ॥ रामचन्द्र के सतर्क वचन सुनि परशुराम कोप करि बोले, सो अर्थ खुलो है । सरस्वती उक्तार्थ—हे हर महादेव, इनके शर करिकै मैं प्राण छोड़त हौं, अर्थात् ये बाण सों मेरे प्राण हरयो चाहत हैं, तासों बंधुसहित जो कोपयुत रामचन्द्र हैं, तिन को तुम सँभारि कहे सँभारौ । ये अब तुम्हारेई सँभारन लायक हैं । जासों ये हाथन सों समेतन कहे सबन हथ्यारन को डारि देहिं, जबलौं ये हाथ में हथ्यार धरें रहि हैं, तबलौं हमारे भय बन्यो है, तासों तुम इनको कोप शांत करि हथ्यार उतराओ । आगे महादेव आयवेऊ भये हैं ॥ ४० ॥ तप के जे अशेष विशिख बाण हैं । विशिख पद ते शाप जानौ । तिनकी अग्नि और और सब बाणन को छाँड़ौ । ते अखंड कहे निर्विघ्न सहिहौं । अर्थात् हमारे ऊपर शाप और बाण दुवौ चलाओ, हम सहि हैं ॥ ४१ ॥ सरस्वती उक्तार्थ—हे राम, तिन बाणन को तु

कहा करिहौ, अर्थात् कहा कियो चाहत हौ । अर्थ यह कि इन को प्रभाव लोप कियो चाहत हौ । तुम कैसे हौ वालकपनही में देव और अदेव तुम को डरे हैं ॥ ४२ ॥

श्रीराम–षट्पद ॥ भगन भयो हरधनुष साल तुम को अब सालै । बृथा होइ विधिसृष्टि ईस आसन ते चालै ॥ सकल लोक संहरहु शेष शिरते धर डारो । सप्त सिंधु मिलि जाहिं होहि सबही तम भारो ॥ अतिअमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुड़िजाहि बरु । भृगुनंद सँभारु कुठार मैं कियो शरासन युक्त शरु ॥ ४३ ॥ स्वागता छंद ॥ राम राम जब कोप कस्यो जू । लोकलोक भय भूरि भस्यो जू ॥ वामदेव तब आपुन आये । रामदेव दोऊ समुझाए ॥ ४४ ॥ दोहा ॥ महादेव को देखि कै दोऊ राम विशेष ॥ कीन्हो परम प्रणाम उन आशिष दियो अशेष ॥ ४५ ॥ महादेव–चतुष्पदी ॥ भृगुनंदन सुनिये मन महँ गुनिये रघुनंदन निर्दोषी । जनिये अविकारी सब सुखकारी सबही विधि संतोषी ॥ एकै तुम दोऊ और न कोऊ एकै नाम कहायो । आयुर्बल खूट्यो धनुप जो टूट्यो मैं तन मन सुख पायो ॥ ४६ ॥ महादेव पद्धटिका छंद ॥ तुम अमल अनन्त अनादि देव । नहिं बेद बखानत सकल भेव ॥ सबको समान नहिं बैर नेह । सब भक्तन कारन धरत देह ॥ ४७ ॥

जब गुरु जे विश्वामित्र हैं तिन की निंदा करयो, तब रामचन्द्र कोप करिकै बोले—ईश महादेव आसन योगासन ते चालै कहे चलैं । सबही कहे सर्वत्र, अर्थात् चौदहो लोक में ॥४३।४४।४५॥ निर्दोषी हैं, अर्थात् धनुष तूरिबे में इन को कछू दोष नहीं है । और अविकारी कहे मायाकृत विकार सों रहितहैं । यासों या जनायो कि कछू द्रोहादि सों धनुष नहीं तोरयो । संतोषी कहि या जनायो कि इनके कछू इच्छा नहीं है । दुवौ गुणन सों या जनायो कि यह ईश्वर हैं ॥ ४६ ॥ द्वै छन्द को अन्वय एक है । महादेव परशुराम सों

कहत हैं कि तुम अमल कहे माया-विकार रहित और अनंत जाको अंत नहीं है, और अनादि कहे जाको आदि नहीं। कोऊ जानत है कि कब सों हैं। ऐसे देव हौ अर्थात् परब्रह्म हौ। और तुम्हारो सब भेव कहे भेद वेद नहीं बखानि सकत। अर्थात् वेदहू नहीं जाको प्रमाण पावत। सब प्राणिन को समान हौ, काहू को स्वाभाविक बैर और स्नेह तुम्हारे नहीं है। केवल प्रह्लादादि जे भक्त हैं, तिन के हेतु देह धरि दुःख दूरि करत हौ। या सों भक्तवत्सलता जनायो। आपनपौ को पहिचानिकै कि हम और ये एकई हैं यह जानि कै। इन हाथन सों होनहार जो रावणादिवध आगिलो काज है ताको करौ। तब महादेव के वचन सों जानि कहे ये नारायण हैं यह जानिकै, नारायण को धनुष परशुराम पै रह्यो सो रामचन्द्र को दियो॥ ४७॥

अब आपनपौ पहिचानि विप्र। सब करहु आगिलो काज छिप्र॥ तब नारायण को धनुष जानि। भृगुनाथ दियो रघुनाथपानि॥ ४८॥ मोटनक छंद॥ नारायण को धनु बाण लियो। ऐंच्यो हँसि देवन मोद कियो॥ रघुनाथ कहेउ अब काहि हनो। त्रैलोक्य कँप्यो भय मानि घनो॥४९॥ दिग्देव दहे बहु बात बहे। भूकंप भये गिरिराज ढहे॥ आकाश विमान अमान छ्ये। हाहा सब ही यह शब्द रये॥ ५०॥ परशुराम—शशिवदना छंद॥ जगगुरु जान्यो। त्रिभुवन मान्यो॥ मम गति मारौ। हृदय बिचारौ॥ ५१॥

॥ ४८॥ द्वै छंद को अन्वय एक है॥ ४९। ५०॥ त्रिभुवन में मान्यो, अर्थात् जाको तीनों भुवन मानत हैं, पूजत हैं। और जगत् के गुरु जो ईश्वर हैं सो हम तुम को जान्यो, अर्थात् तुम ईश्वर हौ। ताते और सबको निर्दोष और हम को सदोष विचारि हमारी सुरपुर की गति मारो॥ ५१॥

दोहा॥ विषयी को ज्यों पुष्पशर गति को हनत अनंग॥ रामदेव त्यों हीं कियो परशुराम-गति भंग॥ ५२॥ चतुष्पदी छंद॥ सुरपुरगति भानी शासन मानी भृगुपति को सुख भारो।

आशिष रसभीने सब सुख दीने अब दशकंठहि मारो ॥ ५३ ॥ दोहा ॥ सोवत सीतानाथ के भृगु मुनि दीन्ही लात ॥ भृगुकुलपति की गति हरी मनो सुमिरि वह बात ॥५४॥ मधुभार छंद ॥ दशरथ जगाइ । संभ्रम भगाइ ॥ चले रामराइ । दुंदुभि बजाइ ॥ ५५ ॥ सवैया ॥ ताड़का तारि सुबाहु सँहारि कै गौतमनारि के पातक टारे। चाप हत्यो हर को हँसिकै सब देव अदेव हुते सब हारे ॥ सीतहि ब्याहि अभीत चल्यो गिरि-गर्व चढ़े भृगुनंद उतारे । श्रीगरुड़ध्वज को धनु लै रघुनंदन औधपुरी पगु धारे ॥ ५६ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां परशुरामसंवादवर्णनंनाम सप्तमः प्रकाशः ॥ ७ ॥

॥५२॥ सब जे देव, ऋषि आदि हैं, तिन को सुख दीने। अब दशकंठ को मारौ, ऐसी जो परशुरामकृत आशिष है, ताके रस में भीने ॥ ५३ । ५४ ॥ परशुराम के भय सों मूर्च्छा को प्राप्त जे दशरथ हैं, तिन को जगाइ कै, और परशुराम हारि कै गये, यह कहि संभ्रम भगाइकै ॥ ५५ ॥ गर्व के गिरिपर चढ़े रहे, तासों उतारयो, अथवा गर्व को गिरि सोई परशुराम पर चढ़ो रहै, सो उतारयो ॥ ५६ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानिकीजानप्रसादाय जन जानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां सप्तमः प्रकाशः ॥ ७ ॥

दोहा ॥ यह प्रकाश अष्टम कथा अवध प्रवेश बखानि ॥ सीता बरन्यो दशरथहि और बंधुजन मानि ॥ १ ॥ सुमुखी छंद ॥ सब नगरी बहु शोभरये । जहँ तहँ मंगलचार ठये ॥ बरणत हैं कविराज बने । तन मन बुद्धि विवेकसने ॥ २ ॥ मोटनक छंद ॥ ऊंची बहुबर्ण पताक लसैं । मानो पुरदीपति सी दरसैं ॥ देवीगन व्योम विमान लसे ॥ शोभैं तिन के शुभ अंचल से ॥ ३ ॥

दोहा ॥ कलभन लीने कोट पर खेलत शिशु चहुँ ओर। अमल कमल ऊपर मनो चंचरीक चित चोर ॥ ४ ॥ कलहंस छंद ॥ पुर आठ आठ दरबार बिराजैं। युत आठ आठ सेनापति राजैं ॥ रहैं चारि चारि घटिका परिमानैं। घर जाहिं और जब आवत जानैं ॥ ५ ॥

मंगलचार, वंदनवार आदि ॥ १।२।३॥ कलभ, छोटे हाथी। कमलसदृश कह्यो, तासों पद्माख्य कोट जानो। ताको भेद आगे कहि हैं॥ ४ ॥ पुर कहे अग्रभाग जे पुरी के आठ हैं, तिनमें आठ दरबार कहे सभा बिराजत हैं। अर्थात् आठ प्रकार के कोट होत हैं। यथा नरपतौ ॥ "अतिदुर्गं कालवर्सं चक्रावर्तं च डिम्बुरम्। तटावर्त्तं च पद्माख्यं यक्षभेदं च शार्वरम् ॥ कोटचक्रं प्रवक्ष्यामि विशेषादष्टधा च तत् ॥" सो जैसे एक ओर पद्माख्य कोट देख्यो, तैसे पुरी के आठ हू ओर शहरपनाह में आठ हू प्रकार के कोट बने हैं। तिन में राजा के आठ मंत्री हैं। यथा वाल्मीकीये॥ "धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थोत्यर्थसाधकः। अशोकी मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमो महान् ॥" ते मंत्री तिन कोटन में आठ हू दिशन के प्रजान संग सभा करत हैं। अर्थात् तिन में बैठि आठ हू दिशन को मामिलो करत हैं। अथवा दरबार कहे मुख्य द्वार पुरद्वार इति। अर्थात् पुरी के शहरपनाह में आठ हू दिशन में आठ द्वार बने हैं। यथा कविप्रियायाम् ॥ "नीके कै केवार दैहौं द्वार द्वार दरबार केशवदास आस-पास शूर जौन छावैगो" ॥ ५ ॥

दोहा ॥ आठौ दिशि के शील गुण भाषा बेष बिचार ॥ बाहन बसन बिलोकिये केशव एकहि बार ॥६॥ कुसुमविचित्रा छंद ॥ अतिशुभ बीथीं रज परिहरे। चंदन लीपी पुष्पनि धरे ॥ दुहुँ दिसि दीसत सुबरणमये। कलस बिराजत मणिमय नये ॥७॥ तामरस छंद ॥ घर घर घंटन के रव बाजैं। बिच बिच शंख जु झालरि साजैं॥ पटह पखाउज आउज सोहैं। मिलि सहनाइन सों मनमोहैं ॥ ८ ॥ हीरक छंद ॥ सुंदरि

सब सुंदर प्रतिमंदिर पर यों बनी । मोहन-गिरि-शृंगन पर मानहुँ महिमोहनी ॥ भूषनगनभूषित तन भूरि चितन चोरहीं । देखति जनु रेखति तनु वान नयन-कोरहीं ॥ ६ ॥ सुंदरी छंद ॥ शंकरशैल चढ़ी मन मोहति । सिद्धन की तनया जनु सोहति ॥ पद्मन ऊपर पद्मिनि मानहु । रूपन ऊपर दीपति जानहु ॥ १० ॥

॥ ६ ॥ यामें चौकीदार सेनापतिन की रीति कहत हैं कि आठौ दिशा के चौकीदारन के शील कहे स्वभाव गुण शूरता आदि और भाषा कहे बोली। चौकीसमय की चौकीदारन की बोली भिन्न है । और वेष कहे देह की उच्चता स्थूलता आदि, और विचार, और वाहन गज-अश्व-रथादि, वसन श्याम-श्वेत-पीतादि, एकहि बार कहे एकही तरह की विलोकियत हैं। जा वेषसों जा पहर की चौकी जैसे सेनापति की हैं तैसी आठ हू ओर की हैं। इति भावार्थः । अथवा जा पुरी में आठौं दिशा के शील आदि एकही बार एकही समय विलोकियत है । यासों या जनायो कि आठौ दिशा के राजा जा पुर में हाजिर रहत हैं, और आठौ दिशा के प्राणी जा पुर में वसत हैं। वीथी, गली ॥ ७ । ८ ॥ प्रति-मंदिर कहे आपने-आपने मंदिरन पर वरात को कौतुक देखिवे को सुंदरी कहे स्त्री चढ़ी हैं मोहनगिरि-सदृश कहि अति सुंदर मंदिर जनायो । जव देखती हैं तब वाणसम जे नयनकोर हैं तिन सों मानों तन को रेखती हैं कहे वेधती हैं ॥ ६ ॥ सिद्ध देव-योनि-विशेष हैं। पद्मिनी, कमलिनी । रूप, सौंदर्य । कैलास और पद्म । और रूपसम गेह हैं । सिद्धतनया, कमलिनी । दीपति सम स्त्री हैं ॥ १० ॥

कीरति श्री जयसंयुत सोहति । श्रीपति मंदिर को मन मोहति ॥ ऊपर मेरु मनो मनरोचन । स्वर्णलता जनु रोचति लोचन ॥ ११ ॥ विशेषक छंद ॥ एक लिये कर दर्पण चन्दन चित्र करे । मोहति है मन मानहु चाँदनि चन्द धरे ॥ नैन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगी । मानहु रागनि

राजति हैं अनुरागरँगी ॥ १२ ॥ नील निचोलन को पहिरे यक चित्त हरे। मेघन की द्युति मानहुं दामिनि देह धरे ॥ एकन के तन सूक्ष्म सारि जरायजरी। सूरकरावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी ॥ १३ ॥ तोटक छंद ॥ बरषैं कुसुमावलि एक घनी। शुभ शोभन कामलता सि बनी ॥ बरषैं फल फूलन लायक की। जनु हैं तरुनी रतिनायक की ॥ १४ ॥

श्री-जयसंयुत कीर्ति है। जय सम गेह है, कीर्ति सम स्त्री है। की पतिके विष्णु के मंदिर में श्री लक्ष्मी है। की मनरोचन कहे सुंदर अनेक मेरु सुमेरु पर स्वर्णलता हैं। रोचति कहे नीकी लागति हैं लोचननकी ॥ ११ ॥ मानों चन्द्रमा के मन को चाँदनी मोहति है। चन्द्रसरिस दर्पण है। चाँदनीसरिस चंदनचर्चित स्त्री हैं। नयन हैं विशाल जिनके ऐसी जे स्त्री हैं, तिनके अंबर वस्त्र लालन की शोभा जगी है। रागिनीसम स्त्री हैं, अनुराग प्रेमसम वस्त्र हैं। प्रेम को रंग अरुण है ॥ १२ ॥ मेघद्युतिसम श्याम वस्त्र हैं। दामिनी-सम स्त्री हैं। पद्मिनी कमलिनी-सम स्त्री हैं। सूर-करावलि सम जराय-जरी सारी हैं ॥ १३ ॥ फल, पूगीफलआदि ॥ १४ ॥

दोहा ॥ भीर भये गज पर चढ़े श्रीरघुनाथ बिचारि ॥ तिनहिं देखि बरनत सबै नगर नागरी नारि ॥ १५ ॥ तोटक छंद ॥ तमपुंज लियो गहि भानु मनो। गिरिअंजन ऊपर सोम भनो ॥ मनमत्थ विराजत शोभ तरे। जनु भासत लोभहि दान करे ॥ १६ ॥ मरहट्टा छंद ॥ आनंद प्रकासी सब पुरवासी करते दौरादौरि। आरती उतारैं सरबस वारैं अपनी अपनी पौरि ॥ पढ़ि मंत्र अशेषनि करि अभिषेकनि आशिष दै सविशेष। कुंकुमकर्पूरनि मृगमदचूरनि बर्षति वर्षा वेष ॥ १७ ॥ आभीर छंद ॥ यहि विधि श्रीरघुनाथ। गहे भरत को हाथ ॥ पूजत लोग अपार। गये राजदरबार ॥ १८ ॥ गये एकही बार। चारौ राजकुमार ॥ सहित बधूनि सनेह। कौशल्या

के गेह ॥ १६ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ बाजे बहु बाजैं, तारनि साजैं, सुनि सुर लाजैं, दुख भाजैं । नाचैं नव नारी, सुमन सिंगारी, गति मनुहारी, सुख साजैं ॥ बीनानि बजावैं, गीतनि गावैं, मुनिन रिझावैं, मन भावैं । भूषन पट दीजै, सब रस भीजै, देखत जीजै, छवि छावैं ॥ २० ॥ सोरठा ॥ रघुपति पूरन चंद देखि देखि सब सुख मढ़ैं ॥ दिन दूने आनंद ता दिन ते तेहि पुर बढ़ैं ॥२१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीराम-
चन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां रामस्यायोध्या-
नगरप्रवेशोनामाष्टमः प्रकाशः ॥ ८ ॥

ताही क्षण गजपर चढ़े राम ऐसे शोभित भये कि तमपुंज मानो भानु सूर्य को गहि लियो । अथवा तमपुंज ही को मानो भानु गहि लियो । जानो लोभहि तरे करे दान भासत है । तरे पद को संबंध याहू में है । और कहूँ यह पाठ है कि जनु राजत काम सिंगार तरे । तौ शृंगार तरे जाके ऐसो मानो काम राजत है । भानु, चन्द्रमा, शोभा और दान सम रामचन्द्र हैं । तमपुंज, अंजनगिरि, मन्मथ और लोभ सम गज है ॥ १५ । १६ । १७ । १८ । १९ ॥ तार कहे उच्च स्वर को साजत हैं ॥ "तारो निर्मलमौक्तिके । मुक्ताशुद्धावुच्चनादे, इति अभिधानचिन्तामणिः" ॥ रस कहे प्रेम में भीजे जे सब पुरवासी हैं तिन करिकै भूषण पट दीजै कहे दीजियत है, अर्थात् प्रेम सों युक्त सब भूषण पट दान करत हैं ॥ २० । २१ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-
निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामष्टमः प्रकाशः ॥ ८ ॥

दोहा ॥ यह प्रकाश नव में कथा रामगवन वन जानि ॥ जनकनंदिनी को सुकृत वर्णन रूप बखानि ॥ १ ॥ रामचन्द्र लक्ष्मण सहित घर राखे दशरत्थ ॥ विदा कियो ननसार को सँग शत्रुघ्न भरत्थ ॥ २ ॥ तोटक छंद ॥ दशरत्थ महामन मोद रये । तिन बोलि वशिष्ठहि मंत्र लये ॥ दिन एक कहो शुभ शोभ-

रयो । हम चाहत रामहिं राज दयो ॥ ३ ॥ यह बात भरत्थ कि मात सुनी । पठऊँ वन रामहि बुद्धि गुनी ॥ तेहि मंदिर में नृप सों बिनयो । बरु देहु हतो हम को जु दयो ॥ ४॥ नृप बात कही हँसि हेरि हियो । वर माँगु सुलोचनि मैं जु दियो ॥ केकयी–नृप तासु विशेषि भरत्थ लहैं । बरषैं बन चौदह राम रहैं ॥ ५ ॥

॥ १ । २ ॥ शोभरयो राजा को विशेषण है ॥ ३ । ४ । ५ ॥

पद्धटिका छंद ॥ यह बात लगी उर वज्रतूल । हिय फाट्यो ज्यों जीरन दुकूल ॥ उठि चले बिपिन कहँ सुनत राम । तजि तात मात तिय बन्धु धाम ॥ ६ ॥ हरिलीला छंद ॥ छूटे सबै सबनि के सुख क्षुतिपपास । विद्वद्विनोद गुण गीत विधान वास ॥ ब्रह्मादि अन्त्यजन अंत अनंत लोग । भूले अशेष सविशेषनि राग भोग ॥ ७ ॥ मौक्तिकदाम छंद ॥ गये तहँ राम जहाँ निजमात । कही यह बात कि हौं बन जात ॥ कछू जनि जो दुख पावहु माइ । सु देहु अशीष मिलौं फिरि आइ ॥ ८ ॥ कौशल्या–रहौ चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु । न देखि सकैं तिन के उर दाहु ॥ लगी अब बाप तुम्हारेहि बाइ । करैं उलटी विधि क्यों कहि जाइ ॥ ९ ॥ राम–ब्रह्मरूपक छंद ॥ अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्राण जात । राज बाप मोल लै करै जु दीह पोषि गात ॥ दास होइ पुत्र होइ शिष्य होइ कोइ माइ । शासना न मानई तौ कोटि जन्म नर्क जाइ ॥ १० ॥

जीर्ण कहे पुरानी । तजि चले पद ते इहाँ मानसिक त्याग जानो ॥६॥ क्षुत् कहे क्षुधा । विद्वद्विनोद कहे शास्त्रार्थ । गुण शास्त्र, विद्यादि । गीत-विधान, गाइबो । वास, घर । अथवा वस्त्र । ब्रह्महि आदि दै और अंत्यज जे चांडाल हैं तिन पर्यंत जे अनंत लोग हैं, तिन को अशेष राग प्रेम और भोग । सविशेष

भूले अर्थात् अत्यंत भूले । यद्यपि राम-वन-गमन सों ब्रह्मादि देवन को रावणवधादि हितकार्य है है, परंतु अवसर विलोकि तिनहू को दुःख भयो ॥ ७।८।९ ॥ अन्नदाता, सिखदाता, कहूँ प्राण जात होइँ ता भय सों जो रक्षक, राजा, बाप, जो मोल लै कै पोषि कै गात दीह कहे बड़ो करै, अर्थात् जो मोल लै पालन करै, ई जे छः हैं, तिनके दास, पुत्र, शिष्य, और कोई कहे और कोऊ होइ, अर्थात् अन्नग्राहक, प्राणरक्षित, और प्रजा जे छः हैं ते आज्ञा को न मानैं तौ कोटि जन्म तक नरक जाइँ । यासों या जनायो कि एक तो राजा हैं, दूसरे पिता हैं, तासों विशेषि कै आज्ञा मानि हमको वन जैबो उचित है ॥ १० ॥

कौशल्या–हरनी छंद ॥ मोहिं चलौ बन संग लियें । पुत्र तुम्हें हम देखि जियें ॥ औधपुरी महँ गाज परै । कै अब राज भरत्थ करै ॥ ११ ॥ राम–तोमर छंद ॥ तुम क्यों चलो बन आजु । जिन शीश राजत राजु ॥ जिय जानिये पतिदेव । करि सर्व भाँतिन सेव ॥ १२ ॥ पति देइ जो अति दुःख । मन मानि लीजै सुःख ॥ सब जक्क जानि अमित्र । पति जानि केवल मित्र ॥ १३ ॥ अमृतगति छंद ॥ नित प्रति पन्थहि चलिये । दुख सुख को दलु दलिये ॥ तन मन सेवहु पति को । तब लहिये शुभ गति को ॥ १४ ॥ स्वागता छंद ॥ योग याग व्रत आदि जु कीजै । न्हान गान गन दान जु दीजै ॥ धर्म कर्म सब निष्फल देवा । होहिं एक फल कै पतिसेवा ॥ १५ ॥

॥ ११ ॥ तुम क्यों चलौ वन इत्यादि दश छंदन में पातिव्रत धर्म सुनाइ रामचन्द्र माता को बोध करत हैं । राजु कहे राजा दशरथ अथवा राज्य । त्रिन करिकै केवल पतिही को देव जानिये कहे जानो चाहिये ॥ १२ । १३ ॥ पतिही त्रिन करिकै नित्यप्रति पंथ कहे सुराह, शास्त्रोक्त पतिव्रतन की रीति इति, तामें चलिये । या प्रकार सुख और दुःख के दल कहे समूह को दलिये कहे विताइये । और तन और मनसों केवल पतिही को सेवहु कहे सेवन करिये, तब शुभगति को पाइये । कछु सुख दुःख परै तामें स्त्री को पतिही की सेवा

करिवो उचित है, और उपाय करिवो उचित नहीं है, इति भावार्थः॥१४॥ देव कहे देवता, अर्थात् देवपूजा॥ १५॥

तात मात जन सोदर जानो। देवर जेठ सगे सु बखानो॥ पुत्र पुत्रसुत श्री छवि छाई। है बिहीन भरता दुखदाई॥ १६॥ कुंडलिया॥ नारी तजै न आपनो सपने हू भरतार। पंगु गुंग बौरा बधिर अन्ध अनाथ अपार॥ अन्ध अनाथ अपार बृद्ध बावन अति रोगी। बालक पंडु कुरूप सदा कुबचन जड़ जोगी॥ कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी। अधम अभागी कुटिल कुपति पति तजै न नारी॥ १७॥ पंकजवाटिका छंद॥ नारि तजै न मरे भरतारहि। ता सँग सहित धनंजय झारहि॥ जो केहूँ करतार जिआवत। तौ ता को यह बात सुनावत॥ १८॥ निशिपालिका छंद॥ गान बिन मान बिन हास बिन जीवही। तप्त नहिं खाइ जल शीतल न पीवही॥ तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवही। शीत जल न्हाइ नहिं उष्ण जल जोवही॥ १९॥

पुत्रसुत, पौत्र॥ १६॥ पंडु, पिंडरोगी। योगी, विरक्त। भीरु, कादर। कुपति, निर्लज्ज, अथवा नपुंसक॥ १७॥ धनंजय कहे अग्नि की झार सहति है, अर्थात् सती होति है। जो काहू प्रकार कर्तार जिआवै, अर्थात् पति के संग ना जर्‌यो जाइ, तौ तिन स्त्रिन के लिये यह बात है, सो हम तुम को सुनावत हैं। सो गान बिन इत्यादि द्वै छंद मों आगे कहत हैं॥ १८॥ द्वै छंद को अन्वय एक है। जल शीतल न पीवही, अर्थात् सीरो करिकै जल न पीवै, जैसो होइ तैसो पीवै। शीत जल में न्हाइ कहि या जनायो कि गरम जल करि स्नान न करै, जा समय जैसो पावै तैसे में स्नान करै। काय मन वाच सब धर्म करिबो करै, अर्थात् ये जे सब धर्म हैं तिनको मनसा वाचा कर्मणा करै। अथवा और जे सब धर्म दानादि हैं तिनहुँन को करै। कृच्छ्र उपवास, कृच्छ्र चान्द्रायणादि सों। जबलौं तनको अतीतै कहे छोड़ै, अर्थात् मरै, तबलौं पुत्र की

सिख में लीन रहैं, पुत्र की आज्ञा मों रहै। यामें त्रिकालदर्शी जे रामचन्द्र हैं तिन अपने वियोग सों पिता को मरण निश्चय करि पतिव्रत को धर्म सुनाय माता को बोध करि युक्ति सों विधवा स्त्री को उचित धर्म सिखायो ॥ १९॥

खायँ मधुरान्न नहिं पायँ पनही धरैं। काय-मन-वाच सब धर्म करिबो करैं ॥ कृच्छ्र उपवास सब इन्द्रियनि जीतहीं। पुत्र-सिखलीन तन जौ लगि अतीतहीं ॥ २० ॥ दोहा ॥ पति हित पितु पर तन तज्यो सती साखि दै देव ॥ लोकलोक पूजित भई तुलसी पति की सेव ॥ २१ ॥ मनसा वाचा कर्मणा हम सों छाड़ो नेहु ॥ राजा को विपदा परी तुम तिन की सुधि लेहु ॥ २२ ॥ पद्धटिका छंद ॥ उठि रामचन्द्र लक्ष्मण समेत। तब गये जनक-तनया-निकेत ॥ सुनु राजपुत्रि के एक बात। हम वन पठये हैं नृपति तात ॥ २३ ॥ तुम जननि सेवकहँ रहहु वाम। कै जाहु आजु ही जनक धाम ॥ सुनि चन्द्रवदनि गजगमनि एनि। मन रुचै सो कीजे जलजनैनि ॥ २४ ॥ सीता—नाराच छंद ॥ न हों रहौं न जाहुँ जू विदेहधाम को अवै। कही जु बात मात पै सु आजु मैं सुनी सबै ॥ लगै छुधाहि मा भली विपत्ति माँझ नारिये। पियास-त्रास नीर वीर युद्ध में सम्हारिये ॥ २५ ॥

॥ २० ॥ सती की और तुलसी की कथा प्रसिद्ध है ॥ २१। २२। २३ ॥ जननि, कौशल्या। ऐनि कहे हे सुंदरि ! ॥ २४ ॥ स्त्री को पतिही की सेवा उचित है, यह बात जो माता सों तुम कह्यो है, सो हम सब सुन्यो है। यासों या जनायो कि तुम्हारी सेवा छाँड़ि हम कैसे घर में रहैं। क्षुधा में माता भली लागति है। पोषण करिबो मुख्यधर्म माता को है, तासों। यथा कवि-प्रियायाम्—"माता जिमि पोषति पिता जिमि प्रतिपाल करै"। और विपत्ति में नारियै कहे स्त्री ही भली लागति है, जो अनेक प्रकार सों सुश्रूषा करि मन को बहरावति है, और पियास की त्रासके समय नीर भलो लागतहै। और युद्ध

में वीर जो योधा हैं तिनको सँभारिये, यहै भलो लागत है। अर्थात् अनेक वीरन को सँभारिबो एकत्र करिबो अथवा सावधान करिबोई भलो लागत है। यह कहि या जनायो कि यह तुम्हारो विपत्ति को समय है, तासों तुम्हारे संग हमको चलिबो विशेष है॥ २५॥

लक्ष्मण–सुप्रिया छंद॥ वन महँ विकट विविध दुख सुनिये। गिरिगह्वर मग अगम कि गुनिये॥ कहुँ अहि हरि कहुँ निशिचर चरहीं। कहुँ दवदहन दुसह दुख दहहीं॥ २६॥ सीता–दंडक॥ केशौदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास दुख को निवास विष मुख में गह्यो परै। वायु को वहन दिन दावा को दहन वड़ी वाड़वा-अनल-ज्वाल-जाल में रह्यो परै॥ जीरन जनम जात जोर जुर घोर परिपूरन प्रकट परिताप क्यों कह्यो परै। सहिहौं तपन ताप पति के प्रताप रघुवीर को विरह वीर मोसों न सह्यो परै॥ २७॥

दवदहन कहे दावाग्नि॥ २६॥ दुःख को निवास जो विष है सो मुख में गह्यो परत है, अर्थात् विष खायो जात है। जीर्ण कहे जर्जर, अर्थात् थोड़ी है मर्यादा जाकी ऐसो जो जन्म है, सो जातु कहे जाउ, अर्थात् यह कि मृत्यु होय और घोर जो ज्वर है और परिपूर्ण कहे दैहिक दैविक भौतिक तीनों प्रकार की जो परिताप है, कैसी परिताप कि क्यों कह्यो परै, अर्थात् जो काहू विधि सों नहीं कह्यो जात, अति वड़ो इति। ये सब पति के प्रताप सों सहि हौं जो पर के प्रताप पाठ होय, तौ पर जे शत्रु हैं, तिनके प्रताप सहिहौं, अर्थात् शत्रु-कृत दुःख सहिहौं॥ २७॥

राम–विशेषक छंद॥ धाम रहौ तुम लक्ष्मण राज कि सेव करौ। मातनि के सुनि तात सु दीरघ दुःख हरौ॥ आइ भरत्थ कहा धौं करैं जिय भाय गुनौ। जो दुख देइँ तौ लै उरगौ यह बात सुनौ॥ २८॥ लक्ष्मण–दोहा॥ शासन मेटी जाय क्यों जीवन मेरे हाथ॥ ऐसी कैसे बूझिये घर सेवक

वन नाथ ॥ २९ ॥ द्रुतविलंबित छंद ॥ विपिन मारग राम विराजहीं । सुखद सुंदरि सोदर भ्राजहीं ॥ विविध श्रीफल सिद्धि मनो फल्यो । सकल साधन सिद्धि हि लै चल्यो ॥ ३० ॥ दोहा ॥ राम चलत सब पुर चल्यो जहँ तहँ सहित उछाह ॥ मनो भगीरथ-पथ चल्यो भागीरथी-प्रवाह ॥ ३१ ॥ चंचला छंद ॥ रामचन्द्र धाम ते चले सुने जबै नृपाल । बात को कहै सुनै सो ह्वै गये महाबिहाल ॥ ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यों मिल्यो विलोकि जाइ । गेह चूरि ज्यों चकोर चन्द्रमै मिलै उड़ाइ ॥ ३२ ॥

उरगौं कहे बितायो । अथवा हे भाई, जो भरत तुम को दुःख देहिं तौ लै कहे अंगीकार करिकै उर में गुनौ, अर्थात् समय पाय ताको फल देबे के लिये समुझि राखौ । गौ यह बात सुनौ, अर्थात् गौकी जो यह बात है सो सुनो ॥ २८ ॥ यामें या जनायो कि जो मैं इहाँ रहिबोऊ करौं तौ जीव तुम्हारे संग जैहै ॥ २९ ॥ विपिन कहे वन, भ्राजहीं कहे शोभहीं । विविध कहे अनेक प्रकार की श्रीफल कहे शोभा फलकी जो सिद्धि कहे वृद्धि है ॥ "सिद्धिः स्त्री योगनिष्पत्तिपादुकान्तर्द्धिवृद्धिषु, इति मेदिनी" ॥ तासों फल्यो जो सिद्धि है । सिद्ध इति शेषः । सकल साधन कहे ध्यानादि । और सकल सिद्धिहि कहे अणिमादिकन को लैकै चल्यो है । तौ जप योग ते बड़ी शोभा को प्राप्त सिद्धरूप रामचन्द्र हैं । सकल साधकरूप लक्ष्मण हैं । अष्टसिद्धिरूप सीता हैं । और कहूँ सिद्धि मनो फल्यो पाठ है । सो अर्थ खुल्यो है ॥ ३० ॥ उछाह जो आनंद है, तेहि ते सब पुर चल्यो कहे सब पुरवासी चले । तौ या जानो कि पुरी को उछाह हू राम ही के साथ चलो गयो ॥ ३१ ॥ गेह कहे पिंजरा ॥ ३२ ॥

चित्रपदा छंद ॥ रूपहि देखत मोहैं । ईश कहौ नर को हैं ॥ संभ्रम चित्त अरूझैं । रामहिं यों सब बूझैं ॥ ३३ ॥ चंचरी छंद ॥ कौन हौ कित ते चले कित जात हौ केहि कामजू । कौन की दुहिता बहू कहि कौन की यह वामजू ॥ एक गाउँ रहौ कि साजन मित्र बंधु बखानिये । देश के परदेश के किधौं पंथ की

पहिचानिये ॥ ३४ ॥ जगमोहन दण्डक ॥ किधौं यह राजपुत्री बरहीं बस्यो है किधौं उपधि बस्यो है यहि शोभा अभिरत हौ। किधौं रति रतिनाथ यश साथ केशोदास जात तपोबन शिव बैर सुमिरत हौ ॥ किधौं मुनिशापहत किधौं ब्रह्मदोषरत किधौं सिद्धियुत सिद्ध परम बिरत हौ। किधौं कोऊ ठग हौ ठगोरी लीन्हे किधौं तुम हरि हर श्री हौ शिवा चाहत फिरत हौ ॥ ३५ ॥

सब मग के प्राणी तिहुँन की सुन्दरता देखि कै मोहत हैं। सो मन में कहत हैं कि हे ईश, हे भगवन्, ये को हैं ? या प्रकार संभ्रम में सबके चित्त अरुझत हैं। तब राम ही सों या प्रकार सब बूझैं कहे पूछत हैं। सो आगे कहत हैं ॥ ३३ ॥ वहू, पुत्र-वधू। साजन कहे स्वामी ॥ ३४ ॥ यह जो स्त्री है सो राजपुत्री है, ताको बरहीं कहे जबरई सों बरयो है कहे विवाह्यो है। अथवा यह जो राजपुत्री है तेहीं माता पिता की आज्ञा मेटि कै अपनी इच्छा सों तुमको जबरई बरयो है। अथवा तुम याको उपधि कहे छल सों बरयो है ? "कपटोऽस्त्रीव्याजदम्भोपधयः छद्मकैतवे इत्यमरः ॥" ऐसी शोभा सों अभिरत कहे युक्त हौ। काहेते कि जो तुमको तपस्वी जानि राजा अपनी इच्छा सों विवाहि देतो, तौ तुम्हारे आश्रमपर्यंत आपने लोग संग करि देतो, सो नहीं है, तासों यह जानि परत है कि ताही राजा के भय सों वन को भागे जात हौ, इति भावार्थः। यश, संसार जीत्यो है— ताको। यशरूप लक्ष्मण हैं। शिवजी नयन की आगि सों जारयो, ता बैर को सुमिरत शिव के तपोवन को शिव से लरिबे को जात हौ ? अथवा शिव के वैर को सुमिरत हौ, तासों तपोवन में तप करिबे को जात हौ। जासों बड़ो तप करि तपोबल सों शिव को जीतै को। सिद्धि, तप-सिद्धि, अथवा मुक्ति, तासों युक्त तुम परम विरत सिद्ध हौ। परम विरत कहि या जनायो कि संसार सों अतिविरक्त है अति बड़ो तप करयो है। यासों देह धरि सिद्धि तुम्हारे संग संग फिरति हैं। "सिद्धिस्तु मोक्षे निष्पत्तियोगयोरित्यभिधानचिन्तामणिः ॥" कै हरि और हर और श्री लक्ष्मी हौ ? शिवा जो पार्वती हैं, तिन्हैं चाहत कहे ढूँढ़त फिरत हौ ॥ ३५ ॥

मत्तमातंगलीलाकरन दण्डक ॥ मेघ मन्दाकिनी चारु

सौदामिनी रूप रूरे लसैं देहधारी मनो। भूरि भागीरथी भारती हंसजा अंश के हैं मनो भाग भारे भनो॥ देवराजा लिये देवराती मनो पुत्रसंयुक्त भूलोक में सोहिये। पक्ष दू सन्धि सन्ध्या सधी है मनो लक्षिये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही मोहिये॥ ३६॥

मेघ और मन्दाकिनी आकाशगंगा और सौदामिनी कहे बिजुरी, ये तीनों देहधारी मानो रूरे कहे सुन्दर रूप कहे वेष सों लसत हैं। अथवा रूरे कहे विमल जो रूपसौंदर्य है, तेहि करि कै देहधारी लसैं कहे शोभित हैं। यासों या जनायो कि मेघादिक तीनों जब सुन्दरता सों मिलि कै रूप धरैं, तब रामादिकन के रूप-सम होइँ। फिर किधौं मानो भागीरथी गंगा और भारती सरस्वती और हंसजा जो यमुना हैं तिनके जे भूरि कहे सम्पूर्ण अंश कहे भाग, तिनहिन के भारे भाग कहे भाग्य भनो कहे कहियत है। अर्थात् भागीरथी भारती हंसजा के अंशन के बड़े भाग हैं, जिन ऐसे सुन्दर रूप पाये हैं। भागीरथी के पूर्णांशावताररूप लक्ष्मण हैं, भारती के पूर्णांशावताररूप सीता हैं, यमुना के पूर्णांशावताररूप रामचन्द्र हैं। देवराज को पुत्र जयन्त। और कैधौं दू कहे दूनों शुक्ल और कृष्णपक्ष, तिन की सन्धि में स्वच्छ सन्ध्या सधी है स्थित है। जाको प्रत्यक्ष ही लक्षिये कहे देखियत है। और शोभा सों मोहियत है। कृष्णपक्षरूप राम हैं, शुक्लपक्षरूप लक्ष्मण हैं, सन्ध्यारूप सीता हैं। अथवा दूनों जे पक्ष हैं तिन में सन्धि कहे मध्य है, तौ शुक्लादि-गणना सों दुवौ पक्षन को मध्य पूर्णिमा है, तौ सन्धिपद ते पूर्णिमा जानो। याहू में पूर्णिमारूप सीता हैं, दुवौ पक्षरूप राम-लक्ष्मण हैं। अथवा की तीनों सन्ध्या परस्पर सधी हैं। अर्थ यह कि एकत्र हैं। प्रातः-सन्ध्या रक्त है, मध्याह्न-सन्ध्या शुक्ल है, सायं-संध्या श्याम है। यथा साम-सन्ध्यायाम्—"पूर्वसन्ध्या तु गायत्री रक्तांगी रक्तवाससा॥ मध्याह्ने तु या सन्ध्या श्वेतांगी श्वेतवाससा॥ १॥ अपराह्णे तु या सन्ध्या कृष्णांगी कृष्णवाससा॥" कतहूँ 'संग सन्ध्या सधी' या पाठ है। तौ दुवौ पक्षन के संग कहे साथ सन्ध्या सधी है सो जानो॥ ३६॥

अनंगशेखर दंडक॥ तड़ाग नीरहीन ते सनीर होत केशौदास पुण्डरीककुण्ड भौंरमण्डली न मण्डहीं। तमालबल्लरी

समेत सूखि सूखि कै रहे ते बाग फूलि फूलि कै समूल शूल खण्डहीं ॥ चितै चकोरनी चकोर मोर मोरनीसमेत हंस हंसिनीसमेत सारिका सबै पढ़ैं। जहीं जहीं बिराम लेत राम जू तहीं तहीं अनेक भाँति के अनेक भोग भाग सों बढ़ैं॥३७॥

पुण्डरीक, कमल। भाग सों कहे भाग्य सों। अथवा द्विगुण-चतुर्गुणादि भाग कहे हिस्सा सों॥ ३७॥

सुन्दरी छन्द॥ घाम को रामसमीप महाबल। सीतहि लागत है अतिशीतल॥ ज्यों घनसंयुत दामिनि के तन। होत हैं पूषन के कर भूषन॥ ३८॥ मारग की रज तापित है अति। केशव सीतहि शीतल लागति॥ प्यो-पद-पङ्कज ऊपर पाँयनि। दै जो चलै तेहि ते सुखदायनि॥ ३९॥ दोहा॥ प्रतिपुर औ प्रतिग्राम की प्रतिनगरन की नारि॥सीता जू को देखि कै बरनत हैं सुखकारि॥ ४०॥ जगमोहन दण्डक॥ वा सों मृगअङ्क कहैं तो सों मृगनैनी सब वह सुधाधर तुहूँ सुधाधर मानिये। वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजैं वह कलानिधि तुहूँ कलाकलित बखानिये॥ रत्नाकर के हैं दोऊ केशव प्रकाशकर अंबरविलास कुबलयहित मानिये। वाके अति-शीत कर तुहूँ सीता शीतकर चन्द्रमा सी चन्द्रमुखी सब जग जानिये॥ ४१॥

घाम को जो महाबल कहे अति तेज है, सो रामके समीप में सीता को अति शीतल लागत है। जैसे घन जे मेघ हैं तिन ते युक्त जो दामिनी बिजुरी है, ताके तन में पूषण जे सूर्य हैं तिनके कर किरण भूषण होत हैं। सूर्य की किरणें मेघन में परती हैं, तब इन्द्रधनुष होत है, सोई दामिनी को भूषण-सम है॥ ३८॥ हेतु यह कि पृथ्वी की सीता पुत्री हैं, रामचन्द्र जामाता हैं, तासों पृथ्वी की रज तिनको सुख दियोई चहै। तामें युक्ति यह कि पङ्कज पर पाँउ धारिकै चलै तौ शीतलई लागत है॥३९॥४०॥ या प्रकार कोऊ स्त्री सीता सों कहत हैं कि वह जो चन्द्रमा है जाको मृगअङ्क

सब कहत हैं, मृगा जो शशा है सो है अङ्क में गोद में मध्य में जाके। अथवा मृग को अङ्क कहे चिह्न है जाके। और तोहूँ को मृगनयनी कहत हैं। वह सुधाधर है, सुधा अमृत को धरे है। और तुहूँ सुधाधर है, सुधासम हैं अधर ओष्ठ जाके। वह द्विजराज कहावत है, और तेरे द्विज जे दन्त हैं तिनकी राजि कहे पंगति राजति है। वह षोड़श कलान को निधि है, और तुहूँ अनेक जे नेत्र-विक्षेपादि कला हैं, अथवा चौंसठि कला, तिनसों कलित है। वह रत्नाकर जो समुद्र है ताको प्रकाशकर कहे बढ़ावनहार है, पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा के उदय सों समुद्र बाढ़त है—यह प्रसिद्ध है, और तू भूषणन के रत्नन को जो आकर समूह है, ताको प्रकाश शोभा करति है। अर्थात् तेरी छवि सों भूषणन के रत्न शोभा पावत हैं। चन्द्र को अम्बर आकाश में विलास है, सीता को अम्बर वस्त्र में। और चन्द्रमा कुवलय को हित है, और सीता कुवलय कहे पृथ्वीमण्डल को हित कहे अतिप्रिय लागति है। अर्थ यह कि सौंदर्यादिक गुण सो तामें ऐसे हैं, जासों सब को प्रिय हैं। और वाके चन्द्रमा के अतिशीत हैं कर कहे किरण, और हे सीता, तुहूँ शीतकर है, जो तोको देखत है ताके लोचन शीतल होत हैं। तौ जौन जौन चिह्न गुण चन्द्रमा में हैं, ते तोहूँ में हैं। याते हे चन्द्रमुखी, सब जग करि कै तोको चन्द्रमा-सम जानियत है। अर्थ यह कि सब जग तोको चन्द्रमासम जानत है॥ ४१॥

अन्यच्च॥ कलित कलङ्क-केतु केतुअरि सेतु गात भोग-योग को अयोग रोग ही को थल सो। पून्योई को पूरन पै प्रतिदिन दूनो दूनो क्षणक्षण क्षीण होत छीलर के जल सो। चन्द्र सो जो बरणत रामचन्द्र की दोहाई सोई मतिमन्द कवि केशव कुशल सो। सुन्दर सुवास अरु कोमल अमल अति सीता जू को मुख सखि केवल कमल सो॥ ४२॥

दूसरी स्त्री ताको मत खण्डि कै आपनो मत कहति है कि कलङ्क की जो केतु कहे पताका है, अर्थात् पताका-सम जाको कलङ्क प्रसिद्ध है। और केतु को अरि शत्रु, राहु-केतु एकइ के खण्ड हैं। तासों अक्षर-मैत्री के लिये केतु कह्यो। और स्त्री आदि के जे भोग हैं तिन कों जो योग संयोग है ताको

अयोग अयोग्य अथवा असमर्थ है। गुरुशाप सों क्षयरोगयुक्त है। क्षण क्षण क्षीण होत जो छीलर कहे दोना अथवा अञ्जलि को जल है, ता सम प्रतिदिन दूनो क्षीण होत है ॥ ४२ ॥

अन्यच्च ॥ एक कहैं अमल कमल मुख सीता जू को एक कहैं चन्दसम आनँद को कन्द री। होइ जो कमल तौ रयनि में न सकुचै री चन्द जो तौ बासर न होइ द्युति मन्द री॥ बासर ही कमल रजनि ही में चन्द मुख बासर हू रजनि बिराजै जग-वन्द री। देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चन्द तातें मुख मुखै सखी कमलै न चन्द री ॥ ४३ ॥ दोहा ॥ सीता-नयन-चकोर सखि रविवंशी रघुनाथ॥ रामचन्द सिय कमलमुख भलो बन्यो है साथ ॥ ४४ ॥ विजय छन्द ॥ बहु बाग तड़ाग तरंगनि तीर तमाल कि छाँह बिलोकि भली। घटिका यक बैठत हैं सुख पाय बिछाय तहाँ कुशकाशथली ॥ मग को श्रम श्रीपति दूरि करैं सिय को शुभ बाकलअंचल सों। श्रम तेऊ हरैं तिन को कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सों ॥ ४५ ॥ सोरठा ॥ श्रीरघुवर के इष्ट अश्रुबलित सीता नयन ॥ साँची करी अदृष्ट झूठी उपमा मीन की ॥ ४६ ॥

तीसरी स्त्री दुवौ को मत खण्डि आपनो कहति है कि कमल चन्द्र के देखे हू पर मुख भावत है, और कमल चन्द्र-मुख के अनदेखे ही भावत है, जब या मुख को देख्यो तब कमल चन्द्र के देखिबे की इच्छा नहीं होति। जब उत्तम वस्तु देखो, तब अनुत्तम वस्तु देखे अच्छी नहीं लागति है ॥४३॥ सूर्य को और चकोर को, और चन्द्र को और कमल को स्वाभाविक विरोध है। सो इहाँ भलो कहे अद्भुत साथ बन्यो है ॥ ४४ ॥ दृगञ्चल, दृगकोर ॥ ४५ ॥ श्रीरघुवर के इष्ट कहे प्रिय अश्रु आनन्दाश्रु करि कै वलित युक्त जे सीता के नयन हैं तिन मीनकी जो झूठी उपमा अदृष्ट रही है, ताको साँची करी। अर्थात् मीन जल में रहत हैं, नयन जल में नहीं रहत।

सकता नें यह भेद रच्यो है, सो आनन्दाश्रु-जल में बूड़ि कै सीता के नयन नाँची करी ॥ ४६ ॥

दोहा ॥ मारग यों रघुनाथ जू दुख सुख सब ही देत ।
चित्रकूट पर्वत गये सोदर-सिया-समेत ॥ ४७ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणि श्रीराम-
चन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां रामस्य चित्र-
कूटगमनन्नाम नवमः प्रकाशः ॥ ९ ॥

दर्शन सों सुख देत, वियोग सों दुःख देत ॥ ४७ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकी-
प्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां नवमः प्रकाशः ॥ ९ ॥

दोहा ॥ यह प्रकाश दश में कथा आवन भरत सुनाम ॥
राजमरण अरु तासु को बसिबो नन्दिग्राम ॥ १ ॥ दोधक छन्द ॥
आनी भरतपुरी अवलोकी । स्थावर जंगम जीव सशोकी ॥
भाट नहीं बिरदावलि साजैं ॥ कुंजर गाजैं दुन्दुभि बाजैं ॥ २ ॥
राजसभा न विलोकिय कोऊ । शोक गहे तब सोदर दोऊ ॥
मन्दिर मातु विलोकि अकेली । ज्यों बिन वृक्ष विराजत बेली ॥
३ ॥ तोटक छन्द ॥ तब दीरघ देखि प्रणाम कियो । उठिकै उन
कण्ठ लगाइ लियो ॥ न पियो जल संभ्रम भूलि रहे । तब मातु
सों बात भरत्थ कहे ॥ ४ ॥

नाम कहे प्रसिद्ध ॥ १ ॥ २ ॥ राजसभा में कोऊ न देख्यो, तब शोक को गहे; और माता के मन्दिर में जाइ कै माता को अकेली देख्यो, तब शोक गहे ॥ ३ ॥ ४ ॥

विजया छन्द ॥ मातु कहाँ नृप तात गये; सुरलोकहिं; क्यों,
सुत-शोक लये । सुत कौन, सु राम; कहाँ हैं अबै, बन लक्ष्मण
सीय समेत गये ॥ बन काज कहा कहि, केवल मो सुख, तो को

कहा सुख यामें भये । तुम को प्रभुता, धिक तोको कहा अप-राध बिना सिगरेई हये ॥ ५ ॥ दोहा ॥ भर्त्तासुतविद्वेषिणी सब ही को दुखदाइ ॥ यह कहि देखे भरत तब कौशल्या के पाँइ ॥ ६ ॥ तोटकछन्द ॥ तब पाँयन जाय भरत्थ परे। उन भेंटि उठाइ के अङ्क भरे ॥ शिर सूँघि विलोकि वलाइ लई । सुत तो बिन या बिप-रीत भई ॥ ७ ॥ भरत—तारक छन्द ॥ सुनु मात भई यह बात अनैसी । जु करी सुतभर्तृ बिनाशिनि जैसी ॥ यह बात भई अब जानत जाके । द्विजदोप परै सिगरे शिर ताके ॥ ८ ॥ जिन के रघुनाथ विरोध बसै जू । मठधारिन के तिन पाप ग्रसै जू ॥ रस राम रस्यो मन नाहिंन जाको । रण में नित होइ पराजय ताको ॥ ९ ॥ कौशल्या ॥ जनि सौंह करौ तुम पुत्र सयाने । अति साधुचरित्र तुम्हैं हम जाने ॥ सबको सब काल सदा सुखदाई । जिय जानति हौं सुत ज्यों रघुराई ॥ १० ॥ चंचरी छन्द ॥ हाइ हाइ जहाँ तहाँ सब ह्वै रही सिगरी पुरी ॥ धाम-धामनि सुन्दरी प्रकटीं सबै जे हुतीं दुरी ॥ लै गये नृपनाथ को सब लोग श्रीसरयू-तटी । राजपत्नि समेत पुत्रनि विप्रलाप गढ़ी रटी ॥ ११ ॥

॥ ५ ॥ ६ ॥ छोटे को शिर सूँघिबो बड़ेन की प्रीति-रीति है । रोग बलाइ लीबो स्त्रीन को प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ ८ ॥ शिव आदि देवन के मठ की जे पूजा लेत हैं ते मठधारी कहावत हैं । रस कहे प्रेम । "शृङ्गारादौ विषे वीर्ये द्रवे रागे गुणे रसः इत्यमरः ।" रस्यौ, भीज्यौ, युक्त इति ॥ ९ ॥ १० ॥ विप्रलाप जे हैं अनर्थ-वचन, अथवा कैकेयी प्रति विरोध-वचन, तिनकी गढ़ी कहे समूह रढ़ी कहत भये कि कैकेइ ही के करत ऐसो विघ्न भयो, तासों याको मुख देखिबो उचित नहीं है, इत्यादि वचन सब कहत हैं । "विप्रलापो विरोधोक्तावनर्थकवचस्यपि इति अभिधानचिन्तामणिः" ॥ ११ ॥

सोमराजी छन्द ॥ करी अग्निअर्चा । मिटी प्रेतचर्चा ॥

सबै राजधानी । भई दीनबानी ॥ १२ ॥ कुमारललिता छन्द ॥ क्रिया भरत कीनी । वियोगरसभीनी ॥ सजी गति नवीनी । मुकुन्द-पद-लीनी ॥ १३ ॥ तोटक छन्द ॥ पहिरे बकला सु जटा धरि कै । निज पाँयनि पन्थ चले अरि कै ॥ तरि गंग गये गुह संग लिये । चित्रकूट बिलोकत छाँड़ि दिये ॥ १४ ॥

जब भरत अग्नि सों अर्चा पूजा करी; अर्थात् चिता में अग्नि दियो; तब प्रेतचर्चा मिटी; अर्थात् सब अयोध्यावासी परस्पर अनेक प्रेतवार्ता करत रहे; ताको छाँड़ि दीन बाणी भये; अर्थात् करुण स्वर करिकै रोये । मरण समय में और दाह-भूमि में लै जात में और दाह होत में अधिक-अधिकतर वियोग मानि रोइबे की रीति प्रसिद्ध है । अथवा अग्नि करी कहे चिता में अग्नि दियो; तबते अशुद्धि सों अर्चा कहे देवपूजा मिटी; और प्रेतचर्चा भई इति शेषः ॥ १२ ॥ क्रिया षोडशी आदि भरत नीकी करत भये । ताके बादि मुकुन्द रामचन्द्र के वियोगरस में भीनी नवीनी गति कहे दशा बल्कल-वसनादि सजी; और मुकुन्द-पद-लीनी कहे ज्ञान-बुद्धि इति; सजी अर्थात् पिता की क्रिया पूर्ण करि रामचन्द्र के चरणन में मन लगायो । गतिपद श्लेष है । एक पक्ष में दशा जानौ; दूसरे पक्ष में बुद्धि जानौ । "गतिः स्त्री मार्गदशयोर्ज्ञाने यात्राभ्युपाययोरिति मेदिनी" ॥ १३ ॥ अरि कै कहे हठ करिकै; गङ्गा उतरि कै गुह को संग लियो । ज्ञातिसमूह सूधी मार्ग बताइबे के लिये गये; जब चित्रकूट देख्यो तब तिन्हैं छाँड़ि दियो ॥ १४ ॥

मदनमोदक छन्द ॥ सब सारस हंस भये खग खेचर बारिद ज्यों बहु बारन गाजे । बन के नर बानर किन्नर बालक लै मृग ज्यों मृगनायक भाजे ॥ तजि सिद्ध समाधिन केशव दीरघ दौरि दरीन में आसन साजे । भूतल भूधर हाले अचानक आइ भरत्थ के दुन्दुभि बाजे ॥ १५ ॥ दोहा ॥ रामचन्द्र लक्ष्मण-सहित शोभित सीता संग । केशवदास सहास उठि चढ़े धरणिधरशृंग ॥ १६ ॥ लक्ष्मण-मोहन छन्द ॥ देखहु भरत चमू सजि आये । जानि अबल हम को उठि धाये ॥ हँसत हय

बहु बारण गाजे। जहँ तहँ दीरघ दुन्दुभि बाजे ॥ १७॥ तारक छन्द ॥ गजराजनि ऊपर पाखर सोहैं। अतिसुन्दर शीश शिरो मन मोहैं॥ मनिघूँघुर घंटन के रव बाजैं। तड़ितायुत मानहुँ वारिद गाजैं॥ १८॥ विजय छन्द ॥ युद्ध को आजु भरत्थ चढ़े धुनि दुन्दुभि की दशहूँ दिशि धाई। प्रात चली चतुरंग चमू बरणी सो न केशव कैसेहुँ जाई॥ यों सबके तनत्राननि में झलकी अरुणोदय की अरुणाई। अन्तर ते जनु रञ्जन को रजपूतन की रज ऊपर आई॥ १९॥

सारस हंस तथा और जे खग पक्षी हैं, ते खेचर कहे आकाशगामी भये। जैसे मृगनायक सिंह जौन ग्रीवादि अङ्ग पकरि पायो सोई अङ्ग गहि मृग को लै भाग्यो, ताही प्रकार अतिभय सों आपने आपने बालकन को लै किन्नरादि भागे॥ १५॥ किन्नरादि की या दशा देखि हास्यपूर्वक कारण देखिबे को धरणिधर के शृङ्ग में चढ़े॥ १६॥ हँसित, बोलत॥ १७॥ पाखर, झूल॥ १८॥ रंजन को क्षत्रधर्म में रञ्जित करिबे को मानौ रजपूतन की रज, रजोगुण रजपूती इति ऊपर कढ़ि आये हैं॥ १९॥

तोटक छन्द ॥ उठि कै धर धूरि अकास चली। बहु चञ्चल वाजि-खुरीन दली॥ भुव हालति जानि अकास हिये। जनु थंभित ठौरनिठौर किये॥ २०॥ तारक छन्द ॥ रण राजकुमार अरूझहिं गे जू। अति संमुख घायनि जूझहिं गे जू॥ जनु ठौरनि ठौरनि भूमि नवीने। तिनके चढ़िबे कहँ मारग कीने॥ २१॥ सीता-तोटक छन्द ॥ रहि पूरि बिमाननि व्योमथली। तिनको जनु टारन धूरि चली॥ परिपूरि अकासहि धूरि रही। सु गयो मिटि सूरप्रकास सही॥ २२॥ दोहा॥ अपने कुल को कलह क्यों देखहिं रवि भगवंत॥ यहै जानि अंतर कियो मानो मही अनंत॥ २३॥ तोटक छन्द॥ बहु ता महँ दीह पताक लसै। जनु धूम में अग्नि की ज्वाल बसै॥

रसना किधौं काल कराल घनी। किधौं मीचु नचै चहुँ ओर बनी ॥ २४ ॥ दोहा ॥ देखि भरत की चल ध्वजा धूरिन में सुख देत ॥ जुद्ध जुरन को मनहुँ प्रति योधन बोले लेत ॥२५॥ लक्ष्मण–दण्डक छंद ॥ मारि डारौं अनुज समेत यहि खेत आजु मेटि परौं दीरघ बचन निज गुर को। सीतानाथ सीता साथ बैठे देखि छत्रतर यहि सुख सोखौं सोक सब ही के उर को ॥ केशौदास सबिलास बीस बिसे बास होइ केकई के अंग अंग सोक पुत्र-जुर को। रघुराज जू को साज सकल छड़ाइ लेउँ भरतहि आज राज देउँ जमपुर को ॥ २६ ॥

सैन्य के भय सों अथवा चाल सों हालत जानि कै। थंभित कहे थाँभे खम्भा इति॥ २०॥ सम्मुख घाव जूझि कै वीर स्वर्ग को जात हैं, सो मानो राजकुमारन के स्वर्ग जाइवे को भूमि मार्ग कहे राह कीन्हे है ॥ २१॥ विमान आकाशगामी रथ। "व्योमयानं विमानोऽस्त्रीत्यमरः"॥२२॥ मही जो पृथ्वी है तेहि अनन्त कहे अनेक अन्तर कियो, अनेक धूरि के तुंग उठत हैं तेई अन्तर व्यवधान हैं। अथवा अनन्त लक्ष्मण को सम्बोधन है ॥२३॥ रसना, जिह्वा ॥ २४ ॥ २५ ॥ पुत्रजुर कहे पुत्रमरण। चौबीसयें प्रकाश में कह्यो है कि " जरा जब आवै ज्वरा की सहेली, " तहाँ ज्वरा शब्द मृत्यु को वाची है। रघुराजजू को साज, अर्थात् गजरथादि राजसाज राज्य रामचन्द्र को है; जा को लै ता के सब साज भरत सजे हैं। तिन्हैं छँड़ाइ रामचन्द्र में साजि कै राज्य में बैठारियें। इत्यर्थः॥ २६ ॥

दोहा ॥ एक राज में प्रकट जहँ द्वै प्रभु केशवदास ॥ तहाँ बसत है रैनदिन मूरतिवंत बिनास॥२७॥ कुसुमविचित्रा छन्द॥ तब सब सेना वहि थल राखी। मुनिजन लीन्हे सँग अभिलाखी ॥ रघुपति के चरणन शिर नाये। उन हँसि कै गहि कण्ठ लगाये ॥ २८ ॥ भरत–दोधक छन्द ॥ मातु सबै मिलिबे कहँ आई। ज्यों सुत की सुरभी सु लवाई ॥ लक्ष्मण सह उठि कै रघुराई। पाँयन जाय परे दोउ भाई ॥ २९ ॥ मातनि कण्ठ

उठाय लगाये। प्रान मनो मृत देहनि पाये॥ आइ मिलीं तब सीय सभागीं। देवर सासुन के पग लागीं॥ ३०॥

पिता ने भरत को राजा कियो है, ता सों भरत को राज्यपद भ्रष्ट होइ, तौ पिता को वचन निःफल होइ, या हेतु भरत को यमपुर को राज्य देउँ, जामें रामचन्द्र सुचित्त ह्वै अयोध्या में राज्य करैं, इति भावार्थः॥ २७॥ अभिलाषी जे मुनिजन हैं। अथवा मुनिजन संग लीन्हे, और और जे राम-दर्शन के अभिलाषी हैं तिन्हैं लीन्हे। रामचन्द्र के हँसिबे को हेतु लक्ष्मण के वचन हैं॥ २८॥ थोरे दिन की बियानी गाय लवाय कहावति है॥ २९॥ भरत के वचन सुनि कै, भरत-शत्रुघ्न को सीता के पास राखि लक्ष्मण मातन के मिलिबे को आयें। ताके पीछे सीता जो सभागी हैं, सोऊ देवर जे भरत-शत्रुघ्न हैं, तिन सहित सासुन को आइ मिलीं, प्राप्त भईं, और सासुन के पग लागीं॥ ३०॥

तोमर छन्द॥ तब पूछियो रघुराइ। सुख हैं पिता तन माइ॥ तब पुत्र को मुख जोइ। क्रम ते उठीं सब रोइ॥ ३१॥ दोधक छन्द॥ आँसुन सों सब पर्वत धोये। जंगम को जड़ जीवन रोये॥ सिद्धबधू सिगरी सुनि आईं। राजबधू सबईं समुझाईं॥ ३२॥ मोहन छन्द॥ धरि चित्त धीर। गये गङ्ग-तीर॥ शुचि ह्वै शरीर। पितृ तर्पि नीर॥ ३३॥ भरत—तारक छन्द॥ घर को चलिये अब श्रीरघुराई। जन हौं तुम राज सदा सुख-दाई॥ यह बात कही जल सों गल भीन्यो। उठि सोदर पाँइ परे तब तीन्यो॥ ३४॥ श्रीराम—दोधक छन्द॥ राज दियो हमको बन रूरो। राज दियो तुमको अब पूरो॥ सो हमहूँ तुमहूँ मिलि कीजै। बाप को बोलु न नेकहु छीजै॥ ३५॥ दोहा॥ राजा को अरु बाप को बचन न मेटै कोइ॥ जो न मानिये भरत तौ मारे को फल होइ॥ ३६॥ भरत—स्वागता छन्द॥ मद्यपान-रत स्त्रीजित होई। सन्निपातयुत बातुल जोई॥ देखि देखि तिनको सब भागै। तासु बात हति पाप न लागै॥ ३७॥

रामवनगमन, दशरथमरण, भरतागमनादि कथा क्रम सों कहत सब रोवत भई ॥ ३१ ॥ सिद्ध, तपस्वी, अथवा देवयोनि-विशेष ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तीनों पाँयन परे कि घर को चलिवो उचित है॥३४॥ खरो, सुन्दर ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ स्त्रीजित कहे जो स्त्री करिकै जीतो गयो है, अर्थात् स्त्री के वश है। और वातुल, पागल अथवा बहुत बातैं कहै ॥ ३७॥

ईश ईश जगदीश बखान्यो। बेदवाक्यबल ते पहिचान्यो॥ ताहि मेटि हठि कै रहिहौं तौ। गंगतीर तन को तजिहौं तौ ॥ ३८ ॥ दोहा ॥ मौन गही यह बात कहि छोड़्यो सबै बिकल्प ॥ भरत जाइ भागीरथी तीर कस्यो संकल्प ॥ ३९ ॥ इन्द्रवज्रा छन्द ॥ भागीरथी रूप अनूपकारी। चन्द्राननी लोचनकञ्जधारी ॥ बानी बखानी मुख तत्त्व शोध्यो। रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यो ॥ ४० ॥ उपेंद्रवज्रा छन्द ॥ अनेक ब्रह्मादि न अन्त पायो। अनेकधा वेदन गीत गायो ॥ तिन्हैं न रामानुज बंधु जानौ। सुनो सुधी केवल ब्रह्म मानौ ॥४१॥ निजेच्छया भूतल देहधारी। अधर्मसंहारक धर्मचारी ॥ चले दशग्रीवहि मारिबे को। तपी ब्रती केवल पारि बे को ॥ ४२ ॥ उठो हठी होहु न काज कीजै। कहैं कछू राम सु मानि लीजै॥ अदोष तेरी सुत मातु सो है। सो कौन माया इनकी न मोहै ॥ ४३ ॥

ईश जे विष्णु हैं, और ईश जे महादेव हैं, और जगदीश जे ब्रह्मा हैं, तिन यह बात बखान्यो है कि स्त्रीजित आदिकन के वचन मेटे सों पातक नहीं होत सो हम वेदवाक्य-बल सों पहिचान्यो है, अर्थात् वेद में तीनिहू देव के ऐसे वचन हैं, ते हम सुन्यो है। अथवा तीनिहू देवन बखान्यो और वेदवाक्य-बल हू सों पहिचान्यो, अर्थात् वेद हू यहै कहत हैं ॥३८॥ विकल्प, विचार। भागीरथी, मन्दाकिनी ॥ ३९ ॥ तत्त्व कहे सारांश। शोध्यो कहे ढूँढ़्यो। ता सारांश-युक्त मुख सों वाणी बखानी। अथवा ऐसी वाणी बखानी, जामें तत्त्व जो रामकथा-तत्त्व है, ता करि कै

अपने मुख को शोध्यो शुद्ध कर्‍यो । रामानुज जे लक्ष्मण हैं, तिनको प्रबोध कहे उत्तम ज्ञान आनि कहे ल्याइ कै बोध्यो बोध कर्‍यो । बोध्यो पद कहि या जनायो कि रामचन्द्र-प्रति बन्धु-बुद्धिरूपी निशा में सोवत रहैं, तामें जगायो ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ सुत भरत को सम्बोधन है । यासों या जनायो कि इनकी माया में मोहिकै तुम्हारी मातैं इनको वनगमन चाह्यो ॥ ४३ ॥

दोहा ॥ यह कहि कै भागीरथी केशव भई अदृष्ट ॥ भरत कह्यो तब राम सों देहु पादुका इष्ट ॥ ४४ ॥ उपेन्द्रबज्रा छन्द ॥ चले बली पावन पादुका लै । प्रदक्षिणा राम सियाहु को दै ॥ गये ते नंदीपुर बास कीनो । सुबंधु श्रीरामहिं चित्त दीनो ॥ ४५ ॥ दोहा ॥ केशव भरतहिं आदि दै सकल नगर के लोग ॥ बन समान घर घर बसे सकल बिगतसंभोग ॥ ४६ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणि श्रीरामचन्द्र-
चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां भरतस्य चित्र-
कूटागमनंनाम दशमः प्रकाशः ॥ १० ॥

पादुकारूपी इष्ट कहे स्वामी देहु । आशय यह कि राज्य पर स्वामी चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादायजनजानकी-
प्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां दशमः प्रकाशः ॥ १० ॥

दोहा ॥ एकादसे प्रकास में पंचबटी को बास ॥ सूपनखा के रूप को रघुपति करिहैं नास ॥ १ ॥ रथोद्धता छन्द ॥ चित्र-कूट तब राम जू तज्यो । जाइ यज्ञथल अत्रि को भज्यो ॥ राम लक्ष्मण-समेत देखियो । आपनो सफल जन्म लेखियो ॥ २ ॥

॥ १ ॥ भज्यो कहे प्राप्त भये ॥ २ ॥

चन्द्रबर्त्म छन्द ॥ स्नान दान तप जाप जु करियो । शोधि शोधि मन जो उर धरियो ॥ योग याग हम जा लगि गहियो ।

रामचन्द्र सबको फल लहियो ॥ ३ ॥ वंशस्था छन्द ॥ अनेकधा पूजन अत्रि जू कस्यो। कृपालु ह्वै श्रीरघुनाथ जू धस्यो ॥ पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ। सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ ॥ ४ ॥ दोहा ॥ पतिव्रतन की देवता अनसूया शुभगाथ। सीताजू अवलोकियो जरा सखी के साथ ॥ ५ ॥ चतुष्पदी छन्द ॥ शिर श्वेत विराजैं कीरति राजैं जनु केशव तपबल की। तन वलित पलित जनु सकल वासना निकरि गई थल-थल की ॥ काँपति शुभ ग्रीवा सब अँग सीवा देखत चित्त भुलाहीं। जनु अपने मन प्रति यह उपदेशति या जग में कछु नाहीं ॥ ६ ॥ प्रमिताक्षरा छन्द ॥ हरवाइ जाइ सिय पायँ परी। ऋषिनारि सूँघि शिर गोद धरी ॥ बहु अंगराग अँग अंग रये। बहुभाँति ताहि उपदेश दये ॥ ७ ॥ स्रग्विणी छन्द ॥ राम आगे चले मध्य सीता चली। बंधु पाछे भये सोभ सोभै भली ॥ देखि देही सबै कोटिधा के मनो। जीव जीवेश के बीच माया मनो ॥ ८ ॥

मन को शोधि शोधि शुद्ध करि करि। जो उर विषे धस्यो है, अर्थात् तुम्हारो ध्यान कस्यो है। अथवा मन ही को शुद्ध करिकै जो उर में धारण कस्यो; अर्थात् मन की जो चञ्चलता है, ताहि छोड़ाइ अपने वश कस्यो है। सो हे रामचन्द्र, ताको सबको फल जो तुम्हारो दर्शन है ताको पायो ॥ ३ ॥ ४ ॥ जरा कहे वुढ़ाईरूपी जो सखी है ताके साथ देख्यो ॥ ५ ॥ तन वलित कहे युक्त है पलित कहे ढिलाई सों। अर्थात् वृद्धता सों त्वचा में सिकुरा परि गये हैं। सो मानों थल-थल की अंग-अंग की वासना विषय-वासना निकसि गई है; ताही ते अंग सिकुरि गये हैं। सीवा, मर्यादा ॥ ६ ॥ हरवाइ कहे हरबराइ कै ॥ ७ ॥ मनो, कह्यो। जीवेश, ईश्वर ॥ ८ ॥

मालती छन्द ॥ विपिन विराध बलिष्ठ देखियो। नृपतनया भयभीत लेखियो ॥ तब रघुनाथ बाण कै हयो। निज-

निर्वाणपंथ को ठयो ॥ ९ ॥ दोहा ॥ रघुनायक सायक धरे स-कल लोक शिर मौर ॥ गये कृपा करि भक्तिबश ऋषि अग-स्त्य के ठौर ॥ १० ॥ बसन्ततिलका छन्द ॥ श्रीराम लक्ष्मण अगस्त्य सनारि देख्यो। स्वाहा समेत शुभ पावकरूप लेख्यो॥ साष्टांग छिप्र अभिबन्दन जाइ कीन्हो। सानन्द आशिष अ-शेष ऋषीश दीन्हो ॥ ११ ॥ बैठारि आसन सबै अभिलाष पूजे। सीतासमेत रघुनाथ सबन्धु पूजे ॥ जाके निमित्त हम यज्ञ यज्यो सु पायो। ब्रह्माण्डमण्डन-स्वरूप जु बेद गायो॥ १२॥

निर्वाण जो मोक्ष है ताके पन्थ कहे राह में ठयो कहे युक्त कस्यो, अर्थात् मुक्ति दियो ॥ ९ ॥ सकललोक-शिरमौर जे रघुनाथ हैं ते सायक जे वाण हैं तिन को धरे अगस्त्य के ठौर में गये। अथवा रघुनायक भक्ति के वश कृपा करिके अगस्त्य के ठौर गये, तहाँ सकल लोक-शिरमौर जे अपने सायक हैं, तिन्हें धरे धारण कस्यो। विष्णु के धनुर्बाण अगस्त्य के इहाँ धरे रहे हैं, ते रामचन्द्र को अगस्त्य दियो है, यह कथा वाल्मीकीय रामायण में है। अथवा सकललोक-शिरमौर जो विष्णु हैं, तिनके सायक धरे धारण कस्यो। अथवा रघुनायक के सकललोक-शिरमौर सायक अ-गस्त्य के ठौर धरे हैं, ता लिये, और भक्तिवश कृपा करि अगस्त्य के ठौर गये ॥ १० ॥ स्वाहा, अग्नि की स्त्री ॥ ११ ॥ सबै आपने अभिलाष पूजे पूर्ण करे। ब्रह्माण्ड को मण्डन भूषण जो यह रावरो स्वरूप है, ताही के मिलिवे के लिये हम यज्ञ यज्यो, होम्यो, करयो इति, सो यह स्वरूप पायो ॥ १२ ॥

पद्धटिका छन्द ॥ ब्रह्मादि देव जब बिनय कीन। तट छीर-सिन्धु के परम दीन ॥ तुम कह्यो देव अवतरहु जाइ। सुत हौं दशरथ को होत आइ ॥ १३ ॥ हम तब ते मन आनन्द मानि। मन चितवत तव आगमन जानि ॥ ह्याँ रहिजै करिजै देव-काज। मम फूलि फल्यो तपबृक्ष आज ॥ १४ ॥ श्रीराम—पृथ्वी छन्द ॥ अगस्त्य ऋषिराज जू बचन एक मेरो सुनौ

प्रशस्त सब भाँति भूतल सुदेश जी में गुनौ ॥ स-नीर तरु-खण्डमण्डित समृद्ध शोभा धरैं । तहाँ हम निवास को विमल पर्णशाला करैं ॥ १५ ॥ अगस्त्य—पद्मावती छन्द ॥ जद्यपि जगकर्त्ता पालकहर्त्ता परिपूरन वेदन गाये । अति तदपि कृपा करि मानुष वपु धरि थल पूछन हमसों आये ॥ सुनि सुर-वरनायक राच्छसघायक रच्छहु मुनिजन यश लीजै । शुभगोदा-वरितट बिशद पंचवट पर्णकुटी तहँ प्रभु कीजै ॥ १६ ॥ दोहा ॥ केशव कहे अगस्त्य के पंचवटी के तीर ॥ प्रर्णकुटी पावन करी रामचन्द्र रनधीर ॥ १७ ॥ त्रिभंगी छन्द ॥ फल फूलन पूरे तरु-वर रूरे कोकिलकुल कलरव बोलैं । अति मत्त मयूरी पियरस-पूरी बन बन प्रति नाचति डोलैं ॥ सारो सुक पण्डित गुनगन-मण्डित भावनि में निज अरथ बखानैं । देखहु रघुनायक सीय सहायक मनहुँ मदन रति मधु जानैं ॥ १८ ॥

॥ १३ ॥ तव कहे तुम्हारो ॥ १४ ॥ प्रशस्त, नीको । सुदेश, सम, उचनीचरहित इति । सनीर, सजल । तरु जे वृक्ष हैं, तिनको जो खण्ड समूह है, तासों मण्डित युक्त । समृद्ध कहे वर्द्धमान अधिक इति । शोभा को धरैं, धारण करे होइँ । निवास को कहे बसिबे को ॥ १५॥१६॥१७॥ रामचन्द्र के आगमन सों दण्डकारण्य में रूरे कहे सुन्दर जे तरु वृक्ष हैं, ते फल और फूलन सों पूरे युक्त भये । अथवा रूरे जे फल और फूल हैं, तिन सों तरुवर पूरे । और कोकिल के जे कुल जाति-समूह हैं, ते कल कहे अव्यक्त मधुर रव शब्द को बोलत हैं । "काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वनौ तु मधुरास्फुटे । कलो मन्द्रस्तु गंभीरे तारोत्युच्चैस्त्रयस्त्रिषु ।" इत्यमरः ॥ और अतिमत्त जे मयूरी हैं, ते पिय जे मयूर हैं तिनके रस में प्रेम में पूरी बन-बन प्रति नाचत डोलती हैं । अर्थात् जहाँ जहाँ मोर नाचत हैं, तहाँ तहाँ संग मयूरी डोलति हैं । सारो सारिका, और शुक जे गुणगण सों मण्डित पण्डित प्रवीण हैं, अर्थात् अनेक गुणन में पण्डित हैं, ते भावनि में कहे अनेक भाव अभिप्राय सों युक्त गान के अर्थ को बखानत हैं । अथवा नृत्य

के जे अनेक भाव चेष्टा हैं, तिन में अर्थ को बखानत हैं, जब जैसी चेष्टा देखत हैं, तब तैसे अर्थ के प्रयोजन को बखान करत हैं। ता में तर्क करत हैं कि रघुनायक रामचन्द्र और सीता और सहायक जे लक्ष्मण हैं, तिन को इन वृक्षादिकन देख्यो है। सो मानों मदन काम और रति सहित मधु वसन्त जानत हैं। तौ वसन्तहू के आगमन में ये कौतुक होत हैं। तासों उत्प्रेक्षा करी। युक्ति यह कि वसन्त वन को प्रभु है, सो प्रभु की अवाई में अनेक वितान बिछावने नृत्यादि की रचना सब करत हैं। सो रतिसहित मदन जो मित्र है, तासों युक्त वसन्त को आवत देखि वन कर्‌यो। प्रफुल्लित जे अनेक कुञ्ज हैं, तेई वस्त्र-भवन और वितान हैं। और गिरे जे पुष्प हैं तेई पुष्प-बिछावने हैं। कोकिल गावत हैं, मोर नाचत हैं, सारिका शुक बखान करत हैं। वेश्यादि नृत्यकारिन हू में बखान करिबेवारो एक रहत है॥ १८॥

लक्ष्मण—सवैया॥ सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहँ एक घटी। निघटी रुचि मीच घटी हु घटी जग जीव जतीन की छूटी तटी॥ अघ-ओघ की बेरी कटी विकटी निकटी प्रगटी गुरु-ज्ञान-गटी। चहुँ ओरन नाचति मुक्ति-नटी गुन धूर-जटी वन पंचवटी॥ १९॥

दुपटी है पाट को ओढ़िबे को वस्त्र, सो जहाँ जा पंचवटी के निकट सब फाटिजात है, नेकहू नहीं रहत। अर्थात् सब दुःख जहाँ नसि जात हैं। और कपटी जीव जहाँ एक घड़ी नहीं रहत। या सों या जनायो कि जहाँ जात ही कपटी को कपट दूरि होत है। और जा की शोभा निरखि जग के जे यती तपस्वी जीव हैं, तिन की तटी कहे ध्यान-स्थिति सो छुटी। और मीच की रुचि घटी हू घटी कहे घरी घरी में निघटी घटत भई। अर्थात् यती जीवन को मरे ते मुक्ति होति है, परन्तु जा स्थान की शोभा निरखि मुक्ति हू की इच्छा नहीं करत। अघ, पाप। ओघ, समूह। बेरी, बन्धन, जंजीर। सो ऐसी जो पंचवटी है, सो धूर्जटी जो महादेव हैं, तिन के गुणन सों जटी कहे युक्त है। येई दुःखनाशनादि गुण महादेव हू में हैं। अथवा ये जे दुःखनाशनादि गुण हैं तिन सों, और धूर्जटी जे महादेव हैं तिनसों, जटी कहे युक्त है पंचवटी॥ १९॥

हाकलिका छन्द। शोभित दण्डक की रुचि बनी। भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी॥ सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरि भाव जहँ बसै॥ २०॥ बेर भयानक सी अति लगै। अर्कसमूह जहाँ जगमगै॥ नैनन को बहुरूपन ग्रसै। श्रीहरि की जनु मूरति लसै॥ २१॥

दण्डक नाम के राजा रहे हैं, तिन को राज्य शुक्र के शाप सों वन है गयो है, ता सों दण्डकारण्य कहावत है। रुचि, शोभा। श्रीफल, बेल, और लक्ष्मी को फल। बड़े राजा की सेवा में बहुत द्रव्य पाइयत है॥ २०॥ भयानक बेर, प्रलयकाल। अर्क, मदार और सूर्य। प्रलयकाल हू में बारहौ आदित्य उवत हैं। नैनन को अनेक रूप करि ग्रसत हैं। या सों या जनायो कि क्षण क्षण में अधिक-अधिक नवीन शोभा धरत हैं। ऐसी विष्णु की मूर्त्ति हू है, ता सों समता करयो। सुन्दरता को याही प्रकार वर्णन है। यथा माघकाव्ये—"दृष्टोऽपि शैलः समुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान॥ क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः"॥ २१॥

राम—दोधक छन्द॥ पांडव की प्रतिमा-सम लेखो। अर्जुन भीम महामति देखो॥ है सुभगा-सम दीपति पूरी। सिंदुर को तिलकावलि रूरी॥ २२॥ राजति है यह ज्यों कुलकन्या। धाइ बिराजति है सँग धन्या॥ केलिथली जनु श्रीगिरिजा की। शोभ धरे शितिकण्ठ-प्रभा की॥ २३॥ मनहरण छन्द॥ अति निकट गोदावरी पापसंहारिणी। चल-तरङ्ग-तुङ्गावली-चारु-संचारिणी॥ अलि-कमल-सौगंध-लीला-मनोहारिणी। बहुनयन देवेश शोभा मनो धारिणी॥ २४॥

प्रतिमा, चित्र। अर्जुन, ककुभ-वृक्ष और पांडुपुत्र। "अर्जुनः ककुभे पार्थे इति मेदिनी"॥ भीम, अम्लवेतसवृक्ष और भीमसेन। "भीमो वृकोदरे घोरे शंकरेप्यम्लवेतसे, इत्यभिधानचिंतामणिः"॥ जो कहौ रामावतार प्रथम भयो है, अर्जुनादि कृष्णावतार के समय में रहे हैं, यह पूर्वापर-विरोध है, तौ सब कल्पन में दसौ अवतार होत हैं, अनेक रामावतार कृष्णावतार भये हैं,

ता सों दोष नहीं है। यथा तुलसीकृत रामायण में- "कल्प कल्प प्रति प्रभुअवतारा" ॥ सुभगा, सौभाग्यवती स्त्री, सधवा इति। ता के सम शोभा पूरी है दण्डक की रुची। सिंदुरक जो है वृक्ष-विशेष, और तिलक-वृक्ष तिन करि कै रूरी सुन्दर है। "सिन्दूरस्तरुभेदेस्यादितिमेदिनी" ॥ "तिलको द्रुमरोगाश्वभेदे च तिलकालके इति मेदिनी" ॥ दूसरे पक्ष में सुभगा-सिंदुरक जो सेंदुर हैं, ता के तिलक की अवली करि कै रूरी है। अथवा सिंदुरक करि कै, और और जे सुवर्ण मणि आदि के तिलक हैं, तिन की अवली करिकै रूरी सुन्दर है ॥ २२ ॥ कुलकन्या पद ते बड़े की कन्या जानो। धाइ वृक्ष-विशेष, और उपमाता जो दूध पियावति है। गिरिजा, पार्वती। शितकण्ठ, मयूर और महादेव ॥ २३ ॥ जा पर्णकुटी के अति निकट पापसंहारिणी गोदावरी नाम नदी है। फेरि कैसी है गोदावरी, चल चञ्चल जे तरंग हैं, तिनके जे तुंग समूह हैं, तिन की जे अवली पाँति हैं, तिन की चारु कहे अच्छी भाँति सञ्चारिणी चलावनहारी है। अर्थात् अनेक तरंगैं उठायो करति है। अथवा तरंग-तुंगावलिन करि कै चारु सञ्चारिणी चलनहारी है। अलि भ्रमरन सों युक्त जे कमल हैं, तिन के सौगन्ध सुगन्ध करि कै लीला है मनोहारिणी जा की। और अलियुक्त कमलन करि कै बहुनयन जे देवेश इन्द्र हैं, तिन की शोभा की मानों धारिणी धारण करिवेवारी है। इन्द्र के सहस्र नेत्र हैं। इहाँ नेत्रसदृश अलियुक्त कमल हैं ॥ २४ ॥

दोधक छन्द ॥ रीति मनो अविवेक कि थापी। साधुन की गति पावत पापी ॥ कञ्जज की मति सी बड़भागी। श्रीहरिमंदिर सों अनुरागी ॥ २५ ॥ अमृतगति छन्द ॥ निपट पतिव्रत-धरणी। जगजन के दुखहरणी ॥ निगम सदागति सुनिये। अगति महापति गुनिये ॥ २६ ॥

कञ्जज ब्रह्मा की मति हू को अनुराग हरिमंदिर वैकुण्ठ में है, और गोदावरी हू को है। काहे ते कि जो कोऊ स्नान करत है, ता को आपनो जानि वैकुण्ठ पठावति है ॥ २५ ॥ या में विरोधाभास है। सदागति जो समुद्र है, ता में लीन रहति है, ता सों निपट पतिव्रतधरणी कह्यो। विरोध पक्ष में दुःख काम पीड़ा अवरोध में पापजनित दुःख-दारिद्र्यादि। निगम जो वेद हैं, तिन में सदागति कहे सदा है गति मुक्ति जा सों, ऐसी सुनियत है।

अर्थात् जो कोऊ स्नान करत है, ता को मुक्ति देति है । और पति जो समुद्र है, ताही को अगति सुनियत है । अर्थात् ता को गति मुक्ति नहीं देति । यह विरोधार्थ है । अविरोध हू यह कि अगति गमनरहित । समुद्र को जल बहत नहीं ॥ २६ ॥

दोहा ॥ बिषमै यह गोदावरी अमृतन को फल देति ॥ केशव जीवनहार को दुख अशेष हरि लेति ॥ २७ ॥ त्रिभंगी छन्द ॥ जब जब धरि बीना, प्रकट प्रबीना, बहु गुन-लीना, सुख सीता । पिय-जियहि रिझावै, दुखनि भजावै, बिबिध बजावै, गुन गीता ॥ तजि मति संसारी, बिपिनबिहारी, दुख-सुख-कारी, घिरि आवै । तब तब जगभूषण, रिपुकुलदूषण, सबको भूषण, पहिरावै ॥ २८ ॥ तोटक छन्द ॥ कबरी कुसुमालि शिखीन दई । गजकुम्भनि हारनि शोभमई ॥ मुकता शुक सारिक नाक रचे । कटि केहरि किंकिणि शोभ सचे ॥ २९ ॥ दुलरी कल कोकिल कण्ठ बनी । मृग खञ्जन अञ्जन भाँति ठनी ॥ नृपहंसनि नूपुर-शोभ भिरी । कलहंसनि कण्ठनि कण्ठसिरी ॥ ३० ॥

याहू में विरोधाभास है । विषमय कहे जलमय । "विषं तु गरले तोये, इति मेदिनी" ॥ फिर जैसे अमृत अमर करत है, तैसे या हू मुक्त के अमर करति है । विरोधपक्ष में, जीवन, जीव । अविरोध में जल-दुःख प्यास-दुःख । अथवा विषमै कहे टेढ़ी है । अमृत जे देवता हैं, तिन के फल को देति है । अर्थात् शुद्ध गति को देति है । और जीवनहार जे यमराज हैं, तिनको दुख कहे तिनको दियो दुख यमयातना, ता को अशेष कहे सम्पूर्ण हरि लेति है ॥ २७ ॥ सुख कहे सुख सों । गुणगीता रामचन्द्र की गुणगीता । दुःख-कारी व्याघ्रादि, सुखकारी कोकिलादि, जे विपिनविहारी कहे वनविहारी हैं, ते संसारी मति कहे भेदमय मति को तजि कै । मनुष्य के समीप में बन-जीवन को आप ही सों आइबो आश्चर्य है । सो आवत हैं । याही संसारी मति को त्याग जानो ॥ २८ ॥ तीनि छन्दन में एकवाक्यता है

शिखी, मोर । कबरी कहे केशपाश ॥ २९ ॥ नृपहंस, राजहंस ॥ ३० ॥

मुखबासनि बासित कीन तबै । तृण गुल्म लता तरु मूल सबै ॥ जल हू थल हू यहि रीति रमैं । बनजीव जहाँ तहँ संग भ्रमैं ॥ ३१ ॥ दोहा ॥ सहज सुगन्ध शरीर की दिशिबिदिशन अवगाहि ॥ दूती ज्यों आई लिये केशव सूपनखाहि ॥ ३२ ॥ मरहट्टा छन्द ॥ यकदिन रघुनायक सीयसहायक रतिनायक-अनुहारि । शुभ गोदावरितट विमल पंचबटि बैठे हुते मुरारि ॥ छबि देखत ही मन मदन मथ्यो तन सूपनखा तेहि काल । अति सुंदर तन करि कछु धीरज धरि बोली बचन रसाल ॥ ३३ ॥

मुखवासन कहे मुख के सुगन्धन सों । तृण, कुशादि । गुल्म, गुलाब आदि । लता, लवङ्गादि । तरु, आम्रादि । और या ही रीति सों । अर्थात् जैसे सीताजू के गावत में रमत हैं, तैसे ही सौंदर्यादि हू के वश है रामचन्द्र के समीप में जलजीव हंसादि और थलजीव मयूरादि जे वनजीव कहे दण्डकारण्य के जीव हैं, ते रमत हैं । और जहाँ-तहाँ रामचन्द्र के संग भ्रमत हैं । अर्थात् जहाँ रामचन्द्र जात हैं, तहाँ संग-संग भ्रमत फिरत हैं । तीनि हू छन्दन में युक्ति यह कि जा जीव को जो अंग वरन्यो है ता को ही अपने भूषण पहिरायो । अथवा जा के जा अंग में रामचन्द्र जो भूषण पहिरायो, ता को तौन अंग सुन्दरता को प्राप्त है वर्ण्य भयो । और काहू काहू जीव के अब तक ता को चिह्न बन्यो है ॥ ३१ ॥ जैसे दूती ढूँढ़ि कै स्त्री को पुरुष के पास लै जाति है, तैसे रामचन्द्र के शरीर की जो सहज स्वाभाविक सुगन्ध है, सो दिशि-विदिशन में अवगाहि कै ढूँढ़ि कै शूर्पणखा को रामचन्द्र के पास ल्याई । रामचन्द्र के अंगन को सहज सुगन्ध जो वन में वायु-योग सों फैलि रह्यो है, ता को सूँघि कै ता के अनुसार शूर्पणखा रामचन्द्र के पास आई, इति भावार्थः ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

शूर्पणखा—सवैया ॥ किन्नर हौ नररूप बिचच्छन यच्छ कि स्वच्छ शरीरनि सोहौ । चित्तचकोर के चंद किधौं मृगलोचन चारु बिमाननि रोहौ ॥ अंग धरे कि अनंग हौ केशव अंगी अनेकन के मन मोहौ । बीर जटान धरे धनु बान लिये बनिता

बन में तुम को हौ ॥ ३४ ॥ राम—मनोरमा छन्द ॥ हम हैं दशरत्थ महीपति के सुत। शुभ राम सु लक्ष्मण नामन संयुत ॥ यह शासन दै पठये नृप कानन । मुनि पालहु मारहु राक्षस के गन ॥ ३५ ॥ शूर्पणखा ॥ नृप रावण की भगिनी गनि मो कह। जिन की ठकुराइति तीनिहु लोकह ॥ सुनिये दुखमोचन पंकजलोचन । अब मोहिं करौ पतनी मनरोचन ॥ ३६ ॥ तोमर छन्द ॥ तब यों कह्यो हँसि राम। अब मोहिं जानि सबाम ॥ तिय जाय लक्ष्मण देखि। सम रूप यौबन लेखि॥३७॥ शूर्पणखा—दोधक छन्द ॥ राम-सहोदर मो तन देखो। रावण की भगिनी जिय लेखो ॥ राजकुमार रमो सँग मेरे। होहिं सबै सुख संपति तेरे ॥ ३८ ॥ लक्ष्मण ॥ वै प्रभु हौं जन जानि सदाई। दास भये महँ कौन बड़ाई ॥ जो भजिये प्रभु तो प्रभुताई। दास भये उपहास सदाई ॥ ३९ ॥

विचक्षण, प्रवीण । चित्तरूपी जो चकोर है, ता के चन्द्रमा हौ। जैसे चन्द्रमा चकोर को सुख देत है, तैसे तुम चित्त को सुख देत हौ। चन्द्रमा मृगन के विमान रथ को रोहत है, अर्थात् चढ़त हैं, और तुम मृगरूपी जे लोचन हैं, तिन ही के विमानन को रोहत हौ। अर्थ यह कि जो कोऊ तुम को देखत है, ता के नयनन में ऐसे बसि जात हौ कि उतरत नहीं ॥ ३४ ॥ शासन, आज्ञा ॥ ३५ ॥ हे मनरोचन, अर्थात् मेरे मन को तुम अति रुचत हौ ॥ ३६ ॥ अपने रूप और यौवन के सम इन्हैं लेखि कहे जानु। अर्थात् जैसो रूप यौवन तेरो है, तैसो इन हू को है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सदाई जन हौं कहि या जनायो कि कबहूँ प्रभुता ह्वैबे की आशा नहीं है ॥ ३९ ॥

मल्लिका छन्द ॥ हास के बिलास जानि। दीह मानखंड मानि ॥ भच्छिबे को चित्त चाहि। सामुहे भई सियाहि ॥ ४० ॥ तोमर छन्द ॥ तब रामचन्द्र प्रवीन। हँसि बंधु त्यों दृग दीन ॥ गुनि दुष्टता सह लीन। श्रुति नासिका बिनु कीन ॥ ४१ ॥

दोहा ॥ शोण छिंछि छूटत बदन भीम भई तिहि काल ॥ मानो कृत्या कुटिल युत पावक-ज्वाल कराल ॥ ४२ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्र चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां शूर्पणखाश्रवण-नासिकाछेदनन्नामैकादशः प्रकाशः ॥ ११ ॥

जब जान्यो कि ये मो सों रमि हैं नहीं, केवल मो सों हास के विलास उपहास करत हैं, तब दीह कहे बड़ो आपनो मान खण्ड कहे अपमान मानि कै ॥ ४० ॥ ४१ ॥ कराल पावकज्वाल सों युक्त है बदन जा को, ऐसी मानों कृत्या नाम की देवी है ॥ "कृत्याक्रियादेवतयोरितिमेदिनी" ॥ ४२ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामेकादशः प्रकाशः ॥ ११ ॥

दोहा ॥ या द्वादशे प्रकाश खर-दूषण-त्रिशिरा-नास ।
सीताहरण विलाप सुग्रीवमिलन हरि त्रास ॥ १ ॥

त्रास जो भय है ताको हरि कै, सुग्रीव को मिलन है। अर्थात् बालि को बध निश्चय करि सुग्रीव को त्रास हरि रामचन्द्र मित्रता करि हैं ॥ १ ॥

तोटक छन्द ॥ गइ सूपनखा खर दूषण पै । सजि ल्याइ तिन्हैं जगभूषण पै ॥ शर एक अनेक ते दूरि किये । रबि के कर ज्यों तमपुंज पिये ॥ २ ॥ मनोरमा छन्द ॥ बृष के खर-दूषण ज्यों खर दूषण । तब दूरि किये रबि के कुलपूषण ॥ गद-शत्रु त्रिदोष ज्यों दूरि करै बर । त्रिशिरा-शिर त्यों रघुनंदन के शर ॥ ३ ॥ भजि सूपनखा गइ रावण पै तब । त्रिशिरा-खर-दूषण-नाश कह्यो सब ॥ तब सूपनखा-मुख बात सबै सुनि । उठि रावण गो जहँ मारिच हो मुनि ॥ ४ ॥ दोधक छन्द ॥ रावण बात कही सिगरी त्यों । सूपनखाहि बिरूप करी ज्यों ॥ एक सु राम अनेक सँहारे । दूषण स्यो त्रिशिरा खर मारे ॥ ५ ॥ तू अब होहि सहायक मेरो । हौं बहुतै गुन मानहुँ तेरो ॥ जो हरि

सीतहि ल्यावन पैहै। वै भ्रमि शोकन ही मरि जैहैं ॥ ६ ॥ मारीच ॥ रामहि मानुष कै जनि जानो। पूरण चौदह लोक बखानो ॥ जाहु जहाँ तिय लै सु न देखो । हौं हरि को जलहू थल लेखौं ॥ ७ ॥

रामचन्द्र की आज्ञा सों लक्ष्मण सीता को लै के गुफा में राख्यो है, यह कथा शेष जानो ॥ २ ॥ वृष राशि के रवि सूर्य खर कहे तृण के दूषण होत हैं, सुखाइ डारत हैं, तैसे रवि के कुल के पूषण जे रामचन्द्र हैं, तिन खर और दूषण नाम राक्षसन को दूरि कियो, कहे मार्‌यो। और गद रोग को शत्रु जो वैद्य है, सो जैसे त्रिदोष कहे कफ-पित्त-वात तीनों को दोष एकही वार दूरि करत हैं, तैसे रघुनन्दन के शर त्रिशिरा के शिरन को एकही वार दूरि कर्‌यो ॥ ३ ॥ ४ ॥ स्यो कहे सहित ॥ ५ ॥ सीता को ढूँढ़त भूतल में भ्रमि कहे घूमि कै, अथवा संदेह को प्राप्त ह्वै कै ॥ ६ ॥ चौदहों लोकन में पूर्ण कहे व्याप्त ॥ ७ ॥

रावण—सुंदरी छन्द ॥ तू अब मोहिं सिखावत है शठ। मैं वश जक्क कियो हठ ही हठ ॥ वेगि चलै अब देहि न ऊतर। देव सबै जन एक नहीं हर ॥ ८ ॥ दोहा ॥ याचि चल्यो मारीच मन रन महँ दुहुँ विधि आसु ॥ रावण के कर नरक है हरि-कर हरि-पुर-वासु ॥ ९ ॥ राम—सुंदरी छन्द ॥ राजसुता इक मंत्र सुनो अब। चाहत हौं भुव-भार हर्‌यो सब ॥ पावक में निज-देहहि राखहु। छाय शरीर मृगै अभिलाषहु ॥ १० ॥ चामर छन्द ॥ आइयो कुरंग एक चारु हेम-हीर को। जानकी समेत चित्त मोह्यो राम वीर को ॥ राजपुत्रिका-समीप साधु बंधु राखि कै। हाथ चाप-बाण लै गये गिरीश नाँघि कै ॥ ११ ॥ दोहा ॥ रघुनायक जब ही हन्यो सायक सठ मारीच॥ हा लक्ष्मण यह कहि गिरेउ श्रीपति के स्वर नीच ॥ १२ ॥ निशिपालिका छन्द ॥ राजतनया तबहि बोल सुनि यों कह्यो। जाहु चलि

देवर न जात हमपै रह्यो ॥ हेममृग होहि नहिं रैनिचर जानिये । दीन स्वर राम केहि भाँति मुख आनिये ॥ १३ ॥

एक हर महादेव को छोड़ि कै और सब देवता मेरे जन कहे सेवक हैं ॥ ८ ॥ आशु कहे जल्दी ॥ ६ ॥ छाया-शरीर सों मृगै कहे चलिबे को अभिलाष करौ। अर्थात् छाया-शरीर ग्रहण करि रहौ। अथवा छाया-शरीर सों या सुवर्ण-मृग को अभिलाषौ ॥ १० ॥ हेम सुवर्ण और हीरन को कुरंग हरिण बनि मारीच आयो ॥ ११ ॥ जैसो रामचन्द्र को स्वर कहे शब्द है, ताही स्वर सों 'हा लक्ष्मण !' यह कहि कै गिरयो। नीच मारीच को विशेषण है ॥ १२ ॥ यह कोऊ राक्षस है, हरिण को रूप धरि कै आयो है, ता ने रामचन्द्र को मारयो, ता सों 'हा लक्ष्मण !' ऐसो दीन स्वर रामचन्द्र कह्यो, इति भावार्थः ॥ १३ ॥

लक्ष्मण ॥ सोच अतिपोच उर मोच दुख-दानिये । मात यह बात अवदात मम मानिये ॥ रैनिचर छद्म बहु भाँति अभिलाषहीं । दीन स्वर राम कबहूँ न मुख भाषहीं ॥ १४ ॥ चंचला छन्द ॥ पक्षिराज यक्षराज प्रेतराज यातुधान । देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान ॥ पर्वतारि अर्ब-खर्ब शर्ब सर्बथा बखानि। कोटि कोटि सूर-चन्द्र रामचन्द्र-दास मानि॥ १५॥ चामर छन्द ॥ राजपुत्रिका कह्यो सु और को कहै—सुनै । कान मूँदि बारबार सीस बीसधा धुनै ॥ चाप की रेख खाँचि देव साखि दै चले । नाँघि हैं ते भस्म होहिं जीव जे बुरे भले ॥ १६ ॥

अति पोच कहे निषिद्ध जो दुखदानि शोच है, ताको उर सों मोच कहे त्याग करौ। छद्म, कपट ॥ १४ ॥ पक्षिराज, गरुड़। यक्षराज, कुवेर। प्रेतराज, यमराज। यातुधान, राक्षस। देवता और अदेवता दैत्य। नृदेवता, राजा। और पर्वतारि, इंद्र। ते ये सब अर्ब-खर्ब-संख्या-परिमित। और अर्ब-खर्ब शर्ब कहे महादेव। अर्ब-खर्ब को सम्बन्ध शर्ब पद हू में है। तिन्हैं सर्वथा कहे सब प्रकार बखानि कहे कहौ। और कोटि सूर्य और चन्द्रमा हैं, तिन सबको रामचन्द्र के दास कहे सेवक मानो। रामचन्द्र के मारिबे लायक ये कोऊ नहीं हैं। इति भावार्थः ॥ १५ ॥ लक्ष्मण को राजपुत्रिका

ने जे कटु वचन कहे, तिन्हैं और कौन कहै और कौन सुनै । अर्थात् अति कटु वचन कहे, जे काहू के कहिवे-सुनिबे लायक़ नहीं हैं । और जो थोरो सुनिवो हू करै, तौ जा में आगे और ना सुनि परै, ता लिये कान मूँदिकै। बिना सुने वचननके शोक सोंवीसधा अर्थात् अनेक प्रकार सों शीश धुनै । अथवा सीता ही कान मूँदि कै शीश धुनत भईं । कान मूँदिवे को हेतु यह कि जामें लक्ष्मण के ये वोध-वचन न सुनि परैं, तौ लक्ष्मण वातैं ना कहैं, रामचन्द्र के पास जाइँ । अथवा जा में कटु वचन ना सुनि परैं, ता लिये लक्ष्मण ही कानन को मूँदि कै वार-बार शीश धुनत भये ॥ १६ ॥

छिद्र ताकि छुद्र राज लंकनाथ आइयो । भिच्छु जानि जानकी सु भीख को बुलाइयो ॥ सोच पोच मोच कै सकोच भीम बेख को । अंतरिच्छ ही करी ज्यों राहु चंद्ररेख को ॥ १७ ॥
दण्डक ॥ धूमपुर के निकेत मानों धूमकेतु की शिखा की धूमयोनि मध्य रेखा सुधाधाम की । चित्र की सी पुत्रिका की रूरे बयरूरे माहँ शम्बर छोड़ाइ लई कामिनि की काम की ॥ पाखंड की श्रद्धा की मठेश-बश एकादशी लीन्ही कै श्वपच-राज शाखा शुद्ध साम की । केशव अदृष्ट साथ जीव जीति जैसी तैसी लंकनाथ-हाथ-परी छाया-जाया राम की ॥ १८ ॥

क्षुद्रन को राज जो लङ्कनाथ है, सो छिद्र कहे अवसर ताकि भिक्षु कहे दंडीरूप धरिकै सीता पै आयो । शूर्पणखा की नासिका काटे को जो पोच कहे सो बुरो शोच है, सो सीताहरण निश्चय करि ताको मोच कै छोड़ि कै, अथवा पोच रावण को विशेषण है । और भीम वेष को जो संकोच सिक़ोरनो रह्यो ता को मोचि कै, अर्थात् जो लघु शरीर करयो रहै, ताको बढ़ाइ कै । अंतरिक्ष, आकाश ॥ १७ ॥ धूमपुर के निकेत कहे घर में अर्थात् धूमसमूह में । धूमकेतु जो अग्नि है, ता की शिखा ज्योति है । कि धूमयोनि जे मेघ हैं, तिनके मध्य में सुधाधाम जो चन्द्रमा है ताकी रेखा कहे कला है । कि रूरे कहे वड़े वयरूरे कहे बौंड़र, वायुग्रन्थि करिकै प्रसिद्ध है, ता में चित्र-पुत्रिका है । कि शम्बर नामको जो दैत्य है, सो काम को शत्रु है, तेहि काम की कामिनी रति को छँड़ाइ लीन्ही है । कि पाखण्ड के वश मों श्रद्धा

परी है। यह कथा विज्ञानगीता में प्रसिद्ध है। कि मठपति के वश एका-दशी परी। कि श्वपचराज चांडालन को राजा शुद्ध साम-वेद की शाखा लीन्ही है। अदृष्ट कर्म के साथ में जैसी जीव-ज्योति परी है, तैसी छाया-कृत जो रामकी जाया सीता है सो लंकनाथ के हाथ में परी ॥ १८ ॥

सीता—हरिलीला छंद ॥ हा राम हा रमण हा रघुनाथ धीर। लंकाधिनाथ-वश जानहु मोहिं बीर ॥ हा पुत्र लक्ष्मण छोड़ावहु बेगि मोहिं। मार्तंडबंश यश की सब लाज तोहिं ॥ १९ ॥ पक्षी जटायु यह बात सुनंत धाइ। रोक्यो तुरंत बल रावण दुष्ट जाइ ॥ कीन्हो प्रचंड रथ-छत्र-ध्वजा-विहीन। छोड़्यो विपक्ष तब भो जब पक्ष-हीन ॥ २० ॥ संयुता छंद ॥ दशकंठ सीतहि लै चल्यो। अतिबृद्ध गीध हियो दल्यो ॥ चित जानकी अध की कियो। हरि तीनि द्वै अवलोकियो ॥ २१ ॥ पदपद्म की शुभ घूँघरी। मणि नील हाटक सों जरी ॥ जनु उत्तरीय विचारि कै। शुभ डारि दी पग ढारि कै ॥ २२ ॥ दोहा ॥ सीता के पद-पद्म को नूपुर-पट जनि जानु ॥ मनहुँ कस्यो सुग्रीव-घर राज-श्री प्रस्थानु ॥ २३ ॥ यद्यपि श्रीरघुनाथजू सम सर्वंग सर्वज्ञ ॥ नर कैसी लीला करत जिहि मोहत सब अज्ञ ॥ २४ ॥ राम—सवैया ॥ निज देखौं न हौं शुभगीतहि सीतहि कारण कौन कहौं अबहीं। अति मोहित कै बन माँझ गई सुर-मारग में मृग मास्यो जहीं ॥ कटु बात कछू तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास डेराइ रहीं। अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं ॥ २५ ॥

॥ १९ ॥ प्रचण्ड-पद जटायु, रावण, रथ, तीनों को विशेषण है सकत है। विपक्ष, शत्रु, रावण ॥ २० ॥ तीनि और द्वै कहे पाँच। अथवा द्वै-तीनि कहिवे की रीति स्वभावोक्ति है। हरि, वानर ॥ २१ ॥ उत्तरीय, ओढ़िवे को वस्त्र ॥ २२ ॥ जब प्रस्थान भयो तब आप आयोई चाहै ॥ २३ ॥ सम

कहे सदा एकरस रहत हैं। और सर्वग कहे सर्वत्र व्याप्त हैं। और सर्वज्ञ कहे सब जानत हैं॥ २४॥ जो हमारे स्वर सों हा लक्ष्मण! यह कहि के मृग मर्यो है, सो हमारो शब्द जानि, ताही स्वर के मार्ग ह्वै हमारे बड़े हित सों वन के मध्य में गई है। कि हे लक्ष्मण, यह पर्णकुटी है कि कछू और ई वस्तु है। और कि वह पर्णकुटी नहीं है, और ई पर्णकुटी है॥ २५॥

दोधक छंद॥ धीरज सों अपनो मन रोक्यो। गीध जटायु पर्यो अवलोक्यो॥ छत्र ध्वजा रथ देखिकै बूझ्यो। गीध कहौ रण कौन सों जूझ्यो॥ २६॥ जटायु—रावण लै गयो राघव सीता। हा रघुनाथ रटै शुभगीता॥ मैं बिन छत्र ध्वजा रथ कीनों। ह्वै गयो हौं बल पक्ष बिहीनो॥ २७॥ मैं जग में सबते बड़भागी। देहदशा तुव कारन लागी॥ जो बहु भाँतिन बेदन गायो। रूप सु मैं अवलोकन पायो॥ २८॥ राम—साधु जटायु सदा बड़भागी। तो मन मो बपु सों अनुरागी॥ छूट्यो शरीर सुनी यह बानी। रामहि में तप ज्योति समानी॥ २९॥ तोटकछंद॥ दिशि दक्षिण को करि दाह चले। सरिता गिरि देखत बृक्ष भले॥ बन अंध कबंध बिलोकतही। दोउ सोदर खैंचि लिये तबही॥ ३०॥ जब खैंबेहि को जिय बुद्धि गुनी। दुहुँ बाननि लै दोउ बाँह हनी॥ वह छाँड़ि कै देह चल्यो जबही। यह व्योम में बात कह्यो तबही॥ ३१॥ मोटनक छंद॥ पीछे मघवा मोहिं शाप दई। गंधर्व ते राक्षस देह भई॥ फिरिकै मघवा सह युद्ध भयो। उन क्रोध कै सीस में बज्र हयो॥ ३२॥

॥ २६॥ २७॥ दशा, अवस्था। अर्थ यह कि यह देह वृद्ध की और यह वृद्धावस्था तुम्हारे कछू उपकार के लायक़ नहीं रही। तासों तुम्हारो उपकार भयो। और ऐसो जो तुम्हारो रूप है ता को देख्यो। तासों जग में मैं सब सों बड़भागी हौं॥ २८॥ अर्थात् सायुज्य मुक्ति पायो॥ २९॥ ३०॥ ३१॥ बाहु दई पर्यन्त तीनि छन्द क्षेपक हैं। पीछे कहे पूर्व ही॥ ३२॥

दोहा ॥ गयो सीस गड़ि पेट में पस्यो धरनि पर आय ॥ कछु करुणा जिय में भई दीन्हीं बाहु बढ़ाय ॥ ३३ ॥ बाहु दई द्वै कोस की आवै तेहि गहि खाउ । रामरूप सीताहरन उधरहु गहन-उपाउ ॥ ३४ ॥ सुरसरि के आगे चले मिलि हैं कपि सुग्रीव ॥ देहैं सीता की खबरि बाढ़ै सुख अतिजीव ॥ ३५ ॥ तोटक छंद ॥ सरिता यक केशव शोभरई । अवलोकि तहाँ चकवा चकई ॥ उर में सिय प्रीति समाइ रही । तिन सों रघुनायक बात कही ॥ ३६ ॥ अवलोकत हौ जबही जबही । दुख होत तुम्हैं तबही तबही ॥ वह बैर न चित्त कछू धरिये । सिय देहु बताय कृपा करिये ॥ ३७ ॥ शशि के अवलोकन दूरि किये । जिनके मुख की छवि देखि जिये ॥ कृत चित्त चकोर कछूक धरौ । सिय देहु बताय सहाय करौ ॥ ३८ ॥

॥ ३३ ॥ करुणा करिकै द्वै कोस की बाहु दई, और यह वर दियो कि जो इन बाहुन के मध्य में आवै, ता को खाहु । जब सीताहरण ह्वैहै, तब रामचन्द्र या मग ह्वै ऐहैं, तिन के गहन उपाय सों उद्धरहु कहे तुम्हारो उद्धार होई । अर्थात् जब रामचन्द्र को इन बाहुन सों गहि है, तब तेरो उद्धार ह्वैहै ॥ ३४ ॥ सुरसरि, गोदावरी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जब सीता को तुम अवलोकत हौ कहे देखत रहौ, तब आपने सों अधिक सुन्दर सीता के कुच देखि तुम्हारे दुःख होत रहै । अथवा हम को संयोगी देखत रहे, तासों तुम्हारे दुःख होत रह्यो ॥ ३७ ॥ अति सुन्दर जिनके मुख को देखि शशि की ओर विलोकिवो छोड़ि केवल जिनके मुख की छवि देखि कै जियत रहे हौ । अथवा शशि के अवलोकन दर्शन दूरि किये पर, अर्थात् जब कृष्ण-पक्ष में चन्द्रमा आपनो दर्शन दृष्टि सों दूरि कियो, न देखि पस्यो, तब केवल जिनके चंद्रसम मुख की छवि को देखि जियत रहे हौ । वह कृत कहे उपकार कछु चित्त में धरि कै सीता को बताइ देउ ॥ ३८ ॥

सवैया ॥ कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक लिये हरि कै । लखि केतक केतकि जाति गुलाब ते तीच्छन

जानि तजे डरि कै ॥ सुनि साधु तुम्हैं हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरि कै । सिय को कछु सोधु कहौ करुणामय सो करुणा करुणा करि कै ॥ ३६ ॥ नाराच छंद ॥ हिमांसु सूर सो लगै सु बात वज्र सी बहै । दिशा लगैं कृशानु ज्यों विलेप अंग को दहै ॥ विशेषि कालराति सों कराल राति मानिये । वियोग सीय को न काल लोकहार जानिये ॥ ४० ॥

रामचन्द्र करुणा-वृक्ष सों कहत हैं कि चम्पक जे हैं ते याचक के अरि शत्रु हैं । पुष्पन को याचक जो भ्रमर है, ता को निकट नहीं आवन देत । चम्पक में भ्रमर नहीं बैठत यह प्रसिद्ध है । ता भय सों चम्पक सों सीता को सोधु नहीं जाँचे । अशोक जे वृक्ष हैं, तिन शोक को हरि कै छोड़ि कै, अशोक यह जो नाम है, ता को लीन्हो है । ता सों तिनहू को तज्यो है कि जिनके शोक है ही नहीं ते हमारो दुःख देखि दुखी ह्वै कृपा करि सीता को सोधु कहे पता बताइहैं । केतकि केवरा और केतकी और गुलाब इन की जाति जे और कंटकवृक्ष हैं कमलादि, तिन्हैं तीक्ष्ण कहे कंटकित जानि कै, डरि कै, तज्यो है । सो हे करुणा कहे करुणा-वृक्ष, करुणामय कहे दीनतामय जे हम हैं तिन सों सीता को कछू सोधु कहौ ॥ ३६ ॥ रामचन्द्र लक्ष्मण सों कहत हैं कि हिमांशु जो चंद्रमा है, सो हम को सूर्यसम तप्त लागत है । और वायु वज्रसम वहति है । और दसौ दिशा अग्नि के समान तप्त लागती हैं । और तुम जो शीतलता के अर्थ हमारे अंगन में विलेप करत हौ, सो अंगन को जारत है । और राति कालरात्रिसम कराल लागति है । और सीता को वियोग लोकहार-काल कहे संहारकाल-सम लागत है ॥ ४० ॥

पद्धटिका छन्द ॥ यहि भाँति विलोके सकल ठौर । गये शवरी पै दोउ देवमौर ॥ लिय पादोदक त्यहि पग पखारि । पुनि अर्घादिक दीन्हे सुधारि ॥४१ ॥ हर देत मंत्र जिनको बिशाल । शुभ काशी में पुनि मरनकाल ॥ ते आये मेरे धाम आज । सब सफल करन जप-तप-समाज ॥ ४२ ॥ फल भोजन को तेहि

धरे आनि। भये यज्ञपुरुष अति प्रीति मानि ॥ तिन रामचन्द्र-लक्ष्मण-स्वरूप। तब धरे चित्त जगजोतिरूप ॥ ४३ ॥ दोहा ॥ शबरी पावक-पंथ तब हरषि गई हरिलोक ॥ बनन बिलोकत हरि गये पंपातीर सशोक ॥ ४४ ॥ तोटक छंद ॥ अति सुन्दर शीतल शोभ बसै। जहँ रूप अनेकन लोभ लसै ॥ बहु पंकज पक्षि बिराजत हैं। रघुनाथ बिलोकत लाजत हैं ॥ ४५ ॥ सिगरी ऋतु शोभित शुभ्र जही। लहै ग्रीषम पै न प्रवेश सही ॥ नव नीरज नीर तहाँ सरसैं। सिय के शुभ लोचन से दरसैं ॥ ४६ ॥

॥ ४१ ॥ मन्त्र, रामतारक। तप और जपसमाज के सफल-करन कहे सफलकर्त्ता। अर्थात् जो कोऊ जप-तप करत है, ता को फल रामचन्द्र ही देत हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ जीवत ही अग्नि में जरि कै ॥ ४४ ॥ कैसो है पम्पा-सर, अतिसुन्दर है, और अतिशीतल है। जहाँ शोभा जो है सो सदा आय वास करति है। और जहाँ कहे जेहि स्थान में जात ही प्राणिन के अनेक रूप सों लोभ बसत है। अर्थात् जहाँ जात ही प्राणिन के रहिबे को लोभ बाढ़त है। और बहुत पंकज कमल, और हंस आदि पक्षी विराजत हैं। ते रामचन्द्र को देखि कै लज्जित होत हैं। जा अंग को जो उपमान है, ता अंग को निरखि आपने सों अधिक जानि लजात हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

विजय छंद ॥ सुंदर श्वेत सरोरुह में करहाटक हाटक की द्युति को है। ता पर भौंर भले मनरोचन लोकविलोचन की रुचि रोहै ॥ देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै। केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै ॥ ४७ ॥ लक्ष्मण—सवैया ॥ मिलि चक्रित चंदन बात बहै अति मोहत न्यायन ही मति को। मृगमित्र बिलोकत चित्त जरै लिये चन्द निसाचर-पद्धति को ॥ प्रतिकूल शुकादिक होहिं सबै जिय जानै नहीं इनकी गति को। दुख देत तड़ाग तुम्हैं न बनै कमलाकर है कमलापति को ॥ ४८ ॥

- सरोरुह, कमल । करहाटक, सिफाकन्द । हाटक, सुवर्ण । लोक के लोचन की रुचि कहे इच्छा को रोहै, कहे धारण करत है, अर्थात् जिन को देखि सब के लोचनन में सदा देखिबे की इच्छा होति है । अथवा लोक के लोचन की रुचि शोभा रोहत है, अर्थात् लोचनसम शोभत है । केशवराय, विष्णु । कमलासन, ब्रह्मा । श्वेत कमल सोई ब्रह्मा को आसन-कमलसम है । करहाटक, ब्रह्मासम पीतवर्ण है । भ्रमर विष्णुसम है ॥ ४७ ॥ पम्पासर सों लक्ष्मण कहत हैं कि चन्दन-ब्रात जो इन की मति को मोहत है, मूर्च्छित करत है, सो न्याय ही सों । काहे ते कि चन्दन-वृक्ष में लपटे जे अनेक चक्री सर्प हैं, तिन सों मिलि कै स्पर्श करि कै बहत है । सो सर्पन के संग को फल है । सर्प हू जा को काटत हैं, ता को मूर्च्छित करत हैं । मृग को अङ्क में धरे है, ता सों मृगमित्र पद कह्यो । सो मृगमित्र जो चन्द्र है, ता के बिलोकन ते चित्त जरत है, सोऊ न्याय ही है । काहे ते कि वह निशाचरन की पद्धति परिपाटी को लिये है । निशाचर राक्षस हू हैं, चन्द्र हू है । सो निशाचरन की राक्षसन की परिपाटी को लिये है । राक्षसन हू को देखत ही चित्त जरत है, फिर मृगमित्र कहि या जनायो कि पशुन को मित्र है । प्रतिकूल दुःखद जो शुकादिक होत हैं, सोऊ न्याय ही है । काहे ते कि वे पक्षी पशु हैं, इन की गति को नहीं जानत कि ये ईश्वर हैं । कमलाकर पद श्लेष है । कमलन के आकर समूह सों युक्त, और कमला लक्ष्मी के उत्पन्नकर्त्ता । युक्ति यह कि ये तुम्हारे जामाता हैं, इन को दुःख देबो तुम्हैं न चाहिये ॥ ४८ ॥

दोहा ॥ ऋष्यमूक पर्वत गये केशव श्रीरघुनाथ ॥ देखे वानर पंच विभु मानो दाहिन हाथ ॥ ४६ ॥ कुसुम विचित्रा छन्द ॥ तब कपिराजा रघुपति देखे । मनु नर-नारायण सम लेखे ॥ द्विज-वपु धरि तहँ हनुमंत आये । बहुबिधि आसिष दै मन भाये ॥ ५० ॥ हनुमान्—सबबिधि रूरे बन महँ को हौ । तन-मन सूरे मनमथ मोहौ ॥ शिरसि जटा बकला वपु-धारी । हरि हर मानहुँ विपिन-विहारी ॥ ५१ ॥ परम वियोगी-सम रस-भीने । तन-मन एकै युग तन कीन्ने ॥ तुम को हौ का

लगि बन आये। क्यहि कुल हौ कौने पुनि जाये ॥ ५२ ॥ राम—चंचरी छन्द ॥ पुत्र श्रीदशरत्थ के वन राज-सासन आइयो। सीय सुंदरि संग ही बिछुरी सो शोध न पाइयो ॥ राम लक्ष्मण नाम संयुत सूर वंश बखानिये। रावरे बन कौन हौ क्यहि काज क्यों पहिचानिये ॥ ५३ ॥

सुग्रीव, हनुमान, नल, नील, सुषेण, ये पाँच जे वानर हैं। विभु कहे प्रतापी। तिन सहित ऋष्यमूक को देख्यो। मानो सो पृथ्वी को दक्षिण हाथ है। पृथ्वी इति शेषः। अथवा मानो अपनो दक्षिण हाथ ही देख्यो है। मित्र को और भ्राता को दक्षिण-बाहु-सम कहिबे की रीति है ॥ ४९ ॥ नर नारायण के द्वै रूप हैं ॥ ५० ॥ रूरे, सुन्दर ॥ ५१ ॥ परम वियोगी हौ, अर्थात् तुम्हारी चेष्टा ते जानि परत है कि काहू बड़े हित को वियोग भयो है। और जटा-वल्कल आदि सों शांत रस में भीने जानि परत हौ ॥ ५२ ॥ शासन, आज्ञा ॥ ५३ ॥

हनुमान्—दोहा ॥ या गिरि पर सुग्रीव नृप ता सँग मंत्री चारि ॥ बानर लई छड़ाइ तिय दीन्हो बालि निकारि ॥ ५४ ॥ दोधक छन्द ॥ ता कहँ जो अपनो करि जानो। मारहु बालि बिनै यह मानो ॥ राज देहु जो वा कि तिया को। तो हम देहिं बताय सिया को ॥ ५५ ॥ लक्ष्मण—आरत की प्रभु आरति टारौ। दीन अनाथन को प्रतिपारौ ॥ थावर जंगम जीव जु कोऊ। सन्मुख होत कृतारथ सोऊ ॥ ५६ ॥ वानर ह्वै हनुमान सिधारेउ। सूरज को सुत पाँयनि पारेउ ॥ राम कह्यो उठि वानरराई। राजसिरी सखि स्यो तिय पाई ॥ ५७ ॥ दोहा ॥ उठे राज सुग्रीव तब तन मन अति सुख पाइ। सीता जू के पट सहित नूपुर दीन्हे आइ ॥ ५८ ॥ तारक छन्द ॥ रघुनाथ जबै पट नूपुर देखे। कहि केशव प्रान-समान हि लेखे ॥ अवलोकत लक्ष्मण के कर दीन्हे। उन आदर सों शिर मानि कै लीन्हे ५९

राम—दण्डक ॥ पञ्जर कि खञ्जरीट नैनन को किधौं मीन मानस को केशौदास जलु है कि जालु है । अंग को कि अंगराग गेडुआ कि गलसुई किधौं कटिजेब ही को उर कों कि हारु है। वन्धन हमारो कामकेलि को कि ताड़िबे को ताजनो, विचार को कि चमर बिचारु है ॥ मान की जवनिका कि कञ्ज-मुख मूँदिबे को सीताजू को उत्तरीय सब सुखसारु है ॥ ६० ॥

वानर वालि को विशेषण है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ कृतार्थ कहे कृत है अर्थ प्रयोजन जाको ॥ ५६ ॥ अर्थात् वालि को मारि कै राज्य-श्री-सहित तुम्हारी स्त्री हम तुम को देहैं । रामचन्द्र सुग्रीव को ऐसो निश्चयवचन दियो ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ शिर मानि कै कहे शिर पर राखि कै ॥ ५९ ॥ रामचन्द्र कहत हैं कि हमारे खञ्जरीट कहे खड़ैचारूपी जे नयन हैं, तिन को पञ्जर पिंजरा है । जा में परि नयन कढ़न नहीं पावत । और कि मीनरूपी जो मानस मन है ता को जल है कि जालु है । जैसे मीन जल सों नहीं कढ़ति, तैसे मन या सों नहीं कढ़त । जाल को और पञ्जर को हेतु एकई है । अंगन को कि अंगराग कहे चन्दन आदि को लेप है । कि गेंडुआ तकिया है । कि गलसुई छोटी तकिया है । अर्थात् स्पर्श ते अंगन को अंगरागादि-सम सुखद है । और कि कटिजेब कहे क्षुद्रघण्टिका है । और कि ही को जेब कहे धुकधुकी है । जेब पद को सम्बन्ध या हू में है । और कि उर को हार है । और कि कामकेलि-समय को हमारो वन्धन फाँस है । और कि कामकेलि-समय को हमारे ताड़िबे को ताजनो कशा है । कोड़ा इति । अर्थात् काम-केलि में अतिचञ्चल-कर्त्ता है । और कि कामकेलि को जो विचार कहे विगत चालचलन है । रतान्त इति । ताको रतिश्रमहर चमर कहे वाल-व्यजन है । इहाँ चमर-पद ते व्यजन जानौ । अथवा हमारे विचार को चमर है, अर्थात् विचार को शोभाकर्त्ता है, प्रकाशकर्त्ता है । ऐसो हमारो विचार अनुमान है । और कि सीताजू के मान की जवनिका क़नात है । अर्थ यह कि याही की आड़ में सीताजू को मान रहत रह्यो । और कि सीताजू को कञ्ज-मुख मूँदिबे को सब-सुखसार उत्तरीय है । याही विधि उत्तरीय को वर्णन हनुमन्नाटकहू में है ॥ "द्यूते पणः प्रणयकेलिषु कण्ठपाशः क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते । शय्या निशीथसमये जनकात्मजायाः प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम्" ॥ ६० ॥

स्वागता छन्द ॥ बानरेन्द्र तब यों हँसि बोल्यो। भीति-भेद जिय को सब खोल्यो ॥ आगि बारि परतच्छ करी जू। रामचन्द्र हँसि बाँह धरी जू ॥ ६१ ॥

जब निश्चय मित्र जान्यो, तब आपनो भीति-भेद कहे बालिकृत भय को सब भेद खोल्यो कहे कह्यो। मित्र सों अन्तःकरण को सब भेद कह्यो चाहिये ॥ ६१ ॥

सूरपुत्र तब जीवन जान्यो। बालि-जोर बहुभाँति बखान्यो ॥ नारि छीनि जेहि भाँति लई जू। सो अशेष बिनती विनई जू ॥ ६२ ॥ एकबार शर एक हनौ जो। सात ताल बलवन्त गनौ तो ॥ रामचन्द्र हँसि बाण चलायो। ताल बेधि फिरिकै कर आयो ॥ ६३ ॥ सुग्रीव—तारक छन्द ॥ यह अद्भुत कर्म न और पै होई। सुर सिद्ध प्रसिद्धन में तुम कोई ॥ निकरी मन ते सिगरी दुचिताई। तुम-सो प्रभु पाय सदा सुखदाई ॥ ६४ ॥ विजय छन्द ॥ बावन को पद लोकन मापि ज्यों बावन के बपु माहँ सिधायो। केशव सूरसुता जल सिंधुहि पूरि कै सूरहि को पद पायो ॥ काम के बाण त्वचा सब बेधि कै काम पै आवत ज्यों जग गायो। राम को सायक सातहु तालनि बेधि कै रामहि के कर आयो ॥ ६५ ॥ सोरठा ॥ जिनके नाम बिलास अखिल लोक बेधत पतित ॥ तिनको केशवदास सात ताल बेधत कहा ॥ ६६ ॥ राम—तारक छन्द ॥ अति संगति बानर की लघुताई। अपराध बिना बध कौनि बड़ाई ॥ हति बालिहि देउँ तुम्हैं नृप-सिच्छा। अब है कछु मो मन ऐसिय इच्छा ॥ ६७ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां सीताहरणरामसुग्रीवमैत्रीवर्णनन्नामद्वादशः प्रकाशः ॥ १२ ॥

॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ वालि के शीघ्र वध में आपने अंतर्निश्चय को प्रकट करत, मित्रताधिक्य को दिखावत, रामचन्द्र परिहासपूर्वक सुग्रीव सों कहत हैं कि हे सुग्रीव, वानर की संगति अतिलघुता है, काहे ते कि अपराध बिना वध में कछू बड़ाई नहीं है, लघुताइ ही है। परंतु हमारे मन में अब यहै इच्छा है कि वालि को मारि तुम को नृप-शिक्षा दीजै, अर्थात् राजा कीजिये। यह केवल वानरसंगति को प्रभाव है। बिन-काज अकाज करिबो सब वानरन को स्वभाव होत है, तिन की संगति ते तौ सोई स्वभाव भयो चाहै ॥ ६७ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां द्वादशः प्रकाशः ॥ १२ ॥

दोहा ॥ या तेरहें प्रकाश में बालि बध्यो कपिराज ॥ वर्णन वर्षा शरद को उदधि-उलङ्घन-साज ॥ १ ॥ पद्धटिका छन्द ॥ रविपुत्र बालि सों होत जुद्ध। रघुनाथ भये मन माहँ क्रुद्ध ॥ शर एक हन्यो उर मित्रकाम । तब भूमि गिर्‌यो कहि राम राम ॥ २ ॥ कछु चेत भये तेहि बलनिधान । रघुनाथ बिलोके हाथ बान ॥ शुभ चीर जटा शिर श्याम गात । बनमाल हिये उर विप्र-लात ॥ ३ ॥ बालि—तुम आदि मध्य अवसान एक। जग मोहत हौ वपु धरि अनेक॥ तुम सदा शुद्ध सबको समान। केहि हेतु हत्यो करुणानिधान ॥ ४ ॥ राम—सुनु बासव-सुत बुधिबलबिधान । मैं शरणागतहित हते प्रान ॥ यह साँटो लै कृष्णावतार । तब ह्वैहौ तुम संसार पार ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ मित्र जे सुग्रीव हैं, तिन के काम कहे अर्थ। वालि के वध में केवल सुग्रीव ही को हित है, रामचन्द्र को कछु हित नहीं है ॥ २॥३ ॥ जग को आदि कहे उत्पत्ति, मध्य कहे प्रतिपाल, अवसान कहे संहार, एक तुम ही हौ। अर्थात् ब्रह्मरूप ह्वै तुम ही सृष्टि करत हौ, विष्णुरूप ह्वै प्रतिपाल करत हौ, रुद्ररूप ह्वै संहार करत हौ। सो अनेक वपु शरीर धरि कै जग को मोहत हौ, अर्थात् दशरथ के पुत्र रामचन्द्र हैं, इत्यादि मोह बढ़ावत हौ ॥ ४ ॥ साँटो कहे बदलो ॥ ५ ॥

रघुबीर रंक ते राज कीन । युवराज विरत अङ्गदहि दीन ॥ तब किष्किन्धा तारा-समेत । सुग्रीव गये अपने निकेत ॥ ६ ॥ दोहा ॥ कियो नृपति सुग्रीव हति बालि बली रणधीर । गये प्रवर्षण अद्रि को लक्ष्मण श्रीरघुबीर ॥ ७ ॥ त्रिभंगी छंद ॥ देख्यो शुभ गिरिवर, सकल शोभधर, फूल बरन बहु फलन फरे । सँग शरभ ऋक्षजन केसरि के गन, मनहुँ धरणि सुग्रीव धरे ॥ सँग शिवा बिराजै, गजमुख गाजै, परभृत बोलै चित्त हरे । शिर शुभ चन्द्रकधर, परम दिगम्बर, मानों हर अहि-राज धरे ॥ ८ ॥

रामचन्द्र सुग्रीव को रंक कहे दरिद्री ते राजा कीन्हो । सुग्रीव पद को सम्बन्ध रंक राज पदहु में है । विरद, पदवी ॥ ६ ॥ प्रवर्षण नाम जो अद्रि पर्वत है, ता में जाइ वास करचो ॥ ७ ॥ रामचन्द्र कैसो पर्वत देखत भये कि फूल हैं बरन बहु कहे अनेक रंग के, और बहुत फलन सों फरे । बहु पद को सम्बन्ध फलनहू में है । आगे श्लेषोपमा करि वर्णत हैं । शरभ, वानर-नाम-विशेष है, और पशुजाति विशेष । 'शरभस्तु पशौ भिदि करभे वानरे भिदि, इति मेदिनी' ॥ ऋक्ष पर्वतहू में है, सुग्रीवहू के संग जाम्बवंतादि हैं । केसरी कहे सिंह, ताके गण समूह, और केसरी नाम वानर हनुमान् के पिता, तिनके गण सैन्यसमूह । शिवा पार्वती, और शृगाली । गजमुख गणेश, और हस्ती आदि । और वनजीव आदि पद ते गैंड़ा आदि जानो । पर कहे वड़े जे भृत सेवक हैं, नंदिकेश्वरादि, और कोकिल । चन्द्र कहे चन्द्रमा और कपूर । अर्थात् कदली-वृक्षन में कपूर होत है, ते कदली जामें बहुत हैं । अथवा क जल अनेक वापी आदिकन में भरचो है, सो चंद्र कपूर और जल धारण किये । अथवा चन्द्रकधर मोर । 'चन्द्रः कर्पूरकांपिल्यसुधांशुस्वर्ण-वारिषु, इति मेदिनी' । दिगम्बर नग्न दुवौ पक्ष में एकै है । अहिराज वासुकी, और वड़े सर्प ॥ ८ ॥

तोमरछन्द ॥ शिशु सो लसै सँग धाइ । बनमाल ज्यों सुरराइ ॥ अहिराज शोषहि काल । बहुशीश शोभनि माल ॥६॥ स्वागता छंद ॥ चंद मंद दुति बासर देखौ । भूमिहीन भुव-

पाल बिशेखो ॥ मित्र देखि यह शोभत है यों । राजसाज बिनु सीतहि हौं ज्यों ॥ १० ॥ दोहा ॥ पतनी पति बिन दीन अति पति पतनी बिन मंद ॥ चंद बिना ज्यों यामिनी ज्यों बिन यामिनि चंद ॥ ११ ॥ स्वागता छंद ॥ देखि राम बरषा ऋतु आई । रोम-रोम बहुधा दुखदाई ॥ आसपास तम की छबि छाई । राति दिवस कछु जानि न जाई ॥ १२ ॥ मंद-मंद धुनि सों घन गाजैं । तूर तार जनु आवझ बाजैं ॥ ठौर-ठौर चपला चमकैं यों । इंद्र-लोक तिय नाचति हैं ज्यों ॥ १३ ॥ मोटनक छंद ॥ सोहैं घन श्यामल घोर घनैं । मोहैं तिन में बकपाँति नमैं ॥ शंखावलि पी बहुधा जल सों । मानो तिनको उगिलै बल सों ॥ १४ ॥ शोभा अति शक्र-शरासन में । नाना द्युति दीसति है घन में ॥ रत्नावलि सी दिवि-द्वार भनो । बर्षागम बाँधिय देव मनो ॥ १५ ॥

शिशु, बालक । धाय माता ते अन्य जो आपनो स्तन दूध पियावति है, और वृक्षविशेष । सुरराइ कहे विष्णु, ते वनमाल पहिरे हैं । पर्वत में वनकी माला पंगति समूह इति है । अर्थात् बड़ो वन है । बहुशीश सहस्र-शिर, और बहुत शीश सों सोहैं वृक्ष ॥ ६ ॥ दिन में द्युतिहीन चन्द्रमा को देखि रामचन्द्र लक्ष्मण सों कहत हैं । मित्र, सूर्य । अथवा मित्र लक्ष्मण को सम्बोधन है ॥ १० ॥ ११ ॥ एकादश छन्दन मों जैसो वर्णन कर्‍यो है, ऐसी वर्षा ऋतु आई देखि कै रामचन्द्र कलहंस, कलानिधि, खंजन, कंज, या तेईसएँ छन्द में जे वचन हैं ते कहत भये, इति शेषः ॥ १२ ॥ तूर, नगारे । तार, उच्चस्वर ॥ १३ ॥ १४ ॥ दिवि-द्वार कहे आकाश के द्वार में । रत्नावलि पद ते रत्नन के बन्दनवार जानौ । बड़े की अवाई में वन्दनवार बाँधिबे की रीति प्रसिद्ध है ॥ १५ ॥

तारक छंद ॥ घन घोर घने दशहू दिशि छाये । मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये ॥ अपराध बिना क्षिति के तन ताये । तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये ॥ १६ ॥ अतिगाजत बाजत

दुंदुभि मानो। निरघात सबै पविपात बखानो॥ धनु है यह गोरमदाइनि नाहीं। शरज़ाल बहै जलधार बृथाहीं॥ १७॥ भट चातक दादुर मोर न बोलै। चपला चमकैं न फिरैं खग खोलै॥ द्युतिवंतन को विपदा बहु कीन्हीं। धरनी कहँ चन्द्रबधू धरि दीन्हीं॥ १८॥

तीनि छन्द को अन्वय एक है। ग्रीष्म ऋतु में अतितेज सों सूर्य क्षिति पृथ्वी के तन ताये तप्त कस्यो है। जो कोऊ काहू को बिन दोष दुख देइ, ता को दण्ड करिबो राजन को उचित है; सो इंद्र देवन के राजा हैं, ता सों सूर्य को उचित दीर्घ दण्ड दियो, जा सों ऐसो अब न करैं। उत्प्रेक्षा करि यह राजनीति प्रकट देखायो। अथवा पृथ्वी को अशरण जानि कै। अशरण को सहाय करिबो बड़ेन को उचित है, तासों। अथवा पृथ्वी को स्त्री जानि कै, स्त्री की रक्षा करिबो बड़ेन को उचित है, तासों। दुन्दुभि कहे जे गजादि वाहन पर चमू के आगे नगारे बाजत हैं। निर्घात कहे जाको वज्र-शब्द सब कहत हैं, सो नहीं है। सबै कहे जेते निर्घात होत हैं, तेते पवि कहे वज्र के पात गिरिबो बखानो कहे कहत हैं। अर्थात् जै बार निर्घात होत है, सो निर्घात नहीं है, बारबार इन्द्र सूर्य पै वज्र चलावत हैं, ताही को शब्द होत है। सम कहे बराबरि अर्थात् जैसे अत्रि की स्त्री के उर में देख्यो, तैसे याके उर में देख्यो है। गोरमदाइनि कहे इन्द्रधनुष नहीं है, प्रत्यक्ष धनुष है। गोरमदाइनि इन्द्रधनुष को नाम पश्चिम में प्रसिद्ध है। और वर्णनानुसार हू सों प्रकट होत है। कहूँ गोरसदायन नाहीं पाठ है। तौ गो जे किरणैं हैं ते रसद कहे मेघन के अयन कहे घर में, मध्य में इति, नहीं है, प्रत्यक्ष धनुष है। सूर्य की किरणैं मेघन में परि इन्द्रधनुष होत है, यह प्रसिद्ध है। खड्ग कहे तरवारि। द्युति ते चन्द्र-शुक्रादि। तौ एक की चूक सों जातिमात्र को दण्ड बड़े कोप को जनावत है। चन्द्रवधू, वीरवहूटी। रसराज में कह्यो है, नवलवधू उर-लाजते इन्द्रवधू सी होइ॥ १६॥ १७। १८॥

तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर की सी। उर में हम चन्द्रकला-सम दीसी॥ बरषा न सुनै किलकैं किल काली। सब जानत हैं महिमा अहिमाली॥ १६॥ घनाक्षरी॥ भौहैं सुरचाप चारु

प्रमुदित पयोधर भूषण जराय ज्योति तड़ित रलाई है। दूरि करी सुख मुख-सुखमा शशी की नैन अमल कमलदल दलित निकाई है॥ केशौदास प्रबल करेनुकागमन-हर मुकुत सु हंसकशबद सुखदाई है। अम्बरबलित मति मोहै नीलकंठ जू की कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है॥ २०॥

सम कहे बराबरि। अर्थात् जैसे अत्रि की स्त्री के उर में देख्यो है, तैसे या के उर में देख्यो है। अनसूया को पातिव्रत देखि ब्रह्मा, विष्णु, महेश पुत्र होवे की इच्छा करि गर्भ में आय चन्द्रमा, दत्तात्रेय, दुर्वासा के रूप सों यथाक्रम अवतार लियो है। कथा पुराणन में प्रसिद्ध है। अहि-माली महादेव और सर्पन की माला। वर्षागमन में सर्प अति प्रसन्न होत हैं॥ १६॥ कैसी है वर्षा, जा में अनेक गृह-पतन चौरादि के भौ कहे डर हैं। और सुरचाप कहे इन्द्रधनुष है। चारु, सुन्दर। और प्रमुदित कहे प्रसन्न हैं पयोधर मेघ जा में। और भू कहे पृथ्वी और ख कहे आकाश में नजराइ कहे देखि परति है ज्योति जा की, ऐसी तड़ित जो बिजुरी है, ता की तरलता है। और दूरि कीन्हो है सुख कहे सहज ही मुख की सुखमा शोभा शशी कहे चन्द्रमा की। अर्थात् चन्द्रप्रकाश नहीं होन पावत। और नै जे नदी हैं, ते न कहे नहीं हैं अमल निर्मल। अर्थात् नदिन को जल म्लान ह्वै जात है। और कमलन को दल समूह दलित होत है। और निकाई कहे काई सों रहित है। अथवा कमलदल की दलित है निकाई जा में। केशवदास कहत हैं कि रेणुका जो धूरि है ता को गमन-हर प्रबल है, क कहे जल जा में। अर्थात् ऐसो जल चारोंओर भयो है, जासों धूरि नहीं उड़ति। और मुकुत कहे त्यक्त है हंसक जे हंस हैं तिन को सुखदायी शब्द जा में। वर्षा में हंस उड़ि जात हैं, यह प्रसिद्ध है। और अम्बर जो आकाश है, ता में बलित कहे युक्त नीलकण्ठ जे मोर हैं तिन की मति को मोहै कहे प्रसन्न करति है। कालिका कैसी है कि भौंहैं हैं सुरचाप इन्द्रधनुष हू ते चारु जा की। और प्रमुदित कहे उन्नत हैं पयोधर स्तन जा के। भूषनन में जराइ कहे जराऊ जो ज्योति है, ता में तड़ित जो बिजुरी है, ता की तरलाई चंचलता। अथवा भूषण में जड़ाऊ की जो ज्योति है सो जटित-सम रलाई कहे योजित है। अर्थात् भूषणन में रत्नन की ज्योति बिजुरीसम दमकति है।

रत्नजटित भूषण जड़ाऊ कहावत हैं। और दूरि कीनी है सुख-मुख कहे सहज मुख ही सों शशी जो चन्द्र है ता की सुखमा शोभा। अर्थ यह कि सहजमुख ऐसो छविवारो है कि जामें चन्द्रद्युति मन्द होति है। और अमल कहे स्वच्छ जे नयन हैं, तिन करिकै कमलदल की निकाई दलित है। अर्थात् जिनके नयनन के आगे कमलन की छवि दलि जाति है। और केशवदास कहत हैं कि प्रबल कहे नीको जो करेणुका हस्तिनी को गमन है, ताकी हरनहारी है। और मुकुत कहे छूट्यो अर्थात् उच्चरित जो हंसक कहे बिछुवान को शब्द है, सो है सुखदायी जाको। अर्थात् जाके चलत में सुखदायक अनेकन रंग को बिछुवान को शब्द होत है। और अम्बर जो वस्त्र है, तामें वलित युक्त नीलकण्ठ जे महादेव हैं, तिनकी मति को मोहन है। इहाँ काली-पद ते पार्वती जानो ॥ २० ॥

तारक छंद ॥ अभिसारिनि-सी समुझैं परनारी। सतमारग मेटन को अधिकारी ॥ मति लोभ महामद मोह छई है। द्विजराजसुमित्र प्रदोषमई है ॥ २१ ॥ दोहा ॥ बरणत केशव सकल कबि बिषम गाढ़ तमसृष्टि ॥ कुपुरुष-सेवा ज्यों भई संतत मिथ्यादृष्टि ॥२२॥ चन्द्रकला छन्द ॥ कलहंस कलानिधि खंजन कंज कछू दिन केशव देखि जिये। गति आनन लोचन पाँयन के अनुरूपक-से मन मानि लिये ॥ यहि काल कराल ते शोधि सबै हठि कै बरषा मिस दूरि किये। अब धौं बिन प्राण-प्रिया रहिहैं कहि कौन हितू अवलम्बि हिये ॥ २३ ॥

सत् कहे उत्तम मार्ग, यथोचित कुलांगनन की रीति, और राजमार्गादि, ग्राम ते ग्रामान्तर की राह इति। कि लोभ और महामद और मोह सों छई मति बुद्धि है। वर्षा द्विजराज चन्द्रमा और सुमित्र सूर्य तिन के दोषमयी है। अर्थात् चन्द्र सूर्य को उदय नहीं होन पावत। और मति द्विजराज ब्राह्मण और सुष्ठु मित्र इन के दोषमयी है। या सों या जानो कि लोभ-मद-मोहयुक्त प्राणी मित्रदोष द्विजदोष करत नहीं डरत ॥ २१ ॥ विषम कहे भयानक जो गाढ़ तम अन्धकार है, ताकी सृष्टि कहे वृद्धि में मिथ्या दृष्टि भई, जैसी कुपुरुष की सेवा में होति है तैसी सकल कवि वर्णत हैं। अर्थात् जब

कुपुरुष की सेवा कोऊ करत है, तब वाहि यह देखि परत है कि कछू पाइ हैं, जब कछू ना पायो तब पूर्णदृष्टि मिथ्या होत भई, तैसे जा दृष्टि सों सब विषय पदार्थ देखि परत हैं, ताही दृष्टि सों वर्षा के अंधकार में निकट-गत वस्तु नहीं देखियत, पूर्णदृष्टि मिथ्या होति है ॥ २२ ॥ अनुरूपक कहे प्रतिमा । जा वस्तु के वियोग सों विकलता होति है, ताकी प्रतिमा देखि कछू बोध होत है । यह जो हमारो कराल कहे भयानक काल कहें समय है, जामें सीयवियोगादि दुःख भये, ताही काल में वर्षा को ब्याज करि हम को दुःख देबे को तिनहुन कलहंसादिकन को दूरि कीन्हो ॥ २३ ॥

दोहा ॥ बीते बरषाकाल यों आई शरद सुजाति ॥ गये अँध्यारी होति ज्यों चारु चाँदनी राति ॥ २४ ॥ मोटनक छन्द ॥ दन्तावलि कुंदसमान गनो । चंद्रानन कुन्तल चौंर घनो ॥ भौंहैं धनु खंजन नैन मनो । राजीवनि ज्यों पद पानि भनो ॥ २५ ॥ हारावलि नीरज ही पर में । हैं लीन पयोधर अम्बर में ॥ पाटीर जुन्हाइ हि अंग धरे । हंसी गति केशव चित्त हरे ॥ २६ ॥ श्रीनारद की दरशै मति सी । लोपै तमताप अकीरति सी ॥ मानौ पतिदेवनकी रति को । सतमारग की समुझै गति को ॥ २७ ॥

सुजाति कहे उत्तम ॥ २४ ॥ द्वै छन्द को अन्वय एक है । शरद को स्त्रीरूप करि कहत हैं । कुन्द के जे पुष्प हैं, तेई दन्तन की अवली पंगति हैं । कुन्द शरत्काल में फूलत है यह कवि-नियम है । और चंद्रमा जो है सोई आनन मुख है । चन्द्रमा वर्षा के मेघन में मूँद्यो रहत है, शरत्काल में प्रकाशित होत है । और सब राजा शरत्काल में पूजन करि धनुष-चामर आदि धारण करत हैं । सो चौंर जेहैं तेई कुंतल केशपाश हैं । घनो कहे अति सघन । और धनुष जे हैं तेई भौंहैं हैं । और शरत्काल में खञ्जन आवत हैं, तेई नयन हैं । और राजीव कहे कमल फूलत हैं, तेई पद और पाणि कहे कर हैं । और स्वाती नक्षत्र की वर्षा सों नीरज मोती होत हैं, तिन की हारावलि हृदय में है जाके । और पयोधर जे मेघ हैं, ते अम्बर कहे आकाश में लीन हैं, मिले हैं । स्त्री-पक्ष में पयोधर कुच अम्बर वस्त्र में

लीन हैं। और जुन्हाई जो है सोई पाटीर कहे चन्दनलेप हैं। शरत्पक्ष में हंसीगति कहे हंसन की गति, स्त्रीपक्ष में हंसन की ऐसी गति। इन सब करिकै सब के चित्त को हरे है वश करे है॥ २५॥ २६॥ तमताप, अन्धकार और तमोगुण। नारद सतोगुणी हैं। पतिदेव जे पतिव्रता हैं, तिनकी रति प्रीति को मानौ कहे जानौ। अर्थात् शरत्काल नहीं है, पतिव्रतन की प्रीति है। प्रीति कैसी है पतिसेवा आदि जे सत् कहे उत्तम मार्ग हैं, तिन की गति कहे तिन विषे गमन समुझति कहे जानति है। शरत् कैसी है, सत् कहे उत्तम जे मार्ग राह हैं, तिन की गति कहे प्रभाव को समुझै कहे जानति है। अर्थात् वर्षा करिकै गति जे सत्मार्ग हैं, तिन को प्रकट करति है॥ २७॥

दोहा॥ लक्ष्मण दासी बृद्ध-सी आई शरद बजाति॥ मनहुँ जगावन को हमहिं बीते बर्षा-राति॥ २८॥ कुण्डलिया॥ ताते नृप सुग्रीव पै जैये सत्वर तात। कहियो बचन बुझाइ कै कुशल न चाहौ गात॥ कुशल न चाहौ गात चहत हौ बालिहि देखो। करहु न सीता-सोध काम बस राम न लेखो॥ राम न लेखो चित्त चही सुख-सम्पति जाते। मित्र कह्यो गहिबाँह कानि कीजत है ताते॥२९॥ दोहा॥ लक्ष्मण किष्किन्धा गये बचन कहे करि क्रोध॥ तारा तब समुझाइयो कीन्हो बहुत प्रबोध॥ ३०॥ दोधक छन्द॥ बोलि लये हनुमान तबै जू। लावहु बानर बोलि सबै जू॥ बार लगै न कहूँ बिरमाहीं। एकन को उर है धर माहीं॥३१॥त्रिभंगी छन्द॥ सुग्रीव-सँघाती, मुखदुति राती, केशव साथहि सूर नये। आकास बिलासी, सूर-प्रकासी, तबहीं बानर आइ गये॥ दिशि दिशि अवगाहन, सीतहि चाहन, जूथपजूथ सबै पठये। नल नील ऋक्षपति, अंगद के सँग, दक्षिण दिशि को बिदा भये॥ ३२॥

जैसे वृद्ध दासी के शुक्ल रोमन करि सर्वांग शुक्ल होत हैं, तैसे याहू शुक्ल है। तासों वृद्धदासी-सम कह्यो। लक्ष्मण सम्बोधन है॥ २८॥

सत्वर कहे शीघ्र। चित्त चही कहे न मानी ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ साथहि कहे लक्ष्मण के साथहि रामचन्द्र के पास आइ गये। लक्ष्मण इति शेषः। सूरप्रकाशी कहे सूर्य को ऐसो है प्रकाश जिनको ॥ ३२ ॥

दोहा ॥ बुधि-बिक्रम-व्यवसाय-युत साधु समुझि रघुनाथ ॥ बल-अनंत हनुमंत के मुँदरी दीन्हीं हाथ ॥ ३३ ॥ हीरक छन्द ॥ चंड चरण छंडि धरणि मंडि गगन धावहीं। तत्क्षणसिय दक्षिण दिशि लक्ष्य नहीं पावहीं ॥ धीरधरन वीरबरन सिंधु तट सुभावहीं। नाम परम धाम धरम रामकरम गावहीं ॥ ३४ ॥

बुद्धि-पद सों दान-उपाय जानो, काहे ते बुद्धिमान् हठ नाहीं करत, समय विचारि दान-उपाय सों कार्य साधत हैं। और विक्रम कहे अतिबल। विक्रमस्त्वतिशक्तिता इत्यमरः। या सों दण्ड-उपाय जानो, बली अतिबल सों दण्ड करि कार्य साधत हैं। व्यवसाय कहे यत्न सों भेद-उपाय जानो, यत्नी पुरुष अनेक यत्न करि मन्त्रीआदिकन में भेद करिकै कार्य साधत हैं। और साधु-पद ते साम-उपाय जानो, साधु प्राणी मिलाप ही सों कार्य साधत हैं। सो यासों समयोचित चारि हू उपाय करि कार्य साधिबे के लायक हनुमान् को समुझिकै, बल कहे सैन्य अनन्त है, ताके मध्य में हनुमन्त के हाथ में रामचन्द्र मुँदरी दीन्ही ॥ ३३ ॥ तत्क्षण कहे जब रामचन्द्र की आज्ञा पाई, ताही क्षण चण्ड कहे प्रचण्ड चरणन सों धरणी पृथ्वी को छंडि कै, अर्थात् अति वेगसों कूदि कै, गगन कहे आकाश को मण्डि कै भूषित करिकै, अर्थात् आकाशमार्ग ह्वै कै धावत हैं। सीता को लक्ष्य कहे खोज नहीं पावत। धीर के धरनहार जे वीरबरन वीरस्वरूप सब हैं, ते सिन्धु के तट में सुभाव ही सों धरम को परम कहे बड़ो धाम जो राम-नाम है, और कर्म बालिवधआदि, तिन्हैं गावत हैं। धीरधरन कहि या जनायो कि यद्यपि खोज नहीं सीता को पायो, परन्तु धीर को धरे हैं, अधीर नहीं भये। तौ जहाँ ताईं खोज पाइ हैं, तहाँ ताईं ढूँढ़ि हैं। और सुभाव ही कहि या जनायो कि कछु भय मानि कै राम-नाम को नहीं गावत ॥ ३४ ॥

अंगद-अनुकूल छन्द ॥ सीय न पाई अवधि बिनासी। होहु सबै सागरतटबासी ॥ जो घर जैये सकुच अनंता। मोहिं

न छोड़ै जनकनिहंता ॥ ३५ ॥ हनुमान्—अंगद रक्षा रघुपति कीन्हो। शोध न सीता जल थल लीन्हो॥ आलस छाँड़ो कृत उर आनो। होहु कृतघ्नी जनि सिख मानो॥ ३६ ॥ अंगद—दंडक ॥ जीरन जटायु गीध धन्य एक जिन रोकि रावण बिरथ कीन्हो सहि निज प्रानहानि । हुते हनुमंत बलवंत तहाँ पाँच जन दीने हुते भूषण कछूक नररूप जानि॥ आरत पुकारत ही रामराम बारबार लीन्हो न छँड़ाय तुम सीता अतिभीत मानि। गाय द्विज राज तिय काज न पुकार लागै भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि ॥ ३७ ॥ दोहा ॥ सुनि संपाति सपक्ष ह्वै रामचरित सुख पाय॥ सीता लङ्का माँझ हैं खगपति दई बताय ॥ ३८ ॥ दंडक ॥ हरि को सो बाहन की बिधि को सो हेमहंस लीक सी लिखत नभबाहन के अंक को। तेज को निधान राममुद्रिकाविमान कैधौं लक्ष्मण को बान छूट्यो रावन निशंक को ॥ गिरि-गज-गंड ते उड़ान्यो सुबरन अलि सीता-पदपङ्कज सदा कलंक रंक को। हवाई सी छूटी केशौदास आसमान में कमान को सो गोला हनुमान चल्यो लंक को ॥ ३९ ॥

मास दिवस की अवधि दियो है । यथा वाल्मीकीये—अधिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च। मासे पूर्णे निवर्तध्वमुदयं प्राप्य पर्वतम् ॥ १ ॥ ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् वध्यो भवेन्मम ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जीरण वृद्ध ॥ ३७ ॥ चन्द्रमा ऋषि को आशीर्वाद रह्यो है कि सीता के खोज को वानर ऐहैं, तिन्हैं मिले पक्ष तेरे जामिहैं । तुलसीकृत रामायण में प्रसिद्ध है ॥ ३८ ॥ सदा कलंक ही को रंक कहे दरिद्र अर्थात् कलंकरहित जो सीतापद-पंकज हैं । कमान तोप को नाम पश्चिम में प्रसिद्ध है, और गोला के साहचर्य सों अतिनिश्चित है । यथा भूषणकवि—छूटत कमानन के गोली तीर वानन के मुसकिल जात मुरचान हू के ओट में। ताही समै शिवराज दाव करी पैंड़ा पर दै सुरंग हला को हुकुम कस्यो गोट में। भूषण

भनत कहाँ किम्मति कहाँ लौं देखी हिम्मति इहाँ लौं सरजा के भट-जोट में। ताउ दै दै मोछन कँगूरन मैं पांउ दै दै घाउ दै दै अरिमुख कूदे जाय कोट में॥ ३९॥

दोहा॥ उदधि नाकपति-शत्रु को उदित जानि बलवंत॥ अन्तरिच्छ ही लच्छि पद अच्छ छुयो हनुमन्त॥ ४०॥ बीच गये सुरसा मिली और सिंहिका नारि॥ लीलि लियो हनुमंत तिहि कढ़े उदर कहँ फारि॥ ४१॥

उदधि जो समुद्र है, तामें नाकपति जे इन्द्र हैं, तिनको शत्रु मैनाक, ताको उदित कहे आपने विश्राम के लिये उठ्यो जानि कै, अंतरिक्ष ही कहे आकाश ही सों लक्षि कहे देखि कै, बलवन्त जे हनुमन्त हैं, तिन ता मैनाक के बोध के लिये अच्छ कहे स्वच्छ जो पद हैं, तिनसों छुयो, स्पर्शमात्र कस्यो। काहे ते कि वाल्मीकीय रामायण में लिख्यो है कि हनुमान् मैनाक सों आपनी प्रतिज्ञा कह्यो है कि मध्य में विश्राम न करि हैं। यथा—त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते। प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहांतरा॥ अथवा पद के सदृश अच्छ सों छुयो, अर्थात् जैसे पद सों स्पर्श करि लघु विश्राम करनो रहै, तैसे केवल दृष्टि सों स्पर्श करि विश्राम कियो॥ ४०॥ सिंहिका ने हनुमन्त को लीलि लियो॥ ४१॥

तारक छन्द॥ कछु राति गये करि दंशदशा सी। पुर माँझ चले बनराजविलासी॥ जब हीं हनुमंत चले तजि शंका। मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका॥ ४२॥ लंका—कहि मोहिं उलंघि चले तुम को हो। अति सूच्छम रूप धरे मन मोहो॥ पठये क्यहि कारन कौन चले हो। सुर हौ किधौं कोउ सुरेश भले हौ॥ ४३॥ हनुमान्—हम बानर हैं रघुनाथ पठाये। तिनकी तरुणी अवलोकन आये॥ लंका—हति मोहिं महामति भीतर जैये॥ हनुमान्—तरुणीहि हते कबलौं सुख पैये॥ ४४॥ लंका—तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहौ। हठ कोटि करौ घर ही फिरि जैहौ॥ हनुमंत बली तिहि थापर मारी। तजि देह भई तबही बर

नारी ॥ ४५ ॥ लंका—चौपाई ॥ धनदपुरी हौं रावण लीनी । बहु-विधि पापन के रस भीनी ॥ चतुरानन चित चिंतन कीन्हो । बर करुणा करि मो कहँ दीन्हो ॥ ४६ ॥ जब दशकंठ सिया हरि लैहैं । हरि हनुमंत विलोकन ऐहैं ॥ जब वह तोहिं हतै तजि शङ्का । तब प्रभु होइ विभीषण लङ्का ॥ ४७ ॥ चलन लगो जब हीं तब कीजो । मृतकशरीरहि पावक दीजो ॥ यह कहि जात भई वह नारी । सब नगरी हनुमंत निहारी ॥ ४८ ॥

दंश कहे डाँस । या में कोऊ सन्देह करत हैं कि दंशरूप धरि कै गये तो मुद्रिका कैसे लैगये ? ता लिये और अर्थ करिदंश कहे सिंह । करिणं हस्तिनं दशतीति करिदंशः। ताको रूप करि चले। तौ सिंह को और श्वान को रूप एक होत है, ताही सों श्वान को नाम ग्रामसिंह है। श्वान को ग्राम में जैसो साधारण रहत है । तासों श्वान को रूप धरि कै गये ॥ ४२ ॥ सूक्ष्म कहे लघु, श्वान के अर्थ में सूक्ष्म कहे तुच्छ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ धनद, कुवेर ॥ ४६ ॥ हरि, वानर ॥ ४७ ॥ मृतकशरीर कहे पुरीरूप मृतकशरीर । लङ्का ने या प्रकार को वर माँग्यो है, ताही लिये हनुमान् लङ्का पुरी को जारि हैं ॥ ४८ ॥

तब हरि रावण सोवत देख्यो । मणिमय पलका की छबि लेख्यो ॥ तहँ तरुणी बहु भाँतिन गावैं । बिच बिच आवझ बीन बजावैं ॥ ४६ ॥ मृतक चिता पर मानहुँ सोहै । चहुँदिशि प्रेतबधू मन मोहै ॥ जहँ जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो । सिय बिन है सिगरो पुर सूनो ॥ ५० ॥ भुजङ्गप्रयात छंद ॥ कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं । सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं ॥ कहूँ यक्षिणी पक्षिणी लै पढ़ावैं । नगीकन्यका पन्नगी को नचावैं ॥ ५१ ॥ पियैं एक हाला गुहैं एक माला । बनी एक बाला नचैं चित्रशाला ॥ कहूँ कोकिला कोक की कारिका को । पढ़ावैं सुआ लै शुकी सारिका को ॥ ५२ ॥ फिरयो देखि कै राजशाला सभा को । रह्यो रीझि कै वाटिका की प्रभा को ॥ फिरयो बीर चौहूँ

चितै शुद्ध गीता। त्रिलोकी भली सिंसिपामूल सीता॥ ५३॥

॥ ४९ ॥ ५० ॥ किन्नरी, सारंगी। बाँसुरी में गीत गावती हैं। अथवा बाँसुरीसम गीत गावती हैं ॥ ५१ ॥ हाला, मदिरा। सुष्ठु जे आलय घर हैं, तिन में शुकी और सारिका मैना कोकिला जे हैं ते कोकशास्त्र की कारिका पढ़ावती हैं। अथवा स्त्री कोकिलासम पढ़ावती हैं ॥ ५२ ॥ या प्रकार सब स्थानन में फिस्यो। सो ऐसी राजशाला-सभा कहे राजभवन में तिन की सभा को देखि कै रीझि रह्यो। अथवा या प्रकार राजशाला और राजसभा को देखि कै रीझि रह्यो। जब सीता को तहाँ न देख्यो, तब वाटिका की प्रभा को फिस्यो; अर्थात् वाटिका को गमन कस्यो। शुद्धगीता सीता को विशेषण है। शिंशिपा सीसौ, अथवा अगुरु। पिच्छिलागुरुशिंशिपा इति विश्वः ॥ ५३ ॥

धरे एकबेनी मिली मैल सारी। मृणाली मनो पङ्क सों काढ़ि डारी॥ सदा रामनामै ररै दीन बानी। चहूँ बीर हैं एक सी दुःखदानी॥ ५४॥ असी बुद्धि सी चित्त-चिंता न मानो। कियो जीभ दन्तावली में बखानो॥ किधौं घेरि कै राहु-नारीन लीनी। कला चन्द्र की चारु पीयूषभीनी॥ ५५॥ किधौं जीव की ज्योति मायान लीनी। अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी॥ मनो शम्बरस्त्रीन में कामबामा। हनूमान ऐसी लखी रामरामा॥ ५६॥ तहाँ देवद्वेषी दशग्रीव आयो। सुन्यो देवि सीता महा दुःख पायो॥ सबै अंग लै अंग ही में दुरायो। अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो॥५७॥ रावण—सुनो देवि मो पै कछू दृष्टि दीजै। इतो सोच तो रामकाजै न कीजै॥ बसैं दण्डकारण्य देखै न कोऊ। जु देखै महा बावरो होय सोऊ॥ ५८॥

पङ्कसदृश मैली सारी है। कहूँ पंक शोकाधिकारी पाठ है। तौ मानों पंकयुक्त मृणाली है। शोकाधिकारी कहे अति शोकयुक्त। दुहुन को विशेषण है ॥ ५४॥५५॥ संसार-विवेकिनी बुद्धि अविद्या है, ईश्वर-विवेकिनी बुद्धि विद्या है। रामा, स्त्री ॥ ५६ ॥ अति लाज भय सों अङ्ग सिकोरि कै बैठी ॥ ५७ ॥ चारि छन्द को अन्वय एक है। रावण कहत है कि हे देवि, ऐसे जे

रामचन्द्र हैं, तिन को शोच ना करो, हम जे तुम्हारे सदा दास हैं तिन पै कृपा काहे नाहीं करियत, जासों अदेवी दैत्य-स्त्री देवांगना तिनकी रानी होउ। और वाणी सरस्वती, मघोनी इन्द्राणी, मृड़ानी पार्व्वती तुम्हारी सेवा करैं। और किन्नरी सारंगी लिये किन्नरी किन्नर-कन्या तुम्हारे समीप गीत गावैं। और सुकेशी और उर्वशी नाचैं। तुमसों मान कहे आदर पावैं। यामें आपनो प्रभाव देखायो कि ये सब इन्द्रादि मेरे आज्ञाकर हैं। रामचन्द्र कैसे हैं, दण्डकारण्य में बसत हैं, अर्थात् वनवासी हैं, और ऐसे छिपे रहत हैं कि जिनको कोऊ कबहूँ देखत नहीं, और जो देखत है सो महाबावरो आपने तन की और भवनादि की सुधि भूलि जात है। यासों या जनायो कि जो बावरो होत है ताही को संग्रह कोऊ नाहीं करत, और वे ऐसे हैं कि जिन को देखत औरऊ बावरो होत है, तासों शोच करिबे लायक नहीं हैं। अनाथ के अनुसारी कहे अनुगामी हैं, अर्थ यह कि काहू बड़े के अनुगामी नहीं हैं। "तुम्हैं देवि दूषै हितू ताहि मानैं"—इत्यादि दुवौ वचन भेद उपाय के हैं। सरस्वती उक्तार्थ—हे देवि, हे जगदम्ब, हम पर कछु कृपादृष्टि दीजै, अर्थात् तुम्हारी नेक कृपादृष्टि सों हमारो भलो होत है। और रामचन्द्र के काज एतो शोच काहे को करती हो, रामचन्द्र शोचनीय नहीं हैं। काहे ते, वे ऐसे प्रतापी हैं कि निर्ज्जन दण्डकारण्य में बसत हैं। आशय यह कि अति निर्भय हैं। और देखै न कोऊ, अर्थात् योगीजन जिनके देखिबे को अनेक ध्यानादि उपाय करत हैं, ताहू पै दर्शन नहीं पावत। सो छठयें प्रकाश में कह्यो है कि "सिद्ध समाधि सजैं अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई।" और जो देखत है, अर्थात् जाको दर्शन होत है, सो महाबावरो होत है, अर्थ यह कि बावरे के समान संसार-सुख को त्याग करि जीवन्मुक्त ह्वै जात है। अथवा बावरे के समान देह की सुधि नहीं रहति, जैसे सुतीक्ष्ण को भयो। अथवा महाबावरो महादेव होइ, अर्थात् महादेव के सम प्रभाव को प्राप्त होइ॥ ५८॥

कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहैं। हितू नग्न मुण्डीन ही को सदा हैं॥ अनाथै सुन्यो मैं अनाथानुसारी। बसैं चित्त दण्डी जटी मुण्डधारी॥ ५६॥ तुम्हैं देवि दूषैं हितू ताहि मानैं। उदासीन तो सों सदा ताहि जानैं॥ महानिर्गुणी नाम ताको

न लीजै। सदा दास मो पै कृपा क्यों न कीजै ॥ ६० ॥ अदेवी नृदेवीन की होहु रानी। करैं सेव बानी मघोनी मृड़ानी ॥ लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं। सुकेशी नचैं उर्वशी मान पावैं ॥ ६१ ॥

कृत जो कर्म हैं तिन के हंता नाशकर्त्ता हैं, अर्थात् शुभाशुभ कर्म के बंधन तोरि दासन को मुक्त करत हैं। और कु जो पृथ्वी है ता के दाता हैं, अर्थात् पूर्ण पृथ्वी के दाता हैं; वामनरूप ह्वै बलि सों लै इन्द्र को दियो। और कु जो पृथ्वी है, ताकी कन्या जे तुम हौ, तिन्हैं चाहत हैं। और नग्न और मुण्डी जे तपस्वी हैं, तिनके हितू हैं। और अनाथ कहे जिन को नाथ स्वामी कोऊ नहीं है, आशय यह कि आप ही सबके नाथ हैं। और अनाथ कहे अशरण जे दीन हैं, तिनके अनुसारी अनुगामी हैं। जाको रक्षक कोऊ नहीं है ताकी रक्षा करिबे को आपु पाछे-पाछे फिरत हैं; जैसे गज और प्रह्लाद की रक्षा कीन्ही। और दण्डी, जटी और मुण्डधारी जे तपस्वी हैं, तिनके चित्त में बसत हैं; अर्थात् ते राजा को सदा ध्यान करत हैं। अथवा दण्डी, जटी और मुण्डधारी ऐसे जे महादेव हैं, तिनके चित्त में बसत हैं। और द्रव्यरूप लक्ष्मी को जे दूषत हैं, और उदासीन रहत हैं, ते दास विष्णु को अति प्रिय हैं। और निर्गुणी कहे प्राकृत गुणन करि रहित हैं, अर्थात् जिनके अति उत्कृष्ट गुण हैं। यथा वायुपुराणे—सत्त्वादिगुणहीनत्वान्निर्गुणो हरिरीश्वरः ॥ और ता नाम कहे ताको नाम ऐसो है, जा करिकै नहीं लीजियत। अर्थात् जाके नाम को शिव आदि देव सब जपत हैं। अथवा महानिर्गुणी कहे रज-सत्त्व-तमोगुण करि रहित है, और ताको नाम नहीं लीजियत है, अर्थात् जाके नाम को जप नहीं है, ऐसी जो ब्रह्मज्योति है, सो है। अथवा हे देवि, जे तुम्हैं दूषत हैं, तिन्हैं कहा हितू मानत हैं, अर्थात् हितू नहीं मानत; जो तुम्हारो रंचकऊ विरोधी है, ताहि रामचन्द्र परम विरोधी मानत हैं। जयन्त आदि को जानो। और तोसों उदासीन है, ताहू को कहा हितू मानत हैं, अर्थ यह कि ताहू को चाहै आपनो परम हितू हू होइ पै विरोधी ही जानत हैं। सीय के खोज को वानर पठाइवे में सुग्रीव उदासीनता कस्यो, प्रेम करि आपुही सों वानर न पठायो, तब कोप करि लक्ष्मण सों विरोधीसम वचन कहि पठावन आदि यासों जानो। और महानिर्गुणी कहे उत्कृष्ट गुणन करि

युक्त जे रामचन्द्र हैं, तिनको नाम कहा ना लीजै, अर्थ यह कि लीजै। कारण, ताही के नाम सों मुक्ति प्राप्त होति है। मैं तुम्हारो सदा दास हौं। मो पै कृपा काहे नाहीं कीजत। सेवक पै कृपा करिबो स्वामी को उचित है। अदेवीन की रानी होहु, इत्यादि वचन आशीर्वादात्मक हैं कि तुम ऐसे सुख को प्राप्त होहु॥ ५९॥ ६०॥ ६१॥

मालिनी छंद॥ तृण बिच दइ बोली सीय गंभीर बानी। दशमुख शठ को तू कौन की राजधानी॥ दशरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै। निशिचर बपुरा तू क्यों नश्यो मूल नासै॥ ६२॥ अतितनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी। खल खर शरधारा क्यों सहै तिच्छ ताकी॥ बिडकन घन घूरे भक्षि क्यों बाज जीवै। शिव-शिर-शशि-श्री को राहु कैसे सु छीवै॥ ६३॥

पतिव्रतन को परपुरुष सों सम्भाषण अनुचित है, तासों तृण कहे खर को अन्तर कस्यो। यह लोकमर्य्यादा है। अथवा तृण अन्तर में करि या जनायो कि हम प्राण को तृणसमान समुझे हैं, जो तू स्पर्श करि है, तौ प्राण तृणसमान छोड़ि देहैं। अथवा रावण को जनायो कि तू तृणसमान है, काहे ते कि गम्भीर वाणी बोलीं, याते कछू भय नहीं सूचित होत। कोऊ कोऊ तृण अञ्चल हू को कहत हैं। तो अञ्चल ओट सों बोलीं, या जानौ। तेरो तो मूल तव हीं नाशि गयो रहै जब हम को हरि ल्यायो रहै, तामें कछू लग्यो है ताको ऐसी बातैं कहि अब नीकी भाँति सों काहे को नाशत है॥ ६२॥ तनु कहे सूक्ष्म। विद, पुरीष। तेरो राज्यसुख विडकनसदृश है, हम बाजसदृश हैं। हम शिव-शिर के शशि-सदृश हैं, तू राहु-सदृश है॥ ६३॥

उठि उठि शठ ह्याँ ते भागु तौ लौं अभागे। मम बचन बिसर्पी सर्प जौ लौं न लागे॥ बिकल सकुल देखौं आशु ही नाश तेरो। निपट मृतक तो को रोष मारे न मेरो॥ ६४॥ दोहा॥ अवधि दई द्वै मास की कह्यो राकसिन बोलि। ज्यों समुझै समुझाइयो युक्तिछुरी सों छोलि॥ ६५॥ चामर छंद॥ देखि-

देखिकै अशोक राजपुत्रिका कह्यो । देहि मोहिं आगि तैं जु अंग आगि ह्वै रह्यो ॥ ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई । आसपास देखि कै उठाय हाथ कै लई ॥ ६६ ॥ तोमर छंद ॥ जब लगी सियरी हाथ । यह आगि कैसी नाथ ॥ यह कह्यो लखि तब ताहि । मणिजटित मुँदरी आहि ॥ ६७ ॥ जब बाँचि देख्यो नाउ । मन पर्यो संभ्रम-भाउ ॥ आबाल ते रघुनाथ । यह धरी अपने हाथ ॥ ६८ ॥ बिछुरी सु कौन उपाउ । केहि आनियो यहि ठाँउ ॥ सुधि लहौं कौन उपाउ । अब काहि बूझन जाँउ ॥ ६९ ॥ चहुँ ओर चितै सत्रास । अवलोकियो आकास ॥ तहँ शाख बैठो नीठि । तब पर्यो बानर डीठि ॥७०॥

हमारे वचनन में विसर्पी विप्रसरणशील जे सर्प हैं । इहाँ सर्पपद ते शाप जानौ । ते जब लौं तेरे अंगन में नहीं लागे । अर्थ यह कि जैसे सर्प के काटत ही प्राण छूटत हैं, तैसे हमारे शाप सों तेरो प्राण छूटि जैहै । अथवा हमारे वचन ही जे विसर्पी कहे प्रसरणशील सर्प हैं, ते जब लौं तेरे अंगन में नहीं लागे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ अरुणपत्रयुक्त अशोकवृक्ष विरह सों दाहक अग्निसम देखिपरत है, तासों सीताजू कह्यो कि तिहारो सर्वांग आगिसम ह्वै रह्यो है, सो तू हमको आगि देहि, जामें जरि कै दुसह रामवियोग को ताप मिटाइये । इति भावार्थः ॥ ६६ ॥ सियरी, शीतल ॥ ६७ ॥ आबाल ते कहे लरिकाइँ ही सों ॥ ६८ ॥ सुधि कहे खबरि ॥ ६९ ॥ नीठि कहे मरू करि कै ॥ ७० ॥

तब कह्यो को तू आहि । सुर असुर मो तन चाहि ॥ कै पक्ष पक्ष-विरूप । दशकण्ठ वानररूप ॥ ७१ ॥ कहि आपनो तू भेद । नतु चित्त उपजत खेद ॥ कहि बेगि बानर पाप । नतु तोहिं देहौं शाप ॥ तब वृक्ष-शाखा रूमि । कपि उतरि आयो भूमि ॥ ७२ ॥ पद्धटिका छन्द ॥ कर जोरि कह्यो हौं पवनपूत । जिय जननि जानु रघुनाथदूत ॥ रघुनाथ

कौन ?, दशरत्थनंद। दशरत्थ कौन ?, अजतनयचंद॥ ७३॥ केहि कारण पठये यहि निकेत ?, निज देन लेन संदेशहेत॥ गुण रूप शील शोभा सुभाउ। कछु रघुपति के लक्षण बताउ॥७४॥ अति यदपि सुमित्रानंद भक्त। अति सेवक हैं अति शूर शक्त॥ अरु यदपि अनुज तीनो समान। पै तदपि भरत भावत निदान॥ ७५॥ ज्यों नारायण उर श्री बसंति। त्यों रघुपतिउर कछु द्युति लसंति॥ जग जितने हैं सब भूमिभूप। सुर असुर न पूजैं रामरूप॥ ७६॥ सीता—निशिपालिका छंद॥ मोहिं परतीति यहि भाँति नहिं आवई। प्रीति कहि धौं सु नर बानरनि क्यों भई॥ बात सब बर्नि परतीति हरि त्यों दई। आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई॥ ७७॥ दोहा॥ आँसु बरषि हियरे हरषि सीता सुखद सुभाइ॥ निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि बरनति हैं बहु भाइ॥ ७८॥

पक्ष जो है ज्ञातिवर्ग, तासों विरूप कहे अन्यरूप॥ ७१॥ खेद, डर। पाप, छल। यह छंद छः चरण को है, तासों गाथा जानो। यथा वृत्तरत्नाकरे—शेषं गाथास्त्रिभिः षड्भिश्चरणैश्चोपलक्षिताः॥ माघ को दूसरो छंद छः चरण को है॥ ७२॥ ७३॥ कछु कहे गुणादिकन में काहू को लक्षण कहौ॥ ७४॥ शक्त, समर्थ॥ ७५॥ न पूजैं कहे, समता नहीं करत॥ ७६॥ ७७॥ भाइ कहे अभिप्राय॥ ७८॥

पद्धटिका छंद॥ यह सूर-किरण तमदुःखहारि। शशिकला किधौं उरशीतकारि॥ कल कीरति सी शुभ सहितनाम। कै राज्यसिरी यह तजी राम॥ ७९॥ कै नारायणउर-सम लसंति। शुभ अंकन ऊपर श्री बसंति॥ बर विद्या सी आनंददानि। युत-अष्टापद मन शिवा मानि॥ ८०॥ जनु माया अक्षर-सहित देखि। कै पत्री निश्चय दानि लेखि॥ प्रिय प्रतीहा-

रिनी सी निहारि । श्रीरामो-जय-उच्चार-कारि ॥ ८१ ॥ पिय पठई मानो सखि सुजान । जगभूषण को भूषण-निधान ॥ निज आई हम को सीख देन । यहि किधौं हमारो मरम लेन ॥ ८२ ॥

हमारो तम अंधकार के सदृश जो दुःख है, ताकी हरनहारी है, तातें । कै धौं सूर्य की किरण है । कल कहे अविघ्न । मुद्रिका में रामनाम लिख्यो है । और कीरति हू जा प्राणी की होति है, ताके नाम के साथ ही रहति है । प्रथम ताको नाम कहि कीरति कही जाति है । राज्यश्री हू को रामचंद्र छोंड़्यो है, और याहू को छोंड़्यो है ॥ ७९ ॥ नारायण के उर में अंक जो गोद है, ता पै श्री वसति है । अथवा अंक कहे श्रीवत्सादि चिह्न पर श्री वसति है । मुद्रिका में श्रीरामो जयति लिख्यो है । तहाँ रामो जयति इन अंकन के ऊपर श्री अंक लिख्यो है । शिवा पार्वती के पक्ष में अष्टापद कहे पशु, पशुपद ते सिंह अथवा वृषभ जानो ॥ अष्टापदः शारिफले सुवर्णे स्त्री पशौ पुमान् । इत्यमरः ॥ मुद्रिकापद ते सुवर्ण ॥ ८० ॥ अक्षर, विष्णु, और अंक । प्रिय जे रामचंद्र हैं, तिन की प्रतीहारिणी चोपदारिनी है । या में श्रीरामो जयति लिख्योहै, प्रतिहार को नामोच्चारण करिवो धर्म है ॥ ८१ ॥ सखी कैसी है, जग के जितने भूषण गहने हैं, तिनको जो भूषण कहे भूषिवो है ताको निधान भाँड़ा है । अर्थात् अनेक प्रकार सों भूषण पहिराइवे में चतुर है, और मुद्रिका कैसी है कि जगभूषण जे रामचन्द्र हैं, तिनके भूषण को निधान कहे भाँड़ा है । अर्थात् जब याको रामचन्द्र पहिरत हैं, तब अनेक भूषण पहिरे सम अपना को मानत हैं । अथवा जब या मुद्रिका को धारण करत हैं, तब अनेक भूषण पहिरे समान छवि होति है । अथवा जग के जे भूषण गहने हैं, तिनको जो भूषण है, सो निधान कहे भाँड़ा है, अर्थात् मोहर है । सब राज्य को व्यवहार मोहर के अंकन सों सही होत है ॥ ८२ ॥

दोहा ॥ सुखदा सिखदा अर्थदा यशदा रसदातारि ॥ रामचन्द्र की मुद्रिका किधौं परम गुरुनारि ॥ ८३ ॥ बहुवरणा सहजप्रिया तमगुणहरा समान । जगमारग-दरशावनी सूरज-किरणसमान ॥ ८४ ॥

परम गुरुनारि कैसी है, कोमलभाषणादि करि कै सुखदा है । और सिखदाता

है कि कुलांगनन को ऐसो करिबो उचित है सो करौ। और अर्थ जो प्रयोजन है, ताकी दाता है कि स्त्रीन को प्रतिव्रत सों देवलोक-गमन होत है। यह पतिव्रत में देवलोकगमनरूप जो प्रयोजन है ताको देति है। और पतिव्रत साधन करिबे को यश देति है। और अनेक वचन चातुर्य्यादि रस कहे गुण देति है। और मुद्रिका कैसी है कि दर्शन सों सुखदा है। और सिखदाता है, काहे ते कि शिक्षा दियो कि धैर्य्य धरो। और अर्थ प्रयोजन की दाता है, काहे ते कि रामचन्द्र को संदेशरूप हमारो प्रयोजन रह्यो ताको दियो। अथवा अर्थ जो ज्ञान है ताकी दाता है। और अतिमूल्याधिक्य सों जाके पास रहै, ताको यशदाता है। और रस कहे प्रेम की दाता है। अर्थात् रामचन्द्र के प्रति प्रेम बढ़ावनहारी है॥ शृंगारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः। इत्यमरः॥ ८३॥ बहुबरणा कहे बहुत हैं बरण रंग अथवा अक्षर जिनके। और सहज मिया दुवो हैं। तमगुण अंधकार और अज्ञान। सूरज-किरण जग के मारग को राह देखावति हैं। और मुद्रिका हू जगमारगदर-शावनी है। काहे ते कि जहाँ रामचन्द्र हैं तहाँ की राह देखाई, जा मारग ह्वै हमारो मन रामचन्द्र के निकट गयो॥ दोहा क्षेपक है॥ ८४॥

श्री पुर में बन मध्य हम तू मग करी अनीति। कहि मुँदरी अब तियन की को करिहै परतीति॥ ८५॥ पद्धटिका छन्द॥ कहि कुशल मुद्रिके राम-गात। पुनि लक्ष्मणसहित समान तात॥ यह उत्तर देति न बुद्धिवंत। केहि कारण धौं हनुमंत संत॥ ८६॥ हनुमान्—दोहा॥ तुम पूछत कहि मुद्रिके मौन होति यहि नाम॥ कङ्कण की पदवी दई तुम बिन या कहँ राम॥ ८७॥ दण्डक॥ दीरघ दरीन बसैं केशोदास केसरी ज्यों केसरी को देखि बन करी ज्यों कँपत हैं। बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चपत हैं॥ केका सुनि व्याल ज्यों बिलात जात घनश्याम घनन के घोरन जवासो ज्यों तपत हैं। भौंर ज्यों भँवत बन जोगी ज्यों जगत रैनि साकत ज्यों रामनाम तेरोई जपत हैं॥ ८८॥

श्री जो राज्यश्री है, तेहि पुर में अयोध्या में रामचन्द्र को छोड़ि दियो, और वन के मध्य में हम छाँड़्यो, राम मग में तू छाँड़्यो। सो हे मुँदरी, कहौ तियन की अब को परतीति करि है, अर्थात् काऊ ना करिहै ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ तुम्हारे विरह सों रामचन्द्र ऐसे दुर्बल भये हैं, जासों याको कङ्कण के स्थान मों पहिरत हैं, इति भावार्थः ॥ ८७ ॥ सीता जू सों हनुमान् कहत हैं कि हे सीता, तुम्हारे विरह सों रामचन्द्र ऐसी दशा को प्राप्त हैं कि दीरघ दरीन में केसरी जो सिंह है ताके समान बसत हैं। जैसे सिंह भूमिहीं में सोवत बैठत है, कछू शयनादि-सुख की इच्छा नहीं करत, तैसे रामचन्द्र हैं। और केसरी पद श्लेष है। करी कहे हस्ती के पक्ष में सिंह जानौ। रामपक्ष में केसरी केसरि, केसरि उद्दीपक है, तासों। और वासर जो दिन है ताकी संपत्ति कहे लक्ष्मी, शोभा इति। ताको उलूक जो घूघू पक्षी-विशेष है, ताके समान नहीं देखत। घूघू को दिन को देखि नहीं परत। और रामचन्द्र को अनेक वस्तु देखि विरह-उद्दीपन होत है, तासों दिन में इत-उत नहीं निरखत हैं। और चन्द्रमा को देखि चक्रवाक-समान चपत हैं। चन्द्रमा विरह-उद्दीपन है, तासों। और केका जो मोर की वाणी है, ताको सुनि व्याल जो सर्प हैं, ताके समान बिलात जात हैं। सर्प भक्षण के भय सों, और रामचन्द्र विरहवर्द्धन-भय सों। केका वाणी मयूरस्य। इत्यमरः॥ और घनश्याम कहे सजल जे घन मेघ हैं, तिनको जो घोर शब्द है, तासों जवासे-सम तपत हैं। जवासो जलवृष्टि सों निज जरिबो जानि कै, और रामचन्द्र के विरहाग्नि ज्वलित होति है, तासों। और वन में ठौर-ठौर भौंरसम भवँत रहत हैं। और जैसे योगी ध्यान-धारणादि करत राति बितावत हैं, तैसे तुम्हारे वियोग सों विकल जे रामचन्द्र हैं तिनको रात्रि हू में निद्रा नहीं आवति। और जैसे साकत शाक्त कहे देवी को उपासक देवी को नाम जपत है, तैसे राम तिहारोई नाम रात्रि-दिन जपत हैं ॥ ८८ ॥

हनुमान्–बारिधर छंद ॥ राजपुत्रि यक बात सुनौ पुनि। रामचन्द्र मन माहँ कही गुनि ॥ राति दीह जमराज-जनी जनु। जातनानि तन जानत कै मनु ॥ ८९ ॥

दीह कहे बड़ी जो राति है, सो जानौ यमराज की जनी कहे किंकरी है। ता राति करिकै कृत जो यातना पीड़ा हैं ताको कि हमारो तन जानत है

किं मन जानत है, जा पै वीतति है । अर्थात् कहिवे लायक नहीं है, अति बड़ी है । और यम-किंकरनहू करिकै कृत यातना कहिवे लायक नहीं होति, अतिकठोर होति है । तासों यमकिंकरी-सम कह्यो ॥ ८९ ॥

दोहा ॥ दुख देखे सुख होहिगो सुख नहिं दुःख विहीन । जैसे तपसी तप तपै होत परम-पद-लीन ॥ ९० ॥ बरषा-बैभव देखि कै देखी सरद सकाम । जैसे रण में कालभट भेंटि भेंटियत बाम ॥ ९१ ॥ दुःख देखि कै देखिहों तव सुख आनँदकंद । तपन-ताप तपि द्यौस-निशि जैसे शीतल चंद ॥ ९२ ॥ अपनी दशा कहा कहौं दीप-दशा सी देह । जरत जाति वासर-निशा केशव सहित सनेह ॥ ९३ ॥ सुगति सुकेशि सुनैनि सुनि सुमुखि सुदंति सुश्रोनि । दरशावैगो बेगि ही तुमको सरसिज-योनि ॥ ९४ ॥ हरिगीत छंद ॥ कछु जननि दे परतीति जासों रामचन्द्रहि आवई । शुभ शीश की मणि दई यह कहि सुयश तुव जग गावई ॥ सब काल ह्वैहौ अमर अरु तुम समर-जय-पद पाइहौ । सुत आजु ते रघुनाथ के तुम परमभक्त कहाइहौ ॥ ९५ ॥

तुमको हमारे विरहकृत जो दुःख है, ताके अनन्तर मिलापरूप सुख ह्वैहै इति भावार्थः ॥ ९० ॥ वैभव, ऐश्वर्य । जैसे वर्षा विताइ शरद को भेंट्यो, तैसे रावणादिकन को मारि तुमको भेंटि हैं । इति भावार्थः ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ और आपनी दशा कहा कहिये, तुम्हारे स्नेह प्रेम सहित जो देह है सो स्नेह तैल सहित दीप-दशा कहे दीप की वाती सम वासर-निशा कहे रातों-दिन जरत जाति है ॥ ९३ ॥ सुन्दर है श्रोणि कहे कटि जाकी । कटिश्रोणिक-कुद्मतीत्यमरः ॥ सरसिज-योनि ब्रह्मा तुमको मोहिं दरशावैगो । मोहिं इति शेषः ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो । पुनि जंबुमाली मन्त्रिसुत अरु पञ्च मन्त्रि सँहारियो ॥ रण

मारि अक्षकुमार बहु बिधि इन्द्रजित सों युद्ध कै। अति ब्रह्मशस्त्र प्रमाण मानि सुबश भयो मन शुद्ध कै॥ ६६॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचन्द्रचंद्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां हनुमद्बन्धनन्नामत्रयोदशः प्रकाशः॥ १३॥

जम्बुमाली प्रहस्त नाम मन्त्री को पुत्र है। यथा वाल्मीकिये—स दृष्टो राक्षसेंद्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली॥ जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्द्धरः॥ १॥ पुनः पञ्चमन्त्रिण उक्ताः—वाल्मीकीये—विरूपाक्षं च यूपाक्षं दुर्द्धर्षं चैव राक्षसम्॥ प्रघसम्भासकर्णं च पञ्च सेनाग्रनायकान्॥ ६६॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां त्रयोदशः प्रकाशः॥ १३॥

दोहा॥ या चौदहें प्रकाश में ह्वैहै लंकादाह। सागर-तीर मिलान पुनि करि हैं रघुकुलनाह॥ १॥ रावण—विजयछंद॥ रे कपि कौन तु, अक्ष को घातक दूत बली रघुनंदन जी को। को रघुनन्दन, रे त्रिशिरा-खर-दूषण-दूषण भूषण भू को॥ सागर कैसे तस्यो, जस गोपद, काज कहा, सिय-चोर हि देखो। कैसे बँधायो, जु सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो॥ २॥ रावण—चामर छंद॥ कोरि कोरि यातनानि फोरि फोरि मारिये। काटि काटि फारि माँसु बाँटि बाँटि डारिये॥ खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहु रे। पौंरि टाँगि रुंड-मुंड लै उड़ाइ जाहु रे॥ ३॥ विभीषण—दूत मारिये न राजराज छोड़ि दीजई। मन्त्र मित्र पूछि कै सु और दंड कीजई॥ एक रङ्क मारि क्यों बड़ो कलङ्क लीजई। बुंद सोकिगो कहा महासमुद्र छीजई॥ ४॥

मिलान कहे विश्राम॥ १॥ हम तेरी स्त्री को सोवत में दृग सों छुयो,

अर्थात् देख्यो, ता पातक सों बाँधे गये। तू रामचन्द्र की स्त्री को हरि ल्यायो है, तेरी अतिदुर्गति ह्वै है, इति भावार्थः ॥ २ ॥ हनुमान् के कठोर वचन सुनि कोप करि रावण राक्षसन सों कहत है कि कोरि कोरि कहे करोरि करोरि जे यातना बाधा हैं, नख-दन्त-तर्जन-दण्ड-घातादि सों फोरि फोरि कहे जामें चर्म फोरि रुधिर कढ़ि आवै, या प्रकार सों मारि डारो। कहूँ ताजनानि पाठ है, तौ ताजन कहे चाबुक। और खाल खैंचि कुठारादि सों हाड़न के स्थान में काटि कै और छुरिकादि सों फारि कै ताको माँसु बाँटि बाँटि डारिये कहे आपनो आपनो हींसा करि लीजिये। और हाड़ खैंचि कै कहे निकारि कै भूँजि भूँजि के खाइ डारो। रुण्ड पद ते रुण्ड की खाल जानो। अर्थ यह कि रुण्ड की खाल में तृणादि भरि कै सबके देखिबे के लिये पौरि में कहे पुर-द्वार में टाँगि देहु। और मुण्ड को लैकै उड़ाइ कहे उड़िकै राम-पास जाउ। राम-पास इति शेषः। जासों मुण्ड चीन्हि रामचन्द्र दूत को मार्यो जानि दुःख पावैं। इति भावार्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥

तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि बाससी। लै अपार रार ऊन दून सूत सों कसी ॥ पूँछ पौनपूत की सवाँरि बारि दी जहीं। अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात भो तहीं ॥ ५ ॥ चंचरी छन्द ॥ धामधामनि आगि की बहु ज्वालमाल बिराजहीं। पौन के झकझोर ते झँझरी झरोखन भ्राजहीं ॥ बाजि बारण शारिका शुक मोर जोरन भाजहीं। क्षुद्र ज्यों बिपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं ॥ ६ ॥ भुजङ्गप्रयात छन्द ॥ जटी अग्नि-ज्वाला अटा श्वेत हैं यों। शरत्काल के मेघ संध्या समै ज्यों ॥ लगी ज्वाल धूमावली नील राजैं। मनो स्वर्ण की किंकिणी नाग साजैं ॥ ७ ॥ लसैं पीत छत्री मढ़ी ज्वाल मानौ। ढके ओढ़नी लङ्क बक्षोज जानौ ॥ जरे जूह नारी चढ़ी चित्रसारी। मनो चेटका में सती सत्य धारी ॥ ८ ॥ कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े। मनो ईश-रोषाग्नि में काम डाढ़े ॥ कहूँ कामिनी ज्वालमालानि भोरैं। तजैं लाल सारी अलङ्कार तोरैं ॥ ९ ॥

तूल, रुई। वाससी, वस्त्र ॥ ५ ॥ झँझरी के जे झरोखा कहे छिद्र हैं, तिन में भ्राजहीं कहे शोभित हैं। जैसे क्षुद्र प्राणी जाके पास रहत हैं, ताको कछु विपत्ति परै तो सहाय नहीं करत, ताको छोड़ि कै भागत हैं, लजात नहीं हैं, तैसे अग्नि-दाह की जो विपत्ति है, तामें चारणादि सब भागत भये ॥ ६ ॥ नाग कहे हाथी ॥ ७ ॥ वक्षोज कुच के सम पीत छत्री, छतुरी हैं। ओढ़नी-सम अग्निज्वाल है ॥ ८ ॥ भौंरैं कहे भ्रम सों। अलङ्कार, स्वर्णभूषण ॥ ९ ॥

कहूँ भौन राते रचे धूमछाहीं। शशी सूर मानो लसैं मेघ माहीं ॥ जरैं शस्त्रशाला मिली गन्धमाला। मिलै अद्रि मानो लगी दावज्वाला ॥ १० ॥ चली भागि चौहूँ दिशा राजधानी। मिली ज्वालमाला फिरैं दुःखदानी ॥ मनो ईश बाणावली लाल लोलैं। सबै दैत्यजायान के संग डोलैं ॥ ११ ॥ सवैया ॥ लङ्क लगाइ दई हनुमन्त बिमान बचे अति उच्च रुखी है। पाचि फटैं उचटैं बहुधा मणि रानी रटैं पानी पानी दुखी है ॥ कंचन को पघिल्यो पुर पूर पयोनिधि में पसरेऽतिसुखी है। गङ्ग हजारमुखी गुनि केशौ गिरा मिली मानो अपार मुखी है ॥ १२ ॥

शशी कहे श्री जो प्रताप है त्यहिसहित। प्रताप-रहित सूर्य को रंग श्वेत है, प्रतापसहित अरुण है, तासों शशी कह्यो। अथवा कि शशी कहे चन्द्रमा, त्यहि सहित मानो सूर्य लसत हैं। अर्थ यह कि जब चन्द्रयुक्त सूर्य होत हैं तब सूर्यग्रहण होत है, सो मानो ग्रहण-समय में सूर्य शोभित हैं इत्यर्थः। और या मानो सूर्य मेघन में शोभित हैं। यथा सिद्धांतरहस्ये—छादयत्यर्कमिन्दुरिति ॥ सर्पसम शस्त्र हैं। चंदनगंधसम गंध हैं ॥ १० ॥ महादेव त्रिपुर के भस्म करिबे को बाण चलायो है, ते बाण दैत्यजाया जे दैत्यस्त्री हैं, तिनके भागत में तन में लागि भस्म कस्यो है, मानो तेई हैं। बाणावलीसम ज्वालामाला हैं, दैत्यजायासम राक्षसी हैं ॥ ११ ॥ पाचि कहे पन्नामणि। अथवा पाचि कहे पाकि कै फटैं कहे फूटति हैं। ते मणि बहुधा उचटती हैं कहे उछरती हैं। गंग को सहस्रमुखी कहे सहस्रधारा है समुद्र को मिलीं। गुणि कै गिरा जो सरस्वती हैं सो मानो अति सुखी है कै अपार कहे

अगण्यमुखी ह्वै कै समुद्र को मिली हैं। सुवर्ण-द्रव सरस्वतीके जल सम है॥ १२॥

दोहा॥ हनुमत लाई लंक सब बच्यो विभीषण धाम। ज्यों अरुणोदय-बेर में पङ्कज पूरब याम॥ १३॥ संयुता छंद॥ हनुमन्त लंक लगाइ कै। पुनि पूँछ सिन्धु बुझाइ कै॥ शुभ देखि सीतहि पाँ परे। मणि पाय आनँद जी भरे॥ १४॥ रघुनाथ पै जब हीं गये। उठि अङ्क लावन को भये॥ प्रभु मैं कहा करणी करी। शिर पाय की धरणी धरी॥ १५॥ दोहा॥ चिन्तामणि सी मणि दई रघुपति-कर हनुमन्त। सीताजी को मन रँग्यो जनु अनुराग अनन्त॥ १६॥

हनुमान् करिकै लाई कहे जारी जो जरति सब लंका है, तामें वच्यो जो विभीषण को धाम है, सो ज्वालमध्य कैसो शोभित है, जैसे पूर्वयाम कहे प्रथम पहर अरुण जे सूर्य हैं तिनके उदय के बेर में कहे समय में पंकज कमल शोभित है। जैसे कमल रात्रि को मुकुलित रहत है, भात ही सूर्योदय होत अति प्रफुल्लित ह्वै प्रकाश को प्राप्त होत है, तैसे रावण के प्रभाव-रूपी जो रात्रि है, तामें विभीषण को धाम को उदासीन रह्यो, सो लंका में रामप्रतापरूपी सूर्योदय सों घामसम जो अग्नितेज है, तामें शोभित भयो। पूर्वयाम काहि या जनायो कि ज्यों ज्यों सूर्यसम प्रताप अधिक उदय को प्राप्त ह्वै हैं, त्यों त्यों कमलसम विभीषण को घर अधिक प्रकाश को प्राप्त ह्वै है, इति भावार्थः। पूर्वयाम यासों कह्यो कि मेघादि करिकै आच्छादित ह्वै मेघन सों कहि तृतीय आदि पहर हू में उदित कहावत है॥ १३॥ वाल्मीकीय रामायण में कह्यो है कि लंकादाह कै हनुमान् पश्चात्ताप कर्‌यो है कि यामें सीता हू जरि गई ह्वै हैं, तासों फेरि सीता के पास जाइ सीता को शुभ कहे सकुशल देखि कै मणिसम पाइकै आनन्द जी में भरत भये। जैसे कछू मणि-रत्न पाये आनन्द होत है तैसो भयो॥ १४॥ १५॥ १६॥

दोधक छन्द॥ श्रीरघुनाथ जबै मणि देखी। जी महँ भाग्य दशा-सम लेखी॥ फूलि उठ्यो मनु ज्यों निधि पाई। मानहुँ अन्ध सु दीठि सुहाई॥ १७॥ तारक छन्द॥ मणि होहि नहीं

मनु आहि सिया को। उर में प्रगट्यो तन प्रेम दिया को॥ सब भागि गयो जु हुतो तम छायो। अब मैं अपने मन को मत पायो॥ १८ ॥ दरशै हमको विन ही दरशाये। उर लागति आइ बरयाइ लगाये॥ कछु उत्तर देति नहीं चुप साधी। जिय जानति है हमको अपराधी॥ १९ ॥ हनुमान्–कछु सीयदशा कहि मोहिं न आवै। चर का जड़ बात सुने दुख पावै॥ शर सो प्रतिवासर बासर लागै। तन घाव नहीं मन प्राणन खागै॥ २० ॥

भाग्य की दशा कहे अवस्था ॥ १७ ॥ प्रिया प्रिय के मन सों मन मिले अति प्रेम प्रकट होत है, यह प्रसिद्ध है। सो रामचन्द्र कहत हैं कि ता मणि को देखि प्रेमरूपी जो दिया कहे दीपक है, ताको तनु कहे स्वरूप, ज्योति इति, हमारे उरमें प्रकट भयो। तासों यह सीता को मन है, जा दीप के प्रकट भये सों हमारे मन में जो तम अन्धकार छायो रहै, सो सब भागि गयो। तो इहाँ तमपद ते अज्ञान अथवा वियोग-दुःख जानो। ता तम से हमारे मनको रावण-वचनरूप अथवा कर्त्तव्य-वस्तु-विचाररूप जो मत हिरानो रहै, ताको पायो ॥ १८ ॥ अब यह दरशायेहू कहे हमारी ओर निहारो यह कहे हू पर हम को नहीं दरशै कहे देखति, अर्थात् हमारी ओर नहीं निहारति। और जब बरयाइ कहे जबरई आपने हाथन सों उरमें लगाइयत है, तब लागति है, आपनी ओर सों नहीं लागति ॥ १९ ॥ चर कहे जंगम मनुष्य आदि, जड़ वृक्ष आदि। प्रतिवासर कहे रोज-रोज, अर्थात् निरन्तर। वासर जो दिन हैं, अथवा राग-भेद, जो रावण के मंदिरन में नित्य राग होत है, सो सीता के शर कहे बाणसम लागत है। सो शर के लागे तन में घाव होत है, पै वा शर के लागे तन में घाव नहीं होत। और मन और प्राणन में खागै कहे लपटात है। अर्थात् मन और प्राणन को छेदत है। वासरो रागभेदेह्नीत्यभिधानचिन्तामणिः ॥ २० ॥

प्रति अंगन के सँग ही दिन नासै। निशि सों मिलि बाढ़ति दीह उसासै॥ निशि नेकहु नींद न आवति जानो। रवि की छबि ज्यों अधरात बखानो॥ २१ ॥ घनाक्षरी ॥

भौंरनी ज्यों भ्रमत रहति बनबीथिकानि हंसिनी ज्यों मृदुल मृणालिका चहति है। हरिनी ज्यों हेरति न केशरी के काननहि केका सुनि व्याली ज्यों बिलान ही चहति है॥ पीउ पीउ रटत रहति चित चातकी ज्यों चन्द चितै चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है। सुनहु नृपति राम बिरह तिहारे ऐसी सूरति न सीताजू की मूरति गहति है॥ २२॥

शरद ऋतु सों शिशिर-पर्यंत दिनमान घटत है, रात्रिमान बाढ़त है। सो हनुमान् शरदऋतु में गये, और लंका जारि कै शरदमें अथवा हेमन्त में रामचन्द्र के पास आये ह्वै हैं। सोई रामचन्द्र सों कहत हैं कि जैसे या समय के दिन मर्याद करिकै नाशै कहे घटत हैं, तैसे सीता के सब अंग घटत हैं, दूबरे होत हैं। और ज्यों ज्यों निशा बाढ़ति है, त्यों त्यों दीह उसास बाढ़ति हैं। दूसरो अर्थ खुलो है। अधराति में जैसे रवि की छवि नेक नहीं रहति, तैसे सीता को राति को नींद नहीं आवति। अधरात कहि अति विनिद्रता जनायो। जैसे तुलसीकृत सों कह्यो है कि सिरिस-कुसुम कहुँ वेधत हीरा॥ २१॥ भौंरनी-सम बन अशोक-वाटिका की वीथिकानि में कहे गलीन में भ्रमत रहति है। अथवा मन करिकै वन-वीथिकानि में भ्रमत रहति है। तुम्हारो वियोग वनही में भयो है, तासों सीता को मन वन-वन भ्रम्यो करत है। हंसिनी सुख भाव से, सीता शीतलता के लिये। केशरी, सिंह। और कुंकुम-हरिणी वध-भय सों, सीता विरहोद्दीपन-भय सों॥ २२॥

सीताजूको संदेश—दोहा॥ श्रीनृसिंह-प्रहलाद की बेद जु गावत गाथ। गये मासदिन आशुही झूठी ह्वै है नाथ॥२३॥ आगम कनककुरङ्ग के कही बात सुख पाइ। कोपानल जरि जाय जनि शोक-समुद्र बुड़ाइ॥ २४॥

नृसिंह-रूप ह्वै खंभ को फारि निकसि प्रहलाद की रक्षा करी, यह जो गाथा वेद गावत हैं, सो हम प्रति रावण-कृत जे अवधि मास के दिन हैं, तिनके गये कहे बीते, आशु ही कहे जल्दी ही झूठी ह्वै है। अवधि-दिन बीते रावण हम को मारि डारि है, तब सब कहि हैं कि साक्षात् स्त्री सीताकी रक्षा रावण सों न करी, तो असम्बन्धी प्रह्लाद

की रक्षा कहा करी है है इति भावार्थः । जे रावण-कृत अवधि-दिन तेरहें प्रकाश में कह्यो है, अवधि दई द्वै मास की, सो जानो । अथवा मास-दिन कहे एक महीना गये कहे बीते । अर्थात् एक महीना के बाद हम प्राण छोड़ि देहैं । वाल्मीकीय में कह्यो है–इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः । जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मजम् । ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते ॥ २३ ॥ राजसुता यक मन्त्र सुनो । अब चाहत हौं भुवभार हनो ॥ अब पावक में निज देहहि राखहु । छाया शरीर मृगै अभिलाखहु ॥ या प्रकार राक्षसन को मारि भुवभार हरिबो कह्यो रहै, सो बात कोपानल में जरन न पावै, और शोकरूपी समुद्र में डूबन न पावै । ता बात की रक्षा तुम को नीके प्रकार सों करिबे है ॥ २४ ॥

राम–दंडक ॥ साँचो एक नाम हरि लीन्हे सब दुख हरि और नाम परि हरि नरहरि ठाये हौ । वानर नहीं हौ तुम मेरे वानरोषसम बलीमुख शूर बलीमुख निज गाये हौ ॥ शाखामृग नाहीं बुद्धि-बलन के शाखामृग कैधौं वेद-शाखामृग केशव को भाये हौ । साधु हनुमन्त बलवन्त यशवन्त तुम गये एक काज को अनेक करि आये हौ ॥ २५ ॥ हनुमान्–तोमर छंद ॥ गइ मुद्रिका लै पार । मणि मोहिं ल्याई वार ॥ कह कस्यो मैं बल-रङ्क । अतिमृतक जारी लङ्क ॥ २६ ॥

सीता को संदेश दै कै हमारो सब दुःख तुम हरि लीन्हो, ताते हरि यह जो तुम्हारो नाम है सो साँचो है । हरति दुःखमितिहरिः, अर्थात् जो दुःख को हरै सो हरि कहावै । सो तुम नरहरि कहे नृसिंह हौ, और नाम जो नर है ताको परिहरि कहे छोड़ि कै हरि एते नाम सों ठाये कहे युक्त हौ । यासों या जनायो कि प्रह्लाद के समान तुम हमारो दुःख हस्यो है । अथवा और जे नाम हैं इन्द्रादिक, तिन को परिहरि कहे छोड़ि कै, नरहरि कहे नृसिंह यह जो नाम है ताके सम ठाये हौ । अर्थात् इन्द्रादिकन की समता करिबे लायक तुम नहीं हौ, विक्रमादि करिकै तुम नृसिंह के समान हौ । मेरे बाण को जो रोष क्रोध है, ताके सम हौ, अर्थात् जैसे हमारे बाण को क्रोध निष्फल नहीं होत, तैसे तुम निष्फल नहीं होत; जो कार्य करिबो

चाहौ सो करि ही आओ। अथवा मेरे वाण के सम हौ, और मेरे रोप के सम हौ। कहूँ वाण-रस-सम पाठ है। तौ वाण को जो रस कहे वल है, ताके सम हौ। अर्थ यह कि जैसे हमारे वाण में वल है, तैसे तुम्हारे वल है। शृंगारादौ विषे वीर्ये द्रवे रागे गुणे रस इत्यमरः। हे वलीमुखशूर, अर्थात् वलीमुख जे वानर हैं, तिन में शूर कहे वीर बली जे बलवान् हैं तिनके मुखन करिकै निज कहे निश्चय करिकै गाये हौ, अर्थात् वड़े वड़े वलवान् तुम्हारो वखान करत हैं। और शाखा जे वृक्ष-शाखा हैं तिनके मृग कहे गामी तुम नहीं हौ, वुद्धि-वलन की जे शाखा हैं, तिनके गामी हौ। अर्थात् अनेक वुद्धिवल करि कारज साधत हौ। और या वेद की जे कला आदि शाखा हैं तिनके मृग कहे गामी हौ। अर्थात् वेदाध्ययन में प्रवीण हौ। एक कार्य्य सीय-खोज, अनेक कार्य्य लङ्कादाह आदि॥ २५। २६॥

अति हत्यो वालक अच्छ। लै गयो बाँधि विपच्छ॥ जड़ वृक्ष तोरे दीन। मैं कहा विक्रम कीन॥ २७॥ तिथि बिजय-दशमी पाइ। उठि चले श्रीरघुराइ॥ हरि-यूथ-यूथप संग। बिन पक्ष केते पतंग॥ २८॥

विपक्ष कहे शत्रु जो मेघनाद है, सो मोहिं बाँधि लै गयो॥ २७॥ शरत्काल में सीता के ढूँढ़िवे के लिये वानरन को रामचन्द्र पठायो है, और मास-दिवस की अवधि दई है, सो समुद्रतट में अंगद कह्यो है—सीय न पाई अवधि विताई॥ तौ शीतकाल के मास सों अधिक दिन वीते। और अमरकोश में कह्यो है कि "द्वौ द्वौ माघादिमासौ स्यादृतुः।" या मत सों काँर और कार्तिक मास शरत्काल जानो। और काँर-शुक्ल दशमी विजयदशमी कहावति है, ताको रामचन्द्र चले, यह विरोध है। तहाँ और अर्थ—दशमी तिथि में विजयनामक मुहूर्त्त को पाइ कै श्रीरामचन्द्र चले। यथा वाल्मीकीये—अभिजिन्मुहूर्त्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय। युक्तो मुहूर्तो विजयः प्राप्तो मध्यं दिवाकरः॥ कैसे हैं हरियूथ विना पक्षके पतंग कहे पक्षी हैं, अर्थात् विना पक्ष पक्षीसम उड़त हैं॥ २८॥

समुझै न सूरप्रकास। आकासवलित बिलास॥ पुनि ऋच्छ लछिमन संग। जनु जलधि गङ्गतरंग॥ २९॥ सुग्रीव—

दण्डक॥ केशोदास राजचन्द्र सुनौ राजा रामचन्द्र रावरी

जबहिं सैन उचकि चलति है । पूरति है भूरि धूरि रोदसिहि आसपास दिसि दिसि बरषा ज्यों बलनि बलति है ॥ पन्नग पतङ्ग तरु गिरि गिरिराज गजराज मृग मृगराजराजनि दलति है । जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आइ जात पुरइनि के से पात पुहुमी हलति है ॥ ३० ॥

वानर के संग में लाखन रीछ हैं । सो वानर और रीछ कैसे शोभित हैं, जानो जलधि और गंग के तरंग हैं । जलधि-तरंग-सम रीछ हैं, गंग-तरंग-सम वानर हैं ॥ २९ ॥ रोदसी कहे भू-आकाश । द्यावाभूमी च रोदसी इत्यमरः । बलनि कहे वानर-यूथनि और मेघसमूहनि करि दिशि-दिशि कहे दशौ दिशनि को बलित कहे आच्छादित करति है । पन्नग, सर्प । पतंग, पक्षी ॥ ३० ॥

लक्ष्मण-भार के उतारिबे को औतरे हो रामचन्द्र किधौं केशौदास भूरि भारत प्रबल दल । टूटत हैं तरुवर गिरे गण गिरिवर सूखे सब सरवर सरिता सकल जल ॥ उचकि चलत हरि दचकनि दचकत मंच ऐसे मचकत भूतल के थलथल । लचकि लचकि जात शेषके अशेष फन भागि गई भोगवती अतल-वितल-तल ॥ ३१ ॥ गीतिका छन्द ॥ रघुनाथ जू हनुमन्त ऊपर शोभिये तिहि काल जू । उदयाद्रि शोभन शृङ्ग मानहुँ शुभ्र सूर विशाल जू ॥ शुभ अङ्ग अङ्गद सङ्ग लक्ष्मण लक्षिये बहु-भाँति जू । जनु मेरु मन्दर सङ्ग अद्भुत चन्द्र राजत राति जू ॥ ३२ ॥ दोहा ॥ बलसागर लक्ष्मण सहित कपिसागर रणधीर ॥ यश-सागर रघुनाथजू मेले सागरतीर ॥ ३३ ॥

भोगवती कहे नागपुरी ॥ ३१ ॥ अंगद के ऊपर शुभ-अंग जे लक्ष्मण हैं, तिन्हैं रामचन्द्र के संग बहुभाँति सों लक्षिये कहे देखियत है । मेरु कहे सुमेरु के शृंग में, कै मंदर कहे मंदराचल के शृंग में, राति को चंद्र राजत है ॥ ३२ ॥ कपिसागर कहे कपिन की सागर-सदृश सैन्य ॥ ३३ ॥

विजया छन्द ॥ भूति बिभूति पियूष हु की बिष ईश शरीर कि पाय बियो है। है किधौं केशव कश्यप को घर देव-अदेवन के मन मोहै ॥ सन्त हियो कि बसै हरि संतत शोभ अनन्त कहै कबि को है। चन्दननीरतरङ्गतरङ्गित नागर कोउ कि सागर सोहै ॥ ३४ ॥ गीतिका छन्द ॥ जलजाल कालकराल माल तिमिंगिलादिक सों बसै। उर लोभ क्षोभ बिमोह कोह सकाम ज्यों खल को लसै ॥ बहुसम्पदायुत जानिये अति-पातकी-सम लेखिये। कोउ माँगनो अरु पाहुनो नहिं नीर पीवत देखिये ॥ ३५ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्र-चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां समुद्रतटरामसैन्य-निवेशनन्नामचतुर्दशः प्रकाशः ॥ १४ ॥

ईश कहे महादेव के शरीर पक्ष में भूति कहे अधिक है विभूति कहे भस्म की और पियूष कहे अमृत की। अमृत-युक्त चन्द्रमा धारण करे हैं, तासों। और विष की। सागर-पक्ष में भूति कहे उत्पत्ति है, विभूति कहे रत्नादि द्रव्य, और पियूष कहे अमृत और विष की। जासों देव अदेव कश्यप के पुत्र हैं, तासों पिता को घर पुत्रन को नीको लाग्योई चहै। और समुद्र की दीर्घता देखि देव अदेव मोहित कहे मूर्च्छित होत हैं। नागर कहे नर-श्रेष्ठ। चन्दन को जो नीर कहे उद्धर है ताके जे तरंग हैं तिनसों तरंगित चित्रित है। अर्थात् अंगन में नीकी विधि चन्दन लेप करे हैं। सागर-पक्ष में चंदन वृक्षन करिकै नीर के तरंग तरंगित हैं जाके, अर्थात् जाके तरंग में चन्दन वृक्ष बहत हैं। जो कहौ अमृत की उत्पत्ति और हरिशयन क्षीरसागर में है, तौ इहाँ समुद्र की जातिमात्र को वर्णन है, लवण-क्षीरभेद सों नहीं है, सो जानो ॥ ३४ ॥ जा समुद्र के जल को जाल कहे समूह जो है सो काल हू ते कराल जे तिमिंगिल (मत्स्यभेद) हैं, तिन्हैं आदि जे जलजीव हैं तिन सों कहे तिन सहित बसत है। अर्थात् जा जल में तिमिंगिलादि रहत हैं। आदि पद ते ग्राह आदि जानो। सो कैसो शोभित है, जैसे लोभ और क्षोभ कहे डर और विमोह और कोह कहे क्रोध और काम सहित खल को

दुष्ट को उर लसत है। और बहुत सम्पत्ति रत्नादि सों युक्त है। ताहू पर कोऊ माँगनो कहे याचक, अर्थात् जे रत्नादि लेवे के लिये जात हैं। पाहुनो कहे नातो विष्णु आदि। तिनको नीर जल पीवत नहीं देखियत तातें बड़े पातकीसम लेखियत है। गोवध आदि-पापयुक्त बड़े पातकी हू को जल अति सम्पत्तिहू के लोभ सों कोऊ नहीं पीवत, इति भावार्थः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकी-प्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां चतुर्दशः प्रकाशः॥१४॥

दोहा ॥ यहि प्रकाश दशपंच में दशशिर करै बिचार ॥
मिलन बिभीषण सेतु रचि रघुपति जैहैं पार ॥ १ ॥

रावण—गीतिका छन्द ॥ सुरपाल-भूतलपाल हौ सब मूल-मंत्र ते-जानिये। बहु मंत्र बेद पुराण उत्तम-मध्यमाधम गानिये॥ करिये जु कारज आदि उत्तम-मध्यमाधम आनिये। उरमध्य आनि अनुत्तमै जे गये ते काज बखानिये ॥ २ ॥ स्वागता छन्द ॥ आजु मोहिं करनै सु कहो जू। आपु माँह जनि रोष गहो जू ॥ राजधर्म कहिये छबिछाये। रामचन्द्र नहिं जौ लगि आये ॥ ३ ॥

सब महोदरादि जे राक्षस हैं, तिन सों रावण कहत है कि तुम सब सुरपाल जे इन्द्र हैं तिनको जो भूतल स्वर्ग है ताके पालनहार हौ। अर्थात् इन्द्रलोक में राज करचो है। आशय यह कि मंत्रन ही के जोर सों इन्द्र को जीति इन्द्रलोक अमल्यो। अथवा सुरपाल इन्द्र के सम भूतल-पाल हौ, इन्द्र को ऐसो राज्य करत हौ। सो मूलमंत्र कहे सिद्धांत मंत्र। अर्थात् जिनसों शत्रु की पराजय और आपनी जय होय ऐसे मंत्र। जानिये कहे जानत हौ। वेद-पुराणन में बहुत जे मंत्र हैं तिन्हैं उत्तम, मध्यम और अधम तीनि प्रकारके वेद-पुराणन करिकै गाइयत है, अर्थात् वेद पुराण कहत हैं। यथा शास्त्र की दृष्टि सों, अर्थात् जैसो शास्त्र कहत है ताही विधि सों एकमत है कै मन्त्र ठहरावैं, सो मन्त्र उत्तम है; और जहाँ मन्त्रीजन आपने मत को मंत्र भिन्न भिन्न कहैं, फिरि राजभयआदि कारणन सों

उदासीनता सों एक मत ठहरावैं, सो मन्त्र मध्यम है। और जो मंत्री अपने ही अपने मन को मत भिन्न भिन्न कहैं, एकमत कैसे हू ना होइँ, सो मंत्र अधम है। यथा वाल्मीकीये—ऐकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा। मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम् ॥ १ ॥ वह्वीरपि मतीर्गत्वा मन्त्रिणामर्थनिर्णयः। पुनर्यत्रैकतांप्राप्तः समन्त्रो मध्यमः स्मृतः ॥ २ ॥ अन्योन्यं मतिमास्थाय यत्र संप्रतिभाष्यते। न च कर्मण्य-श्रेयोस्ति मन्त्रः सोधम उच्यते ॥ ३ ॥ तिन तीनिहू प्रकार के मंत्रन में आदि उत्तम जो कारज है, ताको करिये। अर्थात् एकमत ह्वै कारज करिये। और मध्यम और अधम को भानिये कहे दूरि करो। ऐसे समय में जे अनुत्तम काज व्यतीत ह्वै गये, अर्थात् आपने ही आपने मन की सब मिलि कह्यो, तिन बातन को उर में आनि कै बखानिये कहे कहत हौ। अर्थ यह कि ऐसे समय में ऐसी बात कहिवो उचित नहीं है। तासों एकमत ह्वै मंत्र करौ ॥ २ ॥ ३ ॥

प्रहस्त ॥ बामदेव तुमको बर दीन्हो। लोकलोक सि-गरे बश कीन्हो ॥ इन्द्रजीत सुत सो जग मोहै। राम देव नर बानर को है ॥ ४ ॥ मृत्युपास भुजजोरनि तोरे। कालदण्ड तुम-सों कर जोरे ॥ कुंभकर्णसम सोदर जाके। और कौन मन आवत ताके ॥ ५ ॥ कुंभकर्ण—चतुष्पदी ॥ आपुन सब जानत, कह्यो न मानत, कीजै जो मन भावै। सीता तुम आनी, मीचु न जानी, आन कि मंत्र बतावै ॥ जेहि बर जग जीत्यो, सर्ब अतीत्यो, तासों कहा बसाई। अति भूल गई तब, शोच करत अब, जब शिर ऊपर आई ॥ ६ ॥ मंदोदरी—बिजय छंद ॥ राम कि बाम जु आनी चुराइ सो लङ्क में मीचु कि बेलि बई जू। क्यों रण जीतहु गे तिनसों जिनकी धनुरेख न नाँघिगई जू ॥ बीस बिसे बलवन्त हुते जु हुती दृग केशव रूपरई जू। तोरि शरासन शंकर को पिय सीय स्वयंबर क्यों न लई जू ॥ ७ ॥

वामदेव, महादेव। सरस्वती उक्तार्थः—रामचन्द्र देव हैं नर और वानरको हैं?

इहाँ देवपद ते ईश्वर जानो । अर्थात् रामचन्द्र ईश्वर हैं, और सुग्रीवादि वानर सब देवसैन्य हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ वर कहे वल, अर्थात् तपोवल । अथवा शिवादि के वर सों सब अतीत्यो कहे वीतो, तासों कहा वसाइ कहे जोर चलै । अर्थ यह कि अब नाश को समय आयो, सोई तुमसों ऐसे सीयहरणादि कार्य करायो है । अथवा जेहि शिव और ब्रह्मा के वर सों जग को जीत्यो सो वरदान सब बीतो । काहे ते कि यह वर दीन रह्यो कि नर वानर को छोड़िकै और सों तुमको भय न ह्वै है । सो नर और वानर ही लरिबे को आवत हैं । वानर को प्रभाव तौ कछु यामें चलि है नहीं । तुमको तब कहे सीय हरणादि-समय मों यह सुधि भूलि गई कि हमको नर वानर सों भय है । जब शिर के ऊपर आई है तब शोच करत हौ । तौ तासों कहा वसाइ कहे जोर चलै, अर्थात् अब मृत्यु ते रक्षा को कछू उपाय नहीं है ॥ ६ ॥ जो तुम्हारे दृगन में सीतारूप जो सौंदर्य है ता करिकै रई कहे वसी रहै ॥ ७ ॥

बालि बली न बच्यो चरि खोरहि क्यों बचिहौ तुम आपनी खोरहि । जा लगि क्षीरसमुद्र मथ्यो कहि कैसे न बाँधिहै बारिधि थोरहि ॥ श्रीरघुनाथ गनौ असमर्थ न देखि बिना रथ हाथिन घोरहि । तोर्‍यो शरासन शंकर को जिहिं सोऽब कहा तुव लंक न तोरहि ॥ ८ ॥ मेघनाद—दोहा ॥ मोको आयसु होइ जों त्रिभुवनपाल प्रबीन । रामसहित सब जग करौं नर बानर करि हीन ॥ ९ ॥ विभीषण—मोटनक छन्द ॥ को है अतिकाय जु देखि सकै । को कुंभ निकुंभ बृथा जु बकै ॥ को है इँद्रजीत जु भीर सहै । को कुंभकरन्न हथ्यारु गहै ॥ १० ॥

जा लगि कहे जा लक्ष्मीरूप जे सीता हैं तिनके लिये ॥ ८ ॥ सरस्वती उक्तार्थः—मेघनाद कहत है कि जो मंत्र कहिबे को हमको आज्ञा होइ तौ हम कहियत है कि त्रिभुवनपाल कहे तीनों लोक के रक्षा करनहार और प्रवीण कहे विवेकी, यासों या जनायो कि केवल समदृष्टि ही सों नहीं प्रतिपाल करत, भक्तन पर अति कृपा शरणागतरक्षण शत्रुनाशादि कर्म यथोचित करत हैं, ऐसे जे रामचन्द्र हैं तिन हीं करिकै सहित सब जग है । रामचन्द्र ही सर्वत्र व्याप्त हैं । अर्थ यह कि विष्णु हैं । यथा वृत्तरत्नाकरे—

ष्यरस्तजभ्नगैर्लान्तैरेभिर्दशभिरक्षरैः। समस्तं वाङ्मयं व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना॥ इन को नर और वानर करिकै हीन करौ कहे करि मानत हौ। अर्थात् रामचन्द्र विष्णु हैं, वानर सब देवता हैं। अंगद हू सोरहें प्रकाश में कह्यो है–कौन इहाँ नर वानर कोरे॥ ६॥ १०॥

देखे रघुनायक धीर रहै। जैसे तरुपल्लव बात बहै॥ जौ लौं हरि सिन्धु तरै इतरै। तौ लौं सिय लै किन पाइँ परै॥ ११॥ जौ लौं नल नील न सिन्धु तरै। जौ लौं हनुमन्त न दृष्टि परै॥ जौ लौं नहिं अंगद लंक दही। तौ लौं प्रभु मानहु बात कही॥ १२॥ जौ लौं नहिं लक्ष्मण बाण धरैं। जौ लौं सुग्रीव न क्रोध करैं॥ जौ लौं रघुनाथ न शीश हरैं। तौ लौं प्रभु मानहु पाइँ परैं॥ १३॥ रावण–कलहंस छन्द॥ अरिकाज लाज तजि कै उठि धायो। धिक तोहिं मोहिं समुझावन आयो॥ तजि रामनाम यह बोल उचार्‌यो। शिर माँझ लात पग लागत मार्‌यो॥ १४॥

अर्थ–रघुनाथ को देखि अतिकायादिक काहू के धीर न रहि है॥ ११॥॥ १२॥ १३॥ रामनाम को तजि कहे छोड़ि, यह बोल रावण उचार्‌यो कहे कह्यो। सरस्वती उक्तार्थः–अरि कहे शत्रु के काज सों लाज तजि कै उठि धायो है। अर्थात् रामचन्द्र के हाथ मृत्यु सों हमारी मुक्ति है है, तामें चाहिये कि तू भाई है सहाय करै, सो तू शत्रुता करत है, जामें याकी मुक्ति ना होइ, यामें तोको लाज नहीं है? भाई ह्वै कै शत्रु को काम करत है, तोको धिक् है, जो मोहिं समुझावत है कि रामचन्द्र सों न लरौ। अथवा मोहि कहे मोहवश ह्वै कै राम को नाम जो जपत रह्यो ताको तजि कै यह बोल उचार्‌यो कहे एती कथा कह्यो, यह कहिकै पायँन में परत विभीषण के शिर में लात मार्‌यो॥ १४॥

करि हाय हाय उठि देह सँभारेउ। लिय अंग संग सब मंत्रिय चारेउ॥ तजि अंध बंधु दशकंध उड़ान्यो। उर रामचंद्र जगतीपति आन्यो॥ १५॥ दोहा॥ मंत्रिनसहित बिभीषण

बाढ़ी शोभ अकास । जनु अलि आवत भावतो प्रभुपद-पद्मनिवास ॥ १६ ॥ चौपाई ॥ निकट बिभीषण आवत जाने । कपिपति सों तबहीं गुदराने ॥ रघुपति सों तिन जाइ सुनायो । दशमुख-सोदर सेवहि आयो ॥ १७ ॥ श्रीराम ॥ बुधिबलवन्त सबै तुम नीके । मत सुनि लीजै मंत्रिन ही के ॥ तब जु बिचार परै सोइ कीजै । सहसा शत्रु न आवन दीजै ॥ १८ ॥ अंगद—सुंदरी छंद ॥ रावण को यहु साँचहु सोदरु । आपु बली बलवन्त लिये अरु ॥ राक्षसबंश हमैं हतने सब । काज कहा तिन सों हम-सों अब ॥ १९ ॥ बध्य बिरोध हमैं इन सों अति । क्यों मिलिहै हमसों तिनसों मति ॥ रावण क्यों न तजो तबहीं इन । सीय हरी जबहीं वह निर्घृन ॥ २० ॥ नल—चार पठै इनको मत लीजिय । ऐसेहि कैसे बिदा करि दीजिय ॥ राखिय जो अति जानिय उत्तम । नाहिं तौ मारिय छोड़ि सबै भ्रम ॥ २१ ॥

॥ १५ ॥ १६ ॥ कपि जे वानर हैं, तिनके पति जे सुग्रीव हैं, तिनसों गुदराने कहे कहत भये ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ वध्य कहे वध करिबेलायक । निर्घृन कहे निर्दय ॥ कारुण्यं करुणा घृणा इत्यमरः ॥ २० ॥ चार कहे दूत ॥ २१ ॥

नील—साँचेहु जो यह है शरणागत । राखिय राजिवलोचन मो मत ॥ भीत न राखिय तौ अतिपातक । होइ जु मातुपिताकुलघातक ॥ २२ ॥ हनूमान्—हरिलीला छन्द ॥ जानौं बिभीषण न राक्षस रामराज । प्रह्लाद नारद विशारद बुद्धिसाज ॥ सुग्रीव नील नल अंगद जामवन्त । राजाधिराज बलिराज समान सन्त ॥ २३ ॥ दोहा ॥ कहन न पाई बात सब हनूमन्त गुणधाम ॥ कह्यो विभीषण आपु ही सबन सुनाइ प्रणाम ॥ २४ ॥ सवैया ॥ दीनदयाल कहावत केशव

हौं अति दीन-दशा-गह्यो गाढ़ो। रावण के अघओघ में केशव बूड़त हौं बरही गहि काढ़ो॥ ज्यों गज की प्रहलाद कि कीरति त्योंहीं विभीषण को यश बाढ़ो। आरतबन्धु पुकार सुनौ किन आरत हौं तौ पुकारत ठाढ़ो॥ २५॥

जो माता, पिता और कुल को घातक हू होय और भीत ह्वै कै आवै, ताको न राखौ तौ बड़ो पातक है। अथवा जो माता, पिता और कुलघातक को पातक होत है, सोई पातक जो भीत को ना राखै ताको होत है॥ २२॥ प्रह्लाद और नारद के समान हैं। विशारद कहे धृष्ट (परिपक्व इति) बुद्धि की साज जिनकी। अर्थात् प्रह्लाद व नारद सम तुम्हारो भक्त है। विशारदः पण्डिते च धृष्ट इति मेदिनी॥ २३॥ २४॥ बाढ़ो कहे बढ़ो॥ २५॥

केशव आपु सदा सह्यो दुःख पै दासन देखि सके न दुखारे। जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख त्यों हीं तहाँ तिहि भाँति पधारे॥ मेरिय बार अबार कहाँ कहुँ नाहिंन काहू के दोष बिचारे। बूड़त हौं महामोहसमुद्र में राखत काहे न राखनहारे॥ २६॥ हरिलीला छन्द॥ श्रीरामचन्द्र अतिआरतवन्त जानि। लीन्हों बुलाय शरणागत-सुःखदानि॥ लंकेश आउ चिरजीवहि लंक धाम। राजा कहाउ जग जौ लगि रामनाम॥२७॥ त्रोटक छन्द॥ जबहीं रघुनायक बाण लियो। सबिशेष बिशोषित सिन्धु-हियो॥ तबहीं द्विजरूप सु आइ गयो। नल सेतु रचै यह मन्त्र दयो॥ २८॥ दोहा॥ जहँतहँ बानर सिन्धु में गिरिगण डारत आनि॥ शब्द रह्यो भरिपूरि महि रावण को दुखदानि॥ २९॥ त्रोटक छंद॥ उछलै जल उच्च अकाश चढ़ै। जलजोर दिशाविदिशान मढ़ै॥ जनु सिन्धु अकाश नदी अरि कै। बहुभाँति मनावत पाँ परि कै॥ ३०॥

त्यों हीं कहे तत्काल ही। मोह कहे दुःख॥ २६॥ २७॥ समुद्रतट में

रामचन्द्र तीन दिन डेरा किये रहे, जब समुद्र राह नहीं दियो, तब समुद्र के सोखिबे के लिये कोप करि रामचन्द्र बाण लियो, इति कथाशेषः ॥ २८ ॥ २९ ॥ समुद्र को जल उछरि आकाश को चढ़त है, सो मानहुँ समुद्र पाँयन परिकै आकाश-गङ्गा को मनावत है ॥ ३० ॥

बहु व्योम बिमान ते भीजि गये। जल जोर भये अँगराग रये॥ सुरसागर मानहुँ युद्ध जये। सिगरे पट भूषण लूटि लये॥ ३१ ॥ अति उच्छलि छिंछि त्रिकूट छयो। पुर रावण के जल जोर भयो॥ तब लंक हनूमत लाइ दई। नल मानहुँ आइ बुझाइ लई॥ ३२ ॥ लगि सेतु जहाँ तहँ सोभ गहे। सरितान के फेरि प्रबाह बहे॥ पति-देवनदी-रति देखि भली। पितु के घर को जनु रूसि चली ॥ ३३ ॥ सब सागर नागर सेतु रची। बरणै बहुधा युत शक्र शची॥ तिलकावलि सी शुभ शीश लसै। मणिमाल किधौं उर में बिलसै ॥ ३४ ॥ तारक छन्द ॥ उर ते शिव-मूरति श्रीपति लीन्ही। शुभ सेतु के मूल अधिष्ठित कीन्ही॥ इनके दरसै परसै पग जोई। भव-सागर के तरि पार सु होई ॥ ३५ ॥

जल जोर भये सों बहुत व्योम आकाश में देवतन के विमान भीजि गये। राग कहे जो अंगन में लग्यो कुंकुम आदि को लेप है, तासों रये कहे युक्त। पट और भूषण बहि आये हैं, सो मानों सुर जे देवता हैं तिनको युद्ध में सागर जीत्यो है, सो मानों लूटि लीन्हो है। इहाँ पट-भूषणन को बहि आइबो विषय कहे उपमेय है, सो अनुक्त है, तासों अनुक्त-विषय-वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ सेतु में लगिकै जहाँ-तहाँ शोभ गहे जे सरितन के प्रवाह हैं ते फेरि कहे उलटिकै बहन लागें, सो पाँय परि परि मनावत है, ऐसी भली कहे बड़ी रति प्रीति पति की समुद्र की देवनदी आकाशगङ्गा में देखि कै, मानों आपने पिता के घर को रूसि-चली हैं ॥ ३३ ॥ नागर, श्रेष्ठ ॥ ३४ ॥ उर ते अर्थात् विचार ते जो वस्तु करिबो होत है, ताको विचार प्रथम मनही में आवत है ॥ ३५ ॥

दोहा ॥ सेतुमूल शिव शोभिजै केशव परमप्रकास ॥ सागर जगतजहाज को करिया केशवदास ॥ ३६ ॥ तारक छन्द ॥ शुक सारण रावण दूत पठायो । कपिराज सों एक सँदेश सुनायो ॥ अपने घर जैयहु रे तुम भाई । जमहूँ पहँ लंक लई नहिं जाई ॥ ३७ ॥ सुग्रीव–भजि जैहौ कहाँ न कहूँ थल देखो । जल हूँ थल हूँ रघुनायक पेखो ॥ तुम बालिसमान सहोदर मेरे । हतिहौं कुल स्यौं तिन प्राणन तेरे ॥ ३८ ॥ सब रामचमू तरि सिन्धुहि आई । छवि अच्छन की धर-अंबर छाई । बहुधा शुक सारण को जु बताई । फिरि लंक मनों बरषा ऋतु आई ॥ ३९ ॥

संसारसागर को जहाज जो रामनाम है ताके करिया कहे केवट जे शिव हैं । जैसे केवट जहाज में चढ़ाइ समुद्र पार करत हैं, तैसे शिव मरण-समय काशी में रामरूपी तारकमंत्र-जहाजपर चढ़ाइ संसार पार करत हैं । ते सेतु के मूल में परमप्रकाश कहे प्रसन्नता सों शोभित हैं । जो जहाज पर चढ़ाइ पार करत हैं, सो आपने प्रभु सों सेतु पर चढ़ाइ पार करिबे को अधिकार पाइ प्रसन्न भयोई चाहै, इति भावार्थः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रावण के सन्देश में सुग्रीव को भाई कह्यो, ताको जवाब सुग्रीव दियो कि रावण सों कहियो कि तुम बालि के समान हमारे भाई हौ, तासों तुम्हारो वध उचित है ॥ ३८ ॥ जा रामचमू को काहू नीके प्रकार सों सुग्रीवादि वीरन को शुक सारण दूत सों बहुधा बहुत प्रकार सों बताई कहे बतायो रहै, अर्थात् वर्णन कस्यो है । सो तुलसीकृत रामायण में रावण सों शुकसारण कह्यो है कि—अस मैं श्रवण सुना दशकंधर । पदुम अठारह जूथप बंदर ॥ अथवा जा प्रकार शुक सारण को बतायो है सो आगे कवित्त में वर्णन कियो है । रामचमू सिंधु को तरि कहे उतरि कै लंका में आई है, वह भू और आकाश में ऋक्ष मेघसम श्याम शोभित है, सो मानों फेरि हेमंत ऋतु में वर्षा ऋतु लंका में आई है ॥ ३९ ॥

दण्डक ॥ कुन्तल ललित नील भृकुटी धनुष नैन कुमुद कटाक्ष बाण सबल सदाई है । सुग्रीव सहित तार अंगदादि

भूषणन मध्यदेश केशरी सु गजगति भाई है ॥ बिग्रहानुकूल सब लक्षलक्ष ऋक्षबल ऋक्षराजमुखी मुख केशौदास गाई है । रामचन्द्र जू की चमू राज-श्री बिभीषण की रावण की मीचु दूरकूच चलि आई है ॥ ४० ॥

रामचन्द्र की चमू कैसी है कि कुन्तल ललित, नील, भृकुटी, धनुष, नयन, कुमुद, कटाक्ष, बाण और सबल ई जे वानर हैं, ते सदा हैं जामें । अथवा बाणपर्यन्त इन नामन करिकै युक्त और सदा सबल कहे बलवान् ऐसे जे वानर ऋक्ष हैं ते हैं जामें । और सुग्रीव-सहित है, तार नामक जे वानर हैं तिन सहित है । अङ्गदादिक जे भूषण कहे सेनानायक हैं तिनसों युक्त है । मध्यदेशनामक, केशरीनामक, सुगजनामक जे वानर हैं, तिनकी गति भाई कहे नीकी है जामें । और विग्रहनामक, अनुकूलनामक और ऋक्षराजमुखी कहे ऋक्षराज जे जाम्बवन्त हैं ते हैं मुख कहे मुखिया जामें ऐसो लक्ष लक्ष कहे अनेक लक्ष ऋक्ष ऋक्षन को है बल सैन्य जामें । विभीषण की राज्यश्री कैसी है कि कुंतल जे केश हैं ते हैं ललित कहे सुन्दर और नील कहे श्याम जाके । और भृकुटी धनुष सम हैं जाकी । और नयन हैं कुमुद कहे कमलसम जाके । और कटाक्ष हैं बाणसम जाके । और सबल कहे सुन्दरता सहित सदा है, अर्थात् जाकी छवि काहू समय में ग्लानि नहीं होति । बलं गंधरसे रूपे इति मेदिनी । और सुष्ठु जो ग्रीवा है सो सहित है तार कहे विमल मुक्तन सों । अर्थात् मोतिन की माला पहिरे है । तारो निर्मलमौक्तिके, मुक्ता शुद्धावुचनादे इत्यभिधानचिंतामणिः । और अंगद जो बिजायठ है तेहि आदि दै जे भूषण हैं तिनसों युक्त है । और मध्यदेश जो कटि है सो है केशरी कहे सिंह को ऐसो जाको । और सुष्ठु जो गज है अर्थात् जो अतिललित चाल चलत है, ताकी ऐसी गति है भाई कहे नीकी जाकी । और विग्रह शरीर है अनुकूल कहे यथोचित सब कहे पूर्ण जाको । अर्थ यह कि जैसो जौन अंग चाहिये तैसोई तौन अंग है । अथवा अनुकूल कहे हित है सबको, अर्थात् जे देखत हैं तिनको मन वश है जात है । अथवा अनुकूल कहे व्याधिरहित । गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रह इत्यमरः । और लक्ष लक्ष जे ऋक्ष नक्षत्र हैं, बल कहे जो बलसौंदर्य है, तेहि सहित जो ऋक्षराज चन्द्रमा है, ताके सदृश है मुख जाको । अर्थ यह कि जब अनेक लक्ष नक्षत्रन की शोभा लै कै चन्द्रमा आपु

धारण करै, तब जाके मुख के सम होय । ऋक्षस्तु स्यान्नक्षत्राक्षभल्लयोरित्यभिधानचिंतामणिः । रावण की मीचु कैसी है कि कुन्त जो बरछी है सो है ललित कहे लचकति जाकी । अर्थात् बरछी हाथ में लिये है । अथवा कुन्तल जो भाला है सो है ललित कहे अति तीक्ष्ण जाको । अर्थात् हथियार को धरे है । कुन्तलोभल्लकेशयोरित्यभिधानचिंतामणिः । और नील कहे श्यामवर्ण है । और भृकुटी भौंहैं हैं धनुपसम विकराल जाकी । इहाँ कवि क्रूर स्त्री करि वर्णत हैं । तासों भौंहन की धनुप की क्रूरता धर्म करि साम्य जानो । और नयन हैं कुमुद कहे कुत्सित है मुद आनन्द जिनमें, ऐसे जाके । अर्थात् रावण के वध को आनन्द है, विभीषण के राज्यलाभादि उत्सव को आनन्द नहीं है । अथवा नयन हैं कुमुद कहे मुद जो आनन्द है, प्रसन्नता इति, तासों रहित । अर्थात् अतिकोप सों अरुण अतिविकराल है, प्रशस्त नहीं हैं । और कटाक्ष हैं बाणसम कराल जाके । और सबल कहे बुद्धिबल-सहित सदा है । इहाँ बल पद ते बुद्धिबल जानौ । अर्थात् बुद्धिबल सों सीताहरणादि कार्य कराइ रामचन्द्र सों विरोध कराइ दियो । तार कहे उच्च स्वर करिकै सहित है सुष्ठु ग्रीवा जाकी । सुष्ठु पद को अर्थ यह कि ऐसो उच्च स्वर करिबे की शक्ति और काहू की ग्रीवा में नहीं है । और अङ्गद जो बिजायठ हैं, तेहि आदि भूपण न कहे नहीं हैं । अर्थात् मुण्डमालादि क्रूर भूपण पहिरे है । और मध्य कहे अधम अनुत्तम है देश कहे जाके अंग । मध्यं विलग्ने न स्त्री स्यादन्याग्र्ये अंतरेऽधमेपि चेति मेदिनी । और केशरी जो सिंह है ताकी गज पर ऐसी गति भाई है जाकी । अर्थात् जैसे गज के मारिबे को सिंह चलत है, तैसे रावण के मारिबे को चली आवति है । और रामचन्द्र को जो विग्रह विरोध है सोई है अनुकूल हित जाको । अर्थात् रामचन्द्र के विरोध ही सों है कार्यसिद्धि जाकी । और सब कहे पूर्ण अनेक लक्ष जे ऋक्ष भालू हैं तिनको है बल जाके । और ऋक्षराज जे जामवन्त हैं, तिनको ऐसो है मुख जाको ॥ ४० ॥

हीरक छन्द ॥ रावण शुभ श्यामल तन मंदिर पर सोहियो । मानहुँ दश-शृंग-युत कलिंदगिरि बिमोहियो ॥ राघवशर लाघवगति छत्र मुकुट यों हयो । हंस सबल अंस सहित मानहुँ उड़ि कै गयो ॥ ४१ ॥ लज्जित खल तजि सुथल भजि भवन

में गयो। लक्ष्मण प्रभु तक्षण गिरि दक्षिण पर सोभयो॥ लंक निरखि अंक हरषि मर्म सकल जो लह्यो। जाहु सुमति रावण वह अंगद सन यों कह्यो॥ ४२॥ चंचला छन्द॥ रामचन्द्रजू कहंत स्वर्ण-लंक देखि देखि। ऋक्ष-बानराति घोर ओर चारिहू विशेखि॥ मंजु कंज-गंधलुब्ध भौंरभीर सी विशाल। केशौदास आसपास शोभिजै मनो मराल॥ ४३॥

सबल कहे अनेक-रंग-मिश्रित हैं अंशु कहे किरण जाके, ऐसे जे सूर्य हैं, तिन सहित मानो कलिंदगिरि-शृंग ते हंस कहे हंससमूह उड़ि गयो है। इहाँ जाति विषे एकवचन है। हंसन के सदृश श्वेत छत्र है, और सूर्य के सदृश अनेक-रंग-नगजटित मुकुट हैं॥ ४१॥ दक्षिण गिरि कहे समुद्र के दक्षिण कूल को गिरि, समुद्र-पार को गिरि इति। मर्म, भेद॥ ४२॥ भौंर भीर-सम ऋक्ष हैं। मराल हंस के सम वानर हैं॥ ४३॥

ताम्रकोट लोहकोट स्वर्णकोट आसपास। देव की पुरी घिरी कि पर्वतारि के बिलास॥ बीचबीच हैं कपीश बीचबीच ऋक्ष-जाल। लंककन्यका गरे कि पीत नील कंठमाल॥ ४४॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणि श्री-रामचन्द्रचन्द्रिकायामिंद्रजिद्विरचितायां रामसैन्य-समुद्रतरणन्नामपञ्चदशः प्रकाशः॥ १५॥

अर्थात् इन्द्र की शत्रुता सों मानो पर्वतन देवपुरी को घेरि लियो है। देवपुरी-सदृश स्वर्णकोट है। जाके मध्य में पुरी है, और ताके आस-पास ताम्रादि के कोट हैं, ते पर्वत-समान हैं। यासों या जनायो कि लंका देवपुरी-सम है॥ ४४॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकी-प्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां पञ्चदशःप्रकाशः॥ १५॥

दोहा॥ यह वरणन है सोरहें केशवदास प्रकास। रावण अंगद सों विविध शोभित वचन विलास॥ १॥ अंगद कूदि

गये जहाँ आसनगत लंकेश। मनु मधुकर करहाट पर शोभित श्यामल बेश ॥ २ ॥ प्रतीहार—नाराच छन्द ॥ पढ़ो बिरंचि मौन बेद जीव शोर छंडि रे। कुबेर बेर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे ॥ दिनेश जाइ दूरि बैठि नारदादि संगहीं। न बोलु चंद मंदबुद्धि इन्द्र की सभा नहीं ॥ ३ ॥ चित्रपदा छन्द ॥ अंगद यों सुनि बानी। चित्त महा रिस आनी ॥ ठेलि कै लोग अनैसे। जाइ सभा महँ बैसे ॥ ४ ॥ चंचरी छन्द ॥ कौन हौ पठये सु कौने ह्याँ तुम्हैं कह काम है ॥ अंगद—जाति बानर लंकनायक-दूत अंगद नाम है ॥ रावण—कौन है वह बाँधिकै हम देह पूँछि सबै दही। लंक जारि सँहारि अक्ष गयो सु बात बृथा कही ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ आसन में गत कहे बैठे ॥ २ ॥ रावण के सभा-भवन में जाइ अंगद ऐसे कौतुक देखत भये। प्रतीहार या प्रकार के, अनादरपूर्वक वचन ब्रह्मादि सों कहत है। हे कुबेर, तुम सों कैयो बार कह्यो, कि तुम यक्षन की भीर को न मंडौ, अर्थात् यक्षन की भीर को संग लै इहाँ न आयो करो, सो तुम आइबो करत हौ ॥ ३ ॥ ४ ॥ लङ्कनायक, विभीषण ॥ ५ ॥

महोदर—कौन भाँति रहौ तहाँ तुम राजप्रेषक जानिये। लंक लाइ गयो जु बानर कौन नाम बखानिये ॥ मेघनाद जु बाँधियो वहि मारियो बहुधा तबै ॥ लोकलाज दुरयो रहै अति जानिजे न कहाँ अबै ॥ ६ ॥ रावण—कौन के सुत? बालि के, वह कौन बालि न जानिये। काँख चापि तुम्हैं जु सागर सात न्हात बखानिये ॥ है कहाँ वह? बीर अंगद देवलोक बताइयो। क्यों गयो? रघुनाथ-बाण बिमान बैठि सिधाइयो ॥ ७ ॥ लंकनायक को? बिभीषण देवदूषण को दहै। मोहिं जीवत होहि क्यों? जग तोहिं जीवत को कहै ॥ मोहिं को जग मारि है? दुर्बुद्धि तेरिय जानिये। कौन बात पठाइयो कहि बीर बेगि

बखानिये ॥ ८ ॥ अंगद–सवैया ॥ श्रीरघुनाथ को बानर केशव आयो हो एकु न काहू हयो जू। सागर को मद झारि चिकारि त्रिकूट को देह बिहार छयो जू ॥ सीय निहारि सँहारि कै राक्षस शोक अशोक-बनी हि दयो जू। अक्षकुमार हि मारि कै लंक हि जारि कै नीकेहि जात भयो जू ॥ ९ ॥

महोदर पूछो कि तुम तहाँ कौन भाँति सों रहत हौ, अर्थात् कौने काम के अधिकारी हौ? तब अंगद कह्यो है कि हम राजा के इहाँ प्रेषक कहे यथोचित स्थान में दूतन के पठावनहार हैं, अर्थात् दूतन के नायक हैं। लोकलाज दुखो रहै, यह कहि अंगद या जनायो कि हमारे सैन्य में ऐसो कोऊ नहीं है जाको कोऊ बाँध्यो मार्यो होइ ॥ ६ ॥ ७ ॥ पाछे अंगद कह्यो है कि हम लंकनायक के दूत हैं, सो रावण पूछ्यो कि लंकनायक को है, जाके तुम दूत हौ? तब अंगद कह्यो है कि विभीषण लंकनायक है। कैसो है विभीषण, जे देवतन के दूषण कहे पीड़ा-करनहार हैं, तिनको दहै कहे जारत है। यासों या जनायो कि तुमहूँ देवदूषण हौ, तुमहूँ को दहि है ॥ ८ ॥ सागर के मद रह्यो कि हमको कोऊ न नाँघि सकि है, सो नाँघि कै, ता मद को झारि डार्यो। अर्थात् दूरि कर्यो। और चिकारि कै गर्जि कै त्रिकूटनाम जो लंकापुरी को पर्वत है, ताके देह में, अर्थात् सब पर्वत भरे में विहार कहे नीके प्रकार सों पुरी के स्त्री-भवनादि देखि कै छयो कहे रहत भयो ॥ ९ ॥

गंगोदक छन्द ॥ राम राजान के राज आये इहाँ धाम तेरे महाभाग जागे अबै। देबि मंदोदरी कुँभकर्णादि दै मित्र मंत्री जिते पूछि देखौ सबै ॥ राखिजे जाति को भाँति को बंस को साधिजे लोक में लोक-पर्लोक को। आनि कै पाँ परो दै सु लै कोशलै आशु ही ईश सीता हि लै ओक को ॥ १० ॥ रावण–लोक लोकेश सों शोचि ब्रह्मा रचैं आपनी आपनी सींव सो सो रहै। चारि बाहैं धरे बिष्णु रक्षा करैं बात साँची यहै बेदबानी कहै ॥ ताहि भ्रूभंग ही देवदेवेश सों बिष्णु-

ब्रह्मादि दै रुद्र जू संहरै । ताहि हौं छोड़ि कै पाँय काके परौं आजु संसार तो पाँय मेरे परै ॥ ११ ॥ मदिरा छन्द ॥ राम को काम कहा ? रिपु जीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यो कहा ? बालि बली छल सों भृगुनन्दन गर्व सहे द्विज दीन महा ॥ दीन सों क्यों छिति-छत्र हत्यो बिन प्राणनि हैहयराज कियो । हैहय कौन ? वहै, बिसस्यो, जिन खेलत ही तुम्हैं बाँधि लियो ॥ १२ ॥

जा स्त्री के संग राज्याभिषेक होइ सो देवी कहावै । देवी कृताभिषेकायामित्यभिधानचिंतामणिः ॥ १० ॥ कल्पांत के अंत में ब्रह्मा सृष्टि रचत हैं, विष्णु रक्षा करत हैं, सो ताहि कहे लोक-सृष्टि को । और देवेश इन्द्र और विष्णु और ब्रह्मादि दै जे देव हैं तिन्हैं । रुद्र जे महादेव हैं ते भ्रू जो भौंह है ताके भंग ही टेढ़ी करन ही सों संहार काल में संहार करि डारत हैं ॥ ११ ॥ छत्र कहे क्षत्रिय वर्ण ॥ १२ ॥

अंगद—विजय छन्द ॥ सिंधु तर्यो उनको बनरा तुम पै धनुरेख गई न तरी । बाँध्योइ बाँधत सो न बँध्यो उन वारिधि बाँधि कै बाट करी ॥ अजहूँ रघुनाथ-प्रताप कि बात तुम्हैं दश-कंठ न जानि परी । तेलनि तूलनि पूँछ जरी न जरी जरी लंक जराइजरी ॥ १३ ॥ मेघनाद ॥ छाँड़ि दियो हमहीं बनरा वहि पूँछ कि आगन लंक जरी । भीर में अच्छ मर्यो चपि बालक बादिहि जाइ प्रशस्ति करी ॥ ताल बिधे अरु सिन्धु बँधे यह चेटक, विक्रम कौन कियो । बानर को नर को बपुरा पल में सुरनायक बाँधि लियो ॥ १४ ॥

बाँध्योइ कहे हनुमान् को बंधन तुम काहू विधि सों करिबेहू कर्यो, ताहू पर बाँधत न बन्यो । तेल और तूल कहे रुई युक्त जो वस्तु होति है सो विशेष जरति है, सो या प्रकार की पूँछ तुम करी सो न जरी । और केवल सुवर्ण और रत्न में अग्नि ज्वलित नहीं होति, परन्तु तुम्हारी लङ्का तृणादि रहित केवल रत्नादि के जराय सों जरी जरत भई । राम के प्रभाव सों ऐसी अनहोनी बातैं होती हैं, ताहू पर तुम्हैं नहीं जानि पर्यो, इति भावार्थः ॥ १३ ॥

बादि कहे वृथा । प्रशस्ति कहे स्तुति । सप्त ताल वेध्यो और सिंधु बाँध्यो, यह चेटक कहे भगर-विद्या है । सरस्वती उक्तार्थ—जो रामचन्द्र ताल वेधन सिंधुबन्धन कस्यो सो तो चेटक कहे भगर-विद्यासम है, अर्थात् खेलसम है । थामें कौन विक्रम कहे अतिवल कियो है । विक्रमस्त्वतिशक्तिता इत्यमरः । अर्थात् वै चाहैं तौ त्रैलोक्य को संहार करि डारैं, सिन्धु-बन्धादि सदृश कर्मन में उनको कौन श्रम है ? ऐसे प्रबल वै न होते तौ जिन्न हम पल में सुरनायक को बाँधि लियो ते बानर और नर को बपुरा ह्वै जाते ? अर्थ यह कि हम इन्द्रलोकादि में जाइ कै इन्द्रादि को जीत्यो, और वे हमपर चढ़ि आये हैं । हम बपुरासम कछू करि नहीं सकत अथवा बपुरा समुझि हम पर चढ़ि आये हैं ॥ १४ ॥

अंगद—चेटक सों धनुभंग कियो प्रभु रावरे को अति जीरन हो । बाणसमेत रहे पचि कै तुम जा महँ पै न तज्यो थलु हो ॥ बाण सु कौन ? बली बलि के सुत, वै बलि बावन बाँधि लियो । ओई सु तौ जिन की चिर चेरिन नाच नचाइ कै छाँड़ि दियो ॥ १५ ॥ रावण—नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे । आठहु आठ दिशा-बलि दै अपनो पदु लै पितु जा लगि मारे ॥ तो से सपूत हि जाइ कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे । अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हनै बपुमारे ॥ १६ ॥ दोहा ॥ जो सुत अपने बाप को बैर न लेइ प्रकास । तासों जीवत ही मस्यो लोग कहैं तजि त्रास ॥ १७ ॥

कवित्व में उक्ति मेघनाद की है । और जवाब रावण को अङ्गद दियो, ता जवाब ही सों या जानो कि रामचन्द्र सिन्धु-बन्धनादि-सम शंभु-धनुष-भंग चेटक ही सों कियो है, यह बात रावण कह्यो है । अङ्गद कहत हैं कि प्रभु जे रामचन्द्र हैं, तिन चेटक सों धनुषभंग कीन्हे । और तुम कहत हौ कि जीरण कहे पुरानो रहै, परन्तु तुमको पुरानो तौ रहै, पै बाण समेत तुम पराक्रम करि पचिकै कहे थकिकै रहि गये, ताहू पर थल हू न छोड़्यो, अर्थात् रंच न उठ्यो ॥ १५ ॥ नील, सुखेन, हनुमान्, नल,

सुग्रीव, राम, लक्ष्मण और विभीषण ये जे आठ हैं । सरस्वती उक्तार्थ—नील सुखेन आदि चारि वानर उनके सुग्रीव के हैं, ते वालि के भय सों भागे रहैं, तब तिनही के सङ्ग रहे । यासों या जनायो कि जो रामचन्द्र आज्ञा हू करैं और मोह सों वै तिहारो राज्य न दियो चाहैं, तौ सब वानर तेरेई साथी ह्वै हैं । ता सों तू आठ हू आठ दिशा बलिद जे रामचन्द्र हैं, आठ दिशन के आठौ जे इन्द्रादि दिक्पाल हैं ते हैं बलिद कहे भेंट के दाता जिनको । अर्थ यह कि इन्द्रादि दिक्पाल जिन को भेंट देत हैं । तिन ही सों आपनो पद जो राज्य है, ताको लै । जाके लिये सुग्रीव तिहारे पितु को मारि डार्‌यो है । काहे ते, राज्य तिहारे पिता को है । रामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं । जो तू कहि है, तौ तोको विशेष देहैं । बलिर्दैत्योपहारयोरित्यभिधानचिन्तामणिः ॥ वपु-मारे कहे जे तेरे बाप को मार्‌यो है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अंगद—इनको विलगु न मानिये कहि केशव पल आधु । पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु ॥ १८ ॥ रावण—द्रुतविलंबित छंद ॥ उरसि अंगद लाज कछू गहौ । जनक-घातक बात बृथा कहौ ॥ सहित लक्ष्मण रामहिं संहरौं । सकल वानर-राज तुम्हैं करौं ॥ १९ ॥

विलगु कहे द्वेष । साधु कहे भलो । असाधु कहे बुरो ॥ १८ ॥ जनक, पिता । सरस्वती उक्तार्थ— हे अंगद, तुम रामचंद्र सों मिलिवे को हमको कहत हौ, यामें तुमको कछू लाज नहीं होति । ऐसी बात कहि कछू लाज तौ उर में गहौ । काहे ते कि तुम्हारे जनक वालि तिनके जे घातक रामचंद्र हैं, तिनकी बात वृथा है, यह तुम कहौ । अर्थात् रामचंद्र की बात वृथा नहीं होति, जो मन में संकल्प करत हैं, सो करिबोई करत हैं । यासों या जनायो कि अतिबली वालि के वध करिवे को संकल्प कियो, सो वध करिबोई कियो, तैसे वे तो हमारे मारिवे को संकल्प करे हैं, यह संकल्प वृथा काहू उपाय सों न ह्वै है, तासों मैं लक्ष्मण-सहित रामहिं सों संहरौं कहे संहार नाश को प्राप्त होत हौं । अर्थात् लक्ष्मण-सहित राम मोहिं मारत ही हैं । नाहीं तौ ऐसो हित सीख तुमको दियो है, जासों सब वानरन को राजा तुमको करौं । अर्थात् सुग्रीव सों छोरि तुम्हारो राज्य तुम्हैं देउँ ।

अथवा जनक-घातक जे सुग्रीव हैं, तिन की बात वृथा कहत हौ । अर्थ यह कि जो तुम्हारे पिता को मास्यो, ताकी वड़ाई वृथा करत हौ । मैं लक्ष्मण-सहित राम करिकै संहरौं कहे नाश को प्राप्त होत हौं । नाहीं तौ सुग्रीव को मारि सब वानरन को राजा तुमको करौं ॥ १९ ॥

अंगद—निशिपालिका छन्द ॥ शत्रु सब मित्र हम चित्त पहिचानहीं । दूतबिधि नूत कबहूँ न उर आनहीं ॥ आपु मुख देखि अभिलाख अभिलाखहू । राखि भुज शीश तब और कहँ राखहू ॥ २० ॥ रावण—इन्द्रबज्रा छन्द ॥ मेरी बड़ी भूल सुका कहौं रे । तेरो कह्यो दूत सबै सहौं रे ॥ वै जो सबै चाहत तोहिं मास्यो । मारौं कहा तोहिं जु दैव मास्यो ॥ २१ ॥ अंगद—उपेन्द्रबज्रा छन्द ॥ नराच श्रीराम जहीं धरैंगे । अशेष माथे कटि भू परैंगे ॥ शिखा शिवा श्वान गहे तिहारी । फिरैं चहूँ ओर निरैविहारी ॥ २२ ॥

तुम्हारी जो यह नूत कहे नवीन दूत-विधि कहे दूतता तोर-फोर है, ताको कवहूँ न उर में आनि है पाइ है ॥ २० ॥ २१ ॥ नाराच, बाण । निरैविहारी रावण को सम्बोधन है । अथवा शिवा और श्वान और और जे निरैविहारी काकादि हैं, ते तिहारी शिखा गहे तिहारे शिर को लिये फिरैंगे ॥ २२ ॥

रावण—भुजंगप्रयात छन्द ॥ महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै । प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर सोवै ॥ छपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको । करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको ॥ २३ ॥ शका मेघमाला शिखी पाककारी । करै कोतवाली महादंडधारी ॥ पढ़ैं बेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके । कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताके ॥ २४ ॥

अंगद कह्यो कि श्रीराम बाण धरिकै तुमको मारिहैं, ताको उत्तर रावण दियो कि महामीचु जो है सो मेरी सदा पाइँ धोइबे के अर्थ दासी है । याते अतिन्यून दासी जनायो । एक शत एक मीचु हैं, तिनमें शत अकालमीचु हैं, एक महामीचु है । शत मीचु उपाय सों दूरि होति हैं, एक महामीचु काहू उपाय सों नहीं मिटति । यथा भावप्रकाशे—एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः

प्रचक्षते। तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः। यामें या जनायो कि युद्धादि में मरिवो तो अकाल-मृत्यु है, सो मेरे समीप कैसे आइहै॥२३॥ शका कहे शका। पाककारी, रसोईदार॥ २४॥

अंगद-विजय छन्द॥ पेट चढ़्यो पलना पलिका चढ़ि पालकि हू चढ़ि मोह मढ़्यो रे। चौक चढ़्यो चित्रसारी चढ़्यो गज बाजि चढ़्यो गढ़-गर्ब चढ़्यो रे॥ व्योम बिमान चढ़्योई रह्यो कहि केशव सो कबहूँ न पढ़्यो रे। चेतत नाहिं रह्यो चढ़ि चित्त सु चाहत मूढ़ चिता हू चढ़्यो रे॥२५॥

प्रथमहिं पेट में चढ़्यो कहे गर्भ में आयो। जब जन्म भयो तब पलना में चढ़ि कै झूल्यो। कछू और बड़ो भयो तब पलिका जो खट्वा है, तामें चढ़िकै सोवन लाग्यो। जब व्याह भयो तब पालकी में चढ़ि व्याहन चल्यो, तब मोह जो माया है तामें मढ़्यो कहे युक्त भयो। फेरि पाणिग्रहण में चौक में चढ़्यो। फेरि स्त्री के संग चित्रसारी में चढ़्यो। फेरि राजा ह्वै कै गज बाजि में चढ़्यो, और गढ़ पर चढ़्यो, और गर्व पर चढ़्यो। अर्थात् राज्याभिमान भयो। और जेहि कहे जाते, अर्थात् जाकी कृपा सों व्योम में विमानन पर चढ़्योई रह्यो। अर्थात् पुष्पक आदि विमानन पर चढ़्यो आकाश पर फिरत रह्यो। केशव कहत हैं कि सो जो वे प्रभु रामचन्द्र हैं ताको कबहूँ न पढ़्यो, अर्थात् राम-नाम कबहूँ न जप्यो। सो हे मूढ़, अब चिता हू पर चढ़्यो चहत है, ताहू पर तेरो चित्त चढ़ि रह्यो है कहे मत्त ह्वै रह्यो है। तासों तू चेतत नहीं, अर्थात् चेत नहीं करत। चिता हू में चढ़्यो चहत है, यह कहि या जनायो कि रामचन्द्र तोहिं शीघ्र ही मारि हैं। तासों उनके शरण मों जाइकै आपनो भलो करु॥ २५॥

रावण-भुजंगप्रयात छन्द॥ निकास्यो जु भैया लियो राज जाको। दियो काढ़ि कै जू कहा त्रास ताको॥ लिये बानराली कहौं बात तोसों। सु कैसे लरैं राम संग्राम मोसों॥२६॥

अंगद-विजय छन्द॥ हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ को ठाउँ बिलैहै। तात न मात न पुत्र न मित्र न बित्त न तीय कहीं सँग रैहै॥ केशव काम को राम बिसारत और

निकाम न कामहि ऐहै। चेति रे चेति अजौं चित-अन्तर अंतकलोक अकेलोइ जैहै॥ २७॥

रामचन्द्र के राज्याभिषेक को एतो बड़ो उत्सव, तामें भरत घर में नहीं रहे, सो सुनि कै रावण याही समुझ्यो कि परस्पर स्वाभाविक बन्धु-विरोध समुझि भरत-कृत अभिषेकोत्सव-भंग के भय सों भरत को दशरथ निकारि दियो ह्वै है। सो कहत हैं कि निकारो जो भैया भरत है, ताने पिता करिकै दियो राज जाको काढ़िकै कहे देश सों निकारिकै लै लीन्हे। ताको कहा त्रास कहे भय रहै? आशय यह कि जा भय सों दशरथ भरत को निकारिकै रामचन्द्र को राज्य दियो, सोई आपने बल सों भरत रामचन्द्र सों छोरि लीन्हे, और देश सों निकारि दीन्हे। तो जिनसों पिता को दियो राज्य न राखत बन्यो, ते हमको मारि कै कहा हमारो राज्य छोरि हैं? और ताहू पर वानर-सैन्य को लिये हैं, और वेष यती को धरे हैं। यतिन को और वानरन को काम लरिवे को नहीं है। सरस्वती उक्तार्थ-सङ्कल्प करिकै जो रामचन्द्र हमारो राज्य लियो, और हम करिकै निकारो जो भाई विभीषण है, ताको दियो है, ता बात को कहा हमारे अत्रास है? अर्थात् बड़ो त्रास है। यह हम निश्चय जानत हैं कि रामचन्द्र को सङ्कल्प निष्फल न ह्वै है, हमसों राज्य छोरि विभीषण को दे हैं। और 'र' कहे अग्नि, ताकी आली कहे समूह। अर्थात् जिन मों अति अग्नि है ऐसे बाण लिये हैं। अथवा र कहे तीक्ष्ण जे बाण हैं, तिन की आली कहे पंक्ति, समूह इति, तिन को लिये हैं। सो रामचन्द्र के संग्राम मैं मोसे कहे हम ऐसो प्राणी कैसे जुरै? अर्थ यह कि हम उनके युद्ध करिवे लायक नहीं हैं। रस्तीक्ष्णे दहन इत्यभिधानचिन्तामणिः। पुंस्यालिर्विशदाशये। त्रिषु स्त्रियां वयस्यायां सेतौ पंक्तौ च कीर्त्तिता इत्यभिधान चिंतामणिः॥ २६॥ वित्त, धन॥ २७॥

रावण—भुजंगप्रयात छन्द॥ डरै गाइ विप्रै अनाथै जु भाजैं। परद्रव्य छोड़ैं परस्त्री हि लाजैं॥ परद्रोह जासों न होवै रतीको। सु कैसे लरैं वेष कीन्हे जतीको॥ २८॥ दोहा॥ गेंद कस्यो मैं खेल को हरगिरि केशवदास। शीश चढ़ाये आपने कमल-समान सहास॥ २९॥

जे रामचन्द्र गाइ ... विप्र को डरात हैं, अर्थात् अतिदीन गाइ और

विप्र तिन हूँ को डरात हैं, तासों अति कादर हैं। और अनाथ जे प्राणी हैं, जिनको नाथ कोऊ नहीं है, ताही को भजैं कहे सेवन करत हैं। अर्थात् ताही सों सङ्ग करत हैं। यासों या जनायो कि भय सों रंचक हू परद्रव्य नहीं लै सकत, हमारी राज्य कैसे लेहैं? और परस्त्री को लजात हैं। यासों जनायो कि जे स्त्री को लजात हैं ते वीरन सों कहा धृष्टता करि हैं? और जिनसों परद्रोह कबहूँ रती हू भरि नाहीं ह्वै सकत। आशय यह कि शत्रुता करत डरात हैं। और ताहू पर वेष यती तपस्वी को धरे हैं। अर्थात् वेषहू वीर को नहीं है, सो मोसों कैसे लरिहैं? सरस्वती उक्तार्थ—मर्यादापुरुषोत्तम हैं, तासों ब्रह्मशाप, गोशाप को डरात हैं। भृगु लात हू मार्‍यो, ताहू पर कछू ना कर्‍यो। अनाथ जे प्रह्लाद, गज आदि हैं, तिनके निकट ही रहे, जा भाँति कष्ट भयो, ताही विधि निकटवर्ती-सम रक्षा कियो। और परद्रव्य परस्त्रीहरण में पाप होत है, तासों त्याग करत हैं। और परद्रोह जासों रती हू भरि नाहीं होत। यासों समदर्शी जानौ। सबको समान जानत हैं। तिनसों हम कैसे लरैं? अर्थात् वै ईश्वर हैं। वेप कहे रूपमात्र यती को कीन्हे हैं॥ २८॥२९॥

अंगद—दंडक॥ जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिवर ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं। काटे जो कहत शीश काटत घनेरे घाघ भग्गर के खेले कहा भट-पद पावहीं॥ जीत्यो जो सुरेशरण शाप ऋषिनारि ही को समुझहु हम द्विज-नाते समुझावहीं। गहौ राम पाँय सुख पाय करैं तपी तप सीताजू को देहु देव दुन्दुभी बजावहीं॥ ३०॥ रावण—वंशस्थ छन्द॥ तपी जपी विप्रनि क्षिप्र ही हरौं। अदेवद्वेषी सब देव संहरौं॥ सिया न देहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अबानरी करौं॥३१॥ अङ्गद—विजय छन्द॥ पाहन ते पतनी करि पावन टूक कियो हरके धनु को रे। छत्रविहीन कर्‍यो छन में छिति गर्व हर्‍यो तिन के बल को रे। पर्वत-पुंज पुरैनि के पात समान तरे अजहूँ धरको रे। होइँ नरायन हूँ पै न ये गुन कौन इहाँ नर बानर को रे॥ ३२॥ रावण—चंचरीछन्द॥ देहिं अंगद राज

तो कहँ मारि बानरराज को । बाँधि देहिं बिभीषणै अरु फोरि सेतु-समाज को ॥ पूँछ जारहिं अच्छरिपु की पाइँ लागहिं रुद्र के । सीय को तब देहु रामहि पार जाइँ समुद्र के ॥ ३३ ॥

घाघ कहे नटआदि ऐन्द्रजालिक ॥ ३० ॥ सरस्वती उक्तार्थ— हे अङ्गद, तपी और जपी जे विप्र हैं । अथवा तपी और जपी और विप्रन को क्षिप्र ही हरौं कहौं कि तपी और जपी जे विप्र हैं । अथवा तामें कछू बिचार नहीं करत । और अदेव जे दैत्य राक्षस हैं, तिन के द्वेषी शत्रु देवता हैं, तिन्हैं क्षिप्र ही संहरत हौं कहे मारत हौं । यासों मैं बड़ो पापी हौं । सो सिया को न देहौं, यह नेम जो जी में धरत हौं, सो अब कहे या समय में अमानुषी कहे नाहीं हैं मनुष्य जहाँ, और अबानरी कहे नाहीं है कोऊ बानर जहाँ, ऐसी जो भूमि कहे स्थान है विष्णुलोक, ताको करौं कहे साधत हौं । भूमिः क्षितौ स्थानपात्रे इत्यभिधानचिंतामणिः । ब्रह्मदोष, देवदोष आदि बड़े पातकन सों छूटिबे को उपाय और नहीं है । तासों सीता को नहीं देतो कि सीता के लिये आइ कै रामचन्द्र मोहिं मारि हैं, तौ सब पातकन सों छूटि कै विष्णुलोक जैहौं । इति भावार्थः ॥ ३१ ॥ अजहूँ, अबहूँ, अर्थात् एते हू पर तौं धरको कहर करौ ॥ ३२ ॥ सरस्वती उक्तार्थ—यामें प्रहस्तआदि मन्त्रिन प्रति काकूक्ति है । रावण कहत है कि हे अङ्गद, तुम तौ नीकी सिख देत हौ, परन्तु प्रहस्त आदि मंत्रिन करि दीन्ही कर्मवश मेरी ऐसी दुर्मति है कि जब रामचन्द्र एती बातैं करैं तब सीता को देहुँ, सो ऐसो काहे को करि हैं ? तासों दुर्मतिकृत हमारी मृत्यु विशेषसों ह्वै चुकी, यह निश्चय जानो ॥ ३३ ॥

अङ्गद—लंक लाय गयो बली हनुमंत संतन गाइयो । सिंधु बाँधत शोधि कै नल छीरछीट बहाइयो ॥ ताहि तोहिं समेत अंध उखारिहौं उलटी करौं । आजु राज कहाँ विभीषण बैठि हैं तिहि ते डरौं ॥ ३४ ॥ दोहा ॥ अङ्गद रावण को मुकुट लै करि उड़्यो सुजान । मनो चलो जमलोक को दशशिर को प्रस्थान ॥ ३५ ॥

इति श्रीरामचन्द्रिकायां षोडशः प्रकाशः ॥ १६ ॥

क्षीर कहे जल । क्षीरं पानीयदुग्धयोरिति हैमः ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

इति श्रीजानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां षोडशः प्रकाशः ॥ १६ ॥

दोहा ॥ या सत्रहें प्रकाश में लंका को अवरोध ॥ शत्रु-चमू वर्णन समर लक्ष्मण को परबोध ॥ १ ॥ अंगद लै वा मुकुट को परे राम के पाँइ ॥ राम बिभीषण के शिरसि भूषित कियो बनाइ ॥ २ ॥ पद्धटिका छंद ॥ दिशि दक्षिण अंगद पूर्व नील। पुनि हनूमंत पश्चिम सुशील ॥ दिशि उत्तर लक्ष्मणसहित राम। सुग्रीव मध्य कीन्हे विराम ॥ ३ ॥ सँग यूथप यूथप बलबिलास। पुर फिरत बिभीषण आसपास ॥ निशि बासर सबको लेत शोध। यहि भाँति भयो लङ्का-निरोध ॥ ४ ॥ तब रावण सुनि लङ्कानिरोध। गण उपजो तन मन परम क्रोध ॥ राख्यो प्रहस्त हठि पूर्व पौंरि । दक्षिणहि महोदर गयो दौरि ॥ ५॥ भयो इन्द्र-जीत पश्चिम दुवार । है उत्तर रावण बल उदार ॥ किय बिरू-पाक्ष थिति मध्यदेश। करै नारान्तक चहुँधा प्रबेश ॥ ६ ॥ प्रमिताक्षरा छन्द ॥ अति द्वार द्वार महँ युद्ध भये। बहु ऋक्ष कँगूरन लागि गये ॥ तब स्वर्ण-लङ्क महँ शोभ भई । जनु अग्निज्वाल महँ धूममई ॥ ७ ॥

अवरोध, घेरनो । और बिभीषण करि शत्रु जो रावण है ताकी चमू को वर्णन है। परबोधु, मूर्च्छा को छूटिबो ॥ १ ॥ २ ॥ रामचन्द्र के और लंका के मध्य में सुग्रीव विश्राम कीन्हे हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ छंद उपजाति है ॥ ७ ॥

दोहा ॥ मरकत मणि के शोभिजै सबै कँगूरा चारु ॥ आइ गयो जनु घात को पातक को परिवारु ॥ ८ ॥ कुसुमविचि-त्रा छंद ॥ तब निकसो रावणसुत शूरो। जेहि रन जीत्यो हरि बल पूरो ॥ तपबल मायातम उपजायो। कपिदल के मन संभ्रम छायो ॥ ९॥ दोधक छंद ॥ काहु न देखि परै वह योधा। यद्यपि हैं सिगरे बुधि-बोधा ॥ सायक सो अहिनायक साध्यो । सोदर स्यो रघुनायक बाँध्यो ॥ १० ॥ रामहि बाँधि गयो जब लङ्का ।

रावण की सिगरी गइ शङ्का॥ देखि बँधे तब सोदर दोऊ। यूथप यूथ त्रसे सब कोऊ॥ ११॥ स्वागता छंद॥ इन्द्रजीत तेहि लै उर लायो। आजु काज सब भो मन-भायो॥ कै विमान अधिरूढ़ ति धाये। जानकी हि रघुनाथ दिखाये॥ १२॥ राजपुत्र युत नागनि देख्यो। भूमि युक्त तरु चन्दन लेख्यो॥ पन्नगारि प्रभु पन्नगशाई। काल-चाल कछु जानि न जाई॥ १३॥ दोहा॥ काल-सर्प के कवल ते छोरत जिनको नाम॥ बँधे ते ब्राह्मण वचनवश माया-सर्पहि राम॥ १४॥

कँगूरन में ऋक्ष लपटे हैं; तासों मानो मरकत मणि ही के कँगूरा शोभित हैं। पातक, देवदोष, ब्रह्मदोष आदि॥ ८॥ हरि, इंद्र॥ ९॥ बुद्धिबोधा कहे बुद्धियुक्त॥ १०॥ ११॥ तेहि रावण इंद्रजीत को उर में लगायो॥ १२॥ भूमि में युक्त कहे गिरे। चन्दनवृक्ष हू नाग-युक्त रहत हैं। दुःखयुक्त सीता यह कहत भई कि हे पन्नगारि प्रभु; हे पन्नगशायी; पन्नग जे सर्प हैं तिनके अरि कहे भक्षक जे गरुड़ हैं; तिनके तुम स्वामी हौ। यासों या जनायो कि तुम्हारे वाहन जे गरुड़ हैं, ते अनेक सर्प भक्षण करत हैं। और पन्नगशायी कहि या जनायो कि तुम सदा सर्प ही पर सोयो करत हौ। ते तुम नागपाश में बाँधे हौ। तौ काल जो समय है ताकी चाल कछू जानि नहीं परति। बलाबल समय ही नत को उन्नत और उन्नत को नत करत है, इति भावार्थः॥ १३॥ १४॥

स्वागता छंद॥ पन्नगारि तबहीं तहँ आये। व्यालजाल सब मारि भगाये॥ लङ्क माँझ तबहीं गइ सीता। शुभ्र-देह अवलोकि सुगीता॥ १५॥ गरुड़—इन्द्रवज्रा छंद॥ श्रीराम नारायणै लोककर्त्ता। ब्रह्मादि रुद्रादि के दुःखहर्त्ता॥ सीतेश मोको कछू देहु सिच्छा। नान्ही बड़ी ईश जो होइ इच्छा॥ १६॥ राम—कीबे हुतो काज सबै सु कीन्हो। आये इहाँ मो कहँ सुक्ख दीन्हो॥ पाँ लागि बैकुण्ठप्रभा विहारी।

स्वर्लोक गो तत्क्षण बिष्णुधारी ॥ १७ ॥ इन्द्रबज्रा छन्द ॥ धूम्राक्ष आयो जनु दण्डधारी । ताको हनूमन्त भये प्रहारी ॥ जिते अकम्पादि बलिष्ठ भारे । संग्राम में अङ्गद बीर मारे ॥ १८ ॥ उपेन्द्रबज्रा छन्द ॥ अकम्प धूम्राक्षहि जानि जूझ्यो । महोदरै रावण मंत्र बूझ्यो ॥ सदा हमारे तुम मंत्र-बादी । रहे कहा है अतिहीं बिषादी ॥ १९ ॥

॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ छन्द उपजाति है ॥ १८ ॥ बिषादी कहे दुःखी, उदासीन इति ॥ १९ ॥

महोदर—कहै जु कोऊ हितवन्त बानी । कहौ सु तासों अति दुःखदानी ॥ गुनो न दाँवै बहुधा कुदाँवै ॥ सुधी तबै साधत मौन भावै ॥ २० ॥ कहो शुक्राचार्य सु हौं कहौं जू । सदा तुम्हारो हित संग्रहौं जू ॥ नृपाल भू मैं बिधि चारि जानों । मनों महाराज सबै बखानों ॥ २१ ॥ भुजङ्गप्रयात छन्द ॥ यहै लोक एकै सदा साधि जानैं । बली बेनु ज्यों आपु ही ईश मानैं ॥ करैं साधना एक पर्लोक ही को । हरिश्चन्द्र जैसे गये दै मही को ॥ २२ ॥ दुहूँ लोक को एक साधैं सयाने । बिदेहीन ज्यों बेदबानी बखाने ॥ नटैं लोक दोऊ हठी एक ऐसे । त्रिशङ्कै हँसै ज्यों भलेऊ अनैसे ॥ २३ ॥ दोहा ॥ चहूँ राज के मैं कहे तुम सों राजचरित्र ॥ रुचै सु कीजै चित्त में चिन्तहु मित्र अमित्र ॥ २४ ॥ चारि भाँति मन्त्री कहे चारि भाँति के मन्त्र ॥ मोहिं सुनायो शुक्र जू शोधि शोधि सब तंत्र ॥ २५ ॥

जो कोऊ तुम्हारे हित की बात कहत है, तासों कहे ता प्राणी को तुम दुःखदानी कहे दुःखदायक कहत हौ । अथवा दुःखदानी कहे कटुवाद कहत हौ । और दाँव कुदाँव कहे समय कुसमय को नहीं गुनत हौ । अर्थात् जा समय में जो करिबो उचित है, ताको विचार नहीं करत हौ । आपने

मंन हीं की करत हो, तासों । अथवा दाँव को नहीं गुनत हौ, बहुधा कुदाँवही को गुनतहौ, तासों सुधी जे सुबुद्धि हैं, मन्त्रीजन, ते मौनभाव को साधत हैं कहे चुप ह्वै रहत हैं ॥२०॥२१॥२२॥२३॥ मित्र कहे हित, अमित्र कहे अहित की चिंता करो कि कौन चरित्र हम को हित है कौन अहित है। अथवा सब मंत्रिन मंत्र कह्यो है, तामें मित्र अमित्र की चिंता करौ कि कौन हित की कहत है, और कौन अहित की कहत है ॥ २४ ॥ चारि भाँतिके मन्त्री हैं, और चारि भाँति के मन्त्र होत हैं। तन्त्र कहे सिद्धांत अथवा तन्त्रशास्त्र ॥ २५ ॥

छप्पै ॥ एक राज के काज हतें निज कारज काजे। जैसे सुरथ निकारि सबै मंत्री सुखसाजे॥ एक राज के काज आपने काज बिगारत। जैसे लोचनहानि सही कवि बलिहि निवारत॥ यक प्रभुसमेत अपनो भलो करत दाशरथिदूत ज्यों। यक अपनो प्रभु कोइ बुरो करत रावरो पूत ज्यों॥ २६ ॥ दोहा ॥ मंत्र जु चारि प्रकार के मंत्रिन के जे प्रमान ॥ विष से दाड़िम-बीज से गुड़ से नींबसमान ॥ २७ ॥ चंद्रवर्त्म छन्द ॥ राजनीतिमत-तत्त्व समुझिये। देश काल गुनि युद्ध अरुझिये॥ मंत्रि मित्र अरि को गुण गहिये। लोक लोक अपलोक न लहिये ॥ २८ ॥

दाशरथिदूत अङ्गद और हनुमान्, सीता को देहु इत्यादि तुमसों सन्धि की बातें कहि आपने प्रभु को काज साधत हैं, और युद्ध में आपनो मरणघातादि बचाइ आपनो हित करत हैं। और रावरो पूत युद्ध कराइ आपनी और तुम्हारिउ मृत्यु कियो चाहत हैं ॥ २६ ॥ विष से, खात हू में कटु और गुण जिनको मृत्युदायक है। और दाड़िम-बीज से, खात हू में मधुर और गुण जिनको पुष्टिकर्त्ता है। और गुड़ से, खात में मधुर, गुण दुःखद है। और नींब से, खात में कटु और गुण सुखद है॥ २७॥ कहूँ यह पाठ है कि "और विचार तत्त्व सब लहिये" तौ उपजाति चन्द्रवर्त्म छन्द जानौ ॥ २८ ॥

रावण—चारि भाँति नृपता तुम कहियो। चारि मंत्रिमत में मन गहियो ॥ राम मारि सुर एक न बचि हैं। इन्द्रलोक

वसवास हि रचि हैं ॥ २६ ॥ प्रमिताक्षरा छन्द ॥ उठि कै प्रहस्त सजि सेन चले । बहु भाँति जाइ कपिपुञ्ज दले ॥ तब दौरि नील उठि मुष्टि हन्यो । असुहीन गिस्यो भुव मुंड सन्यो ॥ ३० ॥ बंशस्थ छन्द ॥ महाबली जूझत ही प्रहस्त को । चल्यो तहीं रावण मीड़ि हस्त को ॥ अनेक भेरी बहु दुन्दुभी बजैं । गयंद क्रोधांध जहाँ तहाँ गजैं ॥ ३१ ॥ सनीर जीमूत निकास सोभहीं । त्रिलोकि जाको सुर सिद्ध क्षोभहीं ॥ प्रचण्ड नैऋत्य समेत देखिये । सप्रेत मानो महकाल लेखिये ॥ ३२ ॥ विभीषण—वसंततिलका छन्द ॥ कोदंड-मंडित महारथवंत जो है । सिंहध्वजा समर पंडितबृन्द मोहै ॥ माहाबली प्रबल काल कराल नेता । सो मेघनाद सुरनायक युद्ध जेता ॥ ३३ ॥

रामचन्द्र को मारि कै । और सुर देवता एकौ न मोसों बचि हैं । अर्थात् सब देवन हू को मारि कै इन्द्रलोक में वसोवास रचि हैं । सरस्वती उक्तार्थ—रामचन्द्र जे हैं ते हमैं मारि कै एकौ देवता न बचि हैं कहे बाकी रहि हैं । सब देवतन को वसोवास इन्द्रलोक में रचिहैं । अर्थात् हमारे भय सों इन्द्रलोक सों भागि कै देवता कंदरादिकन में जाइ बसे हैं, तिन्हैं निर्भय करि कै इन्द्रलोक में बसाइ हैं ॥ २६ ॥ छन्द उपजाति है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ सनीर कहे सजल । जीमूत कहे मेघन के निकास कहे सदृश शोभित । क्षोभहीं कहे डरात हैं । नैऋत्य, राक्षस ॥ ३२ ॥ रामचन्द्र पूछ्यो है इति कथा शेषः । नेता कहे दण्डकर्त्ता ॥ ३३ ॥

जो व्याघ्रवेष रथ व्याघ्रनिकेतधारी । संरक्त-लोचन कुबेर-बिपत्तिकारी ॥ लीन्हे त्रिशूल सुरशूल समूल मानो । श्रीराघवेंद्र अतिकाय वहै सु जानो ॥ ३४ ॥ जो कांचनीय रथ-शृंग-मयूरमाली । जाकी उदार उर षण्मुख शक्ति साली ॥ स्वधाम-धामहर कीरति कै न जानी । सोई महोदर बृकोदर-बंधु मानी ॥ ३५ ॥ जाके रथाग्र पर सर्पध्वजा बिराजै । श्रीसूर्य-

मंडल विडंबन जोति साजै ॥ आखंडलीय वपु जो तन-त्राण-धारी । देवांतकै सु सुरलोक-विपत्तिकारी ॥ ३६ ॥ जो हंस-केतु भुजदंड-निषंगधारी । संग्रामसिंधु बहुधा अवगाहकारी ॥ लीन्हीं छँड़ाइ जेहि देव-अदेव-बामा । सोई खरात्मज बली मकराक्ष-नामा ॥ ३७ ॥

त्रिशूल कैसो है, सुर जे देवता हैं तिनको मानो समूल कहे पूर्ण शूल कहे मृत्यु हैं। "शूलोऽस्त्री रोग आयुधे। मृत्युकेतनयोगेषु इति मेदनी" ॥३४॥ कांचनीय रथ कहे सुवर्ण को रथ। ताके शृङ्ग में अग्रभाग में मयूरन की माला पंगति लगी है, अर्थात् मयूरध्वज है। जाकी शक्ति बरछी षण्मुख जे स्वामिकार्त्तिक हैं, तिन के उदार कहे बड़े उर में साली कहे लगी है। स्वः जो स्वर्ग है ताके धाम धाम कहे घर घर को हर कहे हरनहार है, अर्थात् लूटनहार है ॥ ३५ ॥ श्रीसूर्यमण्डल को विडंबन कहे निन्दक ज्योति कहे तेज को साजत है रथ, अथवा आप, अथवा तनत्राण। आखण्डलीय कहे इन्द्र को ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

भुजंगप्रयात छन्द ॥ लगे स्यंदनैं बाजिराजी बिराजै। जिन्हैं बेग को पौन को बेग लाजै ॥ भले स्वर्ण की किंकिणी यूथ बाजैं। मिले दामिनी सों मनो मेघ गाजैं ॥ ३८ ॥ पताका बन्यो शुभ्र शार्दूल शोभै। सुरेंद्रादि रुद्रादि को चित्त क्षोभै ॥ लसै छत्र-माला हँसै सोम-भा को। रमानाथ जानो दशग्रीव ताको ॥ ३९ ॥ पुर-द्वार छाँड़्यो लड़ै आपु आयो। मनो द्वादशादित्य को राहु धायो ॥ गिरि-ग्राम लै लै हरि-ग्राम मारै। मनो पद्मिनीपत्र दंती बिहारै ॥ ४० ॥

दामिनी-सम स्वर्ण-किंकिणी के यूथ कहे समूह हैं, मेघसम रावण के श्याम घोड़े हैं। यथा वाल्मीकीये—"रथं राक्षसराजस्य नरराजो ददर्श ह॥ कृष्णवाजिसमायुक्तं युक्तं रौद्रेण वर्चसा" ॥ ३८ ॥ शार्दूल कहे व्याघ्र ॥ ३९ ॥ पुररक्षा के लिये मेघनादादि को पुरद्वार में छाँड़ि कै आपु लरिवे को आयो है। यथा वाल्मीकीये रावणोक्तिः—"ततस्संरक्षोधिपतिर्महात्मा रक्षांसि तान्याह

महावलानि। द्वारेषु चर्यागृहगोपुरेषु सुनिर्वृतास्तिष्ठत निर्विशंकाः ॥ इहागतं मां सहितं भवद्भिर्वनौकसश्छिद्रमिदं विदित्वा। शून्यां पुरीं दुष्प्रसहां प्रमथ्य प्रधर्षयेयुः सहसा समेताः ॥ विसर्जयित्वा सचिवांस्ततस्तान् गतेषु रक्षस्सु यथानियोगे।" सो गिरि जे पर्वत हैं तिन के ग्राम कहे समूह लै लै हरि जे वानर हैं तिनको समूह मारत है। तिन गिरि-समूहन में रावण पद्मिनी कमलिनी के पत्र में दंती-सम विहार-कौतुक करत है। अर्थात् गिरि-ग्राम रावण की देह में दंती की देह में पद्मिनी-पत्र-सम लागत हैं ॥ ४० ॥

सवैया ॥ देखि विभीषण को रण रावण शक्ति गही कर रोष रई है। छूटत ही हनुमंत सु बीचहि पूँछ लपेट कै डारि दई है ॥ दूसरि ब्रह्म कि शक्ति अमोघ चलावत ही हाइ हाइ भई है। राख्यो भले शरणागत लक्ष्मणै फूलि कै फूल सी ओढ़ि लई है ॥ ४१ ॥ स्रग्विणी छन्द ॥ जोरही लक्ष्मणै लेन लाग्यौ जहीं। मुष्टि छाती हनूमंत माख्यो तहीं ॥ आशु ही प्राण को नास सो ह्वै गयो। दंड द्वै तीन में चेत ताको भयो ॥ ४२ ॥ मरहट्टा छन्द ॥ आयो डरि प्राणनि, लै धनु बाणनि, कपिदल दियो भगाइ। चढ़ि हनूमंत पर, रामचन्द्र तब, रावण रोक्यो जाइ ॥ धरि एक बाण तब, सूत छत्र ध्वज, काटे मुकुट बनाइ। लागे दूजो शरु, छूटि गयो बरु, लंक गयो अकुलाइ ॥ ४३ ॥ दोधक छन्द ॥ यद्यपि है अतिनिर्गुणताई। मानुष देह-धरे रघुराई ॥ लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो। नैनन ते न रह्यो जल रोक्यो ॥ ४४ ॥ राम—बारक लक्ष्मण मोहिं बिलोको। मो कहँ प्राण चले तजि, रोको ॥ हौं सुमिरौं गुण केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे ॥ ४५ ॥

फूलि कै प्रसन्न ह्वै कै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हनुमान् सों प्राणन को डरि कै कपिदल को भगायो जाय। तहाँ हनुमान् क्यों न गये ? तौ जब रावण वा

ठौर सों भागो, तब लक्ष्मण को लै कै हनुमान् रामचन्द्र के पास गये। इति कथाशेषः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

लोचन बाहु तुहीं धनु मेरो। तू बल विक्रम वारक हेरो॥ तू बिन हौं पल प्राण न राखौं। सत्य कहौं कछु झूठ न भाखौं ॥ ४६ ॥ मोहिं रही इतनी मन शङ्का। देन न पाइ बिभीषण लङ्का ॥ बोलि उठौ प्रभु को प्रण पारो। नातरु होत है मो मुख कारो ॥ ४७ ॥ विभीषण—सुंदरी छंद॥ मैं बिनऊँ रघुनाथ करौ अब। देव तजो परिदेवन को सब॥ औषधि लै निशि में फिरि आवहि। केशव सो सब साथ जियावहि ॥ ४८ ॥ सोदर सूर को देखत ही मुख। रावण के पुरवैं सिगरे सुख॥ बोल सुने हनुमन्त कस्यो प्रन। कूदि गयो जहँ औषधि को वन॥ ४९ ॥

बल कहे सैन्य। विक्रम, पराक्रम ॥ ४६ ॥ प्रभु जो मैं हौं ताको विभीषण को लङ्कादानरूपी जो प्रण है, ताको पारो कहे पूर्ण करौ ॥ ४७ ॥ हे रघुनाथ, जो मैं बिनऊँ कहे बिनती करत हौं, सो तुम करो। हे देव, सब मिलि कै परिदेवन जो विलाप है, ताको छोड़ि देहु। विलापः परिदेवनमित्यमरः ॥ ४८ ॥ प्रथम कह्यो है कि औषधि लै कै निशि ही में फिरि आवै। ताको हेतु कहत हैं कि सोदर जे लक्ष्मण हैं, सूर जे सूर्य हैं, तिन को मुख देखत ही रावण के सिगरे सुख पुरवैं कहे पूरित करि हैं। अर्थात् सूर्योदय भये लक्ष्मण न जी हैं। या प्रकार को विभीषण को बोल सुनि कै निशि ही में हम औषधि ल्याइ हैं, हनुमन्त यह प्रण कस्यो ॥ ४९ ॥

छप्पै॥ करि आदित्य अदृष्ट नष्ट यम करौं अष्ट वसु। रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व सर्व पसु॥ बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इंद्र अब। विद्याधरनि अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥ निज होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाइ जल। सुनि सूरज सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल ॥ ५० ॥ भुजंगप्रयात छंद ॥ हन्यो विघ्नकारी बली वीर

बामै। गयो शीघ्रगामी गये एक यामै॥ चल्यो लै सबै पर्वतै कै प्रणामै। न जान्यो बिशल्यौषधी कौन तामै॥ ५१॥

रामचन्द्र सुग्रीव सों कहत हैं कि जो सूर्य उदय को प्राप्त होइँ, तौ जेते देवता हैं, तिन सबकी आशु दुर्दशा करौं, और देवतन के शत्रु जे असुर दैत्य हैं, तिनको बल संसार भरे में करि देउँ। अर्थात् तीनों लोक में दैत्यन को राज्य करि देउँ। दिति, दैत्यन की माता। अदिति, देवतन की माता॥ ५०॥ वाम कहे कुटिल। ऐसो जो हनुमान् के सूर्योदय पर्यंत बिलँबाइबे के लिये कपट-तपस्वी को रूप धरे मग में बैठो कार्य को विघ्नकारी कालनेमि राक्षस है, ताको मारिकै एक यामै एक पहरै गये कहे बीते औषधि के पास गयो। विशल्यौषधी कहे विशल्यकरणी औषधी॥ ५१॥

लसैं औषधी चारु भो ब्योमचारी। कहैं देखि यों देव देवाधिकारी॥ पुरी भौम की सी लिये शीश राजै। महामंगलार्थी हनूमंत गाजै॥ ५२॥ लगी शक्ति रामानुजै राम साथी। जड़ै ह्वै गये ज्यों गिरै हैम हाथी॥ तिन्हैं ज्याइबे को सुनो प्रेमपाली। चल्यो ज्वालमालीहि लै कीर्त्तिमाली॥ ५३॥ किधौं प्रात ही काल जी में बिचास्यो। चल्यो अंशु लै अंशुमाली सँहास्यो॥ किधौं जात ज्वालामुखी जोर लीन्हे। महामृत्यु जामें मिटै होम कीन्हे॥ ५४॥

वा पर्वत में ज्वलित औषधि सोहती हैं, तिनको लै हनुमान् व्योमचारी आकाश-मार्गगामी भयो। देव और देवाधिकारी गंधर्वादि, अथवा देव-देव जे इन्द्र हैं, तिनके अधिकारी जे देवता हैं। अर्थात् औषधिन की रक्षा में जिन देवतन को इन्द्र अधिकार दियो है। अथवा देव-देव इन्द्र और मन्त्रादि के अधिकारी जे देवता हैं, ते कहत हैं कि महामंगल कल्याण के अर्थी जे हनुमान् हैं, ते भौम जे मंगल हैं तिनकी पुरी ही को लिए जात हैं। अनेक मंगल-सम ज्वलित औषधी-वृन्द हैं। मंगल पद श्लेष है, कल्याण और भौम को नाम है॥ ५२॥ तिन्हैं कहे तिन लक्ष्मण के ज्याइबे को औषधिन की ज्वाला की माली कहे समूह हैं जामें, सो ज्वालमाली कहावै। ऐसो जो पर्वत है, ताही को लैकै चल्यो है। अर्थात् ज्वलित हैं औषधि-वृंद जामें,

ऐसो जो औषधिपर्वत द्रोणाचल है ताही को लिये जात है । अथवा ज्वाला की है माली समूह जामें, ऐसी जो विशल्य-करणी औषधि है, ताही को लै चल्यो है । अथवा ज्वालमाली जे अग्नि हैं, तिनको लै चल्यो है । कीर्ति-माली हनुमान् को विशेषण है ॥ ५३ ॥ और कि प्रातहि कहे सूर्योदय होत ही लक्ष्मण को काल कहे मृत्यु जी में विचार्यो है, सो अंशुमाली जे सूर्य हैं, तिन-को संहारि कहे मारि कै, सूर्य के अंशु कहे किरण अथवा प्रभाव लिये जात है । जामें सूर्योदय न होइ । अंशुः प्रभाकिरणयोरिति मेदिनी ॥ ५४ ॥

बिना पत्र हैं यत्र पालाश फूले । रमैं कोकिलाली भ्रमैं भौंर भूले ॥ सदानंद रामै महानंद को लै । हनूमंत आये बसंतै मनो लै ॥ ५५ ॥ मोटक छंद ॥ ठाढ़े भये लक्ष्मण मूरि छिये । दूनी शुभ शोभ शरीर लिये ॥ कोदण्ड लिये यह बात ररै । लंकेश न जीवंत जाइ घरै ॥ ५६ ॥ श्रीराम तहीं उर लाइ लियो । सूँघ्यो शिर आशिष कोरि दियो ॥ कोलाहल यूथप-यूथ कियो । लंका हहली दशकंठ हियो ॥ ५७ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्र-
चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां लक्ष्मणमूर्च्छा-
मोचनंनाम सप्तदशः प्रकाशः ॥ १७ ॥

यत्र जा पर्वत में औषधीवृन्द नहीं हैं, विना पत्र फूले पलाश के वृक्ष हैं, या प्रकार भूली कोकिलन की आली पंक्ति रमती हैं । और भ्रमर जामें भ्रमैं कहे घूमत हैं । वसंत कैसो है कि यत्र कहे जामें विना पत्र पलाश फूलि रहे हैं । और जामें कोकिलाली रमती हैं । और भूले कहे उन्मत्तता सों देह की सुधि बिसराये भ्रमर भ्रमत हैं । यामें श्लेषोत्प्रेक्षा है । सो सदानन्द जे राम हैं, तिनके महानन्द के लिये हनुमान् मानो वसंत ही ल्याये हैं । वसंत को देखि सबके आनन्द होत है, ता सों । अथवा जैसे सज्जन के इहाँ आनन्दार्थ माली वसंत बनाइ कै लै जात है, तैसे मानो रामचन्द्र के महाआनन्द को हनुमान् वसंत

को रूप ही बनाइ ल्याये हैं ॥ ५५ ॥ मूरि जो औषधि है, ताको छिये कहे छुये सों ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां सप्तदशः प्रकाशः ॥ १७ ॥

दोहा ॥ अष्टादसे प्रकाश में केशवदास कराल । कुम्भकर्ण को बर्णिबो मेघनाद को काल ॥ १ ॥ दोधक छंद ॥ रावण लक्ष्मण को सुनि नीके । छूटि गये सब साधन जी के ॥ रे सुत मंत्रि बिलंब न लाओ । कुम्भकरन्नहि जाइ जगाओ ॥ २ ॥ राक्षस लक्ष्मण साधन कीने । दुन्दुभि दीन्ह बजाइ नबीने ॥ मत्त अमत्त बड़े अरु बारे । कुंजरपुंज जगावत हारे ॥ ३ ॥ आइ जहीं सुरनारि सभागी । गावन बीन बजावन लागी ॥ जागि उठो तबही सुरदोषी । क्षुद्र क्षुधा बहु भक्षण पोषी ॥ ४ ॥

कुम्भकर्ण को और मेघनाद को काल कहे मृत्यु वर्णिबो ॥ १ ॥ साधन कहे जय-सिद्धि के उपाय ॥ २ ॥ साधन कहे जगाइबे को यत्न ॥ ३ ॥ यह महादेव को वर रह्यो है कि देवांगनन को गान सुनि कुम्भकर्ण अकाल हू में जागि है । तासों जब देवांगना आइ गावन लागीं, तब जाग्यो । यथा हनुमन्नाटके—निद्रां तथापि न जहौ यदि कुंभकर्णः श्रीकण्ठलब्धवरकिन्नर-कामिनीनाम् । गंधर्वयक्षसुरसिद्धनरांगनानामाकर्ण्य गीतममृतंपरमं विनिद्रः ॥४॥

नाराच छन्द ॥ अमत्त मत्त दंतिपंक्ति एक कौर को करै । भुजा पसारि आसपास मेघ ओप संहरै ॥ विमान आसमान के जहाँ तहाँ भगाइयो । अमान मान सो दिवान कुम्भकर्ण आ-इयो ॥५॥ रावण—समुद्र सेतु बाँधिकै मनुष्य दोइ आइयो । लिए कुचालि बानरालि लंक अंक लाइयो ॥ मिल्यो बिभीषणौ न मोहिं तोहिं नेक हू डर्‌यो । प्रहस्त आदि दै अनेक मंत्रि मित्र संहर्‌यो ॥ ६ ॥ करो सु काज आसु आजु चित्त में जु भावई । असौख्य होइँ जीव जीव शुक्र सौख्य पावई ॥ समेत राम लक्ष्मणौ

सु बानरालि भक्षिये। सकोस मंत्रि मित्र पुत्र धाम ग्राम रक्षिये॥ ७॥

मान गर्व दीवान, सभा ॥ ५ ॥ वानरालि को लङ्क के अङ्क कहे गोद में लायो है। अर्थात् लङ्क के मध्यमें प्राप्त कियो है। अथवा जो पुरी काहू कबहूँ नहीं घेस्यो, ताको घेरि कै अङ्क कहे कलङ्क लायो है। यामें रामचन्द्र के बल को वर्णन है, निंदा नहीं है, तासों सरस्वती-उक्तार्थ नहीं कियो ॥६॥ ऐसो कार्य करो, जासों देवतन को विघ्न होइ। जीव जे बृहस्पति हैं, ते असौख्य होइँ, और हमारी जय होइ। शुक्र सुख पावैं। सरस्वती उक्तार्थ— राम-लक्ष्मण-समेत या वानरालि को भक्षिये कहे भक्षण करि सकियत है, अर्थात् नहीं भक्षण करि सकियत। काहे ते कि अनेक नर वानर हम भक्षण करे हैं। इनको सेतुबंधनादि कर्म देखिकै हमारो जीव अति डरो है, ताते कोश कहे खजाना सहित मंत्रीआदिकन को रक्षिये कहे रक्षण करि सकियत है, अर्थात् नहीं रक्षण करि सकियत। अर्थ यह कि ये हम सबको मारि ग्रामादि लेन चहत हैं ॥ ७ ॥

कुम्भकर्ण—मनोरमा छंद॥ सुनिये कुलभूषण देव-बिदूषण। बहु आजिविराजिन के तुम पूषण॥ भव भूप जे चारि पदारथ साधत। तिनको कबहूँ नहिं बाधक बाधत॥ ८॥ पंकजबाटिका छन्द॥ धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत। सन्तत हितरति कोबिद गावत॥ संतति उपजत ही निसिवासर। साधन तन-मन मुक्ति महीधर॥ ९॥

बहुते जे हैं आजि कहे समरन के विराजी कहे शोभनहार, अर्थात् अनेक समरन के कर्त्ता, तिनके मध्य में तुम पूषण कहे सूर्यसम हौ। कहूँ तम-पूषण पाठ है, तहाँ अर्थ यह कि बहुत जे आजि-विराजी संग्रामकर्त्ता हैं, तिनके तमपूषण कहे तम को पूषणसम हौ। अर्थात् जैसे सूर्य तमको नाश करत हैं, तैसे तुम संग्रामकर्त्ता जे शत्रुभट हैं, तिन्हैं नाश करत हौ। चारि पदार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ॥ ८॥ चारों पदार्थन के साधिबे को समय कहत हैं कि महीधर जे राजा हैं, ते सन्तत कहे निरंतर धर्म हू करत हैं, और सन्तत अति अर्थ द्रव्यहू को बढ़ावत हैं। अथवा धर्म को करत, अर्थ बढ़ावत

हैं। अर्थात् सत् रीति सों अर्थ बढ़ावत हैं। और सन्तत हित हैं रति स्त्रीभोग अर्थ कामसाधन जिनको, ऐसे कोविद गावत हैं। अर्थात् ये तीनों एकही समय में साध्य हैं। और जब सन्तति कहे पुत्र उत्पन्न भयो, तब निशि और वासर तन और मन करिकै मुक्ति को साधन करत हैं। आजतक तुम धर्म, अर्थ, काम को साधन कीन्हो, अब तुम्हारो पुत्र समर्थ है, ताको सब राज्य-भार सौंपि सीता को रामचन्द्र को दै कै, हेतु करि मुक्ति-साधन करो इति भावार्थः ॥ ९ ॥

दोहा ॥ राजा अरु युवराज जग प्रोहित मंत्री मित्र। कामी कुटिल न सेइये कृपण कृतघ्न अमित्र ॥ १० ॥ घनाक्षरी ॥ कामी वामी झूठ क्रोधी कोढ़ी कुलद्वेषी खल कायर कृतघ्नी मित्र-दोषी द्विज-द्रोहिये। कुपुरुष किंपुरुष काहली कलहि क्रूर कुटिल कुमन्त्री कुलहीन केशौ ठोहिये ॥ पापी लोभी झूठ अंध बावरो वधिर गूँगो बौनो अविवेकी हठी छली निरमोहिये। सूम सर्बभक्षी दैवबादी जो कुवादी जड़ अपजसी ऐसो भूमि भूपति न सोहिये ॥ ११ ॥

ये पाँचों राजा आदि इन दूषणन सहित होहिं, तौ सेवन के योग्य नहीं होत। अथवा यथाक्रम सों जानो। राजा कामी, काहेते कि उचित-अनुचित के विचार बिना सुन्दरी देखि प्रजाजन की स्त्रीन को गहि मँगावत हैं, तासों देश उजारि होत है। और युवराज कुटिल, काहे ते कि मन्त्री आदिकन सों विरोध करि राज्य-विध्वंस करत है। और पुरोहित कृपण कहे दरिद्र, काहे ते कि विवाहादि-समय में द्रव्यलोभवश वेदविहित घटी-मुहूर्त आदि बिताइ अमंगल करत हैं। अथवा शत्रु सों कछु द्रव्य पाइ मारण आदि के लिये राशि-नाम बतावत हैं। और मंत्री कृतघ्नी, काहे ते कि स्वामी को कृत बिसारि शत्रु सों मिलि राज्य छोड़ावैं। और मित्र अमित्र कहे हृदय में भलो न चाहै, काहे ते कि कछु गूढ़ मंत्र कहौ सो शत्रु के पास पहुँचावै। ये पाँचों दोष-सहित सेवन योग्य नहीं होत। या सों या जनायो कि तुम राजा हौ, तुम्हैं ऐसो काम साधनो न चाहिये, जो ईश्वर जे रामचंद्र हैं तिनकी स्त्री को हरि ल्याये हौ ॥ १० ॥ वामी, वाममार्गी। कुपुरुष कहे पुरुषार्थ-रहित। किंपुरुष कहे कुछ है पुरुष की आकृति जिनकी। काहली, रोगी। दैववादी कहे जे भाग्य

के भरोसे रहत हैं । याहू में या जनायो कि तुमको ऐसो काम साधनो न चाहिये ॥ ११ ॥

निशिपालिका छन्द ॥ वानर न जानु सुर जानु शुभगाथ हैं । मानुष न जानु रघुनाथ जगनाथ हैं ॥ जानकिहि देहु करि नेहु कुल देहु सों । आजु रन साजु पुनि गाजु हँसि मेहु सों ॥ १२ ॥ रावण—दोहा ॥ कुंभकर्ण करि युद्ध कै सोइ रहौ घर जाइ ॥ बेगि विभीषण ज्यों मिल्यो गहौ शत्रु के पाँइ ॥ १३ ॥ मंदोदरी—इन्द्रजीत अतिकाय सुनि नारांतक सुखदाय । भैयन सों प्रभु झुकत हैं, क्यों न कहौ समुझाय ॥ १४ ॥ चंचला छंद ॥ देव कुंभकर्ण के समान जानिये न आन । इन्द्र चन्द्र विष्णु रुद्र ब्रह्म को हरयो गुमान ॥ राजकाज को कहै जु मानिये सो प्रेम पालि । कै चली न को चलै न काल की कुचालि चालि ॥ १५ ॥

कुल और देह सों नेह करि कै जानकी को देहु । यह कहि या जनायो कि न देहौ तौ रामचन्द्र तुम्हारे कुल के सहित तुम्हारो नाश करि हैं ॥ १२ ॥ करि कहे करो ॥ १३ ॥ झुकत कहे रिस करत है । भैयन सों, बहुवचन कहि या जनायो कि एक भाई विभीषण समुझावन लाग्यो, ताको लात मारयो, अब वैसेहि कुम्भकर्ण सों रिस करत हैं ॥ १४ ॥ देव रावण को सम्बोधन है । जो बात कुम्भकर्ण कहत है, सो राज के काज के हित को कहत है, ताहि प्रेम को पालिकै कहे हित करिकै मानिये । अर्थात् सीता को दै कै रामचन्द्र सों हित करौ । काहे ते कि काल जो समय है, ताकी जो कुचालि कहे प्रतिकूलता है, तामें चालि कहे चाल युद्धादि–उत्कट–कर्मरहित विचारयुक्त निज–हितसाधक कार्य्य कृत्य कै पूर्व नाहीं चल्यो, को अब नाहीं चलत ? अर्थात् जे पूर्व भये हैं तिन चल्यो है, अब जे होत जात हैं ते चलत हैं । जब अपनो समय टेढ़ो होत है, तब शत्रु–मिलनादि कार्य करि गौं साधिबो अनुचित नहीं है, इति भावार्थः । अथवा काल की जो कुचालि है, ताकी जो चालि कहे चालु है । अर्थात् जब आपनो काल प्रतिकूल भयो, ता समय में कार्य साधनो उचित चाल है ॥ १५ ॥

बिष्णु भाजि भाजि जात छोड़ि देवता अशेष। जामदग्नि देखि देखि कैं न कीन नारि-वेष॥ ईश राम ते बचे बचे क बानरेश बालि। कैं चली न को चलै न काल की कुचालि चालि॥ १६॥ विजया॥ रामहि चोरि न दीन्ही सिया जितके दुख तो तप लीलि लियो है। रामहि मारन दीन्हो सहोदर रामहिं आवन जान दियो है॥ देह धरयो तुमहीं लगि आजु लौं रामहि के पिय ज्याये जियो है। दूरि करयो द्विजता द्विज-देव हरेहिहरे अततायी कियो है॥ १७॥

काल की कुचालि में चालु कै चली है, सो कहत हैं कि देव-दानवन के युद्ध में देवतन के सहाय को विष्णु जात हैं, परंतु जव जानत हैं कि दैत्यन को समय सहायक है, हमको कुटिल है, हम इन सों न जीति हैं, तब यश की सुधि भुलाइ आपने प्राणन की रक्षा के लिये भागि जात हैं। या प्रकार कैयो वार की कथा पुराणन में प्रसिद्ध है। यासों या जनायो कि विष्णु सों वली कोऊ नहीं है, तेऊ समय विचारि गौं साधि जात हैं। और जामदग्नि जे परशुराम हैं, तिनको देखिकै कैं क्षत्री नारिको वेष नहीं धरयो? या सों या जनायो कि जब परशुराम को समय रह्यो तब बड़े बड़े क्षत्रिय समय विचारि नारि को वेष धरि जीव बचायो। और तेई परशुराम ताही क्षत्रिय-वंश में उत्पन्न जे रामचन्द्र हैं, तिनको समय वली विचारि आपनो धनुष बाण दै हेतु मेल करयो। तासों हे ईश, रामचन्द्र को समय वली है, सो सीता को दै कै हेतु मेलरूपी जो वचिवे को उपाय है, तासों बचो। काहेते कि वालि वली रहै, तिन वचिवे को उपाय न कियो, ते न बचे, मारे ही गये॥ १६॥ आवन जान दियो, अर्थात् युद्धमण्डल में आवन दियो, फेरि युद्धमण्डल सों फिरि जान दियो। स्त्री-हर्त्तादिक छः आततायी कहावत हैं। यथा भागवते। अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। क्षेत्रदारापहश्चैव षडेते आततायिनः॥ आततायी ब्राह्मण हू होइ, ताके वध सों ब्रह्महत्यादोष नहीं है, तासों॥ १७॥

दोहा॥ संधि करो बिग्रह करो सीता को तो देह। गनो न पिय देहीन में पतिव्रता की देह॥ १८॥ रावण—विजय छन्द॥

हौं सतु छाँड़ि मिलौं मृगलोचनि क्यों क्षमिहैं अपराध नये। नारि हरी सुत बाँध्यो तिहारे हौं कालिहि सोदर साँगि हये॥ बामन माँग्यो त्रिपैग धरा दछिना बलि चौदह लोक दये। रञ्चक बैर हुतो हरि बञ्चक बाँधि पताल तऊ पठये॥ १९ ॥ दोहा॥ देवर कुम्भकरन्न सो हरिअरि सो सुत जाइ। रावण सो प्रभु कौन को मन्दोदरी डराइ॥ २० ॥

पतिव्रता जे स्त्री हैं, तिनकी देह स्वरूप देहिन में न गनौ॥ १८ ॥ अपराध नये कह्यो, तासों बलि को प्राचीन वैर जानो। अर्थात् हिरण्य-कशिपु के रंचक वैर सों बलि को बाँधि पताल पठायो॥ १९ ॥ २० ॥

चामर छन्द ॥ कुम्भकर्ण रावणै प्रदक्षिणाहि दै चल्यो। हाइहाइ है रह्यो अकाश आशु ही हल्यो ॥ मध्य क्षुद्रघंटिका किरीट संग शोभनो। लच्छ पच्छ सों कलिन्द्र इन्द्र को चढ़्यो मनो॥ २१ ॥ नाराच॥ उड़ैं दिशा दिशा कपीश कोरि कोरि श्वासहीं। चपैं चपेट पेट बाहु जानु जंघ सों तहीं॥ लियेहैं और ऐंचि ऐंचि बीर बाहु-बातही। भखे ते अन्तरिक्ष ऋक्ष लक्ष लक्ष जातही ॥ २२ ॥ कुम्भकर्ण—भुजंगप्रयात छन्द ॥ न हौं ताडका हौं सुबाहै न मानो। न हौं शंभुकोदंड साँचो बखानो॥ न हौं तालमाली खरै जाहि मारो। न हौं दूषणै सिंधु सूधौ निहारो॥२३॥ सुरी आसुरी सुन्दरी भोगकर्नैं। महाकाल को काल हौं कुम्भकर्नैं॥ सुनो राम संग्राम को तोहिं बोलौं। बढ़्यो गर्ब लंकाहि आये सु खोलौं॥ २४ ॥

लक्ष विधि को जो पक्ष कहे विरोध है, तासों। अर्थात् बड़े विरोध सों। अथवा लक्ष विधि को जो पक्ष कहे बल है, तासों। अर्थ यह कि बड़े बल सों। इहाँ लक्ष शब्द अधिकार्थ में है॥ पक्षोमासार्द्धके पार्श्वगृहे साध्यविरोधयोः। केशादेः परतो वृंदे बले सखिसहाययोरिति मेदिनी॥ २१॥ जे लक्षन ऋक्ष भय सों अन्तरिक्ष को जात हैं, तिन्हैं बाँह के वात वायु सों खैंचि कै भखे

नरछाँहई अपवित्र। शर खड्ग निर्दय मित्र॥ १८॥ सोरठा॥ गुण तजि अवगुणजाल गहत नित्य प्रति चालनी॥ पुंश्चली-ति तेहि काल एकै कीरति जानिये॥ १९॥ दोहा॥ धनद-लोक सुरलोक-मय सप्त-लोक के साज॥ सप्त-द्वीपवति महि बसी रामचन्द्र के राज॥ २०॥ दश सहस्र दश सौ बरष रसा बसी यहि साज॥ स्वर्ग नरक के मग थके रामचंद्र के राज॥ २१॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्री-रामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां राम-राज्यवर्णनन्नामाष्टविंशः प्रकाशः॥ २८॥

द्विस्वभाव कहे द्वै प्रकार को स्वभाव श्लेष कविता में है, एक समय और अर्थ कहत हैं, एक समय और कहत हैं, और सबको एकई स्वभाव है इति भावार्थः॥ १७॥ बहु कहे बहुत विधि सों शब्द जो है सोई वंचक कहे ठग है। अर्थात् वंचक यह जो शब्द है, सोई है, और कोऊ प्राणी ठग नहीं है। अथवा बहुत जे परस्पर कोमल-भाषित शब्द हैं, तेई ठग हैं। अर्थात् ठग सम मोहित करत हैं, और अलि जे भ्रमर हैं तेई पश्यतोहर कहे देखत हूँ चोरी करत हैं, अर्थात् सबके देखत भ्रमर पुष्पन सों मधु चोरत हैं॥ १८॥ गुणरूप पिसान को त्यागि अवगुणरूपी भूमि को ग्रहण करति है। पुंश्चली, परकीया॥ १९॥ २०॥ रसा, पृथ्वी। स्वर्ग नरक के मग थके कहे नहीं चलत। अर्थात् न कोऊ प्राणी स्वर्ग जाइ, न नरक जाइ, सब मुक्ति-पुरी को जात हैं॥ २१॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामष्टविंशः प्रकाशः॥ २८॥

दोहा ॥ उनतीसयें प्रकाश में वरणि कह्यो चौगान ॥ अवध-दीप शुक की विनति राजलोक गुण-गान ॥ १ ॥ चौपाई ॥ एककाल अतिरूपनिधान। खेलन को निकरे चौगान ॥ हाथ धनुष शर मन्मथरूप। संग पयादे सोदर भूप ॥ २ ॥ जाको जवहीं आयसु होइ। जाइ चढ़ै गज वाजिन सोइ ॥ पशुपति-से रघुपति देखिये। अनुगत शेष महा लेखिये ॥ ३ ॥ वीथी सब असवारिन भरी। हय हाथिन सों सोहत खरी ॥ तरुपुंजन सों सरिता भली। मानों मिलन समुद्रहि चली ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ जा गज पै औ जा वाजि पै चढ़ि कै चलिबे को रामचन्द्र को आयसु जाको होत है, सो तापै चढ़त है। रामचन्द्र के अनु कहे पाछे गत कहे प्राप्त शेष लक्ष्मण हैं। और महादेव के अनु पश्चाद्भाग में गत प्राप्त शेष कहे शेष नाग हैं। शेष को महादेव ग्रीवा में पहिरे हैं, सो पृष्ठभाग में उरसत हैं, इत्यर्थः। कहूँ अनुगणसैन पाठ है, तौ अनु पश्चाद् गण समूह सैन को पेखियत है, और महादेव के अनु पश्चाद् गण वीरभद्रादिकन की महासैन पेखियत ॥ ३ ॥ वीथी, गली ॥ ४ ॥

यहि विधि गये राम चौगान। सावकास सब भूमि समान ॥ शोभन एक कोस परिमान। रचो रुचिर तापर चौगान ॥ ५ ॥ एक कोद रघुनाथ उदार। भरत दूसरे कोद विचार ॥ सोहत हाथे लीन्हे छरी। कारी पीरी राती हरी ॥ ६ ॥ देखन लग्यो सबै जगजाल। डारि दियो भुव गोला हाल ॥ गोला जाइ जहाँजहँ जबै। होत तहीं तितहीतित सबै ॥ ७ ॥ मनों रसिक लोचन रुचि रचे। रूपसंग बहु नाचनि नचे ॥ लोक-लाज छांड़े अँगअंग। डोलत जनु जन-मन के संग ॥ ८ ॥ गोला जाके आगे जाइ। सोई ताहि चलै अपनाइ ॥ जैसे तियगण को पति रयो। जेहि पायो ताही को भयो ॥ ९ ॥ उत

ते इत इत ते उत होइ। नेकहु ढील न पावै सोइ॥ काम क्रोध मद मढ्यो अपार। मानों जीव भ्रमै संसार॥ १०॥

सावकाश कहे फैलाव सहित। और समान कहे नीच-उच्च रहित॥ ५॥ कोद कहे ओर॥ ६॥ जाहीं कहे तबै॥ ७॥ रुचि कहे इच्छा। रूप, सुन्दरता॥ ८॥ ९॥ १०॥

जहाँ तहाँ मारै सब कोइ। ज्यों नर पंचबिरोधी होइ॥ घरी घरी प्रति ठाकुर सबै। बदलत बासन बाहन तबै॥ ११॥ दोहा॥ जब जब जीतैं हाल हरि तब तब बजत निशान॥ हय गय भूषण भूरि पट दीजत लोग निदान॥ १२॥ चौपाई॥ तब तेहि समय एक बेताल। पढ्यो गीत गुनि बुद्धि बिशाल॥ गोलन की बिनती सुख पाई। रामचन्द्र सों कीन्ही आई॥ १३॥ दण्डक॥ पूरब की पूरा पूरी पापर पूरी-से तन बापुरी वै दूरि ही ते पाँयन परति हैं। दच्छिन को पच्छिनी-सी गच्छैं अन्तरिच्छ मग पच्छिम को पच्छहीन पच्छी ज्यों उरति हैं॥ उत्तर की देती हैं उतारि सरनागतनि बातन उतायली उतार उतराति हैं। गोलन की मूरतिन दीजिये जू अभैदान रामबैर कहाँ जाइँ बिनती करति हैं॥ १४॥

बासन, वस्त्र॥ ११॥ १२॥ बेताल, भाट। गोलन की बिनती कहे गोलन की तरफ सों बिनती रामचन्द्र सों कर्यो॥ १३॥ यामें समय विचारि स्तुतिपूर्वक गोलन की बिनतिन के व्याज खेल खेलिबो मने करत हैं। कहत हैं कि हे राम, पापर पूरी-भेद प्रसिद्ध है, और पूरी कहे पूरीसम हैं तन जिते कहे ऐसे जे पूर्वदिशा के पूरा कहे ग्राम पूरी कहे लघु ग्राम हैं, ते बापुरी दूरि ही ते भय सों तुम्हारे पाँयन परती हैं। और दक्षिण की पूरा पूरी अन्तरिक्ष आकाश के मग पक्षिणीसम गच्छती हैं। पक्षहीन कहि या जनायो कि उड़ि जाइबो चाहती हैं, पै पक्षहीनता सों रहि जाती हैं। और उत्तर की पूरा पूरी तुम्हारो विरोधी जो शरणागत हैं, ताको उतारि देती हैं,

अथवा उत्तर में पर्वत पर बसती हैं, सो पर्वत सों उतारि देती हैं। कैसे उतारि देती हैं कि बातन हूँ करिकै उतायली जो जल्दी है ताके उतार में उतरती हैं। अर्थात् यह कहती हैं कि तुम इहाँ सों जल्दी जाउ, नहीं तौ रामचन्द्र जानि हैं, तौ हम को विदारि हैं। यासों या जनायो कि उत्तर की पुरी दुर्गम पर्वतन हूँ पर हैं, तहाँऊँ तुम्हारें वैरी को नहीं राखि सकतीं। तासों गोलन की मूरति बिनती करती हैं कि राम-वैर सों हम कहाँ जाइँ। तासों हे राम, अभयदान दीजै। खेल को समय है आयो, तासों अब खेल बंद करो, इति भावार्थः॥ १४॥

चौपाई॥ गोलन की बिनती सुनि ईश। घर को गमन कस्यो जगदीश॥ पुर पैठत अति शोभा भई। बीथिन असवारी भरि गई॥ १५॥ मनों सेतु मिलि सहित उछाह। सरितन के फिरि चले प्रबाह॥ ताही समय द्यौस नसि गयो। दीप-उदोत नगर महँ भयो॥ १६॥ नखतन की नगरी-सी लसी। मानों अवध देवारी बसी॥ नगर अशोकबृक्ष-रुचि-रयो। मधु प्रभु देखि प्रफुल्लित भयो॥ १७॥ अध अधफर ऊपर आकाश। चलत दीप देखियत प्रकाश॥ चौकी दै जनु अपने भेव। बहुरे देवलोक को देव॥ १८॥ बीथी बिमल सुगन्ध समान। दुहुँ दिसि दीसत दीप प्रमान॥ महाराज को सहित सनेह। निज नैनन जनु देखत गेह॥ १९॥ बहु बिधि देखत पुर के भाइ। राजसभा महँ बैठे जाइ॥ पहर एक निशि बीती जहीं। बिनती को शुक आये तहीं॥ २०॥

॥ १५॥ प्रथम जात समय कह्यो है कि—"तरुपुंजन सों सरिता भली। मानहुँ मिलन समुद्रहि चली", सो अब आवत में ताही में तर्क करत हैं कि मानों सेतु में मिलि कै उछाह आनन्द सहित सरितन के तेई प्रवाह फिरि चले हैं। जैसे लङ्का जात में रामचन्द्र सेतु बाँध्यो है, तामें लगिकै सरितन के प्रवाह फिरि चले हैं, तैसे जानो॥ १६॥ रुचि कहे सुन्दरता सों रयो अर्थात् युक्त नगररूपी जो अशोकवृक्ष है, सो मधु कहे वसन्त-सम जे रामचन्द्र

हैं, तिन्हैं देखि प्रफुल्लित भयो है ॥ १७ ॥ यामें आकाश-दीपन को वर्णन है। एकै आकाश के अध कहे अधोभागमें हैं, एकै अधफर कहे मध्यभाग में हैं, और एकै ऊपर हैं। या प्रकार ज्यों ज्यों क्रम-क्रम डोरि खींची जाति है, त्यों त्यों आकाश को चलत प्रकाश-दीप देखियत है, सो मानों ये सब दीप नहीं देवता हैं, अवधपुरी की चौकी देत हैं, तिनके मध्य मानों आपने भेव कहे समय-प्रमाण चौकी दै कै ये देव आपने लोक जात हैं ॥ १८ ॥ विमल, तृणादिरहित। सुगन्ध, गन्धयुक्त। समान, उच्च-नीच-रहित। दुहुँ दिशि कहे गैल के याहू ओर वाहू ओर। सनेह, प्रेम और तैल ॥ १९ ॥ भाइ कहे चेष्टा ॥ २० ॥

शुक—हरिप्रिया छन्द ॥ पौढ़िये कृपानिधान देवदेव रामचन्द्र चन्द्रिकासमेत चन्द्र चित्त रैनि मोहै। मनहुँ सुमन सुमति संग रचे रुचिर सुकृत रंग आनँदमय अंग अंग सकल सुखनि सोहै ॥ ललित लतन के बिलास भ्रमरबृन्द ह्वै उदास अमल कमल कोश आसपास बास कीन्हे। तजि तजि माया दुरंत भक्त रावरे अनंत तव पद कर नैन बैन मानहुँ मन दीन्हे ॥ २१ ॥ घर घर संगीत गीत बाजे बाजैं अजीत काम-भूप आगम जनु होत हैं बधाये। राजभौन आसपास दीपबृक्ष के बिलास जगति ज्योति जोवन जनु ज्योतिवन्त आये ॥ मोतिनमय भीति नई चन्द्रचन्द्रिकानि-मई पङ्क अङ्क अङ्कित भव भूरि भेद सो करी। मानहुँ शशिपण्डित करि जो-न्हज्योतिमंडित श्रीखंडशैल की अखंड शुभ्र सुंदरी दरी ॥२२॥ एक दीप द्युति बिभाति दीपति मणिदीप-पाँति मानहुँ भुव भूपतेज मंत्रिन मय राजै। आरे मणिखचित खरे बासन बहु बास भरे राखत गृह गृह अनेक मनहुँ मैन साजै ॥ अ-मल सुमिल जलनिधान मोतिन के शुभ बितान तापर प-लिका जराय जड़ित जीव हर्षै। कोमल तापर रसाल तन-

सुख की सेज लाल मनहुँ सोम सूरज पर सुधाबिंदु बर्षै ॥ २३ ॥
फूलन के बिबिध हार घोरिलनि उरमत उदार बिच बिच मणि
श्याम हार उपमा शुक भाखी । जीत्यो सब जगत जानि तुम
सों हरि हारि मानि मनहुँ मदन धनुषनि ते गुन उतारि राखी ॥
जल थल फल फूल भूरि अम्बर घट बास भूरि स्वच्छ यच्छ-
कर्दम हिय देवनि अभिलाखे । कुंकुम मेदौयवादि मृगमद
कर्पूर आदि बीरा बनितन बनाइ भाजन भरि राखे ॥ २४ ॥
पन्नगी नगीकुमारि आसुरी सुरी निहारि बिबिध बीन किन्नरीन
किन्नरी बजावैं । मानों निष्काम भक्ति शक्ति आय आप-
नीन देहन धरि प्रेमन भरि भजन भेद गावैं ॥ सोदर सा-
मन्त शूर सेनापति दास दूत देश देशके नरेश मन्त्रि मित्र ले-
खिये । बहुरे सुर असुर सिद्ध पंडित मुनि कवि प्रसिद्ध केशव
बहु रायराज राज-लोक देखिये ॥ २५ ॥

पाँच छन्द को अन्वय एक है । रैनि में चंद्रिका-समेत चंद्र चित्त को मोहत है, प्रसन्न करत है । अर्थात् रात्रि के संग सों चन्द्रिका समेत है चंद्र चित्त मोहत है । सो मानों सुष्ठु जो मति है ताके संग सों सुष्ठु जो मन है ताके अंग आनन्दमय कहे स्वच्छ सुकृत सुकर्म के रंग सों रचे हैं । सुकृत को रंग श्वेत कविप्रिया में श्वेतकी गणना में कह्यो है—शेष सुकृत शुचि सत्त्वगुण संतन के मनहास । सो मन सकल कहे पुत्र धनादि के सुखन सहित सोहत हैं । सुकृती को सब सुख प्राप्त होत हैं, यह प्रसिद्ध है । सुमतिसम रात्रि है, सुमनसम चन्द्रमा है, सुकृतसम चाँदनी है । ललित लतन के विलास सों उदास ह्वैकै, अर्थात् त्याग करिकै । मायासम लता हैं, भक्तसम भ्रमर हैं, कर और नयन और बैन सम कमल हैं । बैन पद ते इहाँ मुख जानौ । छंद उपजाति है । आसपास जे दीप-वृक्ष कहे झाड़ हैं, तिनके विलास सों राजभवन की ज्योति जगति है । मानों यौवन के आये शरीर की ज्योति जगति है, इति शेषः । ताही राजभवन की चन्द्रचन्द्रिकानिमयी कहे चन्द्रिकन सों युक्त जो मोतिनमय भीति है, ताहि भव जो संसार है, ताके जे भूरि भेद हैं, अर्थात्

अनेक विधि के चित्र हैं, तिन सहित, पंक जो चन्दनपंक है, तासों सेयकन चित्रित करी है । अर्थात् भीतिन में चित्र-विचित्र चंदनपंक लग्यो है । सो श्रीखण्ड जो चन्दन है, ताको शैल मलयाचल, अथवा चन्दन ही को निर्मित जो शैल है, ताकी शुभ्र कहे श्वेत और सुन्दरी रुचिर दरी कन्दरा को पण्डित कहे चतुर जो शशि है सो जोन्ह ज्योति सों मण्डित करी है । चन्दनलेप सों युक्त है, तासों राजभवन को श्रीखण्ड-शैलसम कह्यो है । दरीसम गृह को उदर है । ता भूपभवन में ये दीप की द्युति विभाति कहे शोभित है । और मणिदीप कहे भीतिन में जटित मणिन में प्रतिबिंबित जे दीप हैं तिनहूँ की पाँति दीपति है । सो मानों भुव में, अर्थात् भुवमंडल में, मन्त्रिनमय कहे मंत्रिन के तेजमय, अर्थात् मन्त्रिन के प्रताप सों युक्त राजा को तेज राजत है । भूपतेजसम एक दीप है, मन्त्रिन के तेजसम प्रतिबिंब-दीप हैं । मन्त्रिन को तेज राजतेज के प्रतिबिंबसम होत ही है । अथवा मानों राजा को तेज़ ही मंत्रिन में व्याप्त राजत है । मंत्रिनसम मणि हैं, भूपतेजसम दीप है । और आरे कहे ताख, मणिन करिकै खरे कहे नीकी विधि चित्रित हैं । तिनमें वहु वास कहे सुगंधन सों भरे अनेक वासन कहे पात्र गृह-गृह में कहे स्थान-स्थान में स्त्रीजन राखती हैं । ते मानों मैन जो काम है, ताको साजै हैं, अर्थात् काम के लाइवे के सुगंध हैं । और अमल कहे निर्मल, सुमिल कहे गोल, और जल कहे पानी के निधान, जे मोती हैं, तिनके शुभ वितान कहे चँदोवा हैं । तनसुख तन जो लाल अरुण सोमसम मोतिन को वितान है । सुधाविंदुसम मोती हैं, सूर्यसम अरुण सेज है । घोरिला धनुप के गोशा सदृश होत है । धनुप सों गुण उतास्यो जात है, तब एक गोशा में लग्यो रहत है । गुण, रोदा । मौर्वी ज्या सिंजिनीगुण इत्यमरः । और जल और थल के भूरि कहे अनेक विधि के फल और फूल और अंबर वस्त्र और पटवास कहे सुगन्धचूर्ण, तिनकी धूरि । पिष्टातः पटवासक इत्यमरः । और जाको हिय में देवता अभिलाप करत हैं, सो ऐसो स्वच्छ यक्षकर्दम । कर्पूरागुरुकस्तूरीकंकोलैर्यक्षकर्दमः । और कुंकुम केसरि और मेदौजवादि कहे उवटन । और मृगमद कस्तूरी और कर्पूर आदि । और बीरा वनाइ वनाइ कै, भिन्न भिन्न भाजन पात्रन में वनिता जे दासीजन हैं, तिन भरि राखे हैं । किन्नरीन कहे सारंगीन की । आपनी आपनी शक्ति सों कहे अणिमादि सिद्धि के वल सों । देहन को धरिकै बहुरे कहे आज्ञा पाइ रावरी सभा सों अपने

धामन को जात हैं । तासों अब आप हू चलि कै राजलोक को देखिये, और तहाँ पौढ़िये, इत्यन्वयः ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

दोहा ॥ कहि केशव शुक के वचन सुनि सुनि परम विचित्र ॥ राजलोक देखन चले रामचन्द्र जगमित्र ॥ २६ ॥ नाराच छंद ॥ सुदेश राजलोक आसपास कोट देखियो । रची विचारि चारि पौंरि पूरवादि लेखियो ॥ सुवेष एक सिंहपौंरि एक दंतिराज है । सु एक वाजिराज एक नंदिवेष साज है ॥ २७ ॥ दोहा ॥ पाँच चौक मध्यहि रच्यो सात लोक तरहारि ॥ पट ऊपर तिन के तहाँ चित्रे चित्र विचारि ॥ २८ ॥ चामर छंद ॥ भोज एक चौक मध्य दूसरे रची सभा । तीसरे विचार मंत्र और नृत्य की प्रभा ॥ मध्यचौक में तहाँ विदेहकन्यका वसै । सर्वभाव रामचन्द्र-लीन सर्वथा लसै ॥ २९ ॥

राजलोक कहे राजभवन ॥ २६ ॥ रामचन्द्रजू राजलोक के आसपास सुदेश कहे आछो कोट देखत भये । अर्थात् आसपास कोट है, ताके मध्य में राजलोक है, ता कोट के पूर्वादि दिशा में क्रम सों चारों ओर चारि पौंरि कहे द्वार हैं । पूर्व दिशा में सिंहपौंरि है, दक्षिण दिशा में दंतिपौंरि है, पश्चिम दिशा में वाजिपौंरि है, उत्तर दिशा में नंदिपौंरि है । इहाँ सिंहादि पौंरि सों सिंहादि-स्वरूपयुक्त पौंरि जानौ ॥ २७ ॥ ता कोट के मध्यहि कहे मध्य में सात लोक के तरहारि कहे सतमहला के तरे पाँच चौक अँगनाई रचो है । अर्थात् अँगनाई-विशिष्ट पृथक् पाँच भवन बने हैं । ते सतमंजिला हैं । तिनके कहे तिन भवनन के पट ऊपर कहे छठयें लोक के जे ऊपर कहे छति हैं, तहाँ विचारि कै कहे जहाँ जैसो चाहिये तहाँ तैसो समुझि कै चित्र चित्रे हैं । अर्थात् पाँच चौक मध्य में रच्यो है । ते कैसे हैं, सातों लोक जे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल हैं, ते तरहारि कहे अधन्यून हैं जिन ते अर्थात् सातौ लोक में ऐसे धाम नहीं हैं । और पट् कहे छःलोक जे भू, अंतरिक्ष, स्वर्ग, ब्रह्मलोक, पितृलोक, सूर्यलोक हैं, तिन हूँ के ऊपर अर्थात् श्रेष्ठ है । यासों या जनायो कि सातवाँ

लोक जो वैकुण्ठ है, ताके सदृश हैं। तहाँ विचारि कै अर्थात् यथोचित स्थान में चित्र चित्रे हैं। अथवा सात लोक जे तरहारि कहे तरे के हैं अतलादि, और षट् जे भूलोक आदि हैं, तिनहूँ के ऊपर जो लोक है वैकुण्ठ, सो विचारि कै तिनके कहे ता वैकुण्ठ के धामन के चित्रसम चित्रे हैं। अर्थ यह कि वैकुण्ठ धामन के प्रतिमा बने हैं। अथवा विचारि कै तिनके वैकुण्ठ-धामन के चित्र चित्रे हैं। अर्थात् जे चित्र वैकुण्ठ-धामन में हैं, तेई इनमें चित्रे हैं ॥ २८ ॥ यामें पाँचहू चौकन को प्रयोजन कहत हैं। चौथे चौक में नृत्य की सभा रची, इत्यर्थः ॥ २९ ॥

दोधक छन्द ॥ मन्दिर कंचन को यक सोहै। श्वेत तहाँ छतुरी मन मोहै ॥ सोहत शीरष मेरुह मानो। सुन्दर देव-दिवान बखानो ॥ ३० ॥ मन्दिर लालन को यक सोहै। श्याम तहाँ छतुरी मन मोहै ॥ ताहि यहै उपमा सब साजै। सूरज-अंक मनो शनि राजै ॥ ३१ ॥ मन्दिर नीलम को यक सोहै। श्वेत तहाँ छतुरी मन मोहै ॥ मानहुँ हंसन की अवली-सी। प्राविटकाल उड़ाइ चली-सी ॥ ३२ ॥ मन्दिर श्वेत लसै अति भारी। सोहति है छतुरी अति कारी ॥ मानहुँ ईश्वर के सिर सोहै। मूरति राघव की मन मोहै ॥ ३३ ॥ तोटक छन्द ॥ सब धामन में यक धाम बन्यो। अति सुन्दर स्वेत स्वरूप सन्यो ॥ शनि सूर बृहस्पति-मण्डल में। पूरिपूरन चन्द्र मनो बल में ॥ ३४ ॥ चौपाई ॥ बहुधा मन्दिर देखे भले। देखन शुभ्र शालिका चले ॥ शीत-भीत ज्यों नेक न त्रसे। पलुक बसनशाला महँ लसे ॥ ३५ ॥ जलशाला चातक ज्यों गये। अलि ज्यों गन्धशालिका ठये ॥ निपट रङ्क ज्यों शोभित भये। मेवा की शाला में गये ॥ ३६ ॥ -

तिन पाँचहू मंदिरन को रूप क्रम सों पाँच छन्दन में कहत हैं। मेरुह कहे मेरु के। शीर्ष कहे अग्रभाग में। देवदिवान कहे देवसभा है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मेघन करि आच्छादित श्याम प्राविट्काल कहे वर्षाकाल सम नील मणिन को मंदिर है । हंसावली सम श्वेत छतुरी है ॥ ३२ ॥ ईश्वर, महादेव ॥ ३३ ॥ शनैश्चरादि के मण्डल में परिदृष्टि आदि दोष सों संयुक्त है कै चन्द्रमा हीन बल हू है जात है, तासों बल में कहे बलाधिक्य सों युक्त कह्यो । इहाँ शनि सूर बृहस्पति-मंडल में कहे शनि सूर बृहस्पति आदि के मण्डल में जानौ । श्याम मंदिर शनैश्चर है, अरुण मंदिर सूर्य है, सुवर्ण मंदिर बृहस्पति है, श्वेत मंदिर शुक्र है ॥ ३४ ॥ शीत जो जाड़ो है, तासों भीत जो प्राणी हैं, सो जैसे अनेक वस्त्रन में प्रसन्नचित्त होत हैं, या प्रकार वस्त्रन के देखिवे में नेक न अमे कहे न सकुचे । अर्थात् प्रसन्नचित्त है सब वसन-शाला के वस्त्र देख्यो, इत्यर्थः । याही विधि जलशाला आदि में चातक आदि सम जाइवे में केवल चित्तचोप की समता जानौ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

चतुर चोर-से शोभित भये । धरणीधर धनशाला गये ॥ मानिनीन के-से मनमेव । गये मानशाला में देव ॥ ३७ ॥ मंत्रिन स्यो बैठे सुख पाइ । पलुक मंत्रशाला में जाइ ॥ शुभ सिंगारशाला को देखि । उलटे ललित नयन से लेखि ॥ ३८ ॥ तोटक छन्द ॥ जब रावर में रघुनाथ गये । बहुधा अवलोकत शोभ भये ॥ सब चंदन की शुभ शुद्ध करी । मणि लाल शिशानि सुधारि धरी ॥ ३९ ॥ बरँगा अति लाल सु चन्दन के । उपजे बन सुन्दर नन्दन के ॥ गजदन्तन की शुभ सींक नई । तिन बीचन बीचन स्वर्णमई ॥ ४० ॥ तिनके शुभ छप्पर छाजत हैं । कलसा मणि लाल विराजत हैं ॥ अति अद्भुत थम्भन की दुगई । गजदन्त सु चन्दन चित्र मई ॥ तिन माँझ लसैं बहु भायन के । शुभ कंचन फूल जरायन के ॥ ४१ ॥

मानिनीन के सदृश इत्यर्थः ॥ ३७ ॥ जा शाला में स्त्रीजन शृंगार करती हैं, अथवा भूषण आदि शृंगार-वस्तु जा शाला में धरी हैं, ताको देखत ही प्रेमातुर है रावर में जाइवे की इच्छा करि नयनसम कहे नयन-पूतरीसम उलटे कहे फिरे । नयन-पूतरी अतिशीघ्र फिरति है, तैसे अतिशीघ्र फिरे जानौ ॥ ३८ ॥ रावर स्त्री-

भँवन । शिरा, टोपी ॥ ३६ ॥ ४० ॥ तिनके कहे गजदन्त सुवर्ण आदि के, अथवा तृणके दुगई द्विकनाई, अथवा द्वै खम्भ एक में मिलाइ लागत हैं सो दुगई कहावत है ॥ ४१ ॥

रूपमाला छन्द ॥ वर्ण वर्ण जहाँ तहाँ बहुधा तने सुवितान । झालरैं मुकुतान की अरु झूमका बिन मान ॥ चौकठैं मणि नील की फटिकांन के सु कपाट । देखि देखि सुहोत हैं सब देवता जनु भाट ॥ ४२ ॥ श्वेत पीत मनीन के परदा रचे रुचि लीन । देखि कै तहँ देखिये जनु लोल लोचन मीन ॥ शुभ्र हीरन को सु आँगन है हिंडोरा लाल । सुन्दरी जहँ झूलहीं प्रतिबिम्ब के जहँ जाल ॥ ४३ ॥ स्वागता छन्द ॥ धाम धाम प्रति आसन सोहैं । देखि देखि रघुनाथ बिमोहैं ॥ बर्नि शोभ कबि कौन कहै जू । यत्र तत्र मन भूलि रहै जू ॥ ४४ ॥ दोहा ॥ जाके रूप न रेख गुण जानत वेद न गाथ । रंगमहल रघुनाथ गे राजसिरी के साथ ॥ ४५ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचन्द्र-चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां लोकवर्णनन्नामैकोन-त्रिंशः प्रकाशः ॥ २९ ॥

झूमका, झब्बा । बिन मान कहे बहुत ॥ ४२ ॥ तिनका देखि कै सबके लोचन मीनसम लोल होत हैं, यह देखियत है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जाके रूप आदि एकौ नहीं हैं ते राजश्री के साथ ह्वै रंगमहल गये । तौ रूपादियुक्त प्राणिन को तौ लै जायेई चाहैं, इति भावार्थः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामेकोनत्रिंशःप्रकाशः ॥ २९ ॥

दोहा ॥ या तीसयें प्रकाश में बरन्यो बहु बिधि जानि ॥ रंगमहल संगीत अरु रामशयन सुखदानि ॥ १ ॥ पुनि सारि-

का जगाइबो भोजन बहुत प्रकार॥ अरु बसन्त रघुवंशमणि वर्णन चन्द उदार॥ २॥ चतुष्पदी छन्द॥ द्युति रंगमहल की सहसवदन की बरनै मति न बिचारी। अध ऊरध राती रंग सँघाती रुचि बहुधा सुख कारी॥ चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि रघुकुलचरित सुहाये। सब देव अदेवनि अरु नरदेवनि निरखि निरखि शिर नाये॥ ३॥ आई बनि बाला गुणगणमाला बुधि-बल-रूपन बाढ़ी। शुभ जाति चित्रिणी चित्र-गेह ते निकसि भई जनु ठाढ़ी॥ मानों गुणसंगनि यों प्रतिअंगनि रूपक रूप विराजै। बीनानि बजावैं अद्भुत गावैं गिरा रागिनी लाजै॥ ४॥

॥ १॥ २॥ सँघाती कहे सघन हैं। रुचि, शोभा॥ ३॥ मानो गानआदि जे गुण हैं, तिनके संगनि समूहनि सों युक्त जे प्रति अंग हैं, तिनसों युक्त रूप जो सुन्दरता के रूपक कहे विचित्र विराजत हैं॥ ४॥

पद्धटिका छन्द॥ स्वर नाद ग्राम नृत्यति सताल। मुख वर्ग विविध आलापकाल॥ बहु कला जाति मूर्च्छना मानि। बड़भाग गमक गुण चलत जानि॥ ५॥

खर्जआदि जे सप्तस्वर हैं, तिनको जो काल है और तार आदि तीनि प्रकार को जो नाद है, और तीनि प्रकारके जे ग्राम हैं, और देशी आदि जे अनेक विधि के ताल हैं, तिन सहित नृत्यति कहे नाचती हैं। स्वरादीनां सर्वेषां लक्षणमुक्तं संगीतदर्पणे—तत्र स्वरलक्षणम्। श्रुत्यनन्तरभावित्वं यस्यानुरणनात्मकः। स्निग्धश्च रंजकश्चासौ स्वर इत्यभिधीयते॥ १॥ अथवा—स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परिकीर्त्तितः॥२॥ श्रुतिभ्यः स्युःस्वराः षड्जर्षभगांधारमंध्यमाः॥ पंचमोधैवतश्चाथ निषाद इति सप्त ते॥३॥ अथ त्रिधा नादः—××× ध्वनौ तु मधुरास्फुटे। कलो मंद्रस्तु गंभीरे तारोत्युच्चैस्त्रयस्त्रिषु॥ इत्यमरः॥ अथ ग्रामलक्षणम्। ग्रामः स्वरसमूहः स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः॥ तौ द्वौ धरतले तत्र स्यात् षड्जग्रामआदिमः॥ १॥ द्वितीयो मध्यमग्रामस्तयोर्लक्षणमुच्यते। षड्जग्रामः पंचमे च चतुर्थे श्रुतिसंस्थिते॥ २॥ स्वोपांत्यश्रुतिसंस्थोसि

मध्यमग्राम इष्यते। यद्वाधस्त्रिश्रुतिः षड्जे मध्यमे च चतुः श्रुतिः ॥ ३ ॥ ऋषभे श्रुतिमेकैकां गांधारश्चेत्समाश्रयेत्। यः श्रुतिं धो निषादस्तु धश्रुतिं सश्रुतिं स्मृतः ॥ ४ ॥ गांधारग्राममाचष्टे तदा तं नारदो मुनिः। प्रवर्त्तते स्वर्गलोके ग्रामोसौ न महीतले ॥ ५ ॥ अथताललक्षणं विनोदाचार्येणोक्तम्। हस्तद्वयस्य संयोगे वियोगे वापि वर्त्तते। व्याप्तिमान् यो दशप्राणैः सकालस्तालसंज्ञकः ॥ तथा च सारोद्धारे—कालस्ताल इति प्रोक्तः सोऽवच्छिन्नो द्रुतादिभिः ॥ गीतादिमानकर्त्तास्यात्स द्वेधा कथितो बुधैः ॥ तथा च संगीतार्णवे—कालः क्रिया च मानं च संभवन्ति यया सह। तथा तालस्य संभूतिरिति ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ मार्गदेशीयतत्त्वेन तालोसौ द्विविधो मतः। शुद्धशालंगसंकीर्णास्तालभेदाः क्रमान्मताः ॥ तालः कालक्रियामानमित्यमरः ॥ १ ॥ और आलाप के काल कहे समय में मुख विविध वर्ग कहे अनेक रूप होत हैं। आलापलक्षणम्—रागालापनमालप्तिः प्रकटीकरणं मतम् ॥ २ ॥ और बहु कहे बहुत प्रकार की जे कला हैं, और पाँच जे जाति हैं, और एकइस जे मूर्च्छना हैं, और बड़ कहे बड़े, अर्थात् नीको जो चारि प्रकार को भाग है, और पंचदश प्रकार की जो गमक है, इनके स्वर केते गुण हैं। तिन सहित नृत्य में चलति कहे चलती हैं, यह जानि कहे जानौ। अथ कलाः चूड़ामणिः—दक्षिणो वार्त्तिकश्चित्रो भुवचित्रतरस्तथा। अथ चित्रततश्चेति षण्मार्गाः शास्त्रसंमताः ॥ ध्रुवादिककलाष्टौच मार्गे दक्षिणसंज्ञके। ध्रुवका सर्पिणी चैव पताकापतितास्तथा ॥ चतस्रो वार्तिके ज्ञेयाश्चित्रेथ पुनरुच्यते। ध्रुवका पतिता चेति योजनीया विशेषतः ॥ ध्रुवे कलैका विज्ञेया शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता ॥ अथ चित्रतरे मार्गे कला च द्रुतसंमिता ॥ मार्गे चित्रतमे ज्ञेया कला करजसंज्ञिता ॥ अथ जातयः—चतुरस्रस्तथा तिस्रः खण्डो मिश्रस्तथैव च। संकीर्णा पंच विज्ञेया जातयः क्रमशो बुधैः ॥ चतुर्वर्णैस्त्रिभिर्वर्णैः पंचवर्णैस्तथैव च। सप्तवर्णैश्च नवभिर्जातयः क्रमशोदिताः ॥ अथ मूर्च्छनालक्षणम्—क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्। मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामत्रये ताः सप्त सप्त च ॥ अथ भागलक्षणम्—धातुप्रबंधावयवः सचोद्ग्राहादिभेदतः। चतुर्धा कथितो भागस्त्वदानूद्ग्राहसंज्ञकः ॥ आदावुद्ग्राह्यते गीतं येनोद्ग्राहस्ततो भवेत्। मेलापको द्वितीयस्तु ग्राहकध्रुवमेलनात् ॥ ध्रुवत्वाद्ध्रुवसंज्ञस्तु तृतीयो भाग उच्यते। आभोगस्त्वंतिमो भागो गीतपूर्णत्वसूचकः ॥ अथ गमकलक्षणम्—स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः। भेदाः पंचदशैवास्य कथितास्तिरियादयः ॥ ५ ॥

बहुवर्ण बिबिध आलापकालि। मुख चालि चारु अरु शब्द चालि॥ बहु उडुप त्रियगपति पति अड़ाल। अरु लाग धाउ रापरंगाल॥ ६॥ उलथा टेंकी आलम सदिंड। पद-पलटि हुरुमयी निशँक चिंड॥ असु तिन कि भ्रमनि देखि मतिधीर। भ्रमि सीखत हैं बहुधा समीर॥ ७॥ मोटनक छन्द॥ नाचैं रसबेष अशेष तबै। बरसैं सुरसैं बहुभाँति सबै॥ नव हू रसमिश्रित भाव रचैं। कौनो नहिं हस्तकभेद बचैं॥ ८॥ दोहा॥ पाइँ पखाउज ताल सों प्रतिधुनि सुनियत गीत॥ मानहु चित्र बिचित्र मति पढ़त सकल संगीत॥ ९॥ अमल कमल कर अंगुली सकल गुननि की मूरि॥ लागत मूठ मृदंगमुख शब्द रहत भरिपूरि॥ १०॥

प्रथम गान को विषय-निरूपण करि, अब द्वै छन्द में नृत्य को विषय-निरूपण करत हैं। द्वै छन्द को अन्वय एक है। आलापकालि कहे आलापकालीन अर्थात् आलापकाल के योग्य। बहुवर्ण कहे अनेक रंग की, अर्थात् अनेक तरह की। विविध कहे अनेक जे चारु कहे सुन्दर मुखचालि नृत्य हैं। और शब्दचालि और बहुत प्रकार के जे उडुप हैं। और (त्रियगपति तिर्यग्पति) कहे पक्षिशार्दूल-नृत्य। और पति और अड़ाल और उलथा और टेंकी और आलम नृत्य। सदिंड कहे दिंड-नृत्यसहित। और पदपलटी और हुरुमयी और निशंक और चिंड ये जे नृत्य हैं। और कहूँ उडुप तिरियपति बट अड़ाल पाठ है। तौ तिरिय और बट येऊ नृत्य के भेद जानौ। तिनमें तिन तिन की असु कहे शीघ्र भ्रमनि कहे घूमनि देखि कै मतिधीर कहे धीर मति सों, अर्थात् मति में धैर्य्य धरि कै एकाग्रचित्त ह्वै कै इति। भ्रमि कहे वघरुरा के व्याज घूमि घूमि कै समीर जे वायु हैं ते सीखत हैं। अथवा तिनकी भ्रमनि देखि कै अपनी शीघ्रता के गरूर करिकै मति है धीर जिनकी, ऐसे जे समीर हैं, ते भ्रमि कहे संदेह को प्राप्त ह्वै कै, अर्थात् आपने सों अधिक जानि आतुर ह्वै कै शीघ्रता सीखत हैं। नृत्यानां लक्षणमुक्तं संगीतदर्पणे—अथ मुखचालिः॥ नृत्यादौ प्रथमं नृत्यं मुखचालिरितिस्मृता॥१॥ अथ शब्दचालिः॥ प्राग्वत्कृत्वास्थानहस्तौ मध्यसंचेन नर्त्तकः। यत्रास्थित्वैकपादेन

शब्दवर्णानुगामिनीम् ॥. गतिं नयेद् द्वितीयेन दक्षिणाध्वनि शोभनाम्। तद्वत्पादांतरेणाथ क्रमेणैतद्द्वयोर्यदा ॥ पर्यायेण गतिंकुर्याद्वार्तिकादिषु पञ्चसु। मार्गेष्वसौशब्दचालिः पण्डितैश्च निरूपिता ॥ २ ॥ अथोडुपानि ॥ नेरिःकरणनेरिश्च मित्रं चित्रं तथा भवेत्। नत्रश्च जारमानश्च मुरुरिंडमुरुं-तथा। हुल्लश्च लावणीज्ञेया कर्त्तरीतुल्लकन्तथा। प्रसरश्च द्वादशस्युरुडुपानि यथाक्रमात् ॥ ३ ॥ अथ पक्षिशार्दूलनृत्यलक्षणम् ॥ यदिमण्डीमधिष्ठाय प्रसृतौ भ्रमतः करौ। तदा तं नरशार्दूलाः पक्षिशार्दूलमूचिरे ॥ ४ ॥ अथ पतिनृत्यलक्षणम् ॥ कूटाक्षराभ्यांकान्यांचिन्निमित्तात्यन्तकोमलाः। एकरूपाक्षरः चञ्चत्पुटतालानुगापदा ॥ वाचतेयोवाद्यखण्डो विरामैर्भूरिभिर्मुहुः ॥ यो निर्मितोवाद्यपाठैर्वाद्यभेदोपतिःस्मृतः ॥ ५ ॥ अथाडाललक्षणम् ॥ सुलूंबद्ध्वा तदोत्प्लुत्य चरणैः पक्षिपक्षवत्। भ्रामित्वा निपतेद्भूमौ तदडालमितीरितम् ॥ ६ ॥ अथ लागनृत्यलक्षणम् ॥ लागशब्देन कर्णाटभाषया उत्प्लुतिरिति ॥ ७ ॥ अथ धावनृत्यलक्षणम् ॥ आकाशचार्योद्धित्राश्चेत्तश्चतिरियम्भवेत् ॥ अन्तेमुरुतदोद्दिष्टं धावनृत्यं नटोत्तमैः ॥ ८ ॥ अथ रापरङ्गालनृत्यलक्षणम् ॥ शूलं बद्ध्वैकपादेन सहैवानुपतेद्यदि। द्वितीयोऽपि तदा रापरङ्गालन्तद्विदोविदुः ॥ ९ ॥ अथ उलथानृत्यलक्षणम् ॥ उत्प्लुत्याद्यैर्यदानृत्येत् करणैस्तालसम्मितैः। तदोत्प्लुत्याद्यकरणं नृत्यं नृत्यविदोविदुः ॥ अथवा उलथा नृत्य को लक्षण नामार्थ ही है ॥ १० ॥ अथ टेंकीनृत्यलक्षणम् ॥ पादौ समौ यदायस्मिन् पार्श्वेचापरपार्श्वता। उत्प्लुत्योत्पादयेच्चित्रं तदा टेंकीति कथ्यते ॥ ११ ॥ अथालमनृत्यलक्षणम् ॥ भूमावेकं समास्थाय द्वितीयं पूर्ववद्यदा ॥ पातयेच्चरणं चारु तंवीशश्चतुराविदुः ॥ याही को नामान्तर आलम है ॥ १२ ॥ अथ दिंडनृत्यलक्षणम् ॥ उत्प्लुत्य चरणद्वन्द्वं वस्त्रनिष्पीडनोपमम्। परिभ्राम्यावनीं याति यदि तद्दिंडमुच्यते ॥ १३ ॥ अथ पदपलटीनृत्यलक्षणम् ॥ पुरः प्रसार्य्य चरणं लंघयेदपरांघ्रिणाम् ॥ सुलूपूर्वं तदान्वर्था प्रोक्ता लङ्घितजङ्घिका ॥ याही को अन्वर्थ पदपलटी है ॥ १४ ॥ अथ हुरुमयीनृत्यलक्षणम् ॥ अलातांपरिष्टत्यांगं पादपृष्ठं गतं यदा। अलातांघ्रौ पृष्ठगते शीघ्रमन्यांघ्रि लङ्घयेत् ॥ लङ्घयेद्दक्षिणान्येन प्रोक्ता हुरुमयी नटैः ॥ १५ ॥ अथ निःशङ्कनृत्यलक्षणम् ॥ सुलूपूर्वपदोत्प्लुत्य मिलितौ चरणौ समौ। दूरम्भूमौनिपतितः सनिःशङ्कः प्रकीर्त्तितः ॥ १६ ॥ अथ चिंडनृत्यलक्षणम् ॥ विडचिंडुः कालचारी इति चिंडुर्द्विधाभवेत्। यदिपिल्लस्तु मुरुयोत्र निबद्धोविडचिंडुकः ॥ तत्तज्जात्यनुकारेण कालचारीतिकीर्त्तितः।

तालतानसुलूतुंगघर्घरीध्वनिपेशलम् ॥ वादते तुडते केचिद् गीतेन यतिपूर्वकम् । तत्तज्जातियुतंनृत्यं नानागतिविचित्रितम् । चारुपाडानुचंचत्र किंकिणीध्वनिपेशलम् । कालासैरपिलास्याङ्गैरङ्कजैरन्तरान्तरा ॥ धृतहस्तत्रिशूलादि यत्र नृत्यं समाचारेत् । तदा धीरैः समाख्यातं चिंडनृत्यंमनोहरम् ॥ १७ ॥ ६ ॥ ७ ॥ रसवेष कहे रस-स्वरूप, अर्थात् शृङ्गार आदि जे नव रस हैं, तिनमें जा रस को प्रबन्ध गावती, ता रस के रूप आप ह्वै जाती हैं। और बहुत प्रकार सों रसस्वाद को वर्षती हैं। भाव कहे चेष्टा । हस्तक, हस्तक्रिया । रंगमहल में स्त्रियन के पाँव की और पखावज की तालसहित प्रतिधुनि जो झाईं-शब्द है ताहू को गीत सुनियत है, सो मानो विचित्रमति जे स्त्री-पुरुषन के चित्र हैं, ते ताही विधि पाँव की और पखावज की ताल दै कै ताही विधि गीत को गाइ सब संगीत को पढ़त हैं ॥ ८ ॥ ६ ॥ १० ॥

घनाक्षरी ॥ अपघन घायन बिलोकियत घायलनि घने सुख केशोदास प्रकट प्रमान है । मोहै मन भूलै तन नयन रुदन होत सूखै सोच पोच दुख मारन बिधान है ॥ आगम अगम तन्त्र शोधि सब यन्त्र मन्त्र निगम निवारिबे को केवल अयान है । बालन को तनत्रान अमित प्रमान सब रीझि रामदेव कामदेव कैसो बान है ॥ ११ ॥

रीझि रामदेव कहत हैं इति शेषः । कहा कहत हैं कि कामदेव के बाणनको त्राण बख्तर बालकन को तन है। अर्थात् जब लौं जीव बालकन के तनरूपी त्राण में रह्यो, तब लौं कामबाण नहीं लागत । और गान जो है ताको त्राण बालकन हू को तन ही है । अर्थात् बालकनहू को व्याप्त होत है, इतनोई भेद है । और अमित कहे अनन्त । सब बात प्रमाण कहे तुल्य है । तासों गान कामदेव को ऐसो बाण है । कैसो है कामदेव को बाण और गान, जाके बायु अपघन जो शरीर है तामें नहीं बिलोकियत, और घायलन के घनो सुख होत हैं । और मन मोह की मूर्च्छा को प्राप्त होत है । और तन की सुधि भूलि जाति है । और नयनन में रोदन होत है । और पोच कहे नागा जो राज्यादि वस्तु को शोच है, सो सूखि जात है । और मारण ही है विधान जाको, ऐसो दुःख होत हैं । अथवा दुःख को मारण कहे नाशकर्त्ता है विधान जाको । और अगम कहे अनन्त आगम जे धर्मशास्त्र हैं,

और अगम जे तन्त्रशास्त्र हैं, तिनके जे शोधि कहे ढूँढ़ि कै, अथवा शुद्ध करि कै, यन्त्र और मन्त्र हैं, और निगम जे वेद हैं, तिनके जे यन्त्र-मन्त्र हैं, ते सब ताके निवारण करिबे को केवल अयान अज्ञान हैं। केवल पद को अर्थ यह कि निवारण की विधि वे जानत नहीं ॥ ११ ॥

दोहा ॥ कोटि भाँति संगीत सुनि केशव श्रीरघुनाथ ॥ सीता जू के घर गये गहे प्रीति को हाथ ॥ १२ ॥ सुन्दरी छन्द ॥ सुन्दरि मन्दिर में मन मोहति । स्वर्ण सिंहासन ऊपर सोहति ॥ पंकज के करहाटक मानहु । है कमला बिमला यह जानहु ॥ १३ ॥ फूलन को सु बितान तन्यो बर । कञ्चन को पलिका यक ता तर ॥ ज्योति जराय जरेउ अति शोभनु । सूरज-मंडल ते निकस्यो जनु ॥ १४ ॥

जैसे सखी को हाथ गहि स्त्री के पास सब जात हैं, तैसे प्रीतिरूपा जो सखी है, ताको हाथ गहे रामचंद्र सीता के घर गये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

कुसुमबिचित्रा छन्द ॥ दर्शत ही नैननि रुचि बनै । बसन बिछाये सब सुख सनै ॥ अति रुचि सोहै कबहुँ न सुन्यो । मानों तनु लै शशि-कर चुन्यो ॥ १५ ॥ चम्पकदलदुति के गेडुये । मनहुँ रूप के रूपक उये ॥ कुसुम गुलाबन की गलसुई । बरनी जाय न नयनन छुई ॥ १६ ॥ दोहा ॥ रामचन्द्र रमणीयतर ता पर पौढ़े जाइ ॥ पदपंकज पखराइ कै कहि केशव सुख पाइ ॥ १७ ॥ तोमर छन्द ॥ जिनके न रूप न रेख । ते पौढ़ियो नरबेख ॥ निशि नाशियो त्यहि बार । बहु बन्दि बोलत द्वार ॥ १८ ॥

शुचि कहे श्वेत मानों शशि चन्द्रमा को तनु कहे त्वचा लै चुन्यो कहे बनायो है। अथवा मानों शशि जो चंद्रमा है तेहि तनु कहे सूक्ष्म जे कर कहे किरणैं हैं, तिनको लैकै ता बसन को बनायो है ॥ १५ ॥ गेडुआ, तकिया । चंपकदल-द्युति के गेडुआ धरिबे को हेतु यह कि सीताजू पद्ममुखी हैं, तासों मुख को पद्म जानि सोवत में गेडुआन को देखि चंपकदल के भय सों भ्रमर मुखमें दंश ना करैं। चंपकदल के निकट भ्रमर नहीं जात, यह प्रसिद्ध है। रूपक कहे प्रतिमा।

कुसुम कहे फूल जे गुलावन के हैं तिनकी गलसुई, गेडुआ-भेद है, ते वचन करि वर्णी नहीं जातीं, और नयनन करि छुई नहीं जातीं, अर्थात् अति सुन्दरी हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

दोहा॥ राजलोक जाग्यो सबै बन्दीजन के शोर॥ गये जगावन राम पै सारिकादि उठि भोर ॥ १९ ॥ सारिका—हरिप्रिया छन्द ॥ जागियो त्रिलोकदेव देवदेव रामदेव भोर भयो भूमिदेव भक्त दरश पावै। ब्रह्मा-मन-मन्त्र-बरन बिष्णु-हृदय-चातक-घन रुद्र-हृदय-कमल-मित्र जगत गीत गावै॥ गगन उदित रबि अनंत शुक्रादिक ज्योतिवंत छन छन छबि छीन होत लीन पीन तारे। मानहुँ परदेशदेश ब्रह्मदोष के प्रवेश ठौर ठौर ते बिलात जात भूप भारे॥ २० ॥

राजलोक कहे राजलोक के सब जन जागे॥ १९ ॥ पाँच छंद को अन्वय एक है। भूमिदेव अर्थात् हे भूपति, ब्रह्मा को मनरूपी जो मंत्र है, ताके तुम वर्ण कहे अंक हौ । जैसे अंकन में मंत्र बस्यो रहत है, तैसे ब्रह्मा को मन तुममें सदा बस्यो रहत है । और विष्णु को जो हृदयरूपी चातक है ताके घन कहे सजल मेघ हौ । जैसे घन चातक की तृषा बुझावत है, तैसे तुम विष्णु के हृदय की तृषा बुझावत हौ । और रुद्र को हृदयरूपी जो कमल है, ताके मित्र सूर्य हौ । जैसे कमल को सूर्य प्रफुल्लित करत हैं, तैसे तुम रुद्र के हृदय को प्रफुल्लित करत हौ । या प्रकार सों तुम्हारो गीत जगत् गान करत है । गगनमें रवि उदित भये तासों अनन्त कहे अनेक जे शुक्रादिक ज्योतिवंतन के पीन कहे बड़े तारे नक्षत्र हैं, ते क्षण क्षण में छवि सों क्षीण ह्वै गगन में लीन होत जात हैं, अर्थात् बिलात जात हैं । मानों ब्रह्मदोष के प्रवेश सों जे भूप भय मानि परदेश गये हैं, तेऊ, और जे आपने देश में हैं तेऊ, बिलात जात हैं, तैसे जे नक्षत्र स्थान में हैं ध्रुवादि स्थान सों चलित हैं ते सब बिलात जात हैं, इत्यर्थः ॥ २० ॥

अमल कमल तजि अमोल मधुप लोल टोल टोल बैठत उड़ि करिकपोल दानि-मान-कारी । मानहुँ मुनि ज्ञानवृद्ध छोड़ि छोड़ि गृह समृद्ध सेवत गिरिगण प्रसिद्ध सिद्धि

सिद्धिधारी ॥ तरनिकिरनि उदित भई दीप-जोति मलिन गई सदय हृदय बोध-उदय ज्यों कुबुद्धि नासै। चक्रबाक निकट गई चकई मन मुदित भई जैसे निज जोति पाइ जीव जोति भासै ॥ २१ ॥ अरुन तरनि के बिलास एक दोइ उडु अकाश कलि के से संत ईश दिशन अंत राखै। दीखत आनन्दकन्द निशि बिन द्युति-हीन चन्द ज्यों प्रबीन युवतिहीन पुरुष दीन भाखै ॥ निशिचरचय के बिलास हास होत है निरास सूर के प्रकास त्रास नाशत तम भारे। फूलत शुभ सकल गात अशुभ शैल से बिलात आवत ज्यों सुखद राम नाम मूख तिहारे॥ २२॥ सारो शुक शुभ मराल केकी कोकिल रसाल बोलत कल पारा-वत भूरि भेद गुनिये। मनहुँ मदन पंडित ऋषि शिष्य गुणन मंडित करि अपनी गुदरैनि देन पठये प्रभु सुनिये॥ सोदर सुत मन्त्रि मित्र दिशि दिशि के नृप बिचित्र पंडित मुनि कबि प्रसिद्ध सिद्ध द्वार ठाढ़े। रामचन्द्र चन्द्र ओर मानहुँ चितवत चकोर कुबलय जल जलधि जोर चोप चित्त बाढ़े॥ २३ ॥ नचत रचत रुचिर एक याचक गुनगन अनेक चारन मागध अगाध बिरद बन्दि टेरे। मानहुँ मंडूक मोर चातक चक करत शोर तड़ित बसन संयुत घनश्याम हेत तेरे॥ केशव मुनि बचन चारु जागे दशरथकुमारु रूप प्याइ ज्याइ लीन जन जल थल ओक के। बोलि हँसि बिलोकि बीर दान मान हरी पीर पूरे अभिलाष लाख भाँति लोक लोक के॥ २४ ॥

टोल-टोल कहे झुंड-झुंड। कैसे हैं करि दान जो मद है ताके कर्त्ता, और श्लष सों दाता, और मान कहे आदर के कर्त्ता। भ्रमर जात हैं, तिन्हैं शिर पै बैठावत हैं। दाता है आदर करै ताके समीप सब प्रसन्न है जात हैं, इति भावार्थः। समृद्ध कहे सम्पत्तियुक्त। कैसे हैं मुनिगण,

सिद्ध कहे आपने वश्य जो सिद्धि कहे तपसिद्धि अथवा अष्ट सिद्धि हैं, तिन्हैं धरे हैं । अथवा गिरिगणन ही को विशेषण है । सिद्धि जो सिद्धि तपसिद्धि है तिनको धरे हैं, अर्थात् जिन पर्वतन में जात ही बिन तप किये ही तप सिद्धि प्राप्त होति है । मलिन गई कहे मलिनता को प्राप्त भई । बोध कहे ज्ञानसम तरणि जे सूर्य हैं तिनकी किरणैं हैं, कुबुद्धिसम दीपज्योति है, हृदयसम भूमण्डल जानो । निजज्योति अर्थात् ब्रह्मज्योति । उडु, नक्षत्र । आनन्दकन्द चन्द्र को विशेषण है । सूर्य के प्रकाश के त्रास सों निशिचर कहे चोर, परस्त्रीगामी, कुलटा आदि के जे विलास और हास हैं ते निरास कहे नाश होत हैं । और भारे जे तम अन्धकार हैं, ते नाशत हैं । और शुभ कहे तपस्वी आदि प्राणी पूजा आदि कर्म तिनके सकल गात फूलत कहे प्रफुल्लित होत हैं । हे राम, जैसे तुम्हारे नाम को मुख में लेत शुभ जे मंगल-आदि हैं, तिनके गात प्रफुल्लित होत हैं । और शैल कहे पर्वतसम अशुभ अमङ्गल बिलात हैं । मदनरूपी जो पंडित ऋषि कहे पंडित-श्रेष्ठ हैं । गुदरैनि, परीक्षा । रामचंद्ररूपी जे चंद्र तुम हौ, तिनकी ओर । दर्शन के चोप चित्तन में जोर कहे अति बाढ़े हैं जिनके, ऐसे चकोर और कुवलय कोई और जलधि के जल हैं । मानों या प्रकार सों दर आदि द्वार पै ठाढ़े चितवत हैं । एकै अर्थ नृत्यकारी नचत हैं । और और जे अनेक याचक हैं, ते अपने गुणगण रचत हैं । छन्द उपजाति है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

दोहा ॥ जागत श्रीरघुनाथ के बाजे एकहि बार ॥ निगर नगारे नगर के केशव आठहु द्वार ॥२५॥ मरहट्टा छन्द ॥ दिन दुष्टनिकन्दन श्रीरघुनन्दन आँगन आये जानि । आईं नव नारी सुभग सिंगारी कंचनभारी पानि ॥ दात्योनि करत हैं मनन गहत हैं औरि बोरि घनसार । सजि सजि बिधि मूकनि प्रतिगंडूषनि डारत गहत अपार ॥ २६ ॥ दोहा ॥ सन्ध्या करि रविपाँय परि बाहर आये राम ॥ गणक चिकित्सक आसिषा बन्धुन किये प्रनाम ॥ २७ ॥ मरहट्टा छन्द ॥ सुनि शत्रु मित्र की नृपचरित्र की ख्याति रावत बात । सुनि याचक-जन के पशु पच्छिन के गुनगन अति अवदात ॥ शुभ तन

मज्जन करि स्नान दान करि पूजे पूरणदेव। मिलि मित्र सहोदर बन्धु शुभोदर कीन्हे भोजन भेव॥ २८॥

निगर कहे मौन। विधि को सजिके प्रतिगण्डूषनि कहे प्रतिकुल्लन को डारत हैं और गहत हैं। असार, अनेक अथवा प्रतिगण्डूषनि कहे कुल्लाकुल्ला प्रति अर्थ हर कुल्ला में मूकनि कहे कुल्ला के त्यागन की विधि को साजि कै डारत हैं, त्यागत हैं, फेरि और गहत हैं॥ २५॥ २६॥ गणक, ज्योतिषी। चिकित्सक, वैद्य॥ २७॥ मज्जन कहे उबटन आदि। सहोदर, भरत आदि बन्धु। जाति, जन, बिरादरी इति। शुभोदर कहे नीकी विधि उदरपूर्ति करिकै। अथवा शुभोदर, बड़े भोजनकर्त्ता॥ २८॥

दण्डक॥ निपट नवीन रोगहीन बहु छीर लीन पीन-बच्छ पीनतन तापन हरत हैं। ताँबे मढ़ी पीठि लागे रूपक खुरन डीठि डीठि स्वर्ण शृंग मन आनँद भरत हैं॥ काँसे की दोहनी श्याम पाट की ललित नोइ घटन सों पूजि पूजि पाँयनि परत हैं। शोभन सनौढियन रामचन्द्र दिनप्रति गो शत सहस्र दै कै भोजन करत हैं॥ २९॥ तोटक छन्द॥ तहँ भोजन श्रीरघुनाथ करैं। षटरीति मिठाइन चित्त हरैं॥ पुनि खीर सों चौविधि भात बन्यो। तकि तीनि प्रकारनि शोभ सन्यो॥ ३०॥ षट भाँति पहीति बनाइ सची। पुनि पाँच सुब्यंजन रीति रची॥ बिधि पाँच सु रोटिन माँगत हैं। बिधि पाँच बरा अनुरागत हैं॥ ३१॥

॥ २९॥ चौविधि को अन्वय दूनों ओर है। अर्थात् चारि विधि की खीर बनी है, और चारि विधि को भात बन्यो है॥ ३०॥ सची कहे संचित कर्यो, अर्थात् एकत्र कर्यो॥ ३१॥

विधि पाँच अथान बनाइ कियो। पुनि द्वै बिधि खीर सु माँगि लियो॥ पुनि झारि सु द्वै बिधि स्वाद घने। बिधि दोइ पछ्यावरि सात पने॥ ३२॥ दोहा॥ पाँच भाँति ज्यौनार सब षट रस रुचिर प्रकास॥ भोजन करि रघुनाथ जू बोले केशव-

दास ॥ ३३ ॥ हरिलीला छन्द ॥ बैठे बिशुद्ध गृह अग्रज अग्र जाइ। देखी बसन्त ऋतु सुन्दर मोददाइ ॥ बौरे रसाल-कुल कोयल केलि काल। मानों अनंगध्वज राजत श्रीबिशाल ॥ ३४ ॥

अथान, अचार। झारि आम्र के चूर्ण में जीरजकादि डारि जल में घोरि बनति है। पश्चिम में प्रसिद्ध है। पछ्यावरि, सिखरनि को भेद है। कहूँ मूरनि कहत हैं। या सब प्रकार के भोजन मिलाइ छप्पन होत हैं ॥ ३२ ॥ शर्करा आदि मधुर, आम्र आदि अम्ल, करैला आदि तिक्त, मरिच आदि कटु, लवण आदि लवण, हर्र आदि कषाय, ये जे षट् छः रस हैं, तिनको हैं रुचिर प्रकाश जामें ऐसी जो चोष्य आम्र आदि, पेय दुग्ध आदि, भोज्य भात आदि, लेह्य अवलेह आदि, चर्व्य पिस्ता बदाम आदि, यह पाँच भाँति की जेवनार है, ताको भोजन करिकै रामचन्द्र बोले। भोजन समय में बोल्यो न चाहिये, यह धर्मशास्त्रोक्त है ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रजू भोजन करिकै गृहअग्रज कहे गृह में अग्रज श्रेष्ठ जो गृह घर है, ताके अग्रभाग में वसन्त-बहार देखिबे को जाइ कै बैठत भये। कोमल कहे सुगन्धयुक्त। रसाल आम्र-वृक्ष बौरे हैं, सो मानों यह केलि को काल कहे समय है, यह प्रसिद्ध करिबे के लिये मानों अनंग जो काम है, ताके विशाल ध्वजा राजत हैं। जो कछू वस्तु प्रसिद्ध करिबो होत है, ता लिये सब ध्वजा बाँधत हैं यह प्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥

उपजाति छंद। फूली लवंग लवली लतिका बिलोल। भूले जहाँ भ्रमर बिभ्रम मत्त डोल ॥ बोलैं सुहंस शुक कोकिल केकि-राज। मानों बसन्त भट बोलत युद्धकाज ॥ ३५ ॥ सोहै पराग चहुँ भाग उड़ै सुगन्ध। जाते बिदेश बिरहीजन होत अन्ध ॥ पालाशमाल बिन पत्र बिराजमान। मानों बसन्त दिय कामहिं अग्निबान ॥ ३६ ॥ सवैया ॥ फूले पलास बिलासथली बहु केशवदास प्रकास न थोरे। शेष अशेष मुखानल की जनु ज्वाल बिशाल चली दिवि ओरे ॥ किंशुक-श्री शुकतुंडन की रुचि राचे रसातल में चित चोरे। चोंचन चापि चहूँदिशि डोलत चारु

चकोर अँगारन भोरे ॥ ३७ ॥ मौक्तिकदाम छन्द ॥ जरै बिरही जन जोवत गात । उघरे उर शीतल से जलजात ॥ किधौं मन मीनन को रघुनाथ । पसारि दियो जनु मन्मथ हाथ ॥ ३८ ॥

लवली, हरफारयोरी । पुष्परस-पान सों मत्त जे भ्रमर हैं, ते विभ्रम में भूले डोल कहे डोलत हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ बिलासस्थलिन में बहुत पलाश फूले हैं। रसातल, भूतल। दिवि, आकाश। किंशुक कहे पलाश-पुष्प ॥ ३७ ॥ सीताजू की उक्ति रामचन्द्र प्रति है । उघरे हैं उर कहे हृदय अर्थात् सिफा-कन्द जिनके, ऐसे जे शीतल से कहे शीतल जलजात कमल हैं, तिनको देखत बिरही जनन के गात जरत हैं । सो हे रघुनाथ, मन-मीनन के गहिबे के अर्थ मानों मन्मथ काम हाथ पसारि दियो है । अर्थात् जाको मन कमलन में जात है, ताको गहि राखत है। मन्मथ-हाथ-सम कहि कमलन की अति सुन्दरता जनायो है ॥ ३८ ॥

जिते नर नागर लोग बिचारि । सबै बरनैं रघुनाथ निहारि ॥ किधौं परमानँद को यह मूल। बिलोकत ही सु हरै सब शूल ॥ ३९ ॥ किधौं वन-जीवन को मधुमास। रचे जगलोचन भौंर-बिलास ॥ किधौं मधु को सुख देत अनंग। धर्यो मन मीननि कारन अंग ॥ ४० ॥ किधौं रति कीरति-बेलि निकुंज। बसै गुन-पक्षिन को जहँ पुंज ॥ किधौं सरसीरुह ऊपर हंस। किधौं उदयाचल ऊपर हंस ॥ ४१ ॥ दोहा ॥ प्राची दिशि ताही समय प्रकट भयो निशिनाथ ॥ बरनत ताहि बिलोकि कै सीता सीतानाथ ॥ ४२ ॥

नागर लोग कहे नगर के श्रेष्ठ जो नर हैं, ते रामचन्द्र को बैठे देखि परस्पर वर्णत हैं। मूल के भक्षण सों शूल दूरि होत है और रामरूपी जो आनन्दमूल है, ताके देखत ही शूल दूरि होत है ॥ ३९ ॥ कै वनरूपी जे जीव प्राणी हैं, तिनको मधुमास चैत्रमास है। जैसे चैत्र वन को फूलवन को फुलावत है, तैसे रामचन्द्र जगत् के प्राणिनको प्रफुल्लित करत हैं । और मधुमास में भ्रमर अनुरागत हैं, इहाँ जग के लोचन भ्रमर के विलास सों रचे कहे अनुरागे हैं। और

कि रामचन्द्र नहीं हैं, अनंग काम हैं । वनमें विराजमान जा मधु वसंत ताको दरश देंके सुखदेत हैं । कैसो है अनंग, सबके मनरूपी जे मीन मत्स्य हैं, तिनके कारण कहे गहिवे के अर्थ अंगन को धारण कस्यो है । देखत ही रामचन्द्र सबके मन का गहि राखत हैं, तासों जानो ॥ ४० ॥ रति प्रीति और कीर्ति यशरूपी जो बेलि हैं, तिनको निकुञ्ज है । कुञ्ज में पक्षी वसत हैं, रामचन्द्र में गुणरूपी जे पक्षी हैं तिनके पुञ्ज समूह वसत हैं। "निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे इत्यमरः" । सरसीरुह और उदयाचल के समान गृह है । हंस पक्षी और हंस सूर्य्यके सम रामचन्द्र हैं ॥ ४१ ॥ प्राची, पूर्व ॥ ४२ ॥

हरिणी छन्द ॥ फूलन की शुभ गेंद नई । सूँघि शची जनु डारि दई ॥ दर्पण सों शशि श्रीरति को । आसन काम मही-पति को ॥ ४३ ॥ मोतिन को श्रुति भूषण मनो । भूलि गई रवि की तिय मनो ॥ अंगद को पितु सो सुनिये । सोहत ता-रहि संग लिये ॥ भूप मनोभव छत्र धस्यो । लोक बियोगिन को बिडस्यो ॥ ४४ ॥ देवनदीजल राम कह्यो । मानहुँ फूलि स-रोज रह्यो ॥ फेन किधौं नभसिन्धु लसै । देवनदीजल हंस बसै ॥ ४५ ॥ दोहा ॥ चारु चन्द्रिका-सिन्धु में शीतल स्वच्छ स तेज ॥ मनो शेषमय शोभिजै हरिणाधिष्ठित सेज ॥ ४६ ॥

शशि जो चन्द्र है, सो श्रीरति जो काम की स्त्री है ताको दर्पण सो है ॥ ४३ ॥ तारा नक्षत्र और बालि की स्त्री । मनोभव कामवियोगी स्त्री पति परस्पर-वियोगी और विरोधी । छंद उपजाति है ॥ ४४ ॥ या प्रकार सीता को वर्णन सुनिकै रामचन्द्र कह्यो । नभसिंधु, आकाशगङ्गा ॥ ४५ ॥ हरिणाधिष्ठित है, तासों चारुचंद्रिकारूपी जो सिंधु कहे क्षीरसिंधु है, तामें शीतल और स्वच्छ मलरहित सतेज कहे कांतियुक्त मानों शेषमय कहे शेपस्वरूप सेज है । शेषमय सेज हरि विष्णु करिकै अधिष्ठित युक्त है । हरिण तृतीयान्त पद है । चन्द्रमा हरिण करिकै अधिष्ठित है । मृग-अंकमें प्रसिद्ध है ॥ ४६ ॥

दण्डक ॥ केशौदास है उदास कमलाकर सों कर शोषक

प्रदोष ताप तमोगुण तारिये। अमृत अशेष को विशेष भाव बरषत कोकनद मोद चण्ड खण्डन विचारिये ॥ परमपुरुष-पद-विमुख परुष रुख सुमुख-सुखद बिदुषन उर धारिये । हरि है री हिय में न हरिन हरिननैनी चन्द्रमा न चन्द्रमुखी नारद निहारिये ॥ ४७ ॥

सीता सों रामचन्द्र कहत हैं कि हे हरिणनयनी, यह चंद्रमा नहीं है, नारद हैं। और याके हिय में यह हरिण नहीं है, हरि विष्णु हैं। सो श्लेष सों कहत हैं। कैसो है चन्द्रमा, कमलन को जो आकर समूह है, तासों उदास हैं कर किरण जाके। चन्द्र-किरण-स्पर्श सों कमल संकुचित होत है। और प्रदोष जो रजनीमुख है, ताप जो उष्ण है और तमोगुण जो अन्धकार है, तिनको शोषक दूरि-करनहार है, यह तारिये कहे जानियत है। पूर्णिमा को चन्द्र जब उदित भयो, तब रात्रि को प्रवेश होत है, रजनीमुख काल व्यतीत होत है, तासों शोष कह्यो। "प्रदोषो रजनीमुखमित्यमरः"। और अशेष कहे पूर्ण जो अमृत है, ताके जे भाव कहे विभूति हैं, वृद्धि इति, ताको विशेष सों वर्षत है। अमृत की बड़ी वर्षा करत है इत्यर्थः। और कोक जे चक्रवाक हैं, तिनको जो नद शब्द है, ताको जो मोद है, अर्थात् परस्पर स्त्री-पुरुष-संभाषण को आनन्द, ताको चण्ड कहे उग्र, अर्थात् नीकी विधि, खण्डन कहे खण्डनकर्त्ता है। अर्थात् चक्रवाकन को वियोगी करि परस्पर स्त्री-पुरुष-संभाषण के आनन्द को दूरि करत है। अथवा प्रथम कमलाकर पद कह्यो है, तहाँ श्वेत आदि कमल जानो। इहाँ कोकनद कहे अरुण कमल को जो मोद है, ताको चण्ड खण्डन है। "रक्तोत्पलं कोकनदमित्यमरः"। और परमपुरुष जो पति है, ताके पद सों जे स्त्री विमुख हैं, अर्थात् मान किये हैं, तिन्हैं परुष रुख कहे कठोर रुख है, अर्थात् तापकर्त्ता है। और जे स्त्री पति सों सुमुख हैं, तिनको सुखद है। और विदुष जे प्रवीण लोग हैं, तिन करिकै उर में धारियत है। प्रवीण के सदा चन्द्रोदय की इच्छा रहति है। चौरादिक चन्द्रोदय नहीं चाहत इति भावार्थः। नारद कैसे हैं कि कमला जो लक्ष्मी है, अर्थात् द्रव्य, ताके आकर समूह सों उदास है कर हाथ जिनको। अर्थात् बहुत हू द्रव्य कोऊ देइ, ताको ग्रहण नहीं करत। अल्प की का कथा है इति

भावार्थः। और प्रकर्ष जे दोष हैं गोवधआदि, और ताप जे दैहिक दैविक भौतिक ये त्रिताप हैं, तिनके और तमोगुण के शोषक दूरि करनहारे हैं। तमोगुण के शोषक कहि या जनायो कि सदा सत्त्वगुणयुक्त रहत हैं। और अमृत कहे नहीं है मृत्यु जिनकी। अशेप कहे पूर्ण। ऐसे जे विष्णु हैं, तिनके जे भाव कहे अनेक लीला हैं, तिनको विशेष सों वर्णत हैं। अर्थात् भगवान् की अनेक लीला विशेष सों गान करत हैं। अथवा भाव कहे अभिप्राय, ताको वर्णत हैं, कहत हैं, अर्थात् भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों काल में जो ईश्वर के अभिप्राय के कृत्य हैं, तिन्हैं जानत हैं, सो सबसों कहत हैं। त्रिकालज्ञ हैं इत्यर्थः। "भावोभिप्रायवस्तुनोः। स्वभावजन्मसत्तात्मक्रियालीलाविभूतिषु। इत्यभिधानचिन्तामणिः"। और कोक जो शास्त्रविशेष है, ताको जो नद शब्द है, वचन इति, ताको जो मोद आनन्द है, ताके खण्डन कहे खण्डनकर्त्ता हैं। अर्थात् कोकशास्त्र में अनेक काम-वार्त्ता हैं, तिनको निंदत हैं। और परमपुरुष जे भगवान् हैं, तिनके पद सों जे प्राणी विमुख हैं, अर्थात् विष्णु की भक्ति नहीं करत, तिन्हैं परुष रुख कठोर रुख हैं; और जे सुमुख अर्थात् विष्णुभक्त हैं, तिन्हैं सुखद हैं। और विदुष जे पण्डित हैं, तिन करिकै जिनको उर में धारियत है। अथवा विशेष सों दुःख नहीं जिन करिकै उर में धारियत, अर्थात् सदा आनन्दयुक्त रहत हैं॥ ४७॥

दोहा॥ आई जानि बसंत ऋतु बनहिं बिलोकत राम॥
धरणि धसे सीता सहित रति समेत जनु काम॥ ४८॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां वसन्तदर्शननाम त्रिंशः प्रकाशः॥ ३०॥

वन को देखत वसन्त ऋतु आई जानि कै वनविहार करिबो मन में निश्चय करि सीतासहित गृह-अग्र सों धरणि को धसे कहे उतरे॥ ४८॥
इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां त्रिंशः प्रकाशः॥ ३०॥

दोहा ॥ इकतीसयें प्रकाश में रघुबर बाग पयान ॥ शुक-मुख सियदासीन को बर्णन बिबिध बिधान ॥ १ ॥ ब्रह्मरूपक छन्द ॥ भोर होत ही गयो सु राजलोक मध्य बाग। बाजि आनियो सु एक इंगितज्ञ सानुराग ॥ शुभ्र शुद्ध चारिहून अंशु रेणु के उदार। सीखि सीखि लेत हैं ते चित्त चंचलाप्रकार ॥ २ ॥ तोमर छन्द ॥ चढ़ि बाजि ऊपर राम। बन को चले तजि धाम ॥ चढ़ि चित्त ऊपर काम। जनु मित्र को सुनि नाम ॥ ३ ॥ मग में बिलम्ब न कीन। बनराज मध्य प्रबीन ॥ सब भूपरूप दुराइ। युवती बिलोकी जाइ ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ वनविहार के अर्थ भोर होत ही राजलोक कहे रनिवास प्रथम बाग के मध्य गयो। फेरि इंगितज्ञ कहे सवार की चेष्टा को जाननहारे, अर्थात् जैसे सवार को मन देखै ताही विधि ताड़न बिन ही गमनकर्त्ता, सानुराग कहे अपने अनुराग प्रेम सहित, अर्थात् जाके ऊपर आपनो बड़ो प्रेम है, ऐसो वाजि रामचन्द्र आनियो कहे मँगायो। अथवा वन जाइबे के अनुराग सहित जे रामचन्द्र हैं, तिन इंगितज्ञ वाजि आनियो। अथवा इंगित को जाननहार जो कोऊ अनुचर है, सो रामचन्द्र को वाजि पै चढ़िकै बाग जायबे को इंगित जानि कै सानुराग कहे प्रेम-सहित वाजि आनियो, लायो। कैसो है वाजि, जाके शुभ्र कहे सुन्दर और शुद्ध कहे निर्दोष चारिहू, चरण में इति शेषः, रेणु जो धूरि है ताके अंशु कहे कण, चलत में लागि-गये हैं, ते मानों उदार कहे चतुर चित्त हैं। चरणन में लागि कै चञ्चला-प्रकार कहे चञ्चलता को प्रकार सीखि लेत हैं। जिनके चरणन में चित्त हू सों अधिक चञ्चलता है, इति भावार्थः ॥ २ ॥ वन में आयो मित्र जो वसंत है, ताको नाम सुनि कै मानों चित्त पै चढ़ि कै धाम छोड़ि काम वन को चल्यो है इत्यर्थः। चित्तसम चञ्चल वाजि है। कामसम सुंदर राम हैं ॥ ३ ॥ भूपरूप छत्र-चामरआदि को दुराइ, छपे छपे युवतिन को वि-लोक्यो जाइ ॥ ४ ॥

स्वागता छन्द ॥ रामसंग शुक एक प्रबीनो। सयिदासि

गुण वर्णन कीनो ॥ केशपाश शुभ श्याम सनेही। दास होत प्रभु जीव बिदेही ॥ ५ ॥ भाँतिभाँति कबरी शुभ देखी। रूप भूप तरवारि बिशेखी ॥ पीय प्रेम प्रण राखनहारी। दीह दुष्ट-छल-खंडनकारी ॥ ६ ॥ किधौं सिंगारसरित सुखकारि। चंचकतानि बहावनहारि ॥ कंचनपत्र-पाँति-सोपान। मनों सिंगारलोक के जान ॥ ७ ॥

स्नेही स्नेह और तैल सों युक्त। प्रभु रामचन्द्र को सम्बोधन है। विदेही कहे ज्ञानी जे जनक आदिसम देह धरे हैं। अथवा जिनको देखि जीव उदास और विदेही होत हैं। अर्थात् देह की सुधि भूलि जाति है ॥ ५ ॥ कबरी, वेणी। "कबरी केशविन्यासशाकयोरिति हेमचन्द्रः"। अनेक दासी हैं, तासों भाँति भाँति पद कह्यो। काहू दासी की वेणी और विधि है, काहू की और विधि है, काहू की और विधि है। कैसी है कबरी, रूप कहे सौंदर्य्यरूपी जो भूप राजा है, ताकी विशेष निश्चय तरवारि है। कैसी है तरवारि, पीय जो स्वामी रूप है ताके प्रेम की राखनहारी है। अर्थात् अतिप्रेम सों सौंदर्य्य जिनको एकहु क्षण त्याग नहीं करत। और सबके मन को वश करिबो, यह जो रूप-भूप को प्रण है, ताहूकी राखनहारी है, सबके मन को वश करति है। और दीह दुष्टसम जो छल है, ताकी खण्डनकारी है। अर्थात् जैसे तरवारि दुष्ट जे विरोधी हैं, तिन्हें खण्डन करि प्रजान को राजा के वश करि प्रण राखति है, तैसे छल को खण्डन करि, सबके मन को रूप के वश करि प्रण राखति है ॥ ६ ॥ और नदी वृक्ष आदि बहावति हैं, तैसे यह चञ्चलता छल ताकी बहावनहारी है। कंचनपत्र जे बेनीपान हैं, तिनकी पाँति है, सो मानों शृंगारलोक के जान कहे जाइबे को सोपान कहे सीढ़ी है। शृंगाररस के लोकसम केशपाशयुक्त शीश हैं ॥ ७ ॥

शीशफूल अरु बेंदा लसै। भाग सुहाग मनों शिर बसै ॥ पाटिन चमक चित्त-चौंधिनी। मानों दमकति घन दामिनी ॥ ८ ॥ सेंदुर माँग भरी अति भली। तिन पर मोतिन की अवली ॥ गंग गिरा तन सों तन जोरि। निकसी जनु जमुना

जल फोरि ॥ ९ ॥ शीशफूल शुभ जस्यो जराय । माँगफूल शोभै शुभ भाय ॥ बेनी फूलन की बर माल । भाल भले वेंदायुत लाल ॥ तम-नगरी पर तेजनिधानु । बैठे मनों बारहौ भानु ॥ १० ॥ भ्रुकुटि कुटिल बहु भायन भरी । भाल लाल दुति दीसति खरी ॥ मृगमद-तिलक रेख युग बनी । तिनकी शोभा शोभति घनी ॥ जनु जमुना खेलति शुभगाथ । परसन पितहि पसास्यो हाथ ॥ ११ ॥

वेंदा भाल में रहत है, सो भाग कहे भाग्यसम है, शीशफूल सोहागसम है । इहाँ स्थान म बसिबे की उत्प्रेक्षा है । तासों क्रमहीन दूषण नहीं है ॥ ८ ॥ ९ ॥ तम नगरीसम शीश के बार हैं । बारहौ भानुसम शीशफूल आदि हैं । इहाँ संख्या करि उत्प्रेक्षा नहीं है, बाहुल्य की उत्प्रेक्षा है ॥१०॥ यमुनासम भ्रुकुटी हैं । हाथसम कस्तूरी के तिलक की द्वै ऊर्ध्वरेखा हैं । पिता जे सूर्य हैं, तिनके सम लाल भाल है । भ्रुकुटिन को बहुभायन भरी कह्यो है, तासों यमुना को खेलत कह्यो ॥ ११ ॥

पंकजवाटिका छन्द ॥ लोचन मनहुँ मनोभवमन्त्रनि । भ्रू-युग उपर मनोहर मन्त्रनि ॥ सुंदर सुखद सुअंजन अंजित । बाण मदन बिष सों जनु रंजित ॥ १२ ॥ चौपाई ॥ सुखद नासिका जग मोहियो । मुक्ताफलनि युक्त सोहियो ॥ आनँद-लतिका मनहुँ सफूल । सूधि तजत शशि सकल कुशूल ॥१३॥ पद्धटिका छन्द ॥ जनु भाल तिलक रबि ब्रतहि लीन । नृप रूप अकाशहि दीप दीन ॥ ताटंक जटितमणि श्रुति बसंत । रबि एकचक्र रथ-से लसंत ॥ अति झुलझुलीन सह झलक लीन । फहरात पताका जनु नवीन ॥ १४ ॥

॥ १२ ॥ मुक्ताफलनयुक्त, अर्थात् मुक्ताफल-सहित नासिका-भूषणयुक्त फल-सहित आनन्दलतिका को कै मानों शशि जो चन्द्र हैं सो सब शूल जो दुःख है ताको दूरि करत हैं । आनन्दलतिकासम नासिकाभूषण हैं,

फूलसम मोती हैं, शशिसम मुख है ॥ १३ ॥ भाल में तिलक कहे टीका मणिजटित ऊर्ध्वपुंड्र होत है, सो जानो। रूप कहे सौंदर्य्यरूपी जो नृप राजा है, सो रवि के व्रत में लीन ह्वै कै रवि के अर्थ आकाश को दीपक दीन्हो है। जे प्रथम शीशफूल कह्यो है तेई रवि हैं, केशयुक्त शीश आकाश है। और मणिजटित ताटंक कहे ढार श्रुति में श्रवण में लसत हैं, ते मानों रवि के एकचक्र कहे एक पहिया के रथ-से हैं। रवि को रथ एक ही पहिया को है। और झुलझुली जे पात नामके कर्णभूषण हैं, तिनकी झलक शोभा, सह कहे साथ, अर्थात् ताटंकन के साथ लीन है, युक्त है। सो मानों ताही एकचक्र रथ के पताका हैं। अथवा रूप नृप जो है, सो रवि को दीप दीन्हो है। और या प्रकार के पताका सों युक्त एकचक्र रथ हू दीन्हो समर्पण कस्यो है, इत्यर्थः ॥ १४ ॥

अतितरुण अरुण द्विजद्युति लसंति। निज दाड़िमबीजन को हसंति ॥ संध्याहि उपासत भूमिदेव। जनु वाकदेव की करत सेव ॥ शुभ तिनके सुख मुख के बिलास। भयो उपवन मलयानिल-निवास ॥ १५ ॥ चौपाई ॥ मृदु मुसकानि लता मन हरैं। बोलत बोल फूल-से झरैं ॥ तिनकी बानी सुनि मनहारि। बानी बीना धरेउ उतारि ॥ १६ ॥ लटकै अलिक अलक चीकनी। सूच्छम अमल चिलक सों सनी ॥ नकमोती दीपकद्युति जानि। पाटी रजनी ही उनमानि ॥ १७ ॥ ज्योति बढ़ावत दशा उतारि। मानहुँ स्याम लसींक पसारि ॥ जनु कबि हित रबि रथ ते छोरि। श्यामपाट की बाँधी डोरि ॥ १८ ॥

तरुण कहे नवीन द्विज दंत मानों भूमिदेव ब्राह्मण हैं, ते मुख में वास किये वाक्देव जो सरस्वती हैं, तिनकी सेवा करत हैं, ते ब्राह्मण संध्या-समय में सन्ध्या की उपासना करत हैं। इहाँ दाँतन को और ब्राह्मणन को द्विज-शब्द सों साम्य है। संध्यासम दाँतन की अरुण द्युति है। दाँतन के पक्ष में वाक्देव जिह्वा जानौ ॥ १५ ॥ ताही मुसकानि लता के फूल-

से जानौ ॥ १६ ॥ द्वै छन्द को अन्वय एक है । अलिक, लिलार । दशा, वाती । मानों रवि सींक पसारिकै ज्योति बढ़ावत है । रवि पद को सम्बन्ध याहू में है । कवि जे शुक्र हैं, तिनके हित कहे चढ़ाइ लीवे के अर्थ इत्यर्थः । शुक्रसम नाक को मोती है । रविसम शीशफूल है ॥ १७ । १८ ॥

रूप अनूप रुचिर रस-भीनि । पातुर नैनन की पुतरीनि ॥ नेह नचावत हित रति-नाथ । मरकत-लकुटि लिए जनु हाथ ॥ १९ ॥ दोहा ॥ गगन-चन्द्र ते अति बड़ो तिय मुख-चन्द्र विचारु ॥ दई बिरंचि विचारि चित कला चौगुनी चारु ॥ २० ॥

ताही अलक में दूसरी उत्प्रेक्षा करत हैं । पुतरिन को जो अनूप रूप है, ता प्रति जो रुचिर रस कहे प्रेम है, तामें भीनि कहे भीजि कै, अर्थात् वश ह्वै क, पातुर कहे वेश्या, अर्थात् काम की वेश्यारूपी जे नयन की पुतरी हैं, तिनको रतिनाथ जो काम है, ताके हित सों मानों मर्कत कहे नीलम की श्याम लकुट हाथ में लै कै स्नेह सहित नचावत है । शिक्षक लकुट के ताल में वेश्या को नृत्य सिखावत हैं, यह प्रसिद्ध है । अथवा कहूँ भीनी पाठ है, तौ अनूपरूप कहे अतिसुंदर और रुचिर जो रस प्रेम है, तामें भीनी कहे युक्त पातुररूपी जे नयन की पुतरी हैं, तिन को रतिनाथ के हित सों नेह नचावत है, इत्यर्थः ॥ १९ ॥ चन्द्रमा में सोरह कला हैं, मुख में चौंसठि हैं । चौंसठि कला प्रसिद्ध हैं ॥ २० ॥

दण्डक ॥ दीन्हो ईश दंडबल दलबल द्विजबल तपबल प्रबल समेति कुलबल की । केशव परमहंसबल बहु कोषबल कहा कहौं बड़ीयै बड़ाई दुर्गजल की ॥ बिधिबल चन्द्रबल श्री को बल श्रीशबल करत हैं मित्रबल रक्षा पल-पल की । मित्रबल-हीन जानि अबला-मुखनि बल नीके ही छड़ाइ लई कमला कमल की ॥ २१ ॥ दोहा ॥ रमणीमुखमंडल निरखि राकारमण लजाइ ॥ जलद जलधि शिव सूर में राखत बदन दुराइ ॥ २२ ॥

ईश जे ईश्वर हैं, तिन दण्ड जो नाल है ताको बल दीन है । श्लेष

सों परिघादि दण्ड आयुध जानो। दल, पत्र और चमू। द्विज, चक्रवाक आदि पक्षी अथवा दंत। इहाँ दंत पद ते वीज जानो। और ब्राह्मण के जलशायित्वादि तप जानो। कुल कहे ज्ञाति-समूह। परमहंस, पक्षी और तपस्वी-विशेष। कोष कहे सिफाकन्द और खज़ाना। और दुर्ग कोटरूपी जो लता है, ताके बल की कहा बड़ाई कहौं इत्यर्थः। विधि ब्रह्मा को आसन है, ता सम्बन्ध सों विधिबल जानो। जलज चन्द्र हू है, कमल हू है, तासों ता सम्बन्ध सों चन्द्रबल जानो। लक्ष्मी को कमल में सदा वास रहत है, ता सम्बन्ध सों श्री को बल जानो। श्रीश विष्णु सदा कर में लिये रहत हैं, तासों श्रीशबल जानो। और मित्र जे सूर्य हैं तिन हू को बल पल-पल में रक्षा करत है। यद्यपि एते सब बल हैं, परन्तु मित्र जे तुम हौ, तिनके बल सों कमलन को हीन जानि कै ये जे अबला सीयदासी हैं, तिनके मुखन बल सों कमल की जो कमला कांतिरूपी लक्ष्मी है, ताहि छड़ाय लीन्हो है। अबला पद कहि रामबल की अति उत्कृष्टता जनायो॥ २१॥ पूर्णचन्द्रयुक्त जो पूर्णिमा की रात्रि है, सो राका कहावति है। "पूर्णे राका निशाकरे, इत्यमरः"। याहू में असिद्ध-विषय-हेतूत्प्रेक्षा है॥ २२॥

विशेषक छन्द॥ भूषन श्रीवन के बहु भाँतिन सोहत हैं। लाल सितासित पीत प्रभा मन मोहत हैं॥ सुन्दर रागन के बहु बालक आनि बसे। सीखन को बहु रागिनि केशवदास लसे॥ २३॥ चौपाई॥ हरिपुर-सी सुरपूरदूषिता। मुक्ताभरणप्रभाभूषिता॥ कोमलशब्दनिबन्त सुवृत्त। अलङ्कारमय मोहन मित्र॥ काव्यापद्धति-शोभा गहे। तिनके बाहुपाश कबि कहे॥ २४॥

राग, भैरव आदि॥ २३॥ आपनी छवि करिकै सुरपुर की अर्थात् सुरपुर की स्त्रियन की दूषिता कहे निन्दा करनहारी हैं। और मुक्ता जे मोती हैं, तिनके जे आभरण भूषण हैं, तिनकी प्रभा सों भूषित हैं। तासों हरिपुर विष्णुलोक-सी हैं। हरिपुर कैसो है कि आपनी छवि सों देवलोक को निन्दत है। अर्थात् देवलोक सों अधिक है। और मुक्त कहे मुक्ति को प्राप्त जे जीव हैं, तेई हैं आभरण भूषण, तिनकी प्रभा सों भूषित है।

अर्थात् अनेक मुक्तजीवन सों युक्त है । फेरि कैसी हैं कोमलशब्दनिवंत हैं, अर्थात् मधुर वचन बोलति हैं । और सुष्टु हैं सुवृत्त कहे चरित्र जिनके । और माल्य आदि अलङ्कारयुक्त हैं । और मित्र जो स्वामी है, ताको मोहन कहे मोहकर्त्ता हैं । और तिनके बाहुन को पाश कहे फाँससम कविजन कहत हैं । यासों काव्य की जो पद्धति रीति है ताकी शोभा को गहे हैं । काव्य-पद्धति कैसी है कि कोमल कहे कोमल अक्षरयुक्त जे शब्द हैं तिनसों युक्त हैं, सुष्टु वृत्त पद जाके । और उपमा आदि अलङ्कार सों युक्त है । और मित्र जे काव्यपाठी हैं, तिनको मोहन है । और तिनके बाहुन को कवि पाशसम कहत हैं । अर्थात् बाहु पाशसम होत नहीं है, परन्तु कविन को नियम है कि काव्य-रीति में स्त्री-पुरुष के बाहुन को पाशसम कहत हैं । "वृत्तश्छन्दश्चारित्रवृत्तिष्विति मेदिनी" ॥ २४ ॥

नवरँग बहु अशोक के पत्र । तिनमें राखत राजकलत्र ॥
देखहु देव दीन के नाथ । हरत कुसुम के हारत हाथ ॥ २५ ॥
सुन्दर अँगुरिन मुँदरी बनी । मनिमय सुवरन सोभा-सनी ॥
राजलोक के मन रुचि-रये । मानों कामिनि कर करि लये ॥ २६ ॥
अतिसुन्दर उर में उरजात । सोभा-सर में जनु जलजात ॥
अखिल लोक जलमथ करि धरे । वशीकरणचूरणचयभरे ॥
कामकुँअर-अभिषेक निमित्त । कलश रचे जनु जोवन मित्त ॥ २७ ॥ दोहा ॥ रोमराजि सिंगार की ललित लता-सी राज ॥ ताहि फले कुचरूप फल लै जग ज्योति समाज ॥ २८ ॥

द्वै छन्द को अन्वय एक है । हे देव, हे दीन के नाथ, यह देखो, जे हाथ कुसुम फूलन के हरत में तोरत में हारत कहे थकत हैं, अर्थात् जिनसों फूलऊ नहीं तोरि जात, ऐसे कोमल जे हाथ हैं, तेई नवरंग जे बहुत अशोक के पत्र हैं, तिनमें कहे तिन हाथन में राजकलत्र जे सीता हैं तिनको राखति हैं । तासों मानों सुन्दर जे अँगुरी हैं, तिनमें सुवर्ण शोभा सों सनी मणिमय मुँदरी बनी हैं, तेई रुचि कहे सुन्दरता सों रये युक्त राजलोक कहे अन्तःपुर के अर्थात् सीतादिकन के मन हैं, तिनको मानों

कर में हाथ में करि लीन्हो है। अतिसेवा करि सीतादिकन के मन मानों अपने हाथ में करि लीन्हो है, इत्यर्थः॥२५॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

चौपाई॥ सूक्ष्म रोमावली सुबेष। उपमा दीन्ही शुक सविशेष॥ उर में मनहुँ मदन की रेख। ताकी दीपति दिपति असेख॥ २६ ॥ दोहा॥ कटि के तत्त्व न जानिये सुनि प्रभु त्रिभुवनराव॥ जैसे सुनियत जगत के सत अरु असत सुभाव॥ ३० ॥ नाराच छन्द ॥ नितम्ब-बिम्ब फूल-से कटिप्रदेश छीन हैं। बिभूति लूटि ली सबै सु लोक-लाज-लीन हैं॥ अमोल ऊजरे उदार जंघजुग्म जानिये। मनोज के प्रमोद सों बिनोदयत्र मानिये॥ ३१ ॥

रेख कहे लीक। अर्थ यह कि हृदयमें मदन बस्यो है, ताकी छवि बाहर कढ़ि कै देखि परति है। काम को रूप श्याम है॥ २६ ॥ तत्त्व, स्वरूप। "तत्त्वं स्वरूपे परमात्मनीति मेदिनी"॥ सत्स्वभाव, पुण्य आदि॥ ३० ॥ नितम्बबिम्ब कहे नितम्बमण्डल, नितम्बस्वरूप इति। "बिम्बं तु प्रतिबिम्बे स्यान्मण्डले पुंनपुंसकमिति मेदिनी"। फूल-से कहे प्रफुल्लित हैं, अर्थात् आनन्द-सहित हैं। और कटिप्रदेश अति क्षीण है, सो मानों नितम्बन कटि की विभूति संपत्ति लूटि लीन्ही है, तासों आनंद-सहित हैं, और कटि लोक की लाज सों लीन कहे छपी है। ऊजरे, मलरहित। प्रमोदसों कहे प्रसन्नतासहित, अर्थात् अति प्रशस्त मनोज जो काम है, ताके मानों विनोदयंत्र कहे विनोद के लिये यंत्र हैं। और यंत्र के बंधन सों आनन्द होत है, इन के देखत ही आनन्द होत है॥ ३१ ॥

छवान की छुई न जाति सुभ्र साधु माधुरी। बिलोकि भूलि भूलि जाति चित्त चालि आतुरी॥ बिशुद्ध पादपद्म चारु अंगुली नखावली। अलक्तयुक्त मित्र की सु चित्रबैठकी भली॥ ३२ ॥ दोहा॥ कठिन भूमि अति कोवरे जावकजुत शुभ पाइ॥ जनु मानिक तनत्रान की पहिरी तरी बनाइ॥ ३३ ॥

चौपाई ॥ बरनबरन अँगिया उर धरे। मदन मनोहर के मन हरे ॥ अंचल अतिचंचल रुचि रचैं। लोचन चल जिनके सँग नचैं ॥ ३४ ॥ दोहा ॥ नखसिख भूषित भूषनन पढ़ि सुबरनमय मन्त्र ॥ यौवनश्री चल जानि जनु बाँधे रक्षायन्त्र ॥ ३५ ॥ चित्रपदा छन्द ॥ मोहनशक्ति न ऐसी। मकरध्वजध्वज जैसी ॥ मन्त्र बशीकर साजैं। मोहनमूरि बिराजैं ॥ ३६ ॥

छवा कहे एँड़ी, तिनकी शुभ्र कहे मलरहित, साधु कहे श्रेष्ठ, माधुरी कहे सुन्दरता, नयनन करि छुई नहीं जाति। अतीन्द्रिय है अति सुन्दरता है इति भावार्थः। जिनको विलोकि कै चित्त की जो आतुरी शीघ्र चालि कहे चालु है, सो भूलि जात है। अर्थात् चित्त अचल ह्वै जात है। पाद और अंगुली और नखावली चित्र-विचित्र अलक्त कहे महावर सों युक्त हैं। ते मानों मित्र को कहे मित्र जो स्वामी है ताके मन की बैठकी हैं, इत्यर्थः। अथवा मित्र कहे सूर्य। कि सूर्यसम नख हैं ॥ ३२ ॥ जानो मानिक की तनत्राण के अर्थ पहिरे हैं, इत्यर्थः ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ भूषण सुवर्णमय कहे कंचनमय हैं, और मंत्र-पक्ष में सुष्ठुवर्णमय अक्षरमय जानौ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

रूपमाला छन्द ॥ भाल में भव राखियो शशि की कला भृत एक। तोपता उपजावहीं मृदुहास-चन्द अनेक ॥ मार एक विलोकि कै हर जारि कै किय छार। नैनकोर चितै करैं पति-चित्त मार अपार ॥ ३७ ॥ चौपाई ॥ कंटक अटकत फटि कटि जात। उड़ि उड़ि बसन जात बश बात ॥ तऊ न तिनके तन लखि परे। मणिगण अंग अंग प्रति धरे ॥ ३८ ॥ दोहा ॥ उप-मागण उपजाइ हरि बगराये संसार ॥ तिनको परसपरोपमा रचि राखी करतार ॥ ३९ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणि श्रीरामचन्द्र-चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां सीतासखीजनवर्णनन्ना-मैकत्रिंशः प्रकाशः ॥ ३१ ॥

तोषता कहे संतोष के लिये इत्यर्थः । प्रतिवादी सों अधिक को करिये तब संतोष होत है, यह प्रसिद्ध है । महादेव एक मार जाख्यो, ता लिये नयनकोर सों चितै कै पतिन के चित्त में अपार मार कहे काम उत्पन्न करती हैं । अथवा महादेव काम को एकई मार कस्यो कि जारि ही डाख्यो, और ये काम-सरिस जे पति हैं, तिनके चित्त में अपार कहे अनेक विधि को मार ताड़न करती हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे हरि, कर्त्ता और उपमागण उपजाइ कै संसार में बगरायो फैलायो है । तिन दासिन को परस्परोपमा कहे एक दासी की उपमा एक को एक की एक को रचि राख्यो है । और उपमा इनके सदृश नहीं हैं, इत्यर्थः ॥ ३९ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकी-प्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामेकत्रिंशः प्रकाशः ॥३१॥

दोहा ॥ बत्तीसयें प्रकाश में उपवनवर्णन जानि ॥ अरु बहु बिधि जलकेलि को करेहु राम सुखदानि ॥ १ ॥ सुन्दरी छन्द ॥ अचानक दृष्टि परे रघुनायक । जानकि के जिय के सुखदा-यक ॥ ऐसे चले सबके चल लोचन । पंकज बात मनों मन-रोचन ॥ २ ॥ राम सों रामप्रिया कह यों हँसि । बाग देखावहु लोकन के ससि ॥ राम बिलोकत बाग अनन्तहि । ज्यों अवलोकत कामद सन्तहि ॥ ३ ॥ बोलत मोर तहाँ सुखसंयुत । ज्यों बिरदावलि भाटन के सुत ॥ कोमल कोकिल के कुल बो-लत । ज्ञानकपाट कुँजी जनु खोलत ॥ ४ ॥ फूल तजै बहु बृक्षन को गनु । छोड़त आनँद आँसुन को जनु ॥ दाड़िम की कलिका मन मोहति । हेमकुपी जनु बंदन सोहति ॥ ५ ॥ दोहा ॥ मधुबन फूल्यो देखि शुक बर्णत हैं निश्शंक ॥ सोहत हाटक-घटित ऋतु-युवतिन के ताटंक ॥ ६ ॥ दोधक छन्द ॥ बेल के फूल लसैं अति फूले । भौंर भवैं तिनके रस भूले ॥ यों करबीर करी बन राजै । मन्मथबानन की गति साजै ॥ ७ ॥ केतक

पुंज प्रफुल्लित सोहैं। भौंर उड़ैं तिनमें अति मोहैं॥ श्रीरघुनाथहिं आवत भागे। जे अपलोक हुते अनुरागे॥ ८॥ दोहा॥ श्याम शोण द्युति फूल की फूले बहुत पलास॥ जरै काम कैला मनों मधुऋतु बात-बिलास॥ ९॥

॥ १ ॥ रामचन्द्र भूपरूप दुराय कै ये छपे जो युवतिन को देखत रहे, सो उपवन की छवि निरखत अचानक सीतादिकन की दृष्टि में परे, सो रामचन्द्र की ओर सबके चंचल लोचन ऐसे चलत भये, जैसे बात कहे वायु सों मनरोचन कहे मन को सुखद पंकज कमल चलैं ॥ २॥ ३ ॥ कुंजी सों मानों ज्ञान के कपाट खोलत हैं। ज्ञानिन के कामोद्भव करि ज्ञान को दूरि करत हैं। इत्यर्थः ॥ ४ ॥ वन्दन, रोरी ॥ ५ ॥ मधु जो वसन्त है, तामें वन जो बाग है, ताके मध्य दाड़िम को फूले देखि कै शुक निश्शंक वर्णत हैं। दाड़िम पद को संबंध इहाँऊ है। मानों हाटक जो सुवर्ण है, तासों घटित कहे रचित षट्ऋतुरूपी जे युवती स्त्री हैं, तिनके ताटंक ढार हैं। भाषा में ऋतु शब्द स्त्रीलिंग है। यथा रसराजकाव्ये ॥ "आई ऋतु सुरभि सुहाई प्रीति वाके चित्त ऐसे में चलौ तौ लाल रावरी बड़ाई है।" अथवा ऋतु करिकै घटित बनाये ॥ ६ ॥ वेल कहे वेला। करवीर, कनैर ॥ ७ ॥ केतक कहे केवरा। ते भ्रमर श्रीरामचन्द्र को निकट आवत देखिकै भागत भये, जे भ्रमर प्राणी में अपलोक पाप के सम केतक पुंज में अनुरागे हैं, जैसे ध्यान में। अथवा साक्षात् राम के आगमन सों प्राणी के अपलोक दूरि होत हैं, ते केतक के निकट आवत भ्रमर भागत भये, इत्यर्थः ॥ ८ ॥ शोण, अरुण। मधु कहे वसंत-ऋतुरूपी जो वायु है, ताके विलास सों मानों महादेव करिकै जार्‍यो जो काम है ताके कैला फेरि जरैं कहे सुलगत हैं ॥ ९ ॥

तोटक छन्द ॥ बहु चम्पक की कलिका हुलसी। तिनमें अलि श्यामल ज्योति लसी॥ उपमा सुक सारिक चित्त धरी। जनु हेमकुपी रससींधु-भरी॥ १०॥ चौपाई॥ अलि उड़ि धरत मञ्जरी-जाल। देखि लाज साजति सब बाल॥ अलि अलिनी के देखत भाई। चुम्बत चतुर मालती जाई॥ ११॥ अद्भुतगति सुन्दरी बिलोकि। बिहँसति हैं घूँघुट पट रोकि॥

गिरत सदाफल श्रीफल ओज। जनु धर धरत देखि बक्षोज ॥ १२ ॥ तारक छन्द ॥ उदरे उर दाड़िम दीह बिचारे। सुदतीन के सोभन दन्त निहारे ॥ अतिमंजुल बंजुल कुंज बिराजैं। बहु गुंजनि के तन पुंजनि साजैं ॥ नर अन्ध भये दरसे तरु मौरे। तिनके जनु लोचन हैं यकठौरे ॥ १३ ॥

हुलसी कहे फूली। शृंगाररस सदृश भ्रमर हैं, और सोंधुसुगंध है ही। चंपक पै भँवर बैठिबे को वर्णन कविनियम विरुद्ध है, परन्तु केशव बड़े कवि हैं, कछू विचार ही कै कह्यो है है, तासों दोष नहीं है। अथवा गंधहीन होति है कली, तासों कह्यो है ॥ १० ॥ ११ ॥ सदाफल जे श्रीफल बिल्व हैं ते गिरत हैं, सो मानों तिन स्त्रियन के वक्षोज को ओज कहे प्रताप कांति को देखि कै भय सों उन्नत आसन को त्याग करि धर पृथ्वी को धरत हैं, अर्थात् नत होत हैं ॥ १२ ॥ दाड़िमफलन के उर पाकि कै उदरे कहे फाटि गये हैं, सो मानों सुदती कहे सुन्दर हैं दंत जिनके, ऐसी जे सीता की दासी हैं, तिनके सुन्दर दन्त ही निहारि कै स्पर्धा सों फाटि गये हैं। वंजुल, अशोक। गुंजनिकेतन कहे भ्रमर। मौरे कहे बौरे। अर्थात् अशोक-वृक्षन के दरशे नर अंध कहे कामान्ध भये। तिन नरन के मानों लोचन ही एकठौरे हैं। बौरे अशोक-वृक्षन को जनु देखि तिनके लोचन तहाँई लागि रहे, ताही सों ते अधम भये हैं, इत्यर्थः ॥ १३ ॥

थल सीतल तप्त स्वभावनि साजैं। ससि सूरज के जनु लोक बिराजैं ॥ जल-जंत्र बिराजत भाँति भली है। धर ते जलधार अकास चली है ॥ जमुनाजल सूक्ष्म बेष सँवाखो। जनु चाहत है रविलोक बिहाखो ॥ १४ ॥ चंचरी छन्द ॥ भाँति भाँति कहौं कहाँ लगि बाटिका बहुधा भलीं। ब्रह्मघोष घने तहाँ जनु हैं गिरा बन की थली ॥ नीलकंठ नचैं बने जनु जानिये गिरिजा वनी। सोभिजैं बहुधा सुगन्ध मनों मलैघन की धनी ॥ १५ ॥ चौपाई ॥ करुणामय बहु कामनि फली।

जनु कमला की वासस्थली ॥ सोभै रम्भा सोभासनी। मनों सची की आनँदवनी ॥ १६ ॥

उष्ण समय वैठिवे के जे स्थल हैं ते शीतल स्वभाव को साजत हैं, शीत समय वैठि कहे तप्त स्वभाव साजत हैं। शशि को लोक शीतल है, सूर्य को तप्त है। जलयंत्र, फुहारे ॥ १४ ॥ वाटिका में, ब्रह्मघोप कहे वेदशब्द, पाठशाला वनी हैं, तिनमें शिष्य पढ़त हैं। अथवा तपस्वी टिके हैं, ते वेदपाठ करत हैं। अथवा अन्यत्र ऋपि के आश्रमन सों सीखि कै शुक आदि पक्षी इहाँ आइ वेद पढ़त हैं। और गिरा सरस्वती के उपवन में ब्रह्मा को शब्द। नीलकण्ठ, वाटिका में मोर। गिरिजावनी में महादेव। धनी कहे रानी ॥ १५ ॥ वाटिका करुणा जे वृक्ष-विशेप हैं तिनसों युक्त है। और वहुत जे काम कहे अभिलपित फल हैं, तिनसों फली है। कमला की वासस्थली कैसी है कि करुणामय जे भगवान् हैं, ते जहाँ हैं। और वहुत जे काम्य पदार्थ, तिनसों फली युक्त है। अर्थात् जहाँ सव अभिलपित पदार्थ मिलत हैं। "कामः स्मरेच्छाकाम्येपु इति हेमचन्द्रः"। वाटिका-पक्ष में रंभा, केरा। आनंदवनी पक्ष में अप्सरा ॥ १६ ॥

कमल छन्द ॥ तरु चन्दन उज्ज्वलता तन धरे। लपटी नव नागलता मन हरे ॥ नृप देखि दिगम्बर बन्दन करे। चित चन्द्रकलाधररूपनि भरे ॥ १७ ॥ अतिउज्ज्वलता सब कालहु बसै। शुक केकि पिकादिक कंठहु लसै ॥ रजनी दिन आनँद-कन्दनि रहै। मुखचन्दन की जनु चाँदनि अहै ॥ १८ ॥

जा वाटिका में चन्दनवृक्ष चिर कहे बहुत काल सों, चन्द्रकलाधर जे महादेव हैं, तिनके रूपन को धरे हैं। कैसे हैं चंदनवृक्ष और महादेव, उज्ज्वलता जो श्वेतता है ताको तनमें धारण करे हैं। चंदनवृक्ष हू श्वेत हैं, महादेव के अंग हू श्वेत हैं। नागलता कहे नागवेलि, और नाग सर्परूपी लता। और दिगम्बर नग्न हुवौ हैं। महादेव को ईश्वरता सों और वृक्षन को अति अद्भुतता सों नृप सव वन्दना करत हैं ॥ १७ ॥ फेरि वाटिका कैसी है कि मानों सीता की दासिन के मुखचंदन की चाँदनी है। कैसी है वाटिका और चाँदनी, सव कालहु कहे सव समय में उज्ज्वलता कहे स्वच्छता और शुक्लता वसति है। कैसी है वाटिका, शुक आदि पक्षिन के

कंठ कहे शब्दसहित लसति है । अर्थात् अनेक शुक आदि पक्षी जामें बोलत हैं । और चाँदनी शुक आदिकन के शब्द सरिस जे अनेक विधि परस्पर बोलती हैं तिन सहित है । और रातौदिन दुवौ आनंद की कंदनि कहे जर है । अर्थात् रातौदिन सुखद है । वा चंद की चाँदनी राति ही कौं सुखद होति है, मुखचंद की चाँदनी रातौदिन सुख देति है, इति भावार्थः । शुक केकि पिकादिक के मुख बसै, कहूँ यह पाठ है । तहाँऊँ मुख कहे शब्द जानौ । अर्थ वही है । "मुखं निस्सरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि । संध्यन्तरे नाटकादेः शब्देऽपि च नपुंसकमिति मेदिनी" ॥ १८ ॥

तोटक छन्द ॥ सब जीवन को बहु सुक्ख जहाँ । बिरही जन ही कहँ दुःख तहाँ ॥ जहँ आगम पौनहि को सुनिये । नित हानि असौंधहि की गुनिये ॥ १९ ॥ दोहा ॥ तप ही को ताउन जहाँ तृष चातक के चित्त ॥ पात फूल फल दलनि को भ्रम भ्रमरनि के मित्त ॥ २० ॥ तारक छन्द ॥ तिनमें इक कृत्रिम पर्बत राजै । मृग पक्षिन की सब शोभहि साजै ॥ बहु भाँति सुगंध मलैगिरि मानो । कल धौतस्वरूप सुमेरु बखानो ॥ २१ ॥ अति शीतल शंकर को गिरि जैसो । शुभ श्वेत लसै उदयाचल ऐसो ॥ द्युतिसागर में मइनाक मनो है । अजलोक मनों अजलोक बनो है ॥ २२ ॥ तोटक छन्द ॥ सरिता तिनते शुभ तीनि चली । सिगरी सरितान कि सोभ दली ॥ इक चन्दन के जल उज्ज्वल है । जग जह्नुसुता शुभ शील गहै ॥ २३ ॥ चौपाई ॥ सुरगज को मारग छबि छायो । जनु दिवि ते भूतल पर आयो ॥ जनु धरणी में लसति बिशाल । त्रुटित जुही की घन बनमाल ॥ २४ ॥ दोहा ॥ तज्यो न भावै एक पल केशव सुखद समीप । जासों सोहत तिलक-सो दीन्हे जम्बूद्वीप ॥ २५ ॥ दोधक छन्द ॥ एणन के मद कै जनु दूजी । है यमुनाद्युति कै जनु पूजी ॥ धार मनों रसराज बिशाला । पंकजजालमयी जनु

माला ॥ २६ ॥ दोहा ॥ दुखखंडन तरवारि-सी किधौं शृंखला चारु ॥ क्रीड़ा गिरि मातंग की यहै कहै संसारु ॥ २७ ॥ क्रीड़ा-गिरि ते अलिन की अवली चली प्रकास ॥ किधौं प्रतापान-लन की पदबी केशवदास ॥ २८ ॥ दोधक छन्द ॥ और नदी जलकुंकुम सोहै। शुद्ध गिरा मन मानहुँ मोहै॥ कंचन के उप-बीतहि साजै । ब्राह्मण-सो यह खंड बिराजै ॥ २९ ॥ स्वागता छन्द ॥ लौंग फूलमय सेवटि लेखी । एलबीज बहु बालक देखी ॥ केरिफूलदल-नावन माहीं। श्री सुगन्ध तहँ है बहुधाहीं ॥ ३० ॥

सब जीवन को असौंध, दुर्गन्ध ॥ १९ ॥ पात कहे पतन ॥ २०॥ कृत्रिम कहे बनायो । कलधौत-स्वरूप कहे सुवर्णमय है । अर्थात् सुवर्ण ही को बन्यो है ॥ २१ ॥ मैनाक सागर में है और यह द्युति शोभारूपी सागर में है। अज जे दशरथ के पिता हैं, तिनके लोक में मानों अज जे ब्रह्मा हैं तिन-को लोक ब्रह्मलोक बन्यो है ॥ २२ ॥ शील कहे स्वभाव, ताप-दूरि-करन आदि ॥ २३ ॥ सुरगज ऐरावत की राह आकाश में रात्रि को उवति है, प्रसिद्ध है । जुही कहे जाहीजूही, पुष्प-विशेष हैं॥ २४ ॥ तिलक सो, अर्थात् राज्याभिषेक-तिलक सो ॥ २५ ॥ एणन मृगन को मद कस्तूरी, पूजी कहे पूरित, अर्थात् मानों यामें यमुना की शोभा आइ बसी है । रसराज,शृंगाररस। पंकज सों इहाँ श्याम कमल जानौ ॥ २६ ॥ क्रीड़ागिरिरूपी जो मातंग है, ताकी शृंखला क्षुद्रघंटिका अथवा आँदू है ॥ २७॥ किधौं, रघुवंशिन के इति शेषः, प्रतापाग्नि की पदवी राह है। अग्नि की राह श्याम होति है ॥ २८ ॥ नदिन में सेवटि परि जाति है। कहूँ सेवटा करि प्रसिद्ध है। एला, इलायची । केरि कहे केरा के फूल के जे दल पत्र हैं, तेई नाव हैं। तिनमें सुगंध जो है सोई श्री कहे वाणिज्य-द्रव्य है ॥ २९ ॥ ३० ॥

दो० ॥ खेवत मत्त मलाह अलि को बरनै वह ज्योति ॥ तीनिहु सरिता मिलित जहँ तहाँ त्रिबेणी होति ॥ ३१ ॥ सीता श्रीरघुनाथजू देखी अमित शरीर ॥ द्रुम अवलोकन

छोड़िकै गये जलाशय-तीर ॥ ३२ ॥ चौपाई ॥ आई कमलबासु सुखदेन। मुखबासन आगे ह्वै लेन ॥ देख्यो जाइ जलाशय चारु। सीतल सुखद सुगन्ध अपारु ॥ ३३ ॥ मरहट्टा छन्द ॥ बनश्री को दर्पनु चन्द्रातप जनु किधौं शरद-आवास। मुनि-जनगन-मन-सो बिरही जन-सो बिस-बलयानि बिलास ॥ प्रतिबिम्बित थिर चर जीव मनोहर मनु हरि-उदर अनन्त। बन्धुन युत सोहैं त्रिभुवन मोहैं मानो बलि यशवन्त ॥ ३४ ॥

॥ ३१ ॥ जलाशय, तड़ाग ॥ ३२ ॥ जब कोऊ बड़ो आपने इहाँ आवत है, ताको आगे चलिकै लेबो उचित है ॥ ३३ ॥ वन की जो श्री लक्ष्मी है, ताको दर्पण है, कि चन्द्रातप कहे चाँदनी है, कि शरद् ऋतु को आवास घर है। मुनिजन के मन सम विमल है, इत्यर्थः। तड़ाग विस जो कमल की जर है ताके वलय समूह सों युक्त है, और विरही शीतलता के लिये अनेक कमलन की जर धारण करे हैं। हरि के उदर हू में चौदहौ लोक बसत हैं। तड़ाग पाषाणादि सों बाँध्यो है, बलि को वामन बाँध्यो है ॥ ३४ ॥

चौपाई ॥ बिषमय यह सब सुख को धाम। शम्बररूप बढ़ावै काम ॥ कमलन मध्य भ्रमर सुख देत। सन्तहृदय जनु हरिहिं समेत ॥ ३५ ॥ बीच बीच सोहैं जलजात। तिनते अलिकुल उड़ि उड़ि जात ॥ सन्तहियन सों मानहुँ भाजि। चंचल चली अशुभ की राजि ॥ ३६ ॥ दण्डक ॥ एक दमयन्ती ऐसी हरै हँसि हंसबंस एक हंसिनी-सी बिसहार हिये रोहिये। भूषण गिरत एकै लेतीं बूड़ि बूड़ि बीच मीनगति लीन हीन उपमा न टोहिये ॥ एक पतिकंठ लागि लागि बूड़ि बूड़ि जाति जल देवता-सी दृग देवता बिमोहिये। केशौदास आसपास भँवर भँवत जल केलि में जलजमुखी जलज-सी सोहिये ॥ ३७ ॥ दोहा ॥ क्रीड़ासरवर में नृपति कीन्ही बहुबिधि केलि ॥ निकसे तरुनिसमेत जनु सूरज किरनि सकेलि ॥ ३८ ॥ हाक-

लिका छन्द ॥ नीरनि ते निकसीं तिय सबै । सोहति हैं बिन भूषण तबै ॥ चन्दनचित्र कपोलन नहीं । पङ्कजकेशर शोभत तहीं ॥ ३६ ॥

द्वै चरण में विरोधाभास है । विष, जल । शम्बररूप कहे शम्बर जो मत्स्यभेद है तन्मय है, अर्थात् अति-शम्बर-मत्स्ययुक्त है । "शम्बरोदैत्यहरिणमत्स्यशैलजिनान्तरे इति मेदिनी" ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हरैं कहे गहि लेती हैं । दमयन्ती हू राजा नल को जो हंस पठायो है, ताको गहि लियो है । हंस हू पौनारी को काढ़ि गरे में डारि लेत है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ताहीं अर्थ कपोलन में लगे कमलन के केशर किंजल्क सोहत हैं ॥ ३६ ॥

मोतिन की बिथुरी शुभ छटैं । हैं उरभी उरजातन लटैं ॥ हास सिंगारलता मनु बनी । भेंटति कल्पलता हित घनी ॥ ४० ॥ केशनि ओरनि सीकर रमैं । ऋक्षन को तमयी जनु बमैं ॥ सज्जल अम्बर छोड़त बने । छूटत हैं जल के कन घने ॥ भोग भले तिनसों मिलि करे । बिछुरत जानि ते रोवत खरे ॥ ४१ ॥ भूषण जे जल-मध्यहिं रहे । ते बनपाल-बधूटिन लहे ॥ भूषण बस्त्र जबै सजि लये । चारिहु द्वारन दुन्दुभि भये ॥ ४२ ॥ दोहा ॥ गूँगे कुबरे बावरे बहिरे बामन बृद्ध ॥ यान लये जन आइगे खोरे खंज प्रसिद्ध ॥ ४३ ॥ चौपाई ॥ सुखद सुखासन बहु पालकी । फीरकबाहिनि सुख चाल की ॥ एकन जोते हय सोहिये । बृषभ कुरङ्ग अङ्ग मोहिये ॥ तिन चढ़ि राजलोक सब चल्यो । नगर-निकट शोभाफल फल्यो ॥ ४४ ॥

हासरस-लतासम मोतिन की लरैं हैं, शृङ्गाररस-लतासम लटैं हैं, कल्पलतासम स्त्री हैं ॥ ४० ॥ केशन के ओरन कहे अन्त में सीकर जे अंबुकण हैं, ते रमैं कहे शोभित हैं । ऋक्ष, नक्षत्र ॥ ४१ ॥ वाटिका के चारिहू द्वारन में कूच के नगारे भये इत्यर्थः ॥ ४२ ॥ स्त्री-जन के निकट ऐसे ही जन चाहिये, जिनपै स्त्रीजन प्रीति न करैं ॥ ४३ ॥ सुखासन कहे कोमल बिछावने युक्त फिरकबाहिनी सेजगाड़ी । एकन फिरकबाहिनीन में जोते हय

घोड़ा शोभित हैं । एकन में वृषभ शोभित हैं । ते आपने अङ्गन करि कुरङ्ग अङ्गन को मोहत हैं । अर्थात् अतिचञ्चल हैं ॥ ४४ ॥

मनिमय कनकजालिका घनी । मोतिन की झालरि अति बनी ॥ घंटा बाजत चहुँ दिशि भले । रामचन्द्र त्यहि गज चढ़ि चले ॥ चपला चमकत चारु अगूढ़ । मनहुँ मेघ मघवा आरूढ़ ॥ ४५ ॥ आसपास नरदेव अपार । पाँइ-पियादे राजकुमार ॥ बन्दीजन जस पढ़त अपार । यहि बिधि गये राजदरबार ॥ ४६ ॥ बिजया छन्द ॥ भूषित देह बिभूति दिगम्बर नाहिंन अम्बर अङ्ग नबीने । दूरि कै सुन्दर सुन्दरि केशव दौरि दरीन में आसन कीने ॥ देखिये मंडित दंडन सों भुजदंड दुवौ असिदंड-बिहीने । राजन श्रीरघुनाथ के बैर कुमंडल छोड़ि कमंडल लीने ॥ ४७ ॥ दोहा ॥ कमलकुलन में जात ज्यों भँवर भयो रस-चित्र ॥ राजलोक में त्यों गये रामचन्द्र-जगमित्र ॥ ४८ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां वनविहार वर्णनन्नामद्वात्रिंशः प्रकाशः ॥ ३२ ॥

हौदा में मणिमयी कनकजालिका झाँझरी घनी हैं, इत्यर्थः । अथवा झालरि की जारी मणिमयी कनक की घनी बनी हैं । अगूढ़, प्रसिद्ध ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ असिदण्ड, तरवारि । कुमण्डल, पृथ्वीमंडल ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां द्वात्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३२ ॥

दोहा ॥ तैंतीसयें प्रकाश में ब्रह्मा-बिनय बखानि ॥ शम्बुक-बध*सिय-त्याग अरु कुश-लव-जन्म सु जानि ॥ १ ॥

---

* शंबुक-नामक शूद्र ।

त्रिभंगी छंद ॥ दुर्जनदलघायक श्रीरघुनायक सुखदायक त्रिभुवन शासन । सोहैं सिंहासन प्रभाप्रकासन कर्मबिनासन दुखनासन ॥ सुग्रीव बिभीषण सुजन बंधुजन सहित तपोधन भूपतिगन । आये सँग मुनिजन सकल देवगन मृग तप-कानन चतुरानन ॥ २ ॥ तोटक छंद ॥ उठि आदर सों अकुलाइ लयो । अति पूजन कै बहुधा बिनयो ॥ सुखदायक आसन शोभ-रये । सबको सुयथाबिधि आनि दये ॥ ३ ॥

दोहा ॥ सबन परस्पर बूझियो कुशलप्रश्न सुख पाय ।
चतुरानन बोले बचन श्लाघा बिनय बनाय ॥ ४ ॥

ब्रह्मा—मनोरमा छन्द ॥ सुनिये चित दै जग के प्रतिपालक । सबके गुरु हौ हरि यद्यपि बालक ॥ सबको सब भाइ सदा सुखदायक । गुण गावत बेद मनोबचकायक ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ त्रिभुवन के शासन कहे शिक्षक । पाप-पुण्य कर्म को नाश कै आपने धाम पठावत हैं, इत्यर्थः । तपरूपी जो कानन वन है, ताके मृग कहे वन-पशु । जैसे वन को मृग अवगाहन करत है, तैसे अनेक तपस्या के अवगाहनकर्त्ता इत्यर्थः ॥ २ ॥ आनि कहे मँगाइ कै ॥ ३ ॥ श्लाघा, स्तुति ॥ ४ ॥ ५ ॥

तुम लोक रचे बहुधा रुचिकै तब । सुनिये प्रभु ऊजर हैं सिगरे अब ॥ जग कोउ न भूलिहु जाइ निरै-मग । मिटिगे सब पापन पुण्यन के नग ॥ ६ ॥ दोहा ॥ बरुणपुरी धनपतिपुरी सुरपतिपुर सुखदानि ॥ सप्त लोक बैकुंठ सब बस्यो अवध में आनि ॥ ७ ॥ तोमर छन्द ॥ हँसि यों कह्यो रघुनाथ । समुझी सबै बिधि गाथ ॥ मम इच्छ एक सु जानि । कबहूँ न होय सु आनि ॥ ८ ॥ तव पुत्र जे सनकादि । मम भक्त जानहु आदि ॥ सुत मानसिक तिनकेति । भुवदेव भुव प्रगटेति ॥ ९ ॥ हम दियो तिन शुभ ठाउँ । कछु और दीबे गाँउँ ॥ अब देहिं

हम किहि ठौर । तुम कहौ सुरसिरमौर ॥ १० ॥ ब्रह्मा–मरहट्टा छन्द ॥ सब वै मुनि रूरे तपबल-पूरे बिदित सनाढ्य सुजाति । बहुधा बहुबारनि प्रति अवतारनि दै आये बहु भाँति ॥ सुनि प्रभु आखंडल मथुरामंडल में दीजै शुभ ग्राम । बाढ़ै बहु कीरति लवणासुर हति अति अजेय संग्राम ॥ ११ ॥ दोहा ॥ जिनके पूजे तुम भये अंतर्यामी श्रीप ॥ तिनकी बात हमैं कहा पूछत त्रिभुवन-दीप ॥ १२ ॥ द्विज आयो ताही समै मृतक पुत्र के साथ ॥ करत बिलाप-कलाप हा रामचन्द्र रघुनाथ ॥ १३ ॥ मल्लिका छन्द ॥ बालकै मृतै सु देखि । धर्मराज सों बिसेखि ॥ बात यों कही निहारि । कर्म कौन को बिचारि ॥ १४ ॥ धर्मराज–मनोरमा छन्द ॥ निज शूद्रन की तपसा शिशुघालक । बहुधा भुवदेवन के सब बालक ॥ करि बेगि बिदा सिगरे सुर-नायक । चढ़ि पुष्पक आशु चले रघुनायक ॥ १५ ॥

नग, पर्वत ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ आखण्डल, इन्द्र ॥ ११ ॥ श्रीप्रति कहे लक्ष्मीपति ॥ १२ ॥ कलाप कहे समूह ॥ १३ ॥ धर्मराज, न्यायदर्शी, अथवा यमराज ॥ १४ ॥ १५ ॥

दोधक छन्द ॥ राम चले सुनि शूद्र कि गीता । पंकजजोनि गये जहँ सीता ॥ देखि लगी पग राम कि रानी । पूजि कै बूझति कोमल बानी ॥ १६ ॥ सीता–कौनहुँ पूरब पुण्य हमारे । आजु फले जु इहाँ पगु धारे ॥ ब्रह्मा–देवन को सब कारज कीन्हो । रावण मारि बड़ो यश लीन्हो ॥ १७ ॥ मैं बिनती बहु भाँतिन कीनी । लोकन की करुना रस-भीनी ॥ ऊतरु मोहिं दियो सुनि सीता । जा कि न जानि परै जिय गीता ॥ १८ ॥ माँगत हौं बर मो कहँ दीजै । चित्त में और बिचार न कीजै ॥ आजु ते चाल चलौ तुम ऐसे । राम चलैं

बइकुंठहि जैसे ॥ १६ ॥ सीय जहीं कछु नैन नवाये। ब्रह्म तहीं निज लोक सिधाये ॥ राम तहीं शिर शूद्र को खंड्यो। ब्राह्मण को सुत जीवन मंड्यो ॥ २० ॥ सुन्दरी छन्द ॥ एक समै रघुनाथ महामति। सीतहि देखि सगर्भ बढ़ी रति ॥ सुंदरि माँगु जु जी महँ भावत। मो मन तो निरखे सुख पावत ॥२१॥ सीता—जो तुम होत प्रसन्न महामति। मेरे बढ़ै तुम ही सो सदा रति ॥ अंतर की सब बात निरंतर। जानत हौ सबकी सब-ते पर ॥ २२ ॥ राम—दोहा ॥ निर्गुण ते सगुणो भयो सुनि सुंदरि तुव हेत ॥ और कछू माँगौ सुमुखि रुचै जु तुम्हरे चेत ॥ २३ ॥

॥ १६ ॥ द्वै छन्द को अन्वय एक है। ऊतरु कहे जवाब दियो, अर्थात् वैकुण्ठ चलिवे को न कह्यो ॥ १७ ॥ १८ ॥ १६ ॥ नयन नवाये ते ब्रह्मा को कह्यो अङ्गीकार कस्यो जानो ॥ २० ॥ यह कह्यो इति शेषः ॥ २१ ॥ हमारे तुम ही सों सदा रति प्रीति बढ़ै, यह वर हमको दीजै, इत्यर्थः ॥ २२ ॥ २३ ॥

सीता—सुंदरी छन्द ॥ जो सबते हित मो कहँ कीजत। ईश दया करिकै बरु दीजत ॥ हैं जितने ऋषि देवनदी-तट। हौं तिनको पहिराय फिरौं पट ॥ २४ ॥ राम—दोहा ॥ प्रथम दोहदै क्यों करौं निष्फल सुनि यह बात ॥ पट पहिरावन ऋषिन को जैयो सुंदरि प्रात ॥ २५ ॥ सुन्दरी छन्द ॥ भोजन कै तब श्रीरघुनंदन। पौढ़ि रहे बहुदुष्टनिकंदन ॥ बाजे बजे अधरात भई जब। दूतन आइ प्रणाम कियो तब ॥ २६ ॥ चंचला छन्द ॥ दूत भूत भावना कही कहीं न जाय बैन। कोटिधा बिचारियो परै कछू बिचार मैं न ॥ सूर के उदोत होत बंधु आ-इयो सुजान। रामचन्द्र देखियो प्रभात-चंद्र के समान ॥ २७ ॥

संयुता छन्द ॥ बहु भाँति बंदन ता करी । हँसि बोलियो न दयाधरी ॥ हम ते कछू द्विजदोष है । जेहि ते कियो प्रभु रोष है ॥ २८ ॥ दोहा ॥ मनसा वाचा कर्मणा हम सेवक सुनु तात ॥ कौन दोष नहिं बोलियत ज्यों कहि आये बात ॥ २९ ॥

देवनदी, गंगा ॥ २४ ॥ दोहद कहे गर्भ ॥ २५ ॥ २६ ॥ यामें केशव कहत हैं कि दूत की कही जो भूत कहे व्यतीत भावना कहे क्रिया है, रजक वचनआदि कथा, सो कहिबे को हम कोटि प्रकार सों विचारयो, कछू विचार में नहीं परत, तासों बैन सों हम सों नहीं कही जाति, इत्यर्थः ॥२७॥ २८ ॥ २९ ॥

राम—संयुता छन्द ॥ कहिये कहा न कही परै । कहिये तौ ज्यों बहुतै उरै ॥ तब दूत बात सबै कही । बहु भाँति देहदशा दही ॥ ३० ॥ भरत—दोहा ॥ सदा शुद्ध अति जानकी निन्दत त्यों खलजाल ॥ जैसे श्रुतिहि स्वभाव ही पाखंडी सब काल ॥ ३१ ॥ भव-अपवादनि ते तज्यो त्यों चाहत सीताहि ॥ ज्यों जग के संजोग ते जोगीजन समताहि ॥ ३२ ॥ झूलना छन्द ॥ मन मानि कै अति शुद्ध सीतहि आनियो निज धाम । अवलोकि पावक-अंक ज्यों रवि-अंक पंकजदाम ॥ क्यहि भाँति ताहि निकारिहौ अपबाद बादि बखानि । शिव ब्रह्म धर्म समेत श्रीपितु साखि बोल्यहु आनि ॥ ३३ ॥ यवनादि के अपवाद क्यों द्विज छोड़िहै कपिलाहि । बिरहीन को दुख देत क्यों हर डारि चंद्रकलाहि ॥ यह है असत्य जु होइगो अपबाद सत्य सु नाथ । प्रभु छोड़ि शुद्ध सुधा न पीवहु आपने बिष हाथ ॥ ३४ ॥ दोहा ॥ प्रिय पावनि प्रियवादिनी पतिव्रता अति शुद्ध ॥ जग को गुरु अरु गुर्विणी छाँड़त बेद-बिरुद्ध ॥ ३५ ॥ वे माता वैसे पिता तुम-सो भैया पाइ ॥ भरत भयो अपवाद को भाजन भूतल आइ ॥ ३६ ॥

॥ ३० ॥ पाखंडी, नास्तिक ॥ ३१ ॥ अपवाद, निंदा। समता को लक्षण पचीसयें प्रकाश में कह्यो है ॥ ३२ ॥ दाम, जेवरी। वादि, वृथा ॥ ३३ ॥ यह जो ब्रह्मादिकन की साक्षी है, सोई जो असत्य है, तो हे नाथ, रजक-कृत यह अपवाद कैसे सत्य है है, इत्यर्थः ॥ सुधासम ब्रह्मादिकन की साक्षी है, विषसम रजक को अपवाद है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

राम–हरिलीला छन्द ॥ साँची कही भरत बात सबै सुजान। सीता सदा परम शुद्ध कृपानिधान ॥ मेरी कळू अबहिं इच्छ यहै सु हेरि। मोको हतो बहुरि बात कहो जु फेरि ॥ ३७॥ लक्ष्मण–दोधक छन्द ॥ दूखत जैन सदा शुभ गङ्गा। छोड़हुगे बहु तुंग तरङ्गा ॥ मायहि निन्दत हैं सब योगी। क्यों तजि हैं भव भूपति भोगी ॥ ३८ ॥ ग्यारसि निन्दत हैं मठधारी। भावति है हरिभक्तनि भारी ॥ निन्दत हैं तुव नामनि बामी। का कहिये तुम अन्तरजामी ॥ ३९ ॥ दोहा ॥ तुलसी को मानत प्रिया गौतमतिय अति अज्ञ ॥ सीता को छोड़न कहौ कैसे कै सर्वज्ञ ॥ ४० ॥ शत्रुघ्न–रूपमाला छन्द ॥ स्वप्न हू नहिं छोड़िये तिय गुर्विणी पल दोइ। छोड़ियो तब शुद्ध सीतहि गर्भमोचन होइ ॥ पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ। लोकलोकन में अलोक न लीजिये रघुराइ ॥ ४१ ॥ दोहा ॥ रामचन्द्र जग चन्द्र तुम फलदलफूलसमेत ॥ सीता या बन-पद्मिनी न्यायन ही दुख देत ॥ ४२ ॥

फेरि कहे पलटि कै ॥ ३७ ॥ जैन, नास्तिक ॥ ३८ ॥ ग्यारसि, एकादशी। बामी, बाममार्गी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ अलोक, निंदा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

घर घर प्रति सब जग सुखी राम तुम्हारे राज ॥ अपने ही घर करत कत शोक अशोक समाज ॥ ४३ ॥ राम–तोटक छन्द ॥ तुम बालक हौ बहुधा सब मैं। प्रतिउत्तर देहु न फेरि हमैं ॥ जु कहैं हम बात सु जाइ करो। मन मध्य न और बिचार

धरो ॥ ४४ ॥ दोहा ॥ और होइ तौ जानिजै प्रभु सों कहा बसाइ ॥ यह बिचारि कै शत्रुहा भरत उठे अकुलाइ ॥ ४५ ॥ राम—दोधक छन्द ॥ सीतहि लै अब सत्वर जैये । राखि महाबन में पुनि ऐये ॥ लक्ष्मण जो फिरि उत्तर दैहौ । शासनभङ्ग को पातक पैहौ ॥ ४६ ॥ लक्ष्मण लै बन सीतहि धाये । स्थावर जंगम हू दुख पाये ॥ गङ्गहि देखि कह्यो यह सीता । श्रीरघुनायक की जनु गीता ॥ ४७ ॥

अशोक जो आनन्द है, ताके समाज कहे समूह में ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जानिजै अर्थात् दोष-अदोष को निर्णय समुझिये ॥ ४५ ॥ शासन, आज्ञा । राजा को आज्ञाभङ्ग वध के सम होत है । यथा माधवानलनाटके—"आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखण्डनम् । पृथक्शय्या वरस्त्रीणामशस्त्रवधउच्यते" ॥ ४६ ॥ सीता को लै कै लक्ष्मण वनहू को गये, तहाँ पर्यंत कहूँ कौशल्या वशिष्ठ आदि के वचन नहीं हैं, सो ऋष्यश्रृंग ऋषि के यज्ञ रह्यो, तहाँ कौशल्या आदि माता और अरुंधती-सहित वशिष्ठ सब निमन्त्रण में गये रहैं, यह कथा उत्तर-रामचरित्र नाटक में लिखी है, सो जानौ ॥ ४७ ॥

पार भये जब हीं जन दोऊ । भीम बनी जन जन्तु न कोऊ ॥ निर्जल निर्जन कानन देख्यो । भूत-पिशाचन को घर लेख्यो ॥ ४८ ॥ सीता—नगस्वरूपिणी छन्द ॥ सुनौं न ज्ञान कारिका । शुकी पढ़ैं न सारिका ॥ न होमधूम देखिये । सुगंधबंधु लेखिये ॥ ४९ ॥ सुनौं न बेद की गिरा । न बुद्धि होति है थिरा ॥ ऋषीन की कुटी कहाँ । पतिब्रता बसैं जहाँ ॥ ५० ॥ मिले न कोउ वे कहूँ । न आवते न जात हूँ ॥ चले हमैं कहाँ लिये । डराति हैं महा हिये ॥ ५१ ॥ दोहा ॥ सुनि सुनि लक्ष्मण भीत अति सीताजू के बैन ॥ उत्तर मुख आयो नहीं जल भरि आये नैन ॥ ५२ ॥ नाराच छन्द ॥ बिलोकि लक्ष्मणै भई बिदेहजा बिदेह-सी । गिरी अचेत ह्वै मनों घनै बनै तड़ित्

त्रसी ॥ कस्यो जु छाँह एक हाथ एक बात बास सों। सिंच्यो सरीर बीर नैन-नीर ही प्रकास सों ॥ ५३ ॥

जन कहे मनुष्य, जंतु कहे जीव। अर्थात् मनुष्य जीव नहीं, केवल वन-जीव ही देखि परत हैं, इति भावार्थः ॥ ४८ ॥ सुगन्ध को बंधु कहे हित, अर्थात् सुगन्धयुक्त होमधूम नहीं देखियत। अथवा सुगंधबंधु कहे दुर्गंध। कहूँ सुगंधबंध पाठ है। तहाँ अर्थ यह कि सुगंध को बंध कहे बंधन है, यामें ऐसो होमधूम नहीं देखियत॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ मानों घनै वनै कहे घने वन को देखि तड़ित् जो विजुरी है सोई त्रसी कहे डरी है। सो डरिकै अचेत ह्वै गिरि परी है, इत्यर्थः। कहूँ 'घने घने तड़ी त्रसी, पाठ है। अर्थात् मानों घने जे घन मेघ हैं तिनमें त्रसी कहे डेरानी, तड़ी अचेत ह्वै गिरी है। मेघसम वन है, विजुरीसम सीता हैं ॥ ५३ ॥

रूपमाला छन्द ॥ राम की जपसिद्धि-सी सिय को चले वन छाँड़ि। छाँह एक फनी करी फन दीह मालनि माँड़ि ॥ बालमीकि बिलोकियो बनदेवता जनु जानि। कल्पबृक्ष-लता किधौं दिवि ते गिरी भुव आनि ॥ ५४ ॥ सींचि मन्त्र सजीव-जीवन जी उठी तेहि काल। पूछियो मुनि कौन की दुहिता बहू अरु बाल ॥ सीताजू—हौं सुता मिथिलेश की दशरत्थपुत्र-कलत्र। कौन दोष तजी न जानति कौन आपुन अत्र ॥ ५५ ॥ मुनि—पुत्रिके सुनि मोहिं जानहि बालमीकि द्विजाति। सर्वथा मिथिलेश को गुरु सर्वदा शुभ भाँति ॥ होहिंगे सुत द्वै सुधी पगु धारिये मम ओक। रामचन्द्र क्षितीशके सुत जानिहैं तिहुँ लोक ॥ ५६ ॥ सर्वथा गुनि सुद्ध सीतहि लै गये मुनिराइ। आपनी तपसान की सुभ सिद्धि-सी सुख पाइ ॥ पुत्र द्वै भये एक श्रीकुश दूसरो लव जानि। जातकर्महि आदि दै किय बेद-भेद बखानि ॥ ५७ ॥ दोहा ॥ बेद पढ़ायो प्रथम ही धनु-

बेंद सबिशेष । अस्त्र शस्त्र दीन्हे घने दीन्हे मंत्र अशेष ॥ ५८ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्री-
रामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां जानकी-
त्यागवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३३ ॥

॥ ५४ ॥ संजीवन-मंत्र सों जीवन जल सींच्यो, तब सीता जी उठीं । अत्र कहे या स्थान में । आपनो कौन दोष है, जासों मोको तजी, यह हौं नहीं जानति इत्यर्थः ॥ ५५ ॥ ओक कहे घर ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-
निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां त्रयस्त्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३३ ॥

दोहा ॥ आयो श्वान फिरयादि को चौंतीसयें प्रकाश ॥ अरु सनाढ्य द्विज आगमन लवणासुर को नाश ॥ १ ॥ दोधक छन्द ॥ एक समै हरि धर्मसभा में । बैठे हुते नरदेव-प्रभा में ॥ संग सबै ऋषिराज बिराजैं । सोदर मन्त्रिन मित्रन साजैं ॥ २ ॥ कूकर एक फिरयादिहि आयो । दुन्दुभि धर्मदुवार बजायो ॥ बाजत ही उठि लक्ष्मण धाये । श्वानहि कारण बूझन आये ॥ ३ ॥ कूकर—काहू के क्रोध बिरोध न देखो । राम को राज तपोमय लेखो ॥ तामहँ मैं दुख दीरघ पायो । रामहि हौं सु निबेदन आयो ॥ ४ ॥ लक्ष्मण—धर्मसभा महँ रामहि जानो । श्वान चलो निज पीर बखानो ॥ श्वान—हौं अब राजसभा नहिं आऊँ । आऊँ तो केशव शोभ न पाऊँ ॥ ५ ॥ दोहा ॥ देव अदेव नृदेव घर पावन थल सुखदाइ ॥ विन बोले आनन्दमति कुत्सित जीव न जाइ ॥ ६ ॥

॥ १ ॥ धर्मसभा, न्यायसभा ॥ २ ॥ ३ ॥ निवेदन, कहनो ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

दोधक छन्द ॥ राजसभा महँ श्वान बुलायो । रामहि देखत

हीं शिर नायो ॥ राम कह्यो जु कछू दुख तेरे। श्वान निशंक कहो पुर मेरे ॥ ७ ॥ श्वान—तारक छन्द ॥ तुम हो सरबज्ञ सदा सुखदाई। अरु हौ सब को समरूप सदाई ॥ जग सोहत है जगतीपति जागे। अपने अपने सब मारग लागे ॥ ८ ॥ नरदेव न पाँय परै परजा को। निसि बासर होइ न रच्छक ताको ॥ गुन दोषन को जब होइ न दर्सी। तब ही नृप होइ निरै-पदपर्सी ॥ ९ ॥ दोहा ॥ निजस्वारथ ही सिद्धि द्विज मोको कस्यो प्रहार॥ बिन अपराध अगाधमति ताको कहा बिचार॥१०॥ तारक छन्द ॥ तब ताकहँ लेन तबै जन धाये। तब ही नगरी महँ ते गहि ल्याये ॥ राम—यह कूकर क्यों बिन दोषहि मास्यो। अपने जिय त्रास कछू न बिचास्यो ॥ ११ ॥ ब्राह्मण-दोहा ॥ यह सोवत हो पंथ में हौं भोजन को जात ॥ मैं अकुलाइ अगा-धमति याको कीन्हो घात ॥ १२ ॥ राम—स्वागता छन्द ॥ ब्रह्म ब्रह्म ऋषिराज बखानो। धर्म-कर्म बहुधा तुम जानो ॥ कौन दंड द्विज को द्विज दीजै। चित्त चेति कहिये सोइ कीजै ॥ १३ ॥

पुर कहे, आगे ॥७॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे ब्रह्म ऋषिराज, जो वेद बदै है ताके मत सों बखानौ कहौ ॥ १३ ॥

कश्यप— है अदंड्य भुवदेव सदाई। यत्र तत्र सुनिये रघुराई ॥ ईस सीख अब या कहँ दीजै। चूकहीन अरि कोउ न कीजै ॥ १४ ॥ राम—तोमर छन्द ॥ सुनि श्वान कहि तू दंड। हम देहिं याहि अखंड ॥ कहि बात तू डर डारि। जिय मध्य आपु बिचारि ॥ १५ ॥ श्वान—दोहा ॥ मेरो भायो करहु जो रामचन्द्र हित मंडि ॥ कीजै द्विज यहि मठपती और दंड सब छंडि ॥ १६ ॥ निशिपालिका छन्द ॥ पीत पहिराइ पट बाँधि

शिर सों पटी। बोरि अनुराग अरु जोरि बहुधा गटी॥ पूजि परि पायँ मठ ताहि तब हीं दियो। मत्त गजराज चढ़ि विप्र मठ को गयो॥ १७॥ दोहा॥ भयो रंक ते राज द्विज श्वान कीन करतार॥ भोगन लाग्यो भोग वै दुन्दुभि बाजत द्वार॥ १८॥ सुंदरी छन्द॥ बूझत लोग सभा महँ श्वानहि। जानत नाहिंन या परिमानहि॥ विप्रहि तैं जु दई पदवी वह। है यह निग्रह कै धौं अनुग्रह॥ १६॥ श्वान—दोधक छन्द॥ एक कनौज हुतो मठधारी। देव चतुर्भुज को अधिकारी॥ मंदिर कोउ वड़ो जब आवै॥ अंग भली रचनानि बनावै॥ २०॥ जा दिन केशव कोउ न आवै। ता दिन पालिक ते न उठावै॥ भेंटनि लै बहुधा धन कीनो। नित्य करै वहु भोग नवीनो॥ २१॥ एक दिना इक पाहुन आयो। भोजन तौ बहु भाँति बनायो॥ ताहि परोसन को पितु मेरो। बोलि लियो हित हौं सब केरो॥ २२॥ ताहि तहाँ बहु भाँति परोस्यो। केहू कहूँ नख माहँ रह्यो स्यो॥ ताहि परोसि जहीं घर आयो। रोवत हौं हँसि कंठ लगायो॥ २३॥ चामर छन्द॥ मोहिं मातु तप्त दूध भात भोज को दियो। बात सों सिराइ तात छीर अंगुली छियो॥ घ्यो द्रयो भख्यो गयो अनेक नर्क बास भो। हौं भ्रम्यो अनेक योनि औध आनि श्वान भो॥ २४॥ दोहा॥ वाको थोरो दोष में दीन्हो दंड अगाध॥ राम चराचर ईश तुम छमियो यह अपराध॥ २५॥ लोक करेउ अपवित्र वहि लोक नरक को बास॥ ह्वै जु कोऊ मठपती ताको पुन्यबिनास॥ २६॥

विना दोप काहू को घात न करै॥ १४॥ १५॥ १६॥ गज-रथ-अश्वादि की गढ़ी कहे समूह जोरि यत्न करिकै दियो, और मठ दियो। कृपा दुहूँ ओर लागति है। अथवा मठधारिन की गढ़ी में जोरि कहे मिलाइ

कै, कालंजर दुर्ग जो प्रसिद्ध है, ताको मठपति कियो । यह बाल्मीकीय रामायण में लिख्यो है। यथा—"कालंजरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम् । एतच्छ्रुत्वा तु रामेण कौलपत्येभिषेचितः" ॥ १७ ॥ १८ ॥ या जो मठपति है, ताके प्रमाण को नहीं जानत ॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥२६॥

रामायणे यथा—"ब्रह्मस्वं देवद्रव्यं च स्त्रीणां बालधनं च यत् ॥ दत्तं हरति यो मोहात्स पचेन्नरके ध्रुवम्" ॥ २७ ॥ स्कन्द-पुराणे यथा—"हरस्य चान्यदेवस्य केशवस्य विशेषतः ॥ मठपत्यं च यः कुर्य्यात्सर्वधर्म्मबहिष्कृतः" ॥ २८ ॥ पद्मपुराणे यथा—"पत्रं पुष्पं फलन्तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य च ॥ योऽश्नाति स पचेद्घोरान्नरकानेकविंशतिः" ॥ २९ ॥ देवीपुराणे यथा—"अभोज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ स्पृष्ट्वा मठपतिं विप्रं सवासा जलमाविशेत्" ॥ ३० ॥ दोहा ॥ औरौ एक कथा कहौं बिकल भूप की राम ॥ वहौ अयोध्या बसत है बंश-कार के धाम ॥ ३१ ॥ वसन्ततिलका छन्द ॥ राजा हुतो प्रबल दुष्ट अनेकहारी । बारानसी बिमल क्षेत्र निबासकारी ॥ सो सत्यकेतु यह नाम प्रसिद्ध सूरो । विद्याबिनोदरत धर्म-बिधान पूरो ॥ ३२ ॥

ब्रह्मस्व ब्राह्मण को द्रव्य, देवता को द्रव्य, स्त्री को द्रव्य, बालक को द्रव्य और आपनो दीन्हो जो द्रव्य है, इनको मोहवश ह्वै कै जो हरत है, सो प्राणी ध्रुव कहे निश्चय करि, नरके कहे नरक में पचेत् कहे पाकत है, अर्थात् जरत है, दुख पावत है इति । कहिबेको हेतु यह कि देवद्रव्यहारी मठपति है, सो नरक को प्राप्त होत है ॥ २७ ॥ जो प्राणी काहू देव को मठपति होइ, सो धर्मरहित ह्वै जात है, इत्यर्थः ॥ २८ ॥ अश्नाति कहे भोग करत है। घोर भयानक जे एकविंशति नरक हैं, तिनमें पाकत है ॥ २९ ॥ मठिन को अन्न अभोज्य है, खाइबे योग्य नहीं है । जो खाइये तो चान्द्रायण व्रत को करिये । और मठपति ब्राह्मण को स्पृष्ट्वा कहे छुइ कै, सवासा कहे वस्त्रसहित, जलं कहे जल में, आविशेत् कहे प्रवेश करिये । वस्त्रसहित

स्नान करि डारिये, इत्यर्थः ॥ ३० ॥ जो पाछे कह्यो हैं कि "गुन दोषन को जबै होइन दर्सी। तबहीं नृप होइ निरैपद पर्सी," सो बात पुष्ट करिबे के लिये सत्यकेतु की कथा कहत हैं। जो वंशकार कहे डोम के घर में विकल कष्टयुक्त बसत है, ता भूप की कथा कहत हौं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

धर्माधिकार पर एक द्विजाति कीन्हो। संकल्पद्रव्य बहुधा त्यहि चोरि लीन्हो ॥ बन्दीबिनोद गनिकादि बिलासकर्त्ता। पावै दसांस द्विज दान असेष हर्त्ता ॥ ३३ ॥ राजा बिदेस बहु साजि चमू गये हो। जूझ्यो तहाँ समर जोधन सों भये हो ॥ आये कराल किल दूत कलेसकारी। लीन्हे गये नृपति को जहँ दंडधारी ॥ ३४ ॥ धर्मराज—भुजंगप्रयात छन्द ॥ कहा भोगवैगो महाराज दू में। कि पापै कि पुन्यै कस्यो भूरि भू में ॥ राजा—सुनो देव मोको कछू सुद्धि नाहीं। कहौ आप ही पाप जो मोहिं माहीं ॥ ३५ ॥ धर्मराज—कियो तैं द्विजाती जु धर्माधिकारी। सु तो नित्य संकल्पबित्तापहारी ॥ दियो दुष्ट रंडानिमुंडानि लै लै। महापाप माथे तिहारे सु दै दै ॥ ३६ ॥

बन्दीजनन की जो विनोद कहे स्तुति है, तामें, और गणिकादिकन को अनेक विलास को कर्त्ता रह्यो। और जो दान द्रव्य राजा के इहाँ से कढ़त रह्यो हैं, तामें दशांश ब्राह्मण पावैं, और अशेष सम्पूर्ण को हर्त्ता आपु रह्यो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हुतो तैं सबै देश ही को नियंता। भले की बुरे की करी तैं न चिंता ॥ महासूक्ष्म है धर्म की बात देखो। जितो दान दीन्हो तितो पाप लेखो ॥ ३७ ॥ दोहा ॥ कालसर्प से समुझिये सबै राज के कर्म ॥ ता हू ते अति कठिन है नृपति दान को धर्म ॥ ३८ ॥ भुजंगप्रयात छन्द ॥ भयो कोटिधा नर्क सम्पर्क ताको। हुते दोष संसर्ग के शुद्ध जाको ॥ सबै पाप भे क्षीण भो मुक्त लेखी। रह्यो औध में आनि ह्वै कोलबेखी ॥ ३९ ॥

तारक छन्द ॥ तब बोलि उठो दरबारबिलासी। द्विज द्वार लसै यमुनातटबासी ॥ अति आदर सों ते सभा महँ बोल्यो। बहु पूजन कै मग को श्रम खोल्यो ॥ ४० ॥ राम–रूपमाला छन्द ॥ शुद्ध देश ये रावरे सु भये सबै यहि बार। ईशआगम संगमादिक ही अनेक प्रकार ॥ धाम पावन ह्वै गये पदपद्म को पय पाय। जन्म शुद्ध भये छुये कछु दृष्टि ही मुनिराय ॥ ४१ ॥

॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जाको जा शुद्ध राजा को केवल संसर्ग ही के दोष रहे, तासों नरक को संपर्क कहे संयोग भयो। यासों राजा को भले-बुरे की चिन्ता करिबो उचित है, इति भावार्थः। जब नरक-भोग सों सबै पाप क्षीण भये तब नरक ते मुक्त भयो, छूट्यो। तब अवध में कोल कहे चांडाल-भेद अथवा शूकर-रूपधारी रह्यो है ॥ ३९ ॥ दरबार जो बहिर्द्वार है, ताको विलासी द्वारपाल। खोल्यो, दूरि कर्यो ॥ ४० ॥ रामचन्द्र ब्राह्मणन सों कहत हैं कि हे ईश, रावरे आगम आइबे सों और संगम बैठिबे-पौढ़िबे आदि सों, तिन्हैं आदि जे और स्नान-भोजनादि हैं तिनसों, ये हमारे देश अनेक प्रकार सों शुद्ध भये। और तुम्हारे पदपद्म के छुये सों जन्म शुद्ध भये। और तुम्हारी दृष्टि सों कुल शुद्ध भये। अथवा आगम सों देश शुद्ध भये, संगम जो स्पर्श है त्यहि आदि दै, सो जन्मादि अनेक प्रकार सों शुद्ध भये। ते आगे कहत हैं ॥ ४१ ॥

पादपद्म प्रणाम ही भये शुद्ध सीरख हाथ। शुद्ध लोचन रूप देखत ही भये मुनिनाथ ॥ नासिका रसना बिसुद्ध भये सुगंध सु नाम। कर्ण कीजत शुद्ध शब्द सुनाय पीयुषधाम ॥ ४२ ॥ दोधक छन्द ॥ आये कहँ सोइ आयसु दीजै। आजु मनोरथ पूरन कीजै ॥ ब्राह्मण–जीवति सो सब राज्य तिहारी। निर्भय ह्वै भुवलोकबिहारी ॥ ४३ ॥ ऋषि–मरहट्टा छन्द ॥ तुम हौ सब लायक श्रीरघुनायक उपमा दीजै काहि। मुनिमानसरंता जगतनियंता आदि न अन्त न जाहि ॥ मारो लवणा-

सुर जैसे मधु, मुर मारे श्रीरघुनाथ। जग-जय-रस-भीने श्री-शिव दीने शूलहि लीने हाथ ॥ ४४ ॥ दोहा ॥ जाके मेलत शूल यह सुनिये त्रिभुवनराय। ताहि भस्म करि सर्बथा वाही के कर जाय ॥ ४५ ॥ दोधक छन्द ॥ देव सबै रण हारि गये जू। और जिते नरदेव भये जू ॥ श्रीभृगुनन्दन युद्ध न माँड्यो। श्रीशिव को गनि सेवक छाँड्यो ॥ ४६ ॥

॥ ४२ ॥ तुम्हारो जो सब राज्य है, अर्थात् राजवासी हैं, सो जीवति जीवन सों निर्भय ह्वै कै भुवलोक में विहारी कहे विहार करत हैं। अर्थात् तुम्हारे राजबासी को कहूँ भय नहीं है। तामें हमको जीवित की भय प्राप्त है, इति भावार्थः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

दोहा ॥ पादारघ हमको दियो मथुरामंडल आप। वासों बसन न पावहीं बिना बसे अतिपाप ॥ ४७ ॥ राम—रच्छ-हिं गे शत्रुघ्नसुत ऋषि तुमको सब काल। वासुदेव ह्वै रच्छिहौं हँसि कह दीनदयाल ॥ ४८ ॥ भुजंगप्रयात छन्द ॥ चलौ बेगि शत्रुघ्न ताको सँहारो। वहै देस तौ भावतो है हमारो ॥ सदा सुद्ध बृन्दाबनो भू भली है। तहाँ नित्य मेरी बिहारस्थली है ॥ ४९ ॥ यहै जानि भू मैं द्विजन्मान दीनी। बसै यत्र बृन्दा प्रिया प्रेमभीनी ॥ सनाढ्यान की भक्ति जो जीय जागै। महादेव को शूल ताके न लागै ॥ ५० ॥ बिदा ह्वै चले राम पै शत्रुहन्ता। चले साथ हाथी रथी युद्धरन्ता ॥ चतुर्द्धा चमू चारि हू ओर गाजैं। बजैं दुन्दुभी दीह दिग्देव लाजैं ॥ ५१ ॥ दोहा ॥ केशव बासर बारहैं रघुपति के सब वीर। लवणासुर के जमनि ज्यों मेले जमुनातीर ॥ ५२ ॥ मनोरमा छन्द ॥ लवणासुर आइ गयो यमुनातट। अवलोकि हँस्यो रघुनन्दन के भट ॥ धनु बाण लिये निकसे रघुनन्दनु। मद के गज को सुत केहरि को

जनु ॥ ५३ ॥ लवणासुर—भुजंगप्रयात छन्द ॥ सुन्यो तैं नहीं जो इहाँ भूलि आयो। बड़ो भाग मेरो बड़ो भक्ष्य पायो ॥ शत्रुघ्न—महाराज श्रीराम हैं क्रुद्ध तोसों। तजौ देश को कै सजौ जुद्ध मो सों ॥ ५४ ॥

पाप कष्ट, अथवा पातक ॥ ४७ ॥ वासुदेव, कृष्ण ॥ ४८ ॥ वृन्दा, तुलसी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लवणासुर के यमनि कहे यमराजन के सम ॥ ५२ ॥ मद के गज को कहे मदयुक्त गज को ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

लवणासुर—वहै राम राजा दशग्रीवहन्ता। सु तो बन्धु मेरो सुरस्त्रीन रन्ता ॥ हतौ तोहिं वाको करौं चित्तभायो। महादेव की सौं बड़ो भक्ष्य पायो ॥ ५५ ॥ भये क्रुद्ध दोऊ दुवौ युद्धरन्ता। दुवौ अस्त्रशस्त्रप्रयोगी निहन्ता ॥ बली बिक्रमी धीर शोभाप्रकाशी। नस्यो हर्ष दोऊ सबर्षै बिनाशी ॥ ५६ ॥ शत्रुघ्न—दोहा ॥ लवणासुर शिव-शूल बिन और न लागै मोहिं। शूल लिये बिन भूलि हू हौं न मारिहौं तोहिं ॥ ५७ ॥

रन्ता, भोगी। सरस्वती-उक्तार्थ—सुरस्त्रीनरन्ता कहि या जनायो जो रावण इन्द्र हू को जीति देवांगनन को लै आयो, ताहू को रामचन्द्र मार्‍यो, तो अतिबली हैं। तिनके तुम बन्धु ही हौ, तो कहे तौ ही कहे निश्चय करि हमको हतौ मारौ। वाको रामचंद्र को चित्तभायो करो। महादेव की सौंह है, जो तू रामचन्द्र को बन्धु ही है तो बड़ो भक्ष्य कहे मेरे जे भक्ष्य या ठौर के वासी हैं तिनको पालनहार तू आयो है ॥ ५५ ॥ प्रयोगी कहे चलावनहार। सबर्षै कहे बाण-वर्षासहित जे दोऊ विनाशी कहे परस्पर हन्ता हैं, तिनको हर्ष नशि गयो है, अर्थात् विकल हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

मोटनक छन्द ॥ लीन्हो लवणासुर सूल जहीं। मारेउ रघुनन्दन बाण तहीं ॥ काट्यो सिर सूलसमेत गयो। सूलीकर सुःख त्रिलोक भयो ॥ ५८ ॥ बाजे दिबि दुन्दुभि दीह तबै। आये सुर इन्द्रसमेत सबै ॥ देव—कीन्हो बहु बिक्रम या रन में। माँगो

बरदान रुचै मन में ॥ ५९ ॥ शत्रुघ्न–प्रमाणिका छन्द ॥ सनाढ्यबृत्ति जो हरै। सदा समूल सो जरै॥ अकालमृत्यु सों मरै। अनेक नर्क सो परै॥ ६० ॥ सनाढ्य जाति सर्वदा। यथा पुनीत नर्मदा ॥ भजैं सजैं जे संपदा। बिरुद्ध ते असंपदा ॥ ६१ ॥ दोहा ॥ मथुरामण्डल मधुपुरी केशव स्वबस बसाइ। देखे तब शत्रुघ्नजू रामचन्द्र के पाइ ॥ ६२ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीराम-
चन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां लवणासुरवध-
वर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३४ ॥

॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ कहिबे को हेतु यह कि ऐसे जे सनाढ्य हैं, तिनकी भक्ति हमको वर दीजै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-
निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां चतुस्त्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३४ ॥

दोहा ॥ पैंतीसयें प्रकाश में अश्वमेध किय राम। मोहन लव शत्रुघ्न को ह्वै है संगरधाम ॥ १ ॥ बिश्वामित्र बशिष्ठ सों एकसमय रघुनाथ। आरंभो केशव करन अश्वमेध की गाथ॥२॥ राम–चामर छन्द ॥ मैथिलीसमेत तौ अनेक दान मैं दियो। राजसूय आदि दै अनेक यज्ञ मैं कियो॥ सीय-त्याग-पाप ते हिये सु हौं महा डरौं। और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं ॥३॥

सङ्गरधाम कहे समरभूमि में ॥ १ ॥ २ ॥ सो ताके त्याग-पाप के मोच-नार्थ विना जानकी एक अश्वमेध करत हौं, इत्यर्थः ॥ ३ ॥

कश्यप–दोहा ॥ धर्म-कर्म कछु कीजई सफल तरुणि के साथ। ता बिन जो कछु कीजई निष्फल सोई नाथ ॥ ४ ॥ तोटकछन्द ॥ करिये युत भूषण रूपरई। मिथिलेशसुता इक स्वर्ण-मई ॥ ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये। शुचि सों सब यज्ञ-

बिधान किये ॥ ५ ॥ हयशालन ते हय छोरि लियो। शशिबर्ण सु केशव शोभरयो ॥ श्रुति-श्यामल एक बिराजत हैं । अलि स्यो सरसीरुह लाजत है ॥ ६ ॥ रूपमाला छन्द ॥ पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत पट्ट बाँधिय भाल । भूषि भूषण शत्रुदूषण छाँड़ियो तेहि काल ॥ संग लै चतुरंग सेनहि शत्रुहन्ता साथ। भाँतिभाँतिन मान दै पठये सु श्रीरघुनाथ ॥ ७ ॥ जात है जित बाजि केशव जात हैं तित लोग । बोलि बिप्रन दान दीजत जत्र-तत्र सभोग ॥ बेनु बीन मृदंग बाजत दुन्दुभी बहु भेव। भाँति भाँतिन होत मंगल देव-से नरदेव ॥ ८ ॥ कमल छन्द ॥ राघव की चतुरंग-चमू-चय को गनै केशव राजसमाजनि । शूर तुरंगन के उरझैं पग तुंग पताकन की पटसाजनि ॥ टूटि परैं तिनते मुकता धरनी उपमा बरनी कबिराजनि । बिंदु किधौं मुख फेनन के किधौं राजसिरी स्रवै मंगललाजनि ॥ ९ ॥

॥ ४ ॥ शुचि सों, पवित्रता सों ॥ ५ ॥ इहाँ श्वेत कमल जानो ॥ ६ ॥ शत्रुदूषण, रामचन्द्र ॥ ७ ॥ सभोग कहे अनेक भोग्य वस्तु सहित ॥ ८ ॥ समाज, समूह । स्रवै कहे वरसति है । राजन के प्रयाण में पुरस्त्री लाजनि कहे लावा मंगलार्थ बरसावति हैं, यह प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥

राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जल हू थल छाई। मानों प्रताप-हुतासन-धूम सो केशवदास अकास न माई ॥ मेटि कि पंच प्रभूत किधौं बिधु रेनुमयी नव रीति चलाई। दुःखनिबेदन को भवभार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई ॥ १० ॥ दण्डक ॥ नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि सोखि सोखि जल भूरि भूरि थल गाथ की । केसौदास आसपास ठौर ठौर राखि जन तिनकी संपति सब आपने ही हाथ की ॥ उन्नत नवाइ नत उन्नत बनाइ भूप शत्रुन को जीविका तिमित्रन के

हाथ की। मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै आई दिसि दिसि जीति सेना रघुनाथ की॥ ११॥

पंचप्रभूत, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश॥ १०॥ नाद, कोलाहल। नदी-तड़ाग आदिकन को भूरि जल सोखिकै। और भूरि जल ही की थल में गाथ प्रसिद्धता कस्यो। अर्थात् चमू के चरण सों चपि मेघादिकन को जल सोखि गयो और थल दबत भये, तासों पाताल सों जल कढ़ि आयो। ठौर-ठौर कहे देश-देश में जन कहे आमिल राखि कै तिन देशन की संपत्ति आपने हाथ कहे काबू में कीन्हो। अर्थात् तिन देशन में अमल कियो। तिन देशन के जे उन्नत कहे बड़े भूप रहैं, तिन्हैं नवाइ दियो, जासों समय पाय विरुद्ध होइबे लायक न रहैं। और नत कहे छोटे जे भूप रहैं, तिन्हैं उन्नत बनायो, जासों तावेदार वने रहैं। शत्रु राजन की जीविका राज्य अतिमित्र जे राजा हैं तिन्हैं सौंपि दियो। और सातों समुद्रन सों मुद्रित चिह्नित जो पृथ्वी है, अर्थात् सप्तसमुद्रपर्यंत पृथ्वी, तामें आपनी मुद्रा जो मोहर है ताको मुद्रित कै कहे छापि कै, अर्थात् राज-सिका चलाइ कै रामचन्द्र की विजयी सेना आई॥ ११॥

दोहा॥ दिसि-बिदिसनि अवगाहि कै सुख ही केशवदास। बालमीकि के आश्रमहि गयो तुरंग प्रकास॥ १२॥ दोधक छन्द॥ दूरि हि ते मुनिबालक धाये। पूजित बाजि बिलोकन आये॥ भाल को पट्ट जहाँ लव बाँच्यो। बाँधि तुरंगम जै-रस राच्यो॥ १३॥ श्लोक॥ "एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः॥ तेन रामेण मुक्तोसौ वाजी गृह्णात्विमम्बली"॥ १४॥ दोधक छन्द॥ घोर चमू चहुँ ओर ते गाजी। कौनेहि रे यह बाँधिय बाजी॥ बोलि उठे लव मैं यह बाध्यो। यों कहि कै धनुसायक साध्यो॥ मारि भगाइ दिये सिगरे यों। मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यों॥ १५॥

अवगाहि, मँझाइ कै॥ १२॥ १३॥ एको वीरः पतिर्यस्याः सा एकवीरा। अर्थात् भूमंडल में जेते प्रसिद्ध वीर हैं, तिनके मध्य में एकवीर

मुख्यवीर, अर्थ यह कि सबसों अधिक वीर हैं पति जाको । और फेरि कैसी हैं कौशल्या, कोशलाधिप की कन्या हैं । तिनके पुत्र रघूद्वह कहे रघुवंश के राज्यादि भार के धारणकर्त्ता । रामचन्द्र हैं इति शेषः । इन तीनों पदन सों एकवीरात्मजत्व, सुकुलजात्मजत्व, और राज्याभिषिक्तत्व जनायो । तेन रामेण कहे तिन राम करि कै असौ कहे यह बाजी मुक्तः कहे छोड़्यो गयो है । जो बली होय सो इमं कहे याको गृह्णातु कहे ग्रहण करै । अथवा बाँधै ॥ १४ ॥ १५ ॥

धीर छन्द ॥ जोधा भगे बीर शत्रुघ्न आये । कोदंड लीन्हे महा रोष छाये ॥ ठाढ़े तहाँ एक बालै बिलोक्यो । रोक्यो तहीं जोर नाराच मोक्यो ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न—सुन्दरी छन्द ॥ बालक छाँड़ि दे छाँड़ि तुरंगम । तोसों कहा करौं संगर-संगम ॥ ऊपर बीर हिये करुणारस । बीरहि बिप्र हते न कहूँ जस ॥ १७ ॥ लव—तारक छन्द ॥ कछु बात बड़ी न कहौ मुख थोरे । लव सों न जुरौ लवणासुर-भोरे ॥ द्विजदोषन ही बल ताको सँहास्यो । मरिही जु रह्यो सु कहा तुम मास्यो ॥ १८ ॥ चामर छन्द ॥ रामबन्धु बान तीनि छोड़िये त्रिसूल-से । भाल में बिशाल ताहि लागियो ते फूल-से ॥ लव—घात कीन राजतात गात तैं कि पूजियो । कौन शत्रु तैं हत्यो जु नाम शत्रुहा लियो ॥ १९ ॥

मोक्यो कहे छोड़ि ही से चुके रहैं, ता नाराच को रोंक्यो ॥ १६—१९ ॥

निशिपालिका छन्द ॥ रोष करि बाण बहु भाँति लव खंडियो । एक ध्वज सूत जुग तीनि रथ खंडियो ॥ शस्त्र दशरत्थ-सुत अस्त्र कर जो धरै । ताहि सियपुत्र तिलतूल सम खंडरै ॥ २० ॥ तारक छन्द ॥ रिपुहा कर बाण वहै करि लीन्हो । लवणासुर को रघुनन्दन दीन्हो ॥ लव के उर में उरझ्यो वह पत्री । मुरझाइ गिस्यो धरणी महँ क्षत्री ॥ २१ ॥ मोटनक छन्द ॥ मोहे

लव भूमि परे जबहीं। जयदुन्दुभि बाजि उठे तबहीं॥ भुव ते रथ ऊपर आनि धरे। शत्रुघ्न सु यों करुनानि भरे॥ २२॥ घोड़ो तबहीं तिन छोरि लयो। शत्रुघ्नहि आनँद चित्त भयो॥ लै कै लव को ते चले जबहीं। सीता पहँ बाल गये तबहीं॥ २३॥ बालक–झूलना छन्द॥ सुनु मैथिली नृप एक को लव बाँधियो बर बाजि। चतुरंग सेन भगाइ कै तब जीतियो वह आजि॥ उर लागिगो शर एक को भुव में गिर्‌यो मुरझाइ। वह बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुंदुभीन बजाइ॥ २४॥ दोहा॥ सीता गीता पुत्र को सुनि-सुनि भई अचेत। मनों चित्र की पुत्रिका मन-क्रम-बचन-समेत॥ २५॥ सीता–झूलना छन्द॥ रिपुहाथ श्रीरघुनाथ के सुत क्यों परे करतार। पति-देवता सब काल जो लव जो मिलै यहि बार॥ ऋषि हैं नहीं कुश है नहीं लव लेइ कौन छड़ाइ। बन माँझ टेर सुनी जहीं कुश आइयो अकुलाइ॥ २६॥

एक बाण सों ध्वजा खण्ड्यो, और द्वै बाण सों सूत सारथी खण्ड्यो, और तीन बाण सों रथ खण्ड्यो। तिल और तूल रुई सम खण्डरै कहे खण्डन करत है॥ २०॥ पत्री, बाण॥ २१॥ २२॥ २३॥ २४॥ २५॥ २६॥

कुश–दोहा॥ रिपुहि मारि संहारि दल यम ते लेउँ छँड़ाइ। लव हि मिलैहौं देखि हौं माता तेरे पाँइ॥ २७॥ सवैया॥ गाहियो सिंधु सरोवर-सो जेहि बालि बली बर सो-बर पेर्‌यो। ढाहि दिये शिर रावण के गिरि-से गुरु जा तन जात न हेर्‌यो॥ सूल समूल उखारि लियो लवणासुर पीछे ते आइ सो टेर्‌यो। राघव को दल मत्त करी सुरअंकुश दै कुश कै सब फेर्‌यो॥ २८॥ दोहा॥ कुश की टेर सुनी जहीं फूलि फिरे शत्रुघ्न। दीप

अवग॥
एकवीरा। पतंग ज्यों जदपि भयो बहु विघ्न॥ २९॥ मनोरमा

छन्द ॥ रघुनन्दन को अवलोकत ही कुश । उर माँझ हयो शर शुद्ध निरंकुश ॥ ते गिरे रथ ऊपर लागत ही शर । गिरि ऊपर ज्यों गजराज-कलेवर ॥ ३० ॥ सुन्दरी छन्द ॥ जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन । भाजि गये तबहीं भट के गन ॥ काढ़ि लियो जबहीं लव को शर । कंठ लग्यो तबहीं उठि सोदर ॥ ३१ ॥ दोहा ॥ मिले जु कुश-लव कुशल सों बाजि बाँधि तरुमूल । रण-महि ठाढ़े सोभिजैं पशुपति गणपति तूल ॥ ३२ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां शत्रुघ्नसम्मोहो नाम पञ्चत्रिंशः प्रकाशः ॥ ३५ ॥

यम ते लेउँ छड़ाइ कहि या जनायो कि जो मर्यो है है तो यमपुर ते फेरि ल्याइ हौं ॥ २७ ॥ मत्त करि-सम कह्यो, सो मत्त करी को कृत राघवदल में स्थापित करत हैं । गाहियो, मँझाइयो । वालि बली को जो वर वल है ताहि वर कहे वट-वृक्ष सो पेर्यो कहे मर्देव । और शूलरूपी जो मूल जर रह्यो त्यहि सहित लवणासुर को, वृक्ष सो इति शेषः, उखारि लीन्हो । जैसे वृक्ष मूल के आधार सों सबल रहत है, तैसे शूल सों लवणासुर सबल रह्यो, तासों मूल-सम कह्यो ॥ २८ ॥ पतंग, पाँखी ॥ २९ ॥ निरंकुश, निर्भय । कलेवर, देह ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां पञ्चत्रिंशः प्रकाशः ॥ ३५ ॥

दोहा ॥ छत्तीसयें प्रकाश में लक्ष्मण-मोहन जानि । आयसु लहि श्रीराम को आगम भरत बखानि ॥ १ ॥ रूपमाला छन्द ॥ यज्ञमंडल में हुते रघुनाथ जू तेहि काल । चर्म अंग कुरंग को सुभ स्वर्णकी सँग बाल ॥ आसपास ऋषीस सोभित सूर सोदर साथ । आइ भग्गुल लोग बरनी

युद्ध की सब गाथं ॥ २ ॥ भग्गुल—स्वागता छन्द ॥ बालमीकि-थल बाजि गयो जू । विप्रबालकन घेरि लयो जू ॥ एक बाँचि पट घोटक बाध्यो । दौरि दीह धनु सायक साध्यो ॥ ३ ॥ भाँति-भाँति सब सेन सँहास्यो । आपु हाथ जनु ईस सँवास्यो ॥ अस्त्र-शस्त्र तव वन्धु जु धास्यो । खंड-खंड करि ता कहँ डास्यो ॥ ४ ॥ रोषवेष वह बाण लयोजू । इन्द्रजीत लगि आपु दयो जू ॥ कालरूप उर माँह हयो जू । वीर मूर्च्छि तब भूमि भयो जू ॥ ५ ॥ तोमर छन्द ॥ बहु बीर लै अरु बाजि । जबहीं चल्यो दल साजि ॥ तब और बालक आनि । मग रोकियो तजि कानि ॥ ६ ॥ तेहि मारियो तव वन्धु । तब है गयो सब अन्धु ॥ वह बाजि लै अरु वीर । रण में रह्यो रुपि धीर ॥ ७ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ घोटक, घोड़ो ॥ ३ ॥ ४ ॥ पैंतीसयें प्रकाश में कह्यो है कि "रिपुहा कर बाण वहै करि लीन्हो । लवणासुर को रघुनन्दन दीन्हो" और इहाँ कह्यो है कि "इंद्रजीत लागि आप दयोजू ।" तहाँ या जानौ कि वहै बाण इंद्रजीत के मारिबे को लक्ष्मण को दियो रहै, और वहै लवणासुर के मारिबे को शत्रुघ्नहू को दियो रहै । अथवा इंद्रजीत लवणासुर ही को नाम जानौ । इंद्र को लवणासुरहू जीत्यो है, सो चौंतीसयें प्रकाश में कह्यो है कि "देव सबै रण हारि गयेजू ।" भूमि भयो कहे भूमि में पस्यो । कानि, मर्यादा ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

दोहा ॥ बुधि बल विक्रम रूप गुण शील तुम्हारे राम ॥ काकपक्षधर बाल द्वै जीते सब संग्राम ॥ ८ ॥ राम—चतुष्पदी छन्द ॥ गुणगणप्रतिपालक रिपुकुलघालक बालक ते रणरन्ता । दशरथ नृप को सुत मेरो सोदर लवणासुर को हन्ता ॥ कोऊ द्वै मुनिसुत काकपक्षयुत सुनियत है जिन मारे । यहि जगतजाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे ॥ ९ ॥

काकपक्ष, ज़ुलुफ ॥ ८ ॥ बालकते बालअवस्था ही सों रणरन्ता कहे

रण में रमत रह्यो है । यह जो जगत्-जाल कहे संसार-समूह है, अथवा जगत रूपी जाल फाँस है, और काल कहे समय है, तिनके जे कुटिल कहे टेढ़े कर्म हैं, ते भारे कहे अतिभयानक हैं । या जगत् में समय के फेर सों ऐसी अनुचित बात ह्वै जाति है, जाको देखि कै बड़ो भय होत है, इत्यर्थः ॥ ९ ॥

मरहट्टा छन्द ॥ लक्ष्मण शुभ-लक्षण बुद्धिबिचक्षण लेहु बाजि कर शोधु । मुनि-शिशु जनि मारहु बन्धु उधारहु क्रोध न करहु प्रबोधु ॥ बहु सहित दक्षिणा दै प्रदक्षिणा चल्यो परम रणधीर । देख्यो मुनिबालक सोदर उपज्यो करुणा अद्भुत बीर ॥ १० ॥ कुश–दोधक छन्द ॥ लक्ष्मण को दल दीरघ देख्यो । काल हु ते अति भीम बिसेख्यो ॥ द्वै में कहौ सु कहा लव कीजै । आयुध लेहौ कि घोटक दीजै ॥ ११ ॥

प्रबोध, क्षमा । मुनिबालकन को लघु वेष देखि करुणा रस भयो, और सोदर शत्रुघ्न को मूर्च्छित देखि आश्चर्य भयो कि एतो बड़ो वीर ताको बालकन मूर्च्छित कर्‍यो । शत्रुघ्न को मूर्च्छित कर्‍यो है, तासों इनको मारो चाहिये, या सों वीर-रस भयो ॥ १० ॥ ११ ॥

लव–बूझत हौ तौ यहै प्रभु कीजै । मो असु दै बरु अश्व न दीजै ॥ लक्ष्मण को दल सिन्धु निहारो । ता कहँ बाण अगस्त्य तिहारो ॥ १२ ॥ कौन यहै घटि है अरि घेरे । नाहिंन हाथ सरासन मेरे ॥ नेकु जहीं दुचितो चित कीन्हो । सूर बड़ो इषुधी धनु दीन्हो ॥ १३ ॥ लै धनु-बाण बली तब धायो । पल्लव ज्यों दल मारि उड़ायो ॥ यों दोउ सोदर सेन सँहारैं । ज्यों बन पावक पौन बिहारैं ॥ १४ ॥ भागत हैं भट यों लव आगे । राम के नाम ते ज्यों अघ भागे ॥ यूथप-यूथ यों मारि भगायो । बात बढ़े जनु मेघ उड़ायो ॥ १५ ॥ सवैया ॥ अति रोष रसे कुश केशव श्रीरघुनायक सों रणरीति रचै । त्यहि बार न बार भई बहु बारन खड्ग हनै न गनै बिरचै ॥ तहँ कुंभ फटैं

गजमोती कटैं ते चले बहु शोणित रोचि रचै । परिपूरन पूर पनारन ते जनु पीक कपूरन की किरचै ॥ १६ ॥

बूझत कहे पूछत । असु, प्राण ॥ १२ ॥ कौन कहे कहा अरि के घेरे में याही बात ना घटि है कि हमारे हाथ में शरासन धनुष नहीं है । या प्रकार कहत लव नेक चित्त को दुचित्तो कस्यो, अर्थात् युद्ध हू को विचार विचारत रहे, और सूर्य की स्तुति हू में चित्त को लायो । तब सूर कहे सूर्य बड़ो इषुधी तर्कस और धनुष दीन्हो । यथा जैमिनिपुराणे—"जैमिनिरुवाच । स्तोत्रेणानेन संतुष्टो रविर्दिव्यं शरासनम् ॥ ददौ लवाय सौरं च जयति श्रेयमुत्तमम् ॥१॥ सुवर्णपट्टैरुचिरैर्निबद्धं सगुणं दृढम् ॥ धनुः प्राप्य महाबाहुर्लवः कुशमथाब्रवीत् ॥ २ ॥ उपदिष्टं हि यत्स्तोत्रं मुनिना करुणात्मना ॥ सौरं तज्जपितं भ्रातस्तस्माल्लब्धं मया धनुः" ॥१३॥१४॥ रसे कहे युक्त । तेहि बार कहे समय में बार कहे बेर ना भई । अर्थात् थोरि ही बेर में बहुत वारण जे हाथी हैं, तिनको खड्ग तरवारि सों हनत हैं । और काहू को गनत नहीं हैं । और बिरचै कहे बिरुझात हैं । पीक के पूर कहे धार सम रुधिर है । कपूर-किरच सम मोती हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

नाराचछन्द ॥ भगे चये चमू चमूप छोड़ि छोड़ि लछ्मनै । भगे रथी महारथी गयन्द बृन्द को गनै ॥ कुसै लवै निरंकुसै बिलोकि बंधु राम को । उठ्यो रिसाइ कै बली बँध्यो सु लाज-दाम को ॥ १७ ॥ कुश—मौक्तिकदामछन्द ॥ न हौं मकराक्ष न हौं इँद्रजीत । बिलोकि तुम्हैं रन होहुँ न भीत ॥ सदा तुम लक्ष्मण उत्तमगाथ । करौ जनि आपनि मातु अनाथ ॥ १८ ॥ लक्ष्मण—कहौ कुश जो कहि आवति बात । बिलोकतहौं उपबीतहि गात ॥ इते पर बाल वहिक्रम जानि । हिये करुणा उपजै अति आनि ॥ १९ ॥ बिलोचन लोचत हैं लखि तोहिं । तजौ हठ आनि भजौ किन मोहिं ॥ छम्यो अपराध अजौं घर जाहु । हिये उपजाउ न मातहि दाहु ॥ २० ॥ दोधक छन्द ॥ हौं हतिहौं कबहूँ

नहिं तोहीं । तू बरु बाणन बेधहि मोहीं ॥ बालक बिप्र कहा हनिये जू । लोक अलोकन में गनिये जू ॥ २१ ॥

महारथी यथा—"एको दशसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् ॥ शस्त्रशास्त्र-प्रवीणश्च स महारथ उच्यते" ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ हमारे लोचन तुम्हारे देखिवे को लोचत कहे चाहत हैं । भजौं, मिलौं ॥ २० ॥ २१ ॥

कुश—हरिणी छन्द ॥ लक्ष्मण हाथ हथ्यार धरौ । यज्ञ बृथा प्रभु को न करौ ॥ हौं हय को कबहूँ न तजौं । पट्ट लिख्यो सोइ बाँचि लजौं ॥ २२ ॥ स्वागता छन्द ॥ बाण एक तब लक्ष्मण छंड्यो । चर्म बर्म बहुधा तिन खंड्यो ॥ ताहि हीन कुश चित्त हि मोहै । धूमभिन्न जनु पावक सोहै ॥ २३ ॥ रोषबेष कुश बाण चलायो । पौनचक्र जिमि चित्त भ्रमायो ॥ मोह मोहि रथ ऊपर सोये । ताहि देखि जड़ जंगम रोये ॥ २४ ॥ नाराच छन्द ॥ बिराम राम जानि कै भरत्थ सों कथा कहैं । बिचारि चित्त माँझ बीर बीर वे कहाँ रहैं ॥ सरोष देखि लक्ष्मणै त्रिलोक तौ बिलुप्त है । अदेव देवता त्रसैं कहा ते बाल दीन है ॥ २५ ॥ राम—रूपमाला छन्द ॥ जाहु सत्वर दूत लक्ष्मण हैं जहाँ यहि बार । जाइ कै यह बात बर्नहु रच्छियो मुनि-बार ॥ हैं समर्थ सनाथ वे असमर्थ और अनाथ । देखिबे कहँ ल्याइयो मुनिबाल उत्तमगाथ ॥ २६ ॥ सुन्दरी छन्द ॥ भग्गुल आइ गये तबहीं बहु । बार पुकारत आरत रच्छहु ॥ वेबहुभाँतिन सेन सँहारत । लक्ष्मण तो तिनको नहिं मारत ॥ २७ ॥ बालक जानि तजैं करुणा करि । वे अति ढीठ भये दल संहरि ॥ केहुँ न भाजत गाजत हैं रण । बीर अनाथ भये बिन लक्ष्मण ॥ २८ ॥ जानहु जे उनको मुनि-बालक । वे कोउ हैं जगतीप्रतिपालक ॥ हैं कोउ रावण के कि सहायक । कै लवणासुर के हित लायक ॥ २९ ॥

या छन्द को सारवती हू कहत हैं ॥ २२ ॥ तिनको कुश को धूससम चर्म-वर्म खण्डित ह्वै गयो । क्रोध और प्रताप सों अग्निसम कुश के अंग शोभित हैं ॥ २३ ॥ पवनचक्र, वौंड़र ॥ २४ ॥ विराम, वेर । त्रैलोक्य के अदेव दैत्य और देवता विलुप्त ह्वै कहे लुकि कै त्रसैं कहे डरात हैं । अर्थात् लुकि हू रहत हैं, ताहू पै भय नहीं मिटत । यासों अतिभय जानौ ॥ २५ ॥ २६ ॥ वार कहे वारवार ॥ २७ ॥ २८ ॥ जै कहे जनि । जगती-प्रतिपालक, ईश्वर अथवा राजा । सहायक कहे वली ॥ २९ ॥

भरत–बालक रावण के न सहायक । ना लवणासुर के हित लायक ॥ हैं निजपातक-वृक्षन के फल । मोहत हैं रघुवंशिन के बल ॥ ३० ॥ जीतहि को रण माँझ रिपुघ्नहि । को करै लक्ष्मण के बल विघ्नहि ॥ लक्ष्मण सीय तजी जब ते बन । लोक-अलोकन पूरि रहे तन ॥ ३१ ॥ छोड़ोइ चाहत ते तब ते तन । पाइ निमित्त कस्यो मन पावन ॥ शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर-लाजनि । पूत भये तजि पापसमाजनि ॥ ३२ ॥ दोधक छन्द ॥ पातक कौन तजी तुम सीता । पावन होत सुने जग गीता ॥ दोषबिहीन हि दोष लगावै । सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥ ३३ ॥ हमहूँ तिहि तीरथ जाइ मरैंगे । सतसंगति दोष अशेष हरैंगे ॥ बानर राक्षस ऋक्ष तिहारे । गर्व चढ़े रघुबंशहि मारे ॥ ता लगि कै यह बात बिचारी । हौ प्रभु संतत गर्वप्रहारी ॥ ३४ ॥ चंचरी छन्द ॥ क्रोध कै अति भरत अंगद संग संगर को चले । जामवन्त चले बिभीषण और बीर भले-भले ॥ को गनै चतुरंग सेनहि रोदसी नृपता भरी । जाइ कै अवलोकियो रण में गिरे गिरि से करी ॥ ३५ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां भरतसमागमोनाम षट्त्रिंशः प्रकाशः ॥ ३६ ॥

मोहत कहे मूर्च्छित करत हैं, अर्थात् संज्ञाहीन करत हैं ॥ ३० ॥ लोक में घातन करिकै अपलोकन दोषन सों पूरि रहे हैं ॥ ३१ ॥ जब ते अलोक प्राप्त भयो, तब ते ता अलोक के मिटिवे के लिये तन को छोड़ोई चहत रहे, सो युद्धरूपी निमित्त कारण पाइ कै तन को छोड़ि मन को पावन कर्‍यो। शत्रुघ्न के बन्धु लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ि आये, या विधि लोकापवादलाजन सों शत्रुघ्न हू तन को छोड़्यो। पूत, पवित्र। छन्द उपजाति है ॥ ३२ ॥ पातक कौन एतो, यह भरत सों रामचन्द्र को प्रश्न है ॥ ३३॥ तेहिं तीर्थ, अर्थात् युद्ध-तीर्थ में। छन्द उपजाति गाथा है ॥ ३४॥ संगर, युद्ध। रोदसी कहे भू-आकाश। नृपता कहे नृपसमूहन सों भरी। "द्यावाभूमी च रोदसी" इत्यमरः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां षट्त्रिंशः प्रकाशः ॥ ३६ ॥

दोहा ॥ सैंतीसयें प्रकाश में लव कटु बैन बखान ॥ मोहन बहुरि भरत्त को लागे मोहन बान ॥ १ ॥ रूपमाला छन्द ॥ जामवंत बिलोकि कै रण भीम भू हनुमंत। शोण की सरिता बही सु अनंतरूप दुरंत ॥ यत्रतत्र ध्वजापताका दीह देहनि भूप। टूटि-टूटि परे मनों बहु बात बृक्ष अनूप ॥ २ ॥ पुंज कुंजर सुभ्र स्यंदन सोभिजै सुठि सूर। ठेलि-ठेलि चले गिरीसनि पेलि सोनित-पूर ॥ ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म बिशाल। चक्र से रथचक्र पैरत गृद्ध बृद्ध मराल ॥ ३ ॥ केकरे कर बाहु मीन गयंद-शुंड भुजंग। चीर चौंर सुदेश के शशिबाल जानि सुरंग ॥ बालका बहु भाँति हैं मणिमाल-जाल प्रकास। पैरि पार भये ते द्वै मुनिबाल केशवदास ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ जामवंत और हनुमंत। दुरंत कहे दुःख करि कै पाइयत है अंत पार जिनको, अर्थात् अति बड़ी, और अनंत कहे अनेक, शोण रुधिर की सरिता वही हैं जामें, ऐसी जो रण की भीम भयानक भू है, ताको वि-लोक्यो। बड़े पताका ध्वजा कहावत हैं, छोटे पताका कहावत हैं ॥ २ ॥ सुठि शूर, अर्थात् अतिशूर जे सन्मुख घाव सहि मरे हैं। ठेलि कहे टारि।

पेलि कहे दबाइ कै । जैसे शिलान को टारि नदिन को पूर प्रवाह चलत है, तैसे इहाँ पर्वतसम जे गज रथ हैं, तिनको टारि कै, शोणित के पूर चले । यासों अतिगंभीरता और अति वेग जनायो । नदी-तीर हू गृध्र रहत हैं, इहाँऊ हैं । और श्वेत ह्वै रहे हैं अंगलोम जिनके, ऐसे जे बृद्ध प्राणी हैं तेई हंस हैं ॥ ३ ॥ केकरे, गेंगटा । भुजंग, सर्प ॥ ४ ॥

दोहा ॥ नामबरन लघु बेष लघु कहत रीझि हनुमन्त ॥ इतो बड़ो बिक्रम कियो जीते युद्ध अनन्त ॥ ५ ॥ भरत–तारक छन्द ॥ हनुमन्त दुरन्त नदी अब नाखौ । रघुनाथसहोदर जी अभिलाखौ ॥ तब जो तुम सिंधुहि नाँघि गये जू । अब नाँघहु काहे न भीत भये जू ॥ ६ ॥ हनुमान्–दोहा ॥ सीतापद सम्मुख हुते गयों सिंधु के पार ॥ बिमुख भये क्यों जाहुँ तरि सुनो भरत यहि बार ॥ ७ ॥ तारक छन्द ॥ धनु-बाण लिये मुनि-बालक आये । जनु मन्मथ के जुग रूप सुहाये ॥ करिवे कहँ शूरन के मद हीने । रघुनायक मानहुँ द्वै बपु कीने ॥ ८ ॥ भरत ॥ मुनिबालक हौ तुम यज्ञ कराओ । सु किधौं बरबाजिहि बाँधन धाओ ॥ अपराध छमौ सब आशिष दीजै । बर बाजि तजो जिय रोष न कीजै ॥ ९ ॥ दोहा ॥ बाँध्यो पट्ट जु सीस यह छत्रिन काज प्रकास ॥ रोष कस्यो बिन काज तुम हम बिप्रन के दास ॥ १० ॥

वर्ण कहे नाम के अक्षर ॥ ५ ॥ रघुनाथ-सहोदर जे शत्रुघ्न और लक्ष्मण हैं, तिनको जी में अभिलाषौ, अर्थात् या नदी नाँघि लक्ष्मण शत्रुघ्न को देखो जाय ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ मुनिन के वालकन को यज्ञ कराइवो उचित है, अश्व बाँधि यज्ञ रोकिवो उचित नहीं है, इति भावार्थः ॥ ९ ॥ १० ॥

कुश–दोधक छन्द ॥ बालक बृद्ध कहौ तुम काको । देहन को किधौं जीव-प्रभा को ॥ है जड़ देह कहै सब कोई । जीव सु बालक बृद्ध न होई ॥ ११ ॥ जीव जरै न मरै नहिं छीजै ।

ता कहँ शोक कहा करि कीजै॥ जीवहि बिप्र न क्षत्रिय जानो। केवल ब्रह्म हिये महँ आनो॥ १२॥ जो तुम देहु हमैं कछु शिक्षा। तौ हम देहिं तुम्हैं यह भिक्षा॥ चित्त बिचार परै सोइ कीजै। दोष कछू न हमैं अब दीजै॥ १३॥ स्वागता छन्द॥ बिप्र-बालकन की सुनि बानी। क्रुद्ध सूर-सुत भो अभिमानी॥ १४॥ सुग्रीव-बिप्र-पुत्र तुम सीस सँभारो। राखि लेहि अब ताहि पुकारो॥ १५॥ लव-गौरी छन्द॥ सुग्रीव कहा तुम सों रण माँड़ों। तोको अति कायर जानि कै छाँड़ों॥ बालि तुम्हैं बहु नाच नचायो। का रन मंडन मो सन आयो॥ १६॥

भरत मुनि-बालक पद कह्यो है, तासों कुश यह कहत हैं॥ ११॥१२॥ शिक्षा दै हमारो बोध करो इत्यर्थः॥ १३॥ १४॥ छन्द उपजाति है॥ १५॥ १६॥

तारक छंद॥ फलहीन सु ता कहँ बाण चलायो। अति बात भ्रम्यो बहुधा मुरझायो॥ तब दौरि कै बाण बिभीषण लीन्हो। लव ताहि बिलोकत ही हँसि दीन्हो॥ १७॥ सुन्दरी छन्द॥ आउ बिभीषण तू रणदूषण। एक तुहीं कुल को कुलभूषण॥ जूझ जुरे जे भले भय जी के। शत्रुहिं आइ मिले तुम नीके॥ १८॥ दोधक छंद॥ देव-बधू जब ही हरि ल्यायो। क्यों तब ही तजि ताहि न आयो॥ यों अपने जिय के उर आये। छुद्र सबै कुल छिद्र बताये॥ १९॥ दोहा॥ जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान॥ ता की पत्नी तू करी पत्नी मातु-समान॥ २०॥ को जानी कै बार तू कही न ह्वैहै माइ॥ सोई तैं पत्नी करी सुनु पापिन के राइ॥ २१॥ तोटक छन्द॥ सिगरे जग माँझ हँसावत हैं। रघुबंसिन पाप नसावत हैं॥ धिक तो कहँ तू अजहूँ जु जियै। खल जाइ हलाहल क्यों न पियै॥ २२॥

फल कहे गाँसी। ता बाण के लागे, बात सम अर्थात् बौंडर सम बहुत भ्रमत

भये; और मुरझात भये ॥ १७ ॥ जूझ छुरे पर भले जाके भय सों शत्रु को आइ मिलै ॥ १८ ॥ देववधू; सीता ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

कछु है अब तो कहँ लाज हिये । कहि कौन विचार हथ्यार लिये ॥ अब जाइ करीप कि आगि जरौ । गरु बाँधि कै सागर बूड़ि मरौ ॥ २३ ॥ दोहा ॥ कहा कहौं हौं भरत को जानत है सब कोय ॥ तो-सो पापी संग है क्यों न पराजय होय ॥ २४ ॥ बहुत युद्ध भो भरत सों देव अदेव समान ॥ मोहि महारथ पर गिरे मारे मोहन बान ॥ २५ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्र-चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां भरतमोहनोनाम सप्तत्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३७ ॥

करीष; सूख्यो गोबर, बिनुआ कण्डा करि प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां सप्तत्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३७ ॥

दोहा ॥ अड़तीसयें प्रकाश में अंगद-युद्ध बखान ॥ व्याज सैन रघुनाथ को कुश लव आश्रम जान ॥ १ ॥ भरतहि भयो विलम्ब कछु आये श्रीरघुनाथ ॥ देख्यो वह संग्राम-थल जूझि परे सब साथ ॥ २ ॥ तोटक छन्द ॥ रघुनाथहि आवत आइ गये । रण में मुनिबालक रूपरये ॥ गुण रूप सुशीलन सों रण में । प्रतिबिम्ब मनो निज दर्पण में ॥ ३ ॥ मधुतिलक छन्द ॥ सीता समान मुख-चन्द्र-विलोकि राम । बूझ्यो कहाँ बसत हौ तुम कौन ग्राम ॥ माता पिता कवन कौनहि कर्म कीन । विद्या-विनोद सिख कौन्यहि अस्त्र दीन ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ गुण; रूप और शील स्वभावन सहित रण में अर्थात् रण करिबे में । मानों दर्पण में आपने प्रतिबिम्ब ही आइ गये हैं । जैसे दर्पण के निकट जात ही दर्पण में आपने ही स्वभावादि सों युक्त आपने प्रतिबिम्ब

आइ जात हैं, ता विधि रणभूमिरूपी दर्पण के निकट रामचन्द्र के आवत ही रामचन्द्र ही के स्वभावादि सों युक्त प्रतिबिम्ब सम लव कुश आये, इत्यर्थः ॥ ३ ॥ भाग्यवान् पुत्र को मुख माता को ऐसो होत है। "धन्यो मातृमुखः सुतः" इति प्रमाणात्। कहो कहे कौन स्थान में। कर्म, जातकर्म आदि ॥ ४ ॥

कुश—रूपमाला छन्द ॥ राजराज तुम्हैं कहा मम बंश सों अब काम। बूझि लीन्हेहु ईश लोगन जीति कै संग्राम॥ राम—हौं न युद्ध करौं कहे बिन बिप्र-बेष बिलोकि॥ बेगि बीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि॥ ५॥ कुश—कन्यका मिथिलेश की हम पुत्र जाये दोइ। बालमीकि अशेष कर्म करे कृपा-रस भोइ॥ अस्त्र शस्त्र सबै दये अरु बेद-भेद पढ़ाइ। बाप को नहिं नाम जानत आजु लौं रघुराइ॥ ६ ॥ दोधक छन्द ॥ जानकि के मुख अक्षर आने। राम तहीं अपने सुत जाने॥ बिक्रम साहस शील उचारे। युद्ध-कथा कहि आयुध डारे॥ ७॥ राम—अंगद जीति इन्हैं गहि ल्याओ। कै अपने बल मारि भगाओ॥ बेगि बुझावहु चित्त-चिता को। आजु तिलोदक देहु पिता को॥ ८॥ अंगद तौ अँग-अंगनि फूले। पौन के पुत्र कह्यो अति भूले॥ जाइ जुरे लव सों तरु लै कै। बात कही शत खंडन कै कै॥ ९॥

॥ ५ ॥ ६ ॥ जानकी को नाम लीन्हो, तासों और अपने सदृश विक्रम साहस शील हू सों विचार्यो कि हमारे ही पुत्र हैं ॥ ७ ॥ हम तुमसों कहि राख्यो है कि कोऊ हमारे वंश में तुमसों युद्ध करि है, सो ये हमारे ही पुत्र हैं, तासों इनको जीति कै ता समय सों क्रोधाग्नि सों जरत चित्तरूपी जो चिता है, ताको बुझाओ। और रघुवंशिन सों युद्ध करि पिता को तिलोदक देन कह्यो है, सो देव। अथवा हमारे ही पुत्र हैं कै हमारे अश्व बाँधि वृथा युद्ध कर्‍यो, ता क्रोध सों जरत जो चित्तरूपी चिता है, ताको बुझाओ और पिता को तिलोदक देहु ॥ ८ ॥ ९ ॥

लव—अंगद जो तुम पै बल होतो। तौ वह सूरज को सुत को

तो ॥ देखत ही जननी जु तिहारी। वा सँग सोवति ज्यों वर-नारी॥ १०॥ जा दिन ते युवराज कहाये। विक्रम बुद्धि विवेक बहाये॥ जीवत पै कि मरे पहँ जैहै। कौन पिताहि तिलोदक दैहै॥ ११॥ अंगद हाथ गहै तरु जोई। जात तहीं तिल-सो कटि सोई॥ पर्वतपुंज जिते उन मेले। फूल के तूललै बाणन झेले॥ १२॥ बाणन वेधि रही सब देही। वानर ते जु भये अब सेही॥ भूतल ते शर मारि उड़ायो। खेलि के कंदुक को फल पायो॥ १३॥ सोहत है अध-ऊरध ऐसे। होत वटा नट को नभ जैसे॥ जान कहूँ न इतै उत पावै। गो बल चित्त दशो दिशि धावै॥ १४॥ बोल घट्यो सु भयो सुरभंगी। ह्वै गयो अंग त्रिशंकु को संगी॥ हा रघुनायक हौं जन तेरो। रक्षहु गर्व गयो सब मेरो॥ १५॥ दीन सुनी जनकी जब बानी। जो करुणा लव बाणन आनी॥ छाँड़ि दियो गिरि भूमि पस्योई। विह्वल ह्वै अति मानो मस्योई॥ १६॥

वरनारी अर्थात् विवाहिता स्त्री, अथवा वारनारी वेश्या ॥ १० ॥ जो रामचन्द्र कह्यो कि इनको जीति कै आजु पिता को तिलोदक देहु, सो सुनिकै लव कहत हैं कि हमको जीति कै जो तिलोदक तुम देहौ, सो जीवत पिता जे सुग्रीव हैं, तिनको प्राप्त ह्वै है कि मरे पिता जे बालि हैं, तिनको प्राप्त ह्वै है ॥ ११ ॥ झेले, दूरि किये ॥ १२ ॥ सेही, शल्लकी नाम वनजन्तुविशेष, स्याही ॥ १३ ॥ १४ ॥ त्रिशंकु को संगी अर्थात् त्रिशंकु सम। शीश नीचे चरण ऊपर भये ॥ १५ ॥ १६ ॥

विजय छन्द ॥ भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खड़े करतार करे कै। भारे भिरे रण भूधर भूप न टारे टरे इभ कोटि अरे कै। रोष सों खड्ग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहू गरे कै। राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खाये मरे नग नाग मरे कै ॥ १७ ॥ दोधक छन्द ॥ वानर ऋक्ष जिते निशिचारी। सेन सबै यक बाण

सँहारी ॥ बाण-बिंधे सब ही जब जोये । स्यन्दनमें रघुनन्दन सोये ॥ १८ ॥ गीतिका छन्द ॥ रण जोइ कै सब सीस-भूषन सँग रहे जे जे भले । हनुमंत को अरु जामवंतहि बाजि सों असि लै चले ॥ रण जीति कै लव साथ लै करि मातु के कुश पाँ परे । सिर सूँघि कंठ लगाय आनन चूमि गोद दुवौ धरे ॥ १६ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीराम-
चन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां कुशलव-
जयवर्णनन्नामाष्टत्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३८ ॥

भैरव ऐसे जे भूरि भट हैं, ते वल सों भिरे हैं। सो इन भटन को कैधौं अति विकट खेत कहे युद्ध के लिये कर्तार विधातैं करे कहे बनायो है। अर्थात् त्रिकालज्ञ विधाता यह अतिविकट युद्ध भावी जानि कै, ताके लिये ऐसे प्रवल वीर आपने हाथसों बनायो है। या युद्ध में येई वीर भिरे हैं, और वीर न भिर सकते, इति भावार्थः। अथवा वल सों खड़े जे खेत हैं, तिनके करे कहे कर्त्ता। अर्थात् जिन रावणादि सों रण कीन्हो है, ऐसे जे भैरव ऐसे भूरि भट हैं, ते करे कहे अति कठोर मारु-मारु इत्यादि, तार कहे उच्च स्वर, कै कहे करि कै, रण में भिरे हैं। कोऊ कादर स्वर नहीं बोलत इति भावार्थः। और भूधर पर्वत सम अचल जे भारे भूप हैं, अथवा भूधर कहे भूमि के धरनहार अर्थात् जेती भूमि धरैं तेती कैसे हू न छोड़ैं ऐसे जे भारे भूप हैं, ते कोटिन इभ जे हाथी हैं, तिनको अरे कहे हठै करिकै अर्थात् पंगन में जंजीर आदि डारि, जामें टरैं नहीं ऐसे करिकै युद्ध में भिरे हैं। ते भट और भूप मरे कै कटेहू अर्थात् शिर कटि गयो है, ताहू पै भूमि में न गिरे। अर्थात् जिनको कबंध हू लरत रह्यो। और तिन हाथिन को परे देखि कै अद्भुत-रस-युक्त ह्वै रामचन्द्र कहत हैं कि नग जे पर्वत हैं, तिनके खायें कहे खावाँ मारे हैं। कि नाग कहे हाथी मरे हैं। अर्थात् ऐसे मरे हाथिन के कतारे परे हैं, मानों पर्वतन के खावाँ मारे हैं। अथवा नागनग जे गजमुक्ता हैं तिनके खायें सम मारि गये हैं। अर्थात् यह कि जहाँ गजमुक्तन के खावाँ मारि गये हैं, तहाँ हाथिन की कौन कहै ॥ १७ ॥ तेंतीसें प्रकाश में कह्यो है कि "राम की जय-सिद्धि सो सिय को चले बनछाँड़ि", सो जय-सिद्धिरूप जे सीता हैं, तिनको तौ वन में

छोंड़्यो, तब जय-सिद्धि कैसे प्राप्त होय ? सो त्रिकालज्ञ जे रामचन्द्र हैं, तें यह विचारि कै सोइ रहे ॥ १८ ॥ १९ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामष्टत्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३८ ॥

दोहा ॥ नवतीसयें प्रकास सिय-राम-सँजोग निहारि ॥ यज्ञ पूरि सब सुतन को दीन्हो राज बिचारि ॥ १ ॥ रूपमाला छन्द ॥ चीन्हि देवर को विभूषण देखि कै हनुमन्त । पुत्र हौं बिधवा करी तुम कर्म कीन दुरन्त ॥ बाप को रण मारियो अरु पितृभ्रातृ सँहारि । आनियो हनुमन्त बाँधि न आनियो म्वहिं गारि ॥ २ ॥ दोहा ॥ माता सब काकी करी बिधवा एकहि बार ॥ मोसे और न पापिनी जाये वंशकुठार ॥ ३ ॥ दोधक छन्द ॥ पाप कहाँ हति बापहि जैहौ । लोक चतुर्दश ठौर न पैहौ ॥ राजकुमार कहै नहिं कोऊ । जारज जाइ कहावहु दोऊ ॥ ४ ॥ कुश—सो कहँ दोष कहा सुनि माता । बाँधि लियो जु सुन्यो उन भ्राता ॥ हौं तुम ही त्यहि बार पठायो । राम पिता कब मोहिं सुनायो ॥ ५ ॥ दोहा ॥ मोहिं बिलोकि बिलोकि कै रथ पर पौढ़े राम ॥ जीवत छोड़्यो युद्ध में माता करि बिश्राम ॥ ६ ॥

॥ १ ॥ दुरन्त, अनुत्तम । गारि, कलङ्क ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ विश्राम, क्षमा ॥ ६ ॥

सुन्दरी छन्द ॥ आइ गये तब ही मुनिनायक । श्रीरघुनन्दन के गुणगायक ॥ बात बिचारि कही सिगरी कुश । दुःख कियो मन में कलि-अंकुश ॥ ७ ॥ रूपवती छन्द ॥ कीजै न बिडम्बन संतत सीते । भावी न मिटै सु कहूँ जग-गीते ॥ तू तो पतिदेवन की गुरु बेटी । तेरी जग-मृत्यु कहावत चेटी ॥ ८ ॥ तोटक छन्द ॥ सिगरे रणमंडल माँझ गये । अवलोकत ही

अति भीत भये ॥ दुहुँ बालन को अति अद्भुत बिक्रम। अव-
लोकि भयो मुनि के मन संभ्रम ॥ ९ ॥

कैसे हैं मुनिनायक, कलि जो कलियुग है, ताके अंकुश हैं ॥ ७ ॥
विडम्बन, दुःख। हे बेटी, तू पतिदेव कहे पतिव्रतन की गुरु है। चेटी, दासी।
तेरी आज्ञा सों मृत्यु मरे वीरन को जिआइ है इति भावार्थः ॥ ८ ॥
छंद उपजाति है ॥ ९ ॥

दण्डक ॥ सोनित सलिल नर बानर सलिलचर गिरि
बालिसुत विष विभीषण डारे हैं। चमर पताका बड़ी बड़वा-
अनलसम रोगरिपु जामवंत केशव बिचारे हैं ॥ बाजि सुर-
बाजि सुरगज-से अनेक गज भरत सबंधु इंदु अमृत निहारे हैं।
सोहत सहित शेष रामचन्द्र कुश लव जीति कै समर सिंधु साँचे
हू सुधारे हैं ॥ १० ॥ सीता—दोहा ॥ मनसा बाचा कर्मणा जो
मेरे मन राम ॥ तौ सब सेना जी उठै होहि घरी न बिराम ॥ ११ ॥
दोधक छन्द ॥ जीय उठी सब सेन सभागी। केशव सोवत ते
जनु जागी ॥ स्यो सुत सीतहि लै सुखकारी। राघव के मुनि
पाँयन पारी ॥ १२ ॥ मनोरमा छन्द ॥ शुभ सुंदरि सोदर पुत्र
मिले जहँ। बर्षा बर्षैं सुर फूलन की तहँ ॥ बहुधा दिवि दुंदुभि
के गन बाजत। दिगपाल-गयंदन के गन लाजत ॥ १३ ॥

कविजन समर को सिंधुसम कहतई हैं, पै कुश लव समर जीति कै
अंगनन सहित साँचो सिंधु सँवार्यो इत्यर्थः। सो कहत हैं सलिलचर ग्राह आदि।
गिरि, मैनाक। रुधिर-रंग सों अरुण चमर जानो। रोगरिपु, धन्वंतरि।
अड़तीसयें प्रकाश में कह्यो है कि "हनुमंत को अरु जामवंतहि बाज सों ग्रसि
लै चले," तासों इहाँ दूसरे जामवंत जानो। अथवा प्रथम ग्रसि लै गये हैं,
फेरि छोड़ि दिये हैं, तेऊ तहाँ हैं। भरत चन्द्रमा हैं, शत्रुघ्न अमृत हैं ॥ १० ॥
विराम, वेर ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

अंगद—स्वागता छन्द ॥ रामदेव तुम गर्बप्रहारी। नित्य तुच्छ

अति बुद्धि हमारी ॥ युद्ध देव भ्रम तें कहि आयो। दास जानि प्रभु मारग लायो ॥ १४ ॥ रूपमाला छन्द ॥ सुन्दरी सुत लै सहोदर बाजि लै सुख पाइ। साथ लै मुनि बालमीकिहि दीह दुःख नसाइ॥ राम धाम चले भले यश लोक-लोक बढ़ाइ। भाँति भाँति सुदेश केशव दुंदुभीन बजाइ ॥ १५॥ भरत लक्ष्मण शत्रुहा पुर भीर टारत जात। चौंर ढारत हैं दुवौ दिशि पुत्र उत्तमगात ॥ छत्र है कर इन्द्र के सुभ सोभिजै बहु भेव। मत्त दन्ति चढ़े पढ़ैं जयशब्द देव नृदेव ॥१६॥ दोधक छन्द॥ यज्ञथली रघुनन्दन आये। धामनि धामनि होत बधाये ॥ श्रीमिथिलेश-सुता बड़ भागी। स्यो सुत सासुन के पग लागी ॥ १७ ॥

पचीसयें प्रकाश में अंगद कह्यो है कि "देव हौ नरदेव बानर नैर्ऋतादिक वीर हौ", ता बात को ते कहत हैं कि हे देव, तब जो हम सों युद्ध करिबे को कहि आयो रहै, अर्थात् हम युद्ध करिबे को कह्यो रहै, सो भ्रम सों कह्यो रहै, सो दास जानि कै हमारो गर्व दूरि करि कै हमको मार्ग राह लगायो। रामचन्द्र हू को वचन रह्यो कि कोऊ मेरे वंश में तोसों युद्ध करि है, तब तेरो मन मोसों शुद्ध ह्वै है; सो इहाँ अंगद को मन शुद्ध भयो जानो ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

दोहा ॥ चारि पुत्र द्वै पुत्रसुत कौशल्या तब देखि ॥ पायो परमानंद मन दिगपालनसम लेखि ॥ १८॥ रूपमाला छन्द ॥ यज्ञ पूरन कै रमापति दान देत अशेष। हीर नीरज चीर मानिक बर्षि वर्षा बेष ॥ अंगराग तड़ाग बाग फले भले बहु भाँति। भवन भूषण भूमि भाजन भूरि बासर राति ॥ १९ ॥ दोहा ॥ एक अयुत गज बाजि द्वै तीनि सुरभि शुभवर्ण ॥ एक एक बिप्रहि दई केशव सहित सुबर्ण ॥ २० ॥ देव अदेव नृदेव अरु जितने जीव त्रिलोक ॥ मनभायो पायो सबन कीन्हे सबन

अशोक ॥ २१ ॥ अपने अरु सोदरन के पुत्र बिलोकि समान ॥ न्यारे न्यारे देश दै नृपति करे भगवान ॥ २२ ॥ कुश लव अपने भरत के नंदन पुष्कर तक्ष ॥ लक्ष्मण के अंगद भये चित्रकेतु रणदक्ष ॥ २३ ॥ भुजंगप्रयात छन्द ॥ भले पुत्र शत्रुघ्न द्वै दीप जाये । सदा साधु शूरे बड़े भाग पाये ॥ सदा मित्रपोषी हनैं शत्रु-घाती । सुबाहै बड़ो दूसरो शत्रुघाती ॥ २४ ॥ दोहा ॥ कुश को दई कुशावती नगरी कौशलदेश ॥ लव को दई अवंतिका उत्तर उत्तमबेश ॥ २५ ॥ पश्चिम पुष्कर को दई पुष्करवति है नाम ॥ तक्षशिला तक्षहि दई लई जीति संग्राम ॥ २६ ॥ अंगद कहँ अंगदनगर दीन्हो पश्चिम ओर ॥ चन्द्रकेतु चन्द्रावती लीन्हो उत्तर जोर ॥ २७ ॥

॥ १८ ॥ नीरज, मोती । वासरराति कहे रातो दिन । देत कहे देतभये ॥ १९ ॥ अयुत, दशहजार । सुवर्ण, दस माशे का स्वर्णमुद्रा, सुवर्ण-दश मांशिक ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

मथुरा दई सुबाहु को पूरन पावनगाथ ॥ शत्रुघात को नृप कर्यो देशहि को रघुनाथ ॥ २८ ॥ तोटक छन्द ॥ यहि भाँति सों रक्षित भूमि भई । सब पुत्र भतीजन बाँटि दई ॥ सब पुत्र महाप्रभु बोलि लिये । बहु भाँतिन के उपदेश दिये ॥ २९ ॥ चामर छन्द ॥ बोलिये न झूठ ईठि मूढ़ पै न कीजई । दीजिये जु बात हाथ भूलि हू न लीजई ॥ नेहु तोरिये न देहु दुःख मंत्रि मित्र को । यत्र तत्र जाहु पै पत्याहु जै अमित्र को ॥ ३० ॥ नाराच छन्द ॥ जुवा न खेलिये कहूँ जुबान-बेद रक्षिये । अमित्र भूमि माँह जै अभक्ष भक्ष भक्षिये ॥ करौ न मंत्र मूढ़ सों न गूढ़ मंत्र खोलिये । सुपुत्र होहु जै हठी मठीन सों न बोलिये ॥ ३१ ॥ बृथा न पीड़िये प्रजाहि पुत्रमान पारिये । असाधु साधु बूझि

कै यथापराध मारिये ॥ कुदेव देव नारि को न बाल बित्त लीजिये । बिरोध बिप्रबंश सों सु स्वप्न हू न कीजिये ॥ ३२ ॥

देशहि के अर्थात् अयोध्या के समीप देश को ॥ २८ ॥ २९ ॥ मित्र ताको जो वस्तु बात करि कै अथवा हाथ करि कै दीजिये, ताको फेरि न लीजै ॥ ३० ॥ वेद को जुवान कहे वचन । भूमि कहे स्थान ॥ ३१ ॥ पुत्र- मान कहे पुत्रसम । असाधु, सदोष । साधु, निर्दोष । कुदेव, ब्राह्मण ॥ ३२ ॥

भुजंगप्रयात छन्द ॥ परद्रव्य को तौ बिषप्राय लेखौ । पर- स्त्रीन सों ज्यों गुरुस्त्रीन देखौ ॥ तजौ कामक्रोधौ महामोह- लोभौ । तजौ गर्व को सर्बदा चित्त छोभौ ॥ ३३ ॥ यशै संग्रहौ निग्रहौ जुद्ध जोधा । करौ साधुसंसर्ग जो बुद्धिबोधा ॥ हितू होइ सो देइ जो धर्मशिक्षा । अधर्मीन को देहु जै बाकभिक्षा ॥ ३४ ॥ कृतघ्नी कुबादी परस्त्रीबिहारी । करौ बिप्र लोभी न धर्माधि- कारी ॥ सदा द्रव्य संकल्प को रक्षि लीजै । द्विजातीन को आपु ही दान दीजै ॥ ३५ ॥ सवैया ॥ तेरह मंडल मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै । कैसेहु ता कहँ शत्रु न मित्र सु केशवदास उदासन बाधै ॥ शत्रु समीप परे त्यहि मित्र से तासु परे जु उदास कै जोवै । बिग्रह संधिन दाननि सिंधु लौं लै चहुँ ओरन तौ सुख सोवै ॥ ३६ ॥

काम, क्रोध, मोह, लोभ, गर्व कहे मद और छोभ कहे मात्सर्य, ये जे छः हैं तिनको त्याग करिये ॥ ३३ ॥ योधा कहे शत्रु । अथवा जो लरिबे को सन्मुख होइ । भीतादि को न मारियो, इति भावार्थः । बुद्धिबोधा, बुद्धि- युक्त । जो धर्म शिक्षा देइ, सोई तुम्हारो हितू होइ । अर्थात् ताही को हितू करियो । अधर्मीन सों न बोलियो इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ ये जो पाँच हैं, तिन- को धर्माधिकारी न करियो । सङ्कल्प को द्रव्य जे दिये ग्रामादि हैं, तिनकी रक्षा करियो । आपुही अर्थ आपने ही हाथ सों ॥ ३५ ॥ आपने देशके समीप को जो राजा है, ताको शत्रुता के आगे को मित्रता के आगे को उदासीन जोवै देखै जानै इति । याही भाँति चारिहूँ ओर तीन तीन राज-

मण्डल, सब द्वादश राजमण्डल जानो। और मध्य में आपनो राजमण्डल जोरि सब तेरह मण्डल प्रसिद्ध हैं। तिनसों युक्त जो भूतल है, ताको या प्रकार क्रम ही क्रम साधै। तौ ताको शत्रु, मित्र, उदासीनता बाधै। कैसे साधै सो कहत हैं कि शत्रु को विग्रह कहे दण्ड उपाय सों, और मित्र को संधि कहे साम उपाय सों, उदासीन को दान-उपाय सों युक्त करै, इति शेषः। तो सिंधुपर्यंत चारों ओर लैकै सुखसों सोवै। "विषयानन्तरो राजा शत्रुर्मित्रमतः परम्। उदासीनः परतर इत्यमरः" ॥ ३६ ॥

दोहा ॥ राजश्रीबश कैसेहू होहु न उर अवदात ॥ जैसे-तैसे आपुबश ताकहँ कीजै तात ॥ ३७ ॥ यहिबिधि सिख दै पुत्र सब बिदा करे दै राज ॥ राजत श्रीरघुनाथ-सँग शोभन बन्धु-समाज ॥ ३८ ॥ रूपमाला छंद ॥ रामचंद्रचरित्र को जु सुनै सदा सुख पाइ। ताहि पुत्र कलत्र सम्पति देत श्रीरघुराइ ॥ यज्ञ दान अनेक तीरथ-न्हान को फल होइ। नारि का नर बिप्र क्षत्रिय बैश्य शूद्र जु कोइ ॥ ३९ ॥ रूपकान्ता छंद ॥ अशेष पुण्य पापके कलाप आपने बहाइ। बिदेहराज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाइ ॥ लहै सु भुक्ति लोकलोक अंत मुक्ति होहि ताहि। कहै सुनै पढ़ै गुनै जु रामचन्द्रचन्द्रिका हि ॥ ४० ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्र-चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां कुशलवसमागमो नामैकोनचत्वारिंशत्प्रकाशः ॥ ३९ ॥

॥ ३७ ॥ शोभन, सुंदर ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ कलाप, समूह। पुण्य. पाप के नाश सों मुक्ति होति है। "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्", इति प्रमाणात्। अथवा याके धारण सों प्राप्त जो यज्ञादि को अशेष सम्पूर्ण पुण्य है, तासों पाप के कलाप बहाइकै ॥ ४० ॥ कवित्त ॥ कैधौं सुभ सागर बिराजमान जामें पैठि पाइयत परमपदारथ की रासिका। कण्ठमें करत सोभ धरत सभा के मध्य कैधौं सोहै माल उर बिमल उजासिका ॥ सेवत ही जाको लहै सु मन प्रवीनताई जानकीप्रसाद कैधौं भारती हुलासिका।

ज्ञान की प्रकासिका सुकुतिप्रद कासिका है सेइये सुजन रामभगति-प्रकासिका ॥ १ ॥ दोहा ॥ रामभक्ति उर आनिकै रामभक्तजन हेतु । रामचंद्रिका-सिंधु में रच्यो तिलक को सेतु ॥ २ ॥ जो सुपंथ तजि सेतु को चलहि और मग जोर । रामचन्द्रिकासिंधु को लहहि कौन विधि ओर ॥ ३ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामेकोनचत्वारिंशत्प्रकाशः ॥ ३९ ॥

कवित्त ॥ तूरयो शंभु-धनु, भृगुनाथ को गरब चूरयो, ऊरयो निज राज, पूरयो पितु को परन है । वन वर वास कीन्हे, निसिचर-नास कीन्हे, रविसुत आस कीन्हे आवत सरन है ॥ कपि कर लंक जारयो, पारयो सेतु सिंधु महँ, सारयो दससीस बंधु धारयो नृपधन है । ख्यालसम कीन्हे जिन अदभुत काम वंदियत अभिराम नृप रामके चरन है ॥

नरछाँहईं अपवित्र । शर खड्ग निर्दय मित्र ॥ १८ ॥ सोरठा ॥ गुण तजि अवगुणजाल गहत नित्य प्रति चालनी ॥ पुंश्चली-ति तेहि काल एकै कीरति जानिये ॥ १६ ॥ दोहा ॥ धनद-लोक सुरलोक-मय सप्त-लोक के साज ॥ सप्त-द्वीपवति महि बसी रामचन्द्र के राज ॥ २० ॥ दश सहस्र दश सौ बरष रसा बसी यहि साज ॥ स्वर्ग नरक के मग थके रामचंद्र के राज ॥ २१ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्री-रामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां राम-राज्यवर्णनन्नामाष्टविंशः प्रकाशः ॥ २८ ॥

द्विस्वभाव कहे द्वै प्रकार को स्वभाव श्लेष कविता में है, एक समय और अर्थ कहत हैं, एक समय और कहत हैं, और सबको एकई स्वभाव है इति भावार्थः ॥ १७ ॥ बहु कहे बहुत विधि सों शब्द जो है सोई वंचक कहे ठग है । अर्थात् वंचक यह जो शब्द है, सोई है, और कोऊ प्राणी ठग नहीं है । अथवा बहुत जे परस्पर कोमल-भाषित शब्द हैं, तेई ठग हैं । अर्थात् ठग सम मोहित करत हैं, और अलि जे भ्रमर हैं तेई पश्यतोहर कहे देखत हूँ चोरी करत हैं, अर्थात् सबके देखत भ्रमर पुष्पन सों मधु चोरत हैं ॥ १८ ॥ गुणरूप पिसान को त्यागि अवगुणरूपी भूमि को ग्रहण करति है । पुंश्चली, परकीया ॥ १६ ॥ २० ॥ रसा, पृथ्वी । स्वर्ग नरक के मग थके कहे नहीं चलत । अर्थात् न कोऊ प्राणी स्वर्ग जाइ, न नरक जाइ, सब मुक्ति-पुरी को जात हैं ॥ २१ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामष्टविंशः प्रकाशः ॥ २८ ॥

दोहा ॥ उनतीसयें प्रकाश में वरणि कह्यो चौगान ॥ अवध-दीप शुक की बिनति राजलोक गुण-गान ॥ १ ॥ चौपाई ॥ एककाल अतिरूपनिधान। खेलन को निकरे चौगान ॥ हाथ धनुष शर मन्मथरूप। संग पयादे सोदर भूप ॥ २ ॥ जाको जबहीं आयसु होइ। जाइ चढ़ै गज बाजिन सोइ ॥ पशुपति-से रघुपति देखिये। अनुगत शेष महा लेखिये ॥ ३ ॥ बीथी सब असवारिन भरी। हय हाथिन सों सोहत खरी ॥ तरुपुं-जन सों सरिता भली। मानों मिलन समुद्रहि चली ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ जा गज पै औ जा बाजि पै चढ़ि कै चलिबे को रामचन्द्र को आयसु जाको होत है, सो तापैं चढ़त है। रामचन्द्र के अनु कहे पाछे गत कहे प्राप्त शेष लक्ष्मण हैं। और महादेव के अनु पश्चाद्भाग में गत प्राप्त शेष कहे शेष नाग हैं। शेष को महादेव ग्रीवा में पहिरे हैं, सो पृष्ठभाग में उरसत हैं, इत्यर्थः। कहूँ अनुगणसैन पाठ है, तौ अनु पश्चाद् गण समूह सैन को पेखियत है, और महादेव के अनु पश्चाद् गण वीरभद्रादिकन की महासैन पेखियत ॥ ३ ॥ बीथी, गली ॥ ४ ॥

यहि बिधि गये राम चौगान। सावकास सब भूमि समान ॥ शोभन एक कोस परिमान। रचो रुचिर तापर चौगान ॥ ५ ॥ एक कोद रघुनाथ उदार। भरत दूसरे कोद बिचार ॥ सोहत हाथे लीन्हे छरी। कारी पीरी राती हरी ॥ ६ ॥ देखन लग्यो सबै जगजाल। डारि दियो भुव गोला हाल ॥ गोला जाइ जहाँजहँ जबै। होत तहीं तितहीतित सबै ॥ ७ ॥ मनों रसिक लोचन रुचि रचे। रूपसंग बहु नाचनि नचे ॥ लोक-लाज छांड़े अँगअंग। डोलत जनु जन-मन के संग ॥ ८ ॥ गोला जाके आगे जाइ। सोई ताहि चलै अपनाइ ॥ जैसे तियगण को पति रयो। जेहि पायो ताही को भयो ॥ ९ ॥ उत

ते इत इत ते उत होइ। नेकहु ढील न पावै सोइ॥ काम क्रोध मद मढ्यो अपार। मानों जीव भ्रमै संसार॥ १०॥

सावकाश कहे फैलाव सहित। और समान कहे नीच-उच्च रहित॥ ५॥ कोद कहे ओर॥ ६॥ जाहीं कहे तबै॥ ७॥ रुचि कहे इच्छा। रूप, सुन्दरता॥ ८॥ ९॥ १०॥

जहाँ तहाँ मारे सब कोइ। ज्यों नर पंचबिरोधी होइ॥ घरी घरी प्रति ठाकुर सबै। बदलत बासन बाहन तबै॥ ११॥ दोहा॥ जब जब जीतैं हाल हरि तब तब बजत निशान॥ हय गय भूषण भूरि पट दीजत लोग निदान॥ १२॥ चौपाई॥ तब तेहि समय एक बेताल। पढ़्यो गीत गुनि बुद्धि बिशाल॥ गोलन की बिनती सुख पाई। रामचन्द्र सों कीन्ही आई॥ १३॥ दण्डक॥ पूरब की पूरा पूरी पापर पूरी-से तन बापुरी वै दूरि ही ते पाँयन परति हैं। दच्छिन को पच्छिनी-सी गच्छैं अन्तरिच्छ मग पच्छिम को पच्छहीन पच्छी ज्यों उरति हैं॥ उत्तर की देती हैं उतारि सरनागतनि बातन उतायली उतार उतरति हैं। गोलन की मूरतिन दीजिये जू अभेदान राम-बैर कहाँ जाइँ बिनती करति हैं॥ १४॥

बासन, वस्त्र॥ ११॥ १२॥ बेताल, भाट। गोलन की बिनती कहे गोलन की तरफ सों बिनती रामचन्द्र सों कस्यो॥ १३॥ यामें समय विचारि स्तुतिपूर्वक गोलन की बिनतिन के व्याज खेल खेलिबो मने करत हैं। कहत हैं कि हे राम, पापर पूरी-भेद प्रसिद्ध है, और पूरी कहे पूरीसम हैं तन जिते कहे ऐसे जे पूर्वदिशा के पूरा कहे ग्राम पूरी कहे लघु ग्राम हैं, ते बापुरी दूरि ही ते भय सों तुम्हारे पाँयन परती हैं। और दक्षिण की पूरा पूरी अन्तरिक्ष आकाश के मग पक्षिणीसम गच्छती हैं। पक्षहीन कहि या जनायो कि उड़ि जाइबो चाहती हैं, पै पक्षहीनता सों रहि जाती हैं। और उत्तर की पूरा पूरी तुम्हारो विरोधी जो शरणागत है, ताको उतारि देती हैं,

अथवा उत्तर में पर्वत पर बसती हैं, सो पर्वत सों उतारि देती हैं। कैसे उतारि देती हैं कि बातन हूँ करिकै उतायली जो जल्दी है ताके उतार में उतरती हैं। अर्थात् यह कहती हैं कि तुम इहाँ सों जल्दी जाउ, नहीं तौ रामचन्द्र जानि हैं, तौ हम को बिदारि हैं। यासों या जनायो कि उत्तर की पुरी दुर्गम पर्वतन हूँ पर हैं, तहाँऊँ तुम्हारे वैरी को नहीं राखि सकतीं। तासों गोलन की मूरति बिनती करती हैं कि राम-वैर सों हम कहाँ जाइँ। तासों हे राम, अभयदान दीजै। खेल को समय ह्वै आयो, तासों अब खेल बंद करो, इति भावार्थः ॥ १४ ॥

चौपाई ॥ गोलन की बिनती सुनि ईश। घर को गमन कस्यो जगदीश ॥ पुर पैठत अति शोभा भई। बीथिन असवारी भरि गई ॥ १५ ॥ मनों सेतु मिलि सहित उछाह। सरितन के फिरि चले प्रबाह ॥ ताही समय द्यौस नासि गयो। दीप-उदोत नगर महँ भयो ॥ १६ ॥ नखतन की नगरी-सी लसी। मानों अवध देवारी बसी ॥ नगर अशोकबृक्ष-रुचि-रयो। मधु प्रभु देखि प्रफुल्लित भयो ॥ १७ ॥ अध अधफर ऊपर आकाश। चलत दीप देखियत प्रकाश ॥ चौकी दै जनु अपने भेव। बहुरे देवलोक को देव ॥ १८ ॥ बीथी बिमल सुगन्ध समान। दुहुँ दिसि दीसत दीप प्रमान ॥ महाराज को सहित सनेह। निज नैनन जनु देखत गेह ॥ १९ ॥ बहु बिधि देखत पुर के भाइ। राजसभा महँ बैठे जाइ ॥ पहर एक निशि बीती जहीं। बिनती को शुक आये तहीं ॥ २० ॥

॥ १५ ॥ प्रथम जात समय कह्यो है कि—"तरुपुंजन सों सरिता भली। मानहुँ मिलन समुद्रहि चली", सो अब आवत में ताही में तर्क करत हैं कि मानों सेतु में मिलि कै उछाह आनन्द सहित सरितन के तेई प्रवाह फिरि चले हैं। जैसे लङ्का जात में रामचन्द्र सेतु बाँध्यो है, तामें लगिकै सरितन के प्रवाह फिरि चले हैं, तैसे जानो ॥ १६ ॥ रुचि कहे सुन्दरता सों रयो अर्थात् युक्त नगररूपी जो अशोकवृक्ष है, सो मधु कहे वसन्त-सम जे रामचन्द्र

हैं, तिन्हैं देखि प्रफुल्लित भयो है ॥ १७ ॥ यामें आकाश-दीपन को वर्णन है । एकै आकाश के अध कहे अधोभागमें हैं, एकै अधफर कहे मध्यभाग में हैं, और एकै ऊपर हैं । या प्रकार ज्यों ज्यों क्रम-क्रम डोरि खींची जाति है, त्यों त्यों आकाश को चलत प्रकाश-दीप देखियत है, सो मानों ये सब दीप नहीं देवता हैं, अवधपुरी की चौकी देत हैं, तिनके मध्य मानों आपने भेव कहे समय-प्रमाण चौकी दै कै ये देव आपने लोक जात हैं ॥ १८ ॥ बिमल, तृणादिरहित । सुगन्ध, गन्धयुक्त । समान, उच्च-नीच-रहित । दुहुँ दिशि कहे गैल के याहू ओर वाहू ओर । सनेह, प्रेम और तैल ॥ १९ ॥ भाइ कहे चेष्टा ॥ २० ॥

शुक—हरिप्रिया छन्द ॥ पौढ़िये कृपानिधान देवदेव रामचन्द्र चन्द्रिकासमेत चन्द्र चित्त रैनि मोहै । मनहुँ सुमन सुमति संग रचे रुचिर सुकृत रंग आनँदमय अंग अंग सकल सुखनि सोहै ॥ ललित लतन के बिलास भ्रमरबृन्द ह्वै उदास अमल कमल कोश आसपास बास कीन्हे । तजि तजि माया दुरंत भक्त रावरे अनंत तव पद कर नैन बैन मानहुँ मन दीन्हे ॥ २१ ॥ घर घर संगीत गीत बाजे बाजैं अजीत काम-भूप आगम जनु होत हैं बधाये । राजभौन आसपास दीपबृक्ष के बिलास जगति ज्योति जोवन जनु ज्योतिवन्त आये ॥ मोतिनमय भीति नई चन्द्रचन्द्रिकानि-मई पङ्क अङ्क अङ्कित भव भूरि भेद सो करी । मानहुँ शशिपण्डित करि जोन्हज्योतिमंडित श्रीखंडशैल की अखंड शुभ्र सुंदरी दरी ॥२२॥ एक दीप-द्युति बिभाति दीप्राति मणिदीप-पाँति मानहुँ भुव भूपतेज मंत्रिन मय राजै । आरे मणिखचित खरे बासन बहु बास भरे राखत गृह गृह अनेक मनहुँ मैन साजै ॥ अमल सुमिल जलनिधान मोतिन के शुभ बितान तापर पलिका जराय जड़ित जीव हर्षै । कोमल तापर रसाल तन-

सुख की सेज लाल मनहुँ सोम सूरज पर सुधाबिंदु वर्षें ॥ २३ ॥ फूलन के विविध हार घोरिलनि उरमत उदार बिच बिच मणि श्याम हार उपमा शुक भाखी। जीत्यो सब जगत जानि तुम सों हरि हारि मानि मनहुँ मदन धनुषनि ते गुन उतारि राखी॥ जल थल फल फूल भूरि अम्बर घट वास भूरि स्वच्छ यच्छ-कर्दम हिय देवनि अभिलाखे। कुंकुम मेदौयवादि मृगमद कर्पूर आदि बीरा वनितन वनाइ भाजन भरि राखे ॥ २४ ॥ पन्नगी नगीकुमारि आसुरी सुरी निहारि विविधबीन किन्नरीन किन्नरी बजावैं। मानों निष्काम भक्ति शक्ति आय आप-नीन देहन धरि प्रेमन भरि भजन भेद गावैं॥ सोदर सा-मन्त शूर सेनापति दास दूत देश देशके नरेश मन्त्रि मित्र ले-खिये। बहुरे सुर असुर सिद्ध पंडित मुनि कवि प्रसिद्ध केशव बहु रायराज राज-लोक देखिये॥ २५ ॥

पाँच छन्द को अन्वय एक है। रैनि में चंद्रिका-समेत चंद्र चित्त को मोहत है, प्रसन्न करत है। अर्थात् रात्रि के संग सों चन्द्रिका समेत है चंद्र चित्त मोहत है। सो मानों सुष्ठु जो मति है ताके संग सों सुष्ठु जो मन है ताके अंग आनन्दमय कहे स्वच्छ सुकृत सुकर्म के रंग सों रचे हैं। सुकृत को रंग श्वेत कविप्रिया में श्वेतकी गणना में कह्यो है—शेष सुकृत शुचि सत्त्वगुण संतन के मनहास। सो मन सकल कहे पुत्र धनादि के सुखन सहित सोहत हैं। सुकृती को सब सुख प्राप्त होत हैं, यह प्रसिद्ध है। सुमतिसम रात्रि है, सुमनसम चन्द्रमा है, सुकृतसम चाँदनी है। ललित लतन के विलास सों उदास ह्वैकै, अर्थात् त्याग करिकै। मायासम लता हैं, भक्तसम भ्रमर हैं, कर और नयन और वैन सम कमल हैं। वैन पद ते इहाँ मुख जानौ। छंद उपजाति है। आसपास जे दीप-वृक्ष कहे झाड़ हैं, तिनके विलास सों राजभवन की ज्योति जगति है। मानों यौवन के आये शरीर की ज्योति जगति है, इति शेषः। ताही राजभवन की चन्द्रचन्द्रिकानिमयी कहे चन्द्रिकन सों युक्त जो मोतिनमय भीति है, ताहि भव जो संसार है, ताके जे भूरि भेद हैं; अर्थात्

अनेक विधि के चित्र हैं, तिन सहित, पंक जो चन्दनपंक है, तासों सेवकन चित्रित करी है । अर्थात् भीतिन में चित्र-विचित्र चंदनपंक लग्यो है । सो श्रीखण्ड जो चन्दन है, ताको शैल मलयाचल, अथवा चन्दन ही को निर्मित जो शैल है, ताकी शुभ्र कहे श्वेत और सुन्दरी रुचिर दरी कन्दरा को पण्डित कहे चतुर जो शशि है सो जोन्ह ज्योति सों मण्डित करी है । चन्दनलेप सों युक्त है, तासों राजभवन को श्रीखण्ड-शैलसम कह्यो है । दरीसम गृह को उदर है । ता भूपभवन में ये दीप की द्युति विभाति कहे शोभित हैं । और मणिदीप कहे भीतिन में जटित मणिन में प्रतिबिंबित जे दीप हैं तिनहूँ की पाँति दीपति है । सो मानों भुव में, अर्थात् भुवमंडल में, मन्त्रिनमय कहे मंत्रिन के तेजमय, अर्थात् मन्त्रिन के प्रताप सों युक्त राजा को तेज राजत है । भूपतेजसम एक दीप है, मन्त्रिन के तेजसम प्रतिबिंब-दीप हैं । मन्त्रिन को तेज राजतेज के प्रतिबिंबसम होत ही है । अथवा मानों राजा को तेज ही मंत्रिन में व्याप्त राजत है । मंत्रिनसम मणि हैं, भूपतेजसम दीप है । और आरे कहे ताख, मणिन करिकै खरे कहे नीकी विधि चित्रित हैं । तिनमें बहु वास कहे सुगंधन सों भरे अनेक वासन कहे पात्र गृह-गृह में कहे स्थान-स्थान में स्त्रीजन राखती हैं । ते मानों मैन जो काम है, ताको साजै हैं, अर्थात् काम के लाइबे के सुगंध हैं । और अमल कहे निर्मल, सुमिल कहे गोल, और जल कहे पानी के निधान, जे मोती हैं, तिनके शुभ वितान कहे चँदोवा हैं । तनसुख तन जो लाल अरुण सोमसम मोतिन को वितान है । सुधाबिंदुसम मोती हैं, सूर्यसम अरुण सेज है । घोरिला धनुष के गोशा सदृश होत है । धनुष सों गुण उतार्‌यो जात है, तब एक गोशा में लग्यो रहत है । गुण, रोदा । मौर्वी ज्या सिंजिनीगुण इत्यमरः । और जल और थल के भूरि कहे अनेक विधि के फल और फूल और अंबर वस्त्र और पटवास कहे सुगन्धचूर्ण, तिनकी धूरि । पिष्टातः पटवासक इत्यमरः । और जाको हिय में देवता अभिलाष करत हैं, सो ऐसो स्वच्छ यक्षकर्दम । कर्पूरागुरुकस्तूरीकंकोलैर्यक्षकर्दमः । और कुंकुम केसरि और मेदौजवादि कहे उबटन । और मृगमद कस्तूरी और कर्पूर आदि । और बीरा बनाइ बनाइ कै, भिन्न भिन्न भाजन पात्रन में बनिता जे दासीजन हैं, तिन भरि राखे हैं । किन्नरीन कहे सारंगीन की । आपनी आपनी शक्ति सों कहे अणिमादि सिद्धि के बल सों । देहन को धरिकै बहुरे कहे आज्ञा पाइ रावरी सभा सों अपने

धामन को जात हैं । तासों अब आप हू चलि कै राजलोक को देखिये, और तहाँ पौढ़िये, इत्यन्वयः ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

दोहा ॥ कहि केशव शुक के बचन सुनि सुनि परम बिचित्र ॥ राजलोक देखन चले रामचन्द्र जगमित्र ॥ २६ ॥ नाराच छंद ॥ सुदेश राजलोक आसपास कोट देखियो । रची बिचारि चारि पौंरि पूरबादि लेखियो ॥ सुबेष एक सिंहपौंरि एक दंतिराज है । सु एक बाजिराज एक नंदिबेष साज है ॥ २७ ॥ दोहा ॥ पाँच चौक मध्यहि रच्यो सात लोक तरहारि ॥ षट ऊपर तिन के तहाँ चित्रे चित्र बिचारि ॥ २८ ॥ चामर छंद ॥ भोज एक चौक मध्य दूसरे रची सभा । तीसरे बिचार मंत्र और नृत्य की प्रभा ॥ मध्यचौक में तहाँ बिदेहकन्यका बसै । सर्वभाव रामचन्द्र-लीन सर्वथा लसै ॥ २९ ॥

राजलोक कहे राजभवन ॥ २६ ॥ रामचन्द्रजू राजलोक के आसपास सुदेश कहे आछो कोट देखत भये । अर्थात् आसपास कोट है, ताके मध्य में राजलोक है, ता कोट के पूर्वादि दिशा में क्रम सों चारों ओर चारि पौंरि कहे द्वार हैं । पूर्व दिशा में सिंहपौंरि है, दक्षिण दिशा में दंतिपौंरि है, पश्चिम दिशा में वाजिपौंरि है, उत्तर दिशा में नंदिपौंरि है । इहाँ सिंहादि पौंरि सों सिंहादि-स्वरूपयुक्त पौंरि जानौ ॥ २७ ॥ ता कोट के मध्यहि कहे मध्य में सात लोक के तरहारि कहे सतमहला के तरे पाँच चौक अँगनाई रचो है । अर्थात् अँगनाई-विशिष्ट पृथक् पाँच भवन वने हैं । ते सतमंजिला हैं । तिनके कहे तिन भवनन के षट् ऊपर कहे छठयें लोक के जे ऊपर कहे छति है, तहाँ विचारि कै कहे जहाँ जैसो चाहिये तहाँ तैसो समुझि कै चित्र चित्रे हैं । अर्थात् पाँच चौक मध्य में रच्यो है । ते कैसे हैं, सातों लोक जे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल हैं, ते तरहारि कहे अधन्यून हैं जिन ते अर्थात् सातौ लोक में ऐसे धाम नहीं हैं । और षट् कहे छःलोक जे भू, अंतरिक्ष, स्वर्ग, ब्रह्मलोक, पितृलोक, सूर्यलोक हैं, तिन हूँ के ऊपर अर्थात् श्रेष्ठ है । यासों या जनायो कि सातवों

लोक जो वैकुण्ठ है, ताके सदृश है । तहाँ विचारि कै अर्थात् यथोचित स्थान में चित्र चित्रे हैं । अथवा सात लोक जे तरहारि कहे तरे के हैं अतलादि, और पट् जे भूलोक आदि हैं, तिनहूँ के ऊपर जो लोक है वैकुण्ठ, सो विचारि कै तिनके कहे ता वैकुण्ठ के धामन के चित्रसम चित्रे हैं । अर्थ यह कि वैकुण्ठ धामन के प्रतिमा बने हैं । अथवा विचारि कै तिनके वैकुण्ठ-धामन के चित्र चित्रे हैं । अर्थात् जे चित्र वैकुण्ठ-धामन में हैं, तेई इनमें चित्रे हैं ॥ २८ ॥ यामें पाँचहू चौकन को प्रयोजन कहत हैं । चौथे चौक में नृत्य की सभा रची, इत्यर्थः ॥ २९ ॥

दोधक छन्द ॥ मन्दिर कंचन को यक सोहै । श्वेत तहाँ छतुरी मन मोहै ॥ सोहत शीरष मेरुह मानो । सुन्दर देव-दिवान बखानो ॥ ३० ॥ मन्दिर लालन को यक सोहै । श्याम तहाँ छतुरी मन मोहै ॥ ताहि यहै उपमा सब साजै । सूरज-अंक मनो शनि राजै ॥ ३१ ॥ मन्दिर नीलम को यक सोहै । श्वेत तहाँ छतुरी मन मोहै ॥ मानहुँ हंसन की अवली-सी । प्राविटकाल उड़ाइ चली-सी ॥ ३२ ॥ मन्दिर श्वेत लसै अति भारी । सोहति है छतुरी अति कारी ॥ मानहुँ ईश्वर के सिर सोहै । मूरति राघव की मन मोहै ॥ ३३ ॥ तोटक छन्द ॥ सब धामन में यक धाम बन्यो । अति सुन्दर स्वेत स्वरूप सन्यो ॥ शनि सूर बृहस्पति-मण्डल में । परिपूरन चन्द्र मनो बल में ॥ ३४ ॥ चौपाई ॥ बहुधा मन्दिर देखे भले । देखन शुभ्र शालिका चले ॥ शीत-भीत ज्यों नेक न त्रसे । पलुक बसनशाला महँ लसे ॥ ३५ ॥ जलशाला चातक ज्यों गये । अलि ज्यों गन्धशालिका ठये ॥ निपट रङ्क ज्यों शोभित भये । मेवा की शाला में गये ॥ ३६ ॥

तिन पाँचहू मंदिरन को रूप क्रम सों पाँच छन्दन में कहत हैं । मेरुह कहे मेरु के । शीर्ष कहे अग्रभाग में । देवदिवान कहे देवसभा है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मेघन करि आच्छादित श्याम प्राविट्काल कहे वर्षाकाल सम नील मणिन को मंदिर है । हंसावली सम श्वेत छतुरी है ॥ ३२ ॥ ईश्वर, महादेव ॥३३॥ शनैश्चरादि के मण्डल में परिदृष्टि आदि दोष सों संयुक्त ह्वै कै चन्द्रमा हीन बल हू ह्वै जात है, तासों बल में कहे बलाधिक्य सों शुक्र कह्यो । इहाँ शनि सूर बृहस्पति-मंडल में कहे शनि सूर बृहस्पति आदि के मण्डल में जानौ । श्याम मंदिर शनैश्चर है, अरुण मंदिर सूर्य है, सुवर्ण मंदिर बृहस्पति है, श्वेत मंदिर शुक्र है ॥ ३४ ॥ शीत जो जाड़ो है, तासों भीत जो प्राणी हैं, सो जैसे अनेक वस्त्रन में प्रसन्नचित्त होत हैं, या प्रकार वस्त्रन के देखिबे में नेक न त्रसे कहे न सकुचे । अर्थात् प्रसन्नचित्त ह्वै सब वसनशाला के वस्त्र देख्यो, इत्यर्थः । याही विधि जलशाला आदि में चातक आदि सम जाइबे में केवल चित्तचोप की समता जानौ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

चतुर चोर-से शोभित भये । धरणीधर धनशाला गये ॥ मानिनीन के-से मनमेव । गये मानशाला में देव ॥ ३७ ॥ मंत्रिन स्यो बैठे सुख पाइ । पलुक मंत्रशाला में जाइ ॥ शुभ सिंगारशाला को देखि । उलटे ललित बयन से लेखि ॥ ३८ ॥ तोटक छन्द ॥ जब रावर में रघुनाथ गये । बहुधा अवलोकत शोभ भये ॥ सब चंदन की शुभ शुद्ध करी । मणि लाल शिशानि सुधारि धरी ॥ ३९ ॥ बरँगा अति लाल सु चन्दन के । उपजे बन सुन्दर नन्दन के ॥ गजदन्तन की शुभ सींक नई । तिन बीचन बीचन स्वर्णमई ॥ ४० ॥ तिनके शुभ छप्पर छाजत हैं । कलसा मणि लाल बिराजत हैं ॥ अति अद्भुत थम्भन की दुगई । गजदन्त सु चन्दन चित्र मई ॥ तिन माँझ लसैं बहु भायन के । शुभ कंचन फूल जरायन के ॥ ४१ ॥

मानिनीन के सदृश इत्यर्थः ॥ ३७ ॥ जा शाला में स्त्रीजन शृंगार करती हैं, अथवा भूषण आदि शृंगार-वस्तु जा शाला में धरी हैं, ताको देखत ही प्रेमातुर ह्वै रावर में जाइबे की इच्छा करि नयनसम कहे नयन-पूतरीसम उलटे कहे फिरे । नयन-पूतरी अतिशीघ्र फिरति है, तैसे अतिशीघ्र फिरे जानौ ॥ ३८ ॥ रावर स्त्री-

भवन। शिरा, टोपी ॥ ३६ ॥ ४० ॥ तिनके कहे गजदन्त सुवर्ण आदि के, अथवा तृणके दुगई द्रिकनाई, अथवा द्वै खम्भ एक में मिलाइ लागत हैं सो दुगई कहावत है ॥ ४१ ॥

रूपमाला छन्द ॥ वर्ण वर्ण जहाँ तहाँ बहुधा तने सुवितान। झालरैं मुकुतान की अरु झूमका बिन मान ॥ चौकठैं मणि नील की फटिकान के सु कपाट। देखि देखि सुहोत हैं सब देवता जनु भाट ॥ ४२ ॥ श्वेत पीत मनीन के परदा रचे रुचि लीन। देखि कै तहँ देखिये जनु लोल लोचन मीन ॥ शुभ्र हीरन को सु आँगन है हिंडोरा लाल। सुन्दरी जहँ झूलहीं प्रतिबिम्ब के जहँ जाल ॥ ४३ ॥ स्वागता छन्द ॥ धाम धाम प्रति आसन सोहैं। देखि देखि रघुनाथ विमोहैं ॥ बर्नि शोभ कवि कौन कहै जू। यत्र तत्र मन भूलि रहै जू ॥ ४४ ॥ दोहा ॥ जाके रूप न रेख गुण जानत वेद न गाथ। रंगमहल रघुनाथ गे राजसिरी के साथ ॥ ४५ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिंतामणिश्रीरामचन्द्र-चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां लोकवर्णनन्नामैकोन-त्रिंशः प्रकाशः ॥ २६ ॥

झूमका, झब्बा। बिन मान कहे बहुत ॥ ४२ ॥ तिनका देखि कै सबके लोचन मीनसम लोल होत हैं, यह देखियत है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जाके रूप आदि एकौ नहीं हैं ते राजश्री के साथ द्वै रंगमहल गये। तो रूपादियुक्त प्राणिन को तौ लै जायोई चाहै, इति भावार्थः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामेकोनत्रिंशःप्रकाशः ॥ २६ ॥

दोहा ॥ या तीसयें प्रकाश में बरन्यो बहु बिधि जानि ॥ रंगमहल संगीत अरु रामशयन सुखदानि ॥ १ ॥ पुनि सारि-

का जगाइबो भोजन बहुत प्रकार ॥ अरु बसन्त रघुबंशमणि वर्णन चन्द उदार ॥ २ ॥ चतुष्पदी छन्द ॥ द्युति रंगमहल की सहसबदन की बरनै मति न बिचारी। अध ऊरध राती रंग सँघाती रुचि बहुधा सुख कारी ॥ चित्री बहु चित्रनि परम बिचित्रनि रघुकुलचरित सुहाये। सब देव अदेवनि अरु नरदेवनि निरखि निरखि शिर नाये ॥ ३ ॥ आई बनि बाला गुणगणमाला बुधि-बल-रूपन बाढ़ी। शुभ जाति चित्रिणी चित्र-गेह ते निकसि भई जनु ठाढ़ी ॥ मानों गुणसंगनि यों प्रतिअंगनि रूपक रूप बिराजै। बीनानि बजावैं अद्भुत गावैं गिरा रागिनी लाजै ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ सँघाती कहे सघन है। रुचि, शोभा ॥ ३ ॥ मानो गानआदि जे गुण हैं, तिनके संगनि समूहनि सों युक्त जे प्रति अंग हैं, तिनसों युक्त रूप जो सुन्दरता के रूपक कहे विचित्र बिराजत हैं ॥ ४ ॥

पद्धटिका छन्द ॥ स्वर नाद ग्राम नृत्यति सताल। मुख वर्ग बिबिध आलापकाल ॥ बहु कला जाति मूर्च्छना मानि। बड़भाग गमक गुण चलत जानि ॥ ५ ॥

खर्जआदि जे सप्तस्वर हैं, तिनको जो काल है और तार आदि तीनि प्रकार को जो नाद है, और तीनि प्रकारके जे ग्राम हैं, और देशी आदि जे अनेक विधि के ताल हैं, तिन सहित नृत्यति कहे नाचती हैं। स्वरादीनां सर्वेषां लक्षणमुक्तं संगीतदर्पणे—तत्र स्वरलक्षणम्। श्रुत्यनन्तरभावित्वं यस्यानुरणनात्मकः। स्निग्धश्च रंजकश्चासौ स्वर इत्यभिधीयते ॥ १ ॥ अथवा—स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परिकीर्त्तितः ॥२॥ श्रुतिभ्यः स्युः स्वराः षड्जर्षभगांधारमध्यमाः ॥ पंचमोधैवतश्चाथ निपाद इति सप्त ते ॥३॥ अथ त्रिधा नादः—××× ध्वनौ तु मधुरास्फुटे। कलो मंद्रस्तु गंभीरे तारोत्युच्चैस्त्रयस्त्रिषु ॥ इत्यमरः ॥ अथ ग्रामलक्षणम्। ग्रामः स्वरसमूहः स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः ॥ तौ द्वौ धरबले तत्र स्यात् षड्जग्रामआदिमः ॥ १ ॥ द्वितीयो मध्यमग्रामस्तयोर्लक्षणमुच्यते। षड्जग्रामः पंचमे च चतुर्थे श्रुतिसंस्थिते ॥ २ ॥ स्वोपांत्यश्रुतिसंस्थोसि

मध्यमग्राम इष्यते । धद्वाधस्त्रिश्रुतिः षड्जे मध्यमे च चतुः श्रुतिः ॥ ३ ॥ ऋषभे श्रुतिमेकैकां गांधारश्चेत्समाश्रयेत् । यः श्रुतिं धो निषादस्तु धश्रुतिं सश्रुतिं स्रुतः ॥ ४ ॥ गांधारग्राममाचष्टे तदा तं नारदो मुनिः । प्रवर्त्तते स्वर्गलोके ग्रामोसौ न महीतले ॥ ५ ॥ अथ ताललक्षणं विनोदाचार्येणोक्तम् । हस्तद्वयस्य संयोगे वियोगे वापि वर्त्तते । व्याप्तिमान् यो दशप्राणैः सकालस्तालसंज्ञकः ॥ तथा च सारोद्धारे—कालस्ताल इति प्रोक्तः सोऽवच्छिन्नो द्रुतादिभिः ॥ गीतादि-मानकर्त्तास्यात्स द्वेधा कथितो बुधैः ॥ तथा च संगीतार्णवे—कालः क्रिया च मानं च संभवन्ति यथा सह । तथा तालस्य संभूतिरिति ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ मार्गदेशीयतत्त्वेन तालोसौ द्विविधो मतः । शुद्धशालंगसंकीर्णास्तालभेदाः क्रमान्मताः ॥ तालः कालक्रियामानमित्यमरः ॥ १ ॥ और आलाप के काल कहे समय में मुख विविध वर्ग कहे अनेक रूप होत हैं । आलापलक्षणम्—रागालापनमालप्तिः प्रकटीकरणं मतम् ॥ २ ॥ और बहु कहे बहुत प्रकार की जे कला हैं, और पाँच जे जाति हैं, और एकइस जे मूर्च्छना हैं, और बड़ कहे बड़े, अर्थात् नीको जो चारि प्रकार को भाग है, और पंचदश प्रकार की जो गमक है, इनके स्वर केते गुण हैं । तिन सहित नृत्य में चलति कहे चलती हैं, यह जानि कहे जानौ । अथ कलाः चूड़ामणिः—दक्षिणो वार्त्त-कश्चित्रो ध्रुवचित्रतरस्तथा । अथ चित्रततश्चेति षण्मार्गाः शास्त्रसंमताः ॥ ध्रुवादिककलाष्टौच मार्गे दक्षिणसंज्ञके । ध्रुवका सर्पिणी चैव पताकापति-तास्तथा ॥ चतस्रो वार्तिके ज्ञेयाश्चित्रेथ पुनरुच्यते । ध्रुवका पतिता चेति योजनीया विशेषतः ॥ ध्रुवे कलैका विज्ञेया शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता ॥ अथ चित्रतरे मार्गे कला च द्रुतसंमिता ॥ मार्गे चित्रतमे ज्ञेया कला करजसंज्ञिता ॥ अथ जातयः—चतुरस्रस्तथा तिस्रः खण्डो मिश्रस्तथैव च । संकीर्णा पंच विज्ञेया जातयः क्रमशो बुधैः ॥ चतुर्वर्णैस्त्रिभिर्वर्णैः पंचवर्णैस्तथैव च । सप्त-वर्णैश्च नवभिर्जातयः क्रमशोदिताः ॥ अथ मूर्च्छनालक्षणम्—क्रमात्स्व-राणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् । मूर्च्छनेत्युच्यते ग्रामत्रये ताः सप्त सप्त च ॥ अथ भागलक्षणम्—धातुप्रबंधावयवः सचोद्ग्राहादिभेदतः । चतुर्धा कथि-तो भागस्तदानूद्ग्राहसंज्ञकः ॥ आदावुद्ग्राह्यते गीतं येनोद्ग्राहस्ततो भवेत् । मेलापको द्वितीयस्तु ग्राहकध्रुवमेलनात् ॥ ध्रुवत्वाद्ध्रुवसंज्ञस्तु तृतीयो भाग उच्य-ते । आभोगस्त्वंतिमो भागो गीतपूर्णत्वसूचकः ॥ अथ गमकलक्षणम्—स्वर-स्य कंपो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः । भेदाः पंचदशैवास्य कथितास्तिरिपा-दयः ॥ ५ ॥

बहुवर्ण बिबिध आलापकालि । मुख चालि चारु अरु शब्द चालि ॥ बहु उडुप त्रियगपति पति अड़ाल । अरु लाग धाउ रापरंगाल ॥ ६ ॥ उलथा टेंकी आलम सदिंड । पद-पलटि हुरुमयी निशँक चिंड ॥ असु तिन कि भ्रमनि देखि मतिधीर । भ्रमि सीखत हैं बहुधा समीर ॥ ७ ॥ मोटनक छन्द ॥ नाचैं रसबेष अशेष तबै । बरसैं सुरसैं बहुभाँति सबै ॥ नव हू रसमिश्रित भाव रचैं । कौनो नहिं हस्तकभेद बचैं ॥ ८ ॥ दोहा ॥ पाइँ पखाउज ताल सों प्रतिधुनि सुनियत गीत ॥ मानहु चित्र बिचित्र मति पढ़त सकल संगीत ॥ ९ ॥ अमल कमल कर अंगुली सकल गुननि की मूरि ॥ लागत मूठ मृदंगमुख शब्द रहत भरिपूरि ॥ १० ॥

प्रथम गान को विषय-निरूपण करि, अब द्वै छन्द में नृत्य को विषय-निरूपण करत हैं । द्वै छन्द को अन्वय एक है । आलापकालि कहे आलापकालीन अर्थात् आलापकाल के योग्य । बहुवर्ण कहे अनेक रंग की, अर्थात् अनेक तरह की । विविध कहे अनेक जे चारु कहे सुन्दर मुखचालि नृत्य हैं । और शब्दचालि और बहुत प्रकार के जे उडुप हैं । और (त्रियगपति तिर्यग्पति) कहे पक्षिशार्दूल-नृत्य । और पति और अड़ाल और उलथा और टेंकी और आलम नृत्य । सदिंड कहे दिंड-नृत्यसहित । और पदपलटी और हुरुमयी और निशंक और चिंड ये जे नृत्य हैं । और कहूँ उडुप तिरियपति बट अड़ाल पाठ है । तौ तिरिय और बट येऊ नृत्य के भेद जानौ । तिनमें तिन छिन की असु कहे शीघ्र भ्रमनि कहे घूमनि देखि कै मतिधीर कहे धीर मति सों, अर्थात् मति में धैर्य्य धरि कै एकाग्रचित्त ह्वै कै इति । भ्रमि कहे बघरुरा के व्याज घूमि घूमि कै समीर जे वायु हैं ते सीखत हैं । अथवा तिनकी भ्रमनि देखि कै अपनी शीघ्रता के गरूर करिकै मति है धीर जिनकी, ऐसे जे समीर हैं, ते भ्रमि कहे संदेह को प्राप्त ह्वै कै, अर्थात् आपने सों अधिक जानि आतुर ह्वै कै शीघ्रता सीखत हैं । नृत्यानां लक्षणमुक्तं संगीतदर्पणे— अथ मुखचालिः ॥ नृत्यादौ प्रथमं नृत्यं मुखचालिरितिस्मृता ॥१॥ अथ शब्दचालिः ॥ प्राग्वत्कृत्वास्थानहस्तौ मध्यसंचेन नर्त्तकः । यत्रस्थित्वैकपादेन

शब्दवर्णानुगामिनीम् ॥ गतिं नयेद् द्वितीयेन दक्षिणाध्वनि शोभनाम् । तद्वत्पादांतरेणाथ क्रमेणैतद्द्वयोर्यदा ॥ पर्यायेण गतिंकुर्याद्वार्तिकादिषु पञ्चसु । मार्गेष्वसौशब्दचालिः पण्डितैश्च निरूपिता ॥ २ ॥ अथोडुपानि ॥ नेरिःकरणनेरिश्च मित्रं चित्रं तथा भवेत् । नत्रश्च जारमानश्च मुरुरिंडमुरुं तथा । हुल्लश्च लावणीज्ञेया कर्त्तरीतुल्लकन्तथा । प्रसरश्च द्वादशस्युरुडुपानि यथाक्रमात् ॥ ३ ॥ अथ पक्षिशार्दूलनृत्यलक्षणम् ॥ यदिमण्डीमधिष्ठाय प्रसृतौ भ्रमतः करौ । तदा तं नरशार्दूलाः पक्षिशार्दूलमूचिरे ॥ ४ ॥ अथ पतिनृत्यलक्षणम् ॥ कूटाक्षराभ्यांकान्यांचिन्निमित्तात्यन्तकोमलाः । एकरूपाक्षरः चञ्चत्पुटतालानुगापदा ॥ वाचतेयोवाद्यखण्डो विरामैर्भूरिभिर्मुहुः ॥ यो निर्मितोवाद्यपाठैर्वाद्यभेदोपतिःस्मृतः ॥ ५ ॥ अथाडाललक्षणम् ॥ सुलूंबद्ध्वा तदोत्प्लुत्य चरणैः पक्षिपक्षवत् । भ्रामित्वा निपतेद्भूमौ तदडालमितीरितम् ॥ ६ ॥ अथ लागनृत्यलक्षणम् ॥ लागशब्देन कर्णाटभाषया उत्प्लुतिरिति ॥ ७ ॥ अथ धावनृत्यलक्षणम् ॥ आकाशचार्योद्वित्राश्चेत्तश्चतिरियम्भवेत् ॥ अन्तेमुरुतदोद्दिष्टं धावनृत्यं नटोत्तमैः ॥ ८ ॥ अथ रापरङ्गालनृत्यलक्षणम् ॥ शूलं वद्ध्वैकपादेन सहैवानुपतेद्यदि । द्वितीयोऽपि तदा रापरङ्गालन्तद्विदोविदुः ॥ ९ ॥ अथ उलथानृत्यलक्षणम् ॥ उत्प्लुत्याद्यैर्यदानृत्येत् करणैस्तालसम्मितैः । तदोत्प्लुत्याद्यकरणं नृत्यं नृत्यविदोविदुः ॥ अथवा उलथा नृत्य को लक्षण नामार्थ ही है ॥ १० ॥ अथ टेंकीनृत्यलक्षणम् ॥ पादौ समौ यदायस्मिन् पार्श्वेचापरपार्श्वता । उत्प्लुत्योत्पादयेचित्रं तदा टेंकीति कथ्यते ॥ ११ ॥ अथालमनृत्यलक्षणम् ॥ भूमावेकं समास्थाय द्वितीयं पूर्ववद्यदा ॥ पातयेच्चरणं चारु तंत्रीशश्चतुराविदुः ॥ याही को नामान्तर आलम है ॥ १२ ॥ अथ दिंडनृत्यलक्षणम् ॥ उत्प्लुत्य चरणद्वन्द्वं वस्त्रनिष्पीडनोपमम् । परिभ्राम्यावनीं याति यदि तद्दिंडमुच्यते ॥ १३ ॥ अथ पदपलटीनृत्यलक्षणम् ॥ पुरः प्रसार्य्य चरणं लंघयेदपरांघ्रिणाम् ॥ सुलूपूर्वं तदान्वर्था प्रोक्ता लङ्घितजङ्घिका ॥ याही को अन्वर्थ पदपलटी है ॥ १४ ॥ अथ हुरुमयीनृत्यलक्षणम् ॥ अलातांपरिवृत्त्यांगं पादपृष्ठं गतं यदा । अलातांघ्रौ पृष्ठगते शीघ्रमन्यांघ्रि लङ्घयेत् ॥ लङ्घयेद्दक्षिणान्येन प्रोक्ता हुरुमयी नटैः ॥ १५ ॥ अथ निःशङ्कनृत्यलक्षणम् ॥ सुलूपूर्वपदोत्प्लुत्य मिलितौ चरणौ समौ । दूरम्भूमौनिपतितः सनिःशङ्कः प्रकीर्त्तितः ॥ १६ ॥ अथ चिंडनृत्यलक्षणम् ॥ विडचिंडुः कालचारी इति चिंडुर्द्विधाभवेत् । यदिपिल्लस्तु मुख्योत्र निबद्धोविडचिंडुकः ॥ तत्तज्जात्यनुकारेण कालचारीतिकीर्त्तितः ।

तालतानसुलूतुंगघर्घरीध्वनिपेशलम् ॥ वादते तुडते केचिद् गीतेन यतिपूर्वकम् । तत्तज्जातियुतंनृत्यं नानागतिविचित्रितम् । चारुपादानुचंचत्र किंकिणीध्वनि-पेशलम् । कालासैरपिलास्याङ्गैरङ्गैरन्तरान्तरा ॥ धृतहस्तत्रिशूलादि यत्र नृत्यं समाचारेत् । तदा धीरैः समाख्यातं चिंडनृत्यंमनोहरम् ॥ १७ ॥ ६ ॥ ७ ॥ रसवेष कहे रस-स्वरूप, अर्थात् शृङ्गार आदि जे नव रस हैं, तिनमें जा रस को प्रबन्ध गावती, ता रस के रूप आप ह्वै जाती हैं। और बहुत प्रकार सों रसस्वाद को वर्षती हैं। भाव कहे चेष्टा। हस्तक, हस्तक्रिया। रंगमहल में स्त्रियन के पाँव की और पखावज की तालसहित प्रतिधुनि जो झाँई-शब्द है ताहू को गीत सुनियत है, सो मानो विचित्रमति जे स्त्री-पुरुषन के चित्र हैं, ते ताही विधि पाँव की और पखावज की ताल दै कै ताही विधि गीत को गाइ सब संगीत को पढ़त हैं ॥ ८ ॥ ६ ॥ १० ॥

घनाक्षरी ॥ अपघन घायन बिलोकियत घायलनि घने सुख केशोदास प्रकट प्रमान है। मोहै मन भूलै तन नयन रुदन होत सूखै सोच पोच दुख मारन बिधान है ॥ आगम अगम तन्त्र शोधि सब यन्त्र मन्त्र निगम निवारिबे को केवल अयान है। बालन को तनत्रान अमित प्रमान सब रीझि राम-देव कामदेव कैसो बान है ॥ ११ ॥

रीझि रामदेव कहत हैं इति शेषः। कहा कहत हैं कि कामदेव के बाणनको त्राण वख़्तर बालकन को तन है। अर्थात् जब लौं जीव बालकन के तनरूपी त्राण में रह्यो, तब लौं कामबाण नहीं लागत। और गान जो है ताको त्राण बालकन हू को तन ही है। अर्थात् बालकनहू को व्याप्त होत है, इतनोई भेद है। और अमित कहे अनन्त। सब बात प्रमाण कहे तुल्य है। तासों गान कामदेव को ऐसो बाण है। कैसो है कामदेव को बाण और गान, जाके वायु अपघन जो शरीर है तामें नहीं बिलोकियत, और घायलन के घनो सुख होत है। और मन मोह की मूर्च्छा को प्राप्त होत है। और तन की सुधि भूलि जाति है। और नयनन में रोदन होत है। और पोच कहे नागा जो राज्यादि वस्तु को शोच है, सो सूखि जात है। और मारण ही है विधान जाको, ऐसो दुःख होत है। अथवा दुःख को मारण कहे नाशकर्त्ता है विधान जाको। और अगम कहे अनन्त आगम जे धर्मशास्त्र हैं,

और अगम जे तन्त्रशास्त्र हैं, तिनके जे शोधि कहे ढूँढ़ि कै, अथवा शुद्ध करि कै, यन्त्र और मन्त्र हैं, और निगम जे वेद हैं, तिनके जे यन्त्र-मन्त्र हैं, ते सब ताके निवारण करिवे को केवल अयान अज्ञान हैं। केवल पद को अर्थ यह कि निवारण की विधि वे जानत नहीं ॥ ११ ॥

दोहा ॥ कोटि भाँति संगीत सुनि केशव श्रीरघुनाथ ॥ सीता जू के घर गये गहे प्रीति को हाथ ॥ १२ ॥ सुन्दरी छन्द ॥ सुन्दरि मन्दिर में मन मोहति । स्वर्ण सिंहासन ऊपर सोहति ॥ पंकज के करहाटक मानहु । है कमला बिमला यह जानहु ॥ १३ ॥ फूलन को सु बितान तन्यो बर । कञ्चन को पलिका यक ता तर ॥ ज्योति जराय जरेउ अति शोभनु । सूरज-मंडल ते निकस्यो जनु ॥ १४ ॥

जैसे सखी को हाथ गहि स्त्री के पास सब जात हैं, तैसे प्रीतिरूपा जो सखी है, ताको हाथ गहे रामचंद्र सीता के घर गये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

कुसुमबिचित्रा छन्द ॥ दर्शत ही नैननि रुचि बनै । बसन बिछाये सब सुख सनै ॥ अति रुचि सोहै कबहुँ न सुन्यो । मानों तनु लै शशि-कर चुन्यो ॥ १५ ॥ चम्पकदलद्युति के गेडुये । मनहुँ रूप के रूपक उये ॥ कुसुम गुलाबन की गलसुई । बरनी जाय न नयनन छुई ॥ १६ ॥ दोहा ॥ रामचन्द्र रमणीयतर ता पर पौढ़े जाइ ॥ पदपंकज पखराइ कै कहि केशव सुख पाइ ॥ १७ ॥ तोमर छन्द ॥ जिनके न रूप न रेख । ते पौढ़ियो नरबेख ॥ निशि नाशियो त्यहि बार । बहु बन्दि बोलत द्वार ॥ १८ ॥

शुचि कहे श्वेत मानों शशि चन्द्रमा को तनु कहे त्वचा लै चुन्यो कहे बनायो है। अथवा मानों शशि जो चंद्रमा है तेहि तनु कहे सूक्ष्म जे कर कहे किरणै हैं, तिनको लैकै ता बसन को बनायो है ॥ १५ ॥ गेडुआ, तकिया। चंपकदल-द्युति के गेडुआ धरिवे को हेतु यह कि सीताजू पद्ममुखी हैं, तासों मुख को पद्म जानि सोवत में गेडुआन को देखि चंपकदल के भय सों भ्रमर मुखमें दंश ना करैं। चंपकदल के निकट भ्रमर नहीं जात, यह प्रसिद्ध है। रूपक कहे प्रतिमा।

कुसुम कहे फूल जे गुलाबन के हैं तिनकी गलसुई, गेडुआ-भेद है, ते वचन करि वर्णी नहीं जातीं, और नयनन करि छुई नहीं जातीं, अर्थात् अति सुन्दरी हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

दोहा॥ राजलोक जाग्यो सबै बन्दीजन के शोर ॥ गये जगावन राम पै सारिकादि उठि भोर ॥ १९ ॥ सारिका—हरिप्रिया छन्द ॥ जागियो त्रिलोकदेव देवदेव रामदेव भोर भयो भूमिदेव भक्त दरश पावै। ब्रह्मा-मन-मन्त्र-बरन बिष्णु-हृदय-चातक-घन रुद्र-हृदय-कमल-मित्र जगत गीत गावै ॥ गगन उदित रबि अनंत शुक्रादिक ज्योतिवंत छन छन छबि छीन होत लीन पीन तारे। मानहुँ परदेशदेश ब्रह्मदोष के प्रवेश ठौर ठौर ते बिलात जात भूप भारे ॥ २० ॥

राजलोक कहे राजलोक के सब जन जागे ॥ १९ ॥ पाँच छंद को अन्वय एक है। भूमिदेव अर्थात् हे भूपति, ब्रह्मा को मनरूपी जो मंत्र है, ताके तुम वर्ण कहे अंक हौ। जैसे अंकन में मंत्र बस्यो रहत है, तैसे ब्रह्मा को मन तुममें सदा बस्यो रहत है। और विष्णु को जो हृदयरूपी चातक है ताके घन कहे सजल मेघ हौ। जैसे घन चातक की तृषा बुझावत है, तैसे तुम विष्णु के हृदय की तृषा बुझावत हौ। और रुद्र को हृदयरूपी जो कमल है, ताके मित्र सूर्य हौ। जैसे कमल को सूर्य प्रफुल्लित करत हैं, तैसे तुम रुद्र के हृदय को प्रफुल्लित करत हौ। या प्रकार सों तुम्हारो गीत जगत् गान करत है। गगनमें रवि उदित भये तासों अनन्त कहे अनेक जे शुक्रादिक ज्योतिवंतन के पीन कहे बड़े तारे नक्षत्र हैं, ते क्षण क्षण में छवि सों क्षीण ह्वै गगन में लीन होत जात हैं, अर्थात् बिलात जात हैं। मानों ब्रह्मदोष के प्रवेश सों जे भूप भय मानि परदेश गये हैं, तेऊ, और जे आपने देश में हैं तेऊ, बिलात जात हैं, तैसे जे नक्षत्र स्थान में हैं ध्रुवादि स्थान सों चलित हैं ते सब बिलात जात हैं, इत्यर्थः ॥ २० ॥

अमल कमल तजि अमोल मधुप लोल टोल टोल बैठत उड़ि करिकपोल दान-मान-कारी। मानहुँ मुनि ज्ञानवृद्ध छोड़ि छोड़ि गृह समृद्ध सेवत गिरिगण प्रसिद्ध सिद्धि

सिद्धिधारी ॥ तरनिकिरनि उदित भई दीप-जोति मलिन गई सदय हृदय बोध-उदय ज्यों कुबुद्धि नासै। चक्रबाक निकट गई चकई मन मुदित भई जैसे निज जोति पाइ जीव जोति भासै ॥ २१ ॥ अरुन तरनि के बिलास एक दोइ उडु अकाश कलि के से संत ईश दिशन अंत राखै। दीखत आनन्दकन्द निशि बिन द्युति-हीन चन्द ज्यों प्रबीन युवतिहीन पुरुष दीन भाखै ॥ निशिचरचय के बिलास हास होत है निरास सूर के प्रकास त्रास नाशत तम भारे। फूलत शुभ सकल गात अशुभ शैल से बिलात आवत ज्यों सुखद राम नाम मूख तिहारे॥ २२॥ सारो शुक शुभ मराल केकी कोकिल रसाल बोलत कल पारावत भूरि भेद गुनिये। मनहुँ मदन पंडित ऋषि शिष्य गुणनि मंडित करि अपनी गुदरैनि देन पठये प्रभु सुनिये॥ सोदर सुत मन्त्रि मित्र दिशि दिशि के नृप बिचित्र पंडित मुनि कबि प्रसिद्ध सिद्ध द्वार ठाढ़े। रामचन्द्र चन्द्र ओर मानहुँ चितवत चकोर कुबलय जल जलधि जोर चोप चित्त बाढ़े॥ २३ ॥ नचत रचत रुचिर एक याचक गुनगन अनेक चारन मागध अगाध बिरद बन्दि टेरें। मानहुँ मंडूक मोर चातक चक करत शोर तड़ित बसन संयुत घनश्याम हेत तेरे॥ केशव सुनि बचन चारु जागे दशरथकुमारु रूप प्याइ ज्याइ लीन जन जल थल ओक के। बोलि हँसि बिलोकि बीर दान मान हरी पीर पूरे अभिलाष लाख भाँति लोक लोक के ॥ २४ ॥

टोल-टोल कहे झुंड-झुंड। कैसे हैं करि दान जो मद है ताके कर्त्ता, और श्लष सों दाता, और मान कहे आदर के कर्त्ता। भ्रमर जात हैं, तिन्हें शिर पै बैठावत हैं। दाता है आदर करै ताके समीप सब प्रसन्न है जात हैं, इति भावार्थः। समृद्ध कहे सम्पत्तियुक्त। कैसे हैं मुनिगण,

सिद्ध कहे आश्रमे वृक्ष जो सिद्धि कहे तपसिद्धि अथवा अष्ट सिद्धि हैं, तिन्हैं धरे हैं। अथवा गिरिगणन ही को विशेषण है। सिद्धि जो सिद्धि तपसिद्धि है तिनको धरे हैं, अर्थात् जिन पर्वतन में जात ही विन तप किये ही तप सिद्धि प्राप्त होति है। मलिन गई कहे मलिनता को प्राप्त भई। बोध कहे ज्ञानसम तरणि जे सूर्य हैं तिनकी किरणैं हैं, कुबुद्धिसम दीपज्योति है, हृदयसम भूमण्डल जानो। निजज्योति अर्थात् ब्रह्मज्योति। उडु, नक्षत्र। आनन्दकन्द चन्द्र को विशेषण है। सूर्य के प्रकाश के त्रास सों निशिचर कहे चोर, परस्त्रीगामी, कुलटा आदि के जे विलास और हास हैं ते निरास कहे नाश होत हैं। और भारे जे तम अन्धकार हैं, ते नाशत हैं। और शुभ कहे तपस्वी आदि प्राणी पूजा आदि कर्म तिनके सकल गात फूलत कहे प्रफुल्लित होत हैं। हे राम, जैसे तुम्हारे नाम को मुख में लेत शुभ जे मंगल-आदि हैं, तिनके गात प्रफुल्लित होत हैं। और शैल कहे पर्वतसम अशुभ अमङ्गल बिलात हैं। मदनरूपी जो पंडित ऋषि कहे पंडित-श्रेष्ठ हैं। गुदरैनि, परीक्षा। रामचंद्ररूपी जे चंद्र तुम हौ, तिनकी ओर। दर्शन के चोप चित्तन में जोर कहे अति बाढ़े हैं जिनके, ऐसे चकोर और कुवलय कोई और जलधि के जल हैं। मानों या प्रकार सों दर आदि द्वार पै ठाढ़े चितवत हैं। एकै अर्थ नृत्यकारी नचत हैं। और और जे अनेक याचक हैं, ते अपने गुणगण रचत हैं। छन्द उपजाति है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

दोहा ॥ जागत श्रीरघुनाथ के बाजे एकहि बार ॥ निगर नगारे नगर के केशव आठहु द्वार ॥ २५ ॥ मरहट्टा छन्द ॥ दिन दुष्टनिकन्दन श्रीरघुनन्दन आँगन आये जानि। आई नव नारी सुभग सिंगारी कंचनझारी पानि ॥ दात्योनि करत हैं मनन गहत हैं औरि बोरि घनसार। सजि सजि बिधि मूकनि प्रतिगंडूषनि डारत गहत अपार ॥ २६ ॥ दोहा ॥ सन्ध्या करि रविपाँय परि बाहर आये राम ॥ गणक चिकित्सक आसिषा बन्धुन किये प्रनाम ॥ २७ ॥ मरहट्टा छन्द ॥ सुनि शत्रु मित्र की नृपचरित्र की ख्याति रावत बात। सुनि याचक-जन के पशु पच्छिन के गुनगन अति अवदात ॥ शुभ तन

मज्जन करि स्नान दान करि पूजे पूरणदेव। मिलि मित्र सहोदर बन्धु शुभोदर कीन्हे भोजन भेव॥ २८॥

निगर कहे मौन। विधि को सजिकै प्रतिगण्डूषनि कहे प्रतिकुल्लन को डारत हैं और गहत हैं। असार, अनेक अथवा प्रतिगण्डूषनि कहे कुल्लाकुल्ला प्रति अर्थ हर कुल्ला में मूकनि कहे कुल्ला के त्यागन की विधि को सजि कै डारत हैं, त्यागत हैं, फेरि और गहत हैं॥ २५॥ २६॥ गणक, ज्योतिषी। चिकित्सक, वैद्य॥ २७॥ मज्जन कहे उबटन आदि। सहोदर, भरत आदि बन्धु। जाति, जन, बिरादरी इति। शुभोदर कहे नीकी विधि उदरपूर्ति करिकै। अथवा शुभोदर, बड़े भोजनकर्त्ता॥ २८॥

दण्डक॥ निपट नवीन रोगहीन बहु छीर लीन पीन-बच्छ पीनतन तापन हरत हैं। ताँबे मढ़ी पीठि लागे रूपक खुरन डीठि डीठि स्वर्ण शृंग मन आनँद भरत हैं॥ काँसे की दोहनी श्याम पाट की ललित नोइ घटन सों पूजि पूजि पाँयनि परत हैं। शोभन सनौढियन रामचन्द्र दिनप्रति गो शत सहस्र दै कै भोजन करत हैं॥ २९॥ तोटक छन्द॥ तहँ भोजन श्रीरघुनाथ करैं। षटरीति मिठाइन चित्त हरैं॥ पुनि खीर सों चौबिधि भात बन्यो। तकि तीनि प्रकारनि शोभ सन्यो॥ ३०॥ षट भाँति पहीति बनाइ सची। पुनि पाँच सुब्यंजन रीति रची॥ बिधि पाँच सु रोटिन माँगत हैं। बिधि पाँच बरा अनुरागत हैं॥ ३१॥

॥ २९॥ चौविधि को अन्वय दूनों ओर है। अर्थात् चारि विधि की खीर बनी है, और चारि विधि को भात बन्यो है॥ ३०॥ सची कहे संचित कर्‌यो, अर्थात् एकत्र कर्‌यो॥ ३१॥

बिधि पाँच अथान बनाइ कियो। पुनि द्वै बिधि खीर सु माँगि लियो॥ पुनि झारि सु द्वै बिधि स्वाद घने। बिधि दोइ पछ्यावरि सात पने॥ ३२॥ दोहा॥ पाँच भाँति ज्योनार सब षट रस रुचिर प्रकास॥ भोजन करि रघुनाथ जू बोले केशव-

दास ॥ ३३ ॥ हरिलीला छन्द ॥ बैठे विशुद्ध गृह अग्रज अग्र जाइ । देखी वसन्त ऋतु सुन्दर मोददाइ ॥ बौरे रसाल-कुल कोयल केलि काल । मानों अनंगध्वज राजत श्रीविशाल ॥ ३४ ॥

अथान, अचार । भारि आम्र के चूर्ण में जीरजकादि डारि जल में घोरि बनति है । पश्चिम में प्रसिद्ध है । पञ्चावरि, सिखरनि को भेद है । कहूँ मूरनि कहत हैं । या सब प्रकार के भोजन मिलाइ छप्पन होत हैं ॥ ३२ ॥ शर्करा आदि मधुर, आम्र आदि अम्ल, करैला आदि तिक्त, मरिच आदि कटु, लवण आदि लवण, हर्र आदि कषाय, ये जे षट् छः रस हैं, तिनको है रुचिर प्रकाश जामें ऐसी जो चोष्य आम्र आदि, पेय दुग्ध आदि, भोज्य भात आदि, लेह्य अवलेह आदि, चर्व्य पिस्ता बदाम आदि; यह पाँच भाँति की जेवनार है, ताको भोजन करिकै रामचन्द्र बोले । भोजन समय में बोल्यो न चाहिये, यह धर्मशास्त्रोक्त है ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रजू भोजन करिकै गृहअग्रज कहे गृह में अग्रज श्रेष्ठ जो गृह घर है, ताके अग्रभाग में वसन्त-बहार देखिबे को जाइ कै बैठत भये । कोमल कहे सुगन्धयुक्त । रसाल आम्र-वृक्ष बौरे हैं, सो मानों यह केलि को काल कहे समय है, यह प्रसिद्ध करिबे के लिये मानों अनंग जो काम है, ताके विशाल ध्वजा राजत हैं । जो कछू वस्तु प्रसिद्ध करिबो होत है, ता लिये सब ध्वजा बाँधत हैं यह प्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥

उपजाति छंद । फूली लवंग लवली लतिका बिलोल । भूले जहाँ भ्रमर विभ्रम मत्त डोल ॥ बोलैं सुहंस शुक कोकिल केकि-राज । मानों बसन्त भट बोलत युद्धकाज ॥ ३५ ॥ सोहै पराग चहुँ भाग उड़ै सुगन्ध । जाते बिदेश विरहीजन होत अन्ध ॥ पालाशमाल विन पत्र बिराजमान । मानों बसन्त दिय कामहिं अग्निबान ॥ ३६ ॥ सवैया ॥ फूले पलास बिलासथली बहु केशवदास प्रकास न थोरे । शेष अशेष मुखानल की जनु ज्वाल बिशाल चली दिवि ओरे ॥ किंशुक-श्री शुकतुंडन की रुचि राचे रसातल में चित चोरे । चोंचन चापि चहूँदिशि डोलत चारु

चकोर अँगारन भोरे ॥ ३७ ॥ मौक्तिकदाम छन्द ॥ जरै बिरही जन जोवत गात। उघरे उर शीतल से जलजात ॥ किधौं मन मीनन को रघुनाथ। पसारि दियो जनु मन्मथ हाथ ॥ ३८ ॥

लवली, हरफारयोरी। पुष्परस-पान सों मत्त जे भ्रमर हैं, ते विभ्रम में भूले डोल कहे डोलत हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ विलासस्थलिन में बहुत पलाश फूले हैं। रसातल, भूतल। दिवि, आकाश। किंशुक कहे पलाश-पुष्प ॥ ३७ ॥ सीताजू की उक्ति रामचन्द्र प्रति है। उघरे हैं उर कहे हृदय अर्थात् सिफाकन्द जिनके, ऐसे जे शीतल से कहे शीतल जलजात कमल हैं, तिनको देखत विरही जनन के गात जरत हैं। सो हे रघुनाथ, मन-मीनन के गहिबे के अर्थ मानों मन्मथ काम हाथ पसारि दियो है। अर्थात् जाको मन कमलन में जात है, ताको गहि राखत है। मन्मथ-हाथ-सम कहि कमलन की अति सुन्दरता जनायो है ॥ ३८ ॥

जिते नर नागर लोग बिचारि। सबै बरनैं रघुनाथ निहारि ॥ किधौं परमानँद को यह मूल। बिलोकत ही सु हरै सब शूल ॥ ३९ ॥ किधौं बन-जीवन को मधुमास। रचे जगलोचन भौंर-बिलास ॥ किधौं मधु को सुख देत अनंग। धर्यो मन मीनानि कारन अंग ॥ ४० ॥ किधौं रति कीरति-बेलि निकुंज। बसै गुन-पक्षिन को जहँ पुंज ॥ किधौं सरसीरुह ऊपर हंस। किधौं उदयाचल ऊपर हंस ॥ ४१ ॥ दोहा ॥ प्राची दिशि शोभा समय [illegible] भयो निशिनाथ ॥ बरनत ताहि बिलोकि कै सीता सीतानाथ ॥ ४२ ॥

नागर लोग कहे नगर के श्रेष्ठ जो नर हैं, ते रामचन्द्र को बैठे देखि परस्पर वर्णत हैं। मूल के भक्षण सों शूल दूरि होत है और रामरूपी जो आनन्दमूल है, ताके देखत ही शूल दूरि होत है ॥ ३९ ॥ कै वनरूपी जे जीव प्राणी हैं, तिनको मधुमास चैत्रमास है। जैसे चैत्र वन को फूलवन को फुलावत है, तैसे रामचन्द्र जगत् के प्राणिनको प्रफुल्लित करत हैं। और मधुमास में भ्रमर अनुरागत हैं, इहाँ जग के लोचन भ्रमर के विलास सों रचे कहे अनुरागे हैं। और

कि रामचन्द्र नहीं हैं, अनंग काम हैं । वनमें विराजमान जा मधु वसंत ताको दरश दैके सुखदेत हैं । कैसो है अनंग, सबके मनरूपी जे मीन मत्स्य हैं, तिनके कारण कहे गहिवे के अर्थ अंगन को धारण कर्यो है । देखत ही रामचन्द्र सबके मन का गहि राखत हैं, तासा जानो ॥ ४० ॥ रति प्रीति और कीर्ति यशरूपी जो बेलि हैं, तिनको निकुञ्ज है । कुञ्ज में पक्षी बसत हैं, रामचन्द्र में गुणरूपी जे पक्षी हैं तिनके पुञ्ज समूह बसत हैं । "निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे इत्यमरः" । सरसीरुह और उदयाचल के समान गृह है । हंस पक्षी और हंस सूर्य्यके सम रामचन्द्र हैं ॥ ४१ ॥ प्राची, पूर्व ॥ ४२ ॥

हरिणी छन्द ॥ फूलन की शुभ गेंद नई । सूँघि शची जनु डारि दई ॥ दर्पण सों शशि श्रीरति को । आसन काम महीपति को ॥ ४३ ॥ मोतिन को श्रुति भूषण मनो । भूलि गई रवि की तिय मनो ॥ अंगद को पितु सो सुनिये । सोहत तारहि संग लिये ॥ भूप मनोभव छत्र धर्यो । लोक बियोगिन को बिडर्यो ॥ ४४ ॥ देवनदीजल राम कह्यो । मानहुँ फूलि सरोज रह्यो ॥ फेन किधौं नभसिन्धु लसै । देवनदीजल हंस बसै ॥ ४५ ॥ दोहा ॥ चारु चन्द्रिका-सिन्धु में शीतल स्वच्छ सतेज ॥ मनो शेषमय शोभिजै हरिणाधिष्ठित सेज ॥ ४६ ॥

शशि जो चन्द्र है, सो श्रीरति जो काम की स्त्री है ताको दर्पण सो है ॥ ४३ ॥ तारा नक्षत्र और बालि की स्त्री । मनोभव कामवियोगी स्त्री पति परस्पर-वियोगी और विरोधी । छंद उपजाति है ॥ ४४ ॥ या प्रकार सीता को वर्णन सुनिकै रामचन्द्र कह्यो । नभसिंधु, आकाशगङ्गा ॥ ४५ ॥ हरिणाधिष्ठित है, तासों चारुचंद्रिकारूपी जो सिंधु कहे क्षीरसिंधु है, तामें शीतल और स्वच्छ मलरहित सतेज कहे कांतियुक्त मानों शेषमय कहे शेषस्वरूप सेज है । शेषमय सेज हरि विष्णु करिकै अधिष्ठित युक्त है । हरिणा तृतीयान्त पद है । चन्द्रमा हरिण करिकै अधिष्ठित है । मृग अंकमें प्रसिद्ध है ॥ ४६ ॥

दण्डक ॥ केशौदास है उदास कमलाकर सों कर शोषक

प्रदोष ताप तमोगुण तारिये। अमृत अशेष को विशेष भाव बरषत कोकनद मोद चण्ड खण्डन बिचारिये॥ परमपुरुष-पद-बिमुख परुष रुख सुमुख-सुखद बिदुषन उर धारिये। हरि है री हिय में न हरिन हरिननैनी चन्द्रमा न चन्द्रमुखी नारद निहारिये॥ ४७॥

सीता सों रामचन्द्र कहत हैं कि हे हरिणनयनी, यह चंद्रमा नहीं है, नारद हैं। और याके हिय में यह हरिण नहीं है, हरि विष्णु हैं। सो श्लेष सों कहत हैं। कैसो है चन्द्रमा, कमलन को जो आकर समूह है, तासों उदास हैं कर किरण जाके। चन्द्र-किरण-स्पर्श सों कमल संकुचित होत है। और प्रदोष जो रजनीमुख है, ताप जो उष्ण है और तमोगुण जो अन्धकार है, तिनको शोषक दूरि-करनहार है, यह तारिये कहे जानियत है। पूर्णिमा को चन्द्र जब उदित भयो, तब रात्रि को प्रवेश होत है, रजनीमुख काल व्यतीत होत है, तासों शोष कह्यो। "प्रदोषो रजनीमुखमित्यमरः"। और अशेष कहे पूर्ण जो अमृत है, ताके जे भाव कहे विभूति हैं, वृद्धि इति, ताको विशेष सों वर्षत है। अमृत की बड़ी वर्षा करत है इत्यर्थः। और कोक जे चक्रवाक हैं, तिनको जो नद शब्द है, ताको जो मोद है, अर्थात् परस्पर स्त्री-पुरुष-संभाषण को आनन्द, ताको चण्ड कहे उग्र, अर्थात् नीकी विधि, खण्डन कहे खण्डनकर्त्ता है। अर्थात् चक्रवाकन को वियोगी करि परस्पर स्त्री-पुरुष-संभाषण के आनन्द को दूरि करत है। अथवा प्रथम कमलाकर पद कह्यो है, तहाँ श्वेत आदि कमल जानो। इहाँ कोकनद कहे अरुण कमल को जो मोद है, ताको चण्ड खण्डन है। "रक्तोत्पलं कोकनदमित्यमरः"। और परमपुरुष जो पति है, ताके पद सों जे स्त्री विमुख हैं, अर्थात् मान किये हैं, तिन्हैं परुष रुख कहे कठोर रुख है, अर्थात् तापकर्त्ता है। और जे स्त्री पति सों सुमुख हैं, तिनको सुखद है। और विदुष जे प्रवीण लोग हैं, तिन करिकै उर में धारियत है। प्रवीण के सदा चन्द्रोदय की इच्छा रहति है। चौरादिक चन्द्रोदय नहीं चाहत इति भावार्थः। नारद कैसे हैं कि कमला जो लक्ष्मी है, अर्थात् द्रव्य, ताके आकर समूह सों उदास है कर हाथ जिनको। अर्थात् बहुत हू द्रव्य कोऊ देइ, ताको ग्रहण नहीं करत। अल्प की का कथा है इति

भावार्थः । और अकर्ष जे दोष हैं गोवधआदि, और ताप जे दैहिक दैविक भौतिक ये त्रिताप हैं, तिनके और तमोगुण के शोषक दूरि करनहारे हैं । तमोगुण के शोषक कहि या जनायो कि सदा सत्त्वगुणयुक्त रहत हैं । और अमृत कहे नहीं है मृत्यु जिनकी । अशेष कहे पूर्ण । ऐसे जे विष्णु हैं, तिनके जे भाव कहे अनेक लीला हैं, तिनको विशेष सों वर्णत हैं । अर्थात् भगवान् की अनेक लीला विशेष सों गान करत हैं । अथवा भाव कहे अभिप्राय, ताको वर्णत हैं, कहत हैं, अर्थात् भूत भविष्य वर्त्तमान तीनों काल में जो ईश्वर के अभिप्राय के कृत्य हैं, तिन्हैं जानत हैं, सो सबसों कहत हैं । त्रिकालज्ञ हैं इत्यर्थः । "भावोभिप्रायवस्तुनोः । स्वभावजन्मसत्त्वात्माक्रियालीलाविभूतिषु । इत्यभिधानचिन्तामणिः" । और कोक जो शास्त्रविशेष है, ताको जो नद शब्द है, वचन इति, ताको जो मोद आनन्द है, ताके खण्डन कहे खण्डनकर्त्ता हैं । अर्थात् कोकशास्त्र में अनेक काम-वार्त्ता हैं, तिनको निंदत हैं । और परमपुरुष जे भगवान् हैं, तिनके पद सों जे प्राणी विमुख हैं, अर्थात् विष्णु की भक्ति नहीं करत, तिन्हैं परुष रुख कठोर रुख हैं; और जे सुमुख अर्थात् विष्णुभक्त हैं, तिन्हैं सुखद हैं । और विदुष जे पण्डित हैं, तिन करिकै जिनको उर में धारियत है । अथवा विशेष सों दुःख नहीं जिन करिकै उर में धारियत, अर्थात् सदा आनन्दयुक्त रहत हैं ॥ ४७ ॥

दोहा ॥ आई जानि वसंत ऋतु वनहिं विलोकत राम ॥
धरणि धसे सीता सहित रति समेत जनु काम ॥ ४८ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां वसन्तदर्शननाम त्रिंशः प्रकाशः ॥ ३० ॥

वन को देखत वसन्त ऋतु आई जानि कै वनविहार करिबो मन में निश्चय करि सीतासहित गृह-अग्र सों धरणि को धसे कहे उतरे ॥ ४८ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां त्रिंशः प्रकाशः ॥ ३० ॥

दोहा ॥ इकतीसयें प्रकाश में रघुबर बाग पयान ॥ शुक-मुख सियदासीन को वर्णन बिबिध बिधान ॥ १ ॥ ब्रह्मरूपक छन्द ॥ भोर होत ही गयो सु राजलोक मध्य बाग। बाजि आनियो सु एक इंगितज्ञ सानुराग ॥ शुभ्र शुद्ध चारिहून अंशु रेणु के उदार। सीखि सीखि लेत हैं ते चित्त चंचलाप्रकार ॥ २ ॥ तोमर छन्द ॥ चढ़ि बाजि ऊपर राम। बन को चले तजि धाम ॥ चढ़ि चित्त ऊपर काम। जनु मित्र को सुनि नाम ॥ ३ ॥ मग में बिलम्ब न कीन। बनराज मध्य प्रबीन ॥ सब भूपरूप दुराइ। युवती बिलोकी जाइ ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ वनविहार के अर्थ भोर होत ही राजलोक कहे रनिवास प्रथम बाग के मध्य गयो। फेरि इंगितज्ञ कहे सवार की चेष्टा को जाननहारे, अर्थात् जैसे सवार को मन देखै ताही विधि ताड़न विन ही गमनकर्त्ता, सानुराग कहे अपने अनुराग प्रेम सहित, अर्थात् जाके ऊपर आपनो बड़ो प्रेम है, ऐसो वाजि रामचन्द्र आनियो कहे मँगायो। अथवा वन जाइबे के अनुराग सहित जे रामचन्द्र हैं, तिन इंगितज्ञ वाजि आनियो। अथवा इंगित को जाननहार जो कोऊ अनुचर है, सो रामचन्द्र को वाजि पै चढ़िकै बाग जायबे को इंगित जानि कै सानुराग कहे प्रेम-सहित वाजि आनियो, लायो। कैसो है वाजि, जाके शुभ्र कहे सुन्दर और शुद्ध कहे निर्दोष चारिहू चरण में इति शेषः, रेणु जो धूरि है ताके अंशु कहे कण, चलत में लगि-गये हैं, ते मानों उदार कहे चतुर चित्त हैं। चरणन में लागि कै चञ्चला-प्रकार कहे चञ्चलता को प्रकार सीखि लेत हैं। जिनके चरणन में चित्त हू सों अधिक चञ्चलता है, इति भावार्थः ॥ २ ॥ वन में आयो मित्र जो वसंत है, ताको नाम सुनि कै मानों चित्त पै चढ़ि कै धाम छोड़ि काम वन को चल्यो है इत्यर्थः। चित्तसम चञ्चल वाजि है। कामसम सुंदर राम हैं ॥ ३ ॥ भूपरूप छत्र-चामरआदि को दुराइ, छपे छपे युवतिन को बि-लोक्यो जाइ ॥ ४ ॥

स्वागता छन्द ॥ रामसंग शुक एक प्रबीनो। सीयदासि

गुण वर्णन कीनो ॥ केशपाश शुभ श्याम सनेही । दास होत प्रभु जीव बिदेही ॥ ५ ॥ भाँतिभाँति कवरी शुभ देखी। रूप भूप तरवारि विशेखी ॥ पीय प्रेम प्रण राखनहारी । दीह दुष्ट-छल-खंडनकारी ॥ ६ ॥ किधौं सिंगारसरित सुखकारि । बंचकतानि बहावनहारि ॥ कंचनपत्र-पाँति-सोपान । मनों सिंगारलोक के जान ॥ ७ ॥

स्नेही स्नेह और तैल सों युक्त । प्रभु रामचन्द्र को सम्बोधन है । विदेही कहे ज्ञानी जे जनक आदिसम देह धरे हैं । अथवा जिनको देखि जीव उदास और विदेही होत हैं । अर्थात् देह की सुधि भूलि जाति है ॥ ५ ॥ कवरी, वेणी । "कवरी केशविन्यासशाकयोरिति हेमचन्द्रः" । अनेक दासी हैं, तासों भाँति भाँति पद कह्यो । काहू दासी की वेणी और विधि है, काहू की और विधि है, काहू की और विधि है । कैसी है कवरी, रूप कहे सौंदर्य्यरूपी जो भूप राजा है, ताकी विशेष निश्चय तरवारि है । कैसी है तरवारि, पीय जो स्वामी रूप है ताके प्रेम की राखनहारी है । अर्थात् अतिप्रेम सों सौंदर्य्य जिनको एकहु क्षण त्याग नहीं करत । और सबके मन को वश करिबो, यह जो रूप-भूप को प्रण है, ताहूकी राखनहारी है, सबके मन को वश करति है । और दीह दुष्टसम जो छल है, ताकी खण्डनकारी है । अर्थात् जैसे तरवारि दुष्ट जे विरोधी हैं, तिन्हैं खण्डन करि प्रजान को राजा के वश करि प्रण राखति है, तैसे छल को खण्डन करि, सबके मन को रूप के वश करि प्रण राखति है ॥ ६ ॥ और नदी वृक्ष आदि बहावति है, तैसे यह चञ्चलता छल ताकी वहावनहारी है । कंचनपत्र जे वेनीपान हैं, तिनकी पाँति है, सो मानों शृंगारलोक के जान कहे जाइबे को सोपान कहे सीढ़ी है । शृंगाररस के लोकसम केशपाशयुक्त शीश हैं ॥ ७ ॥

शीशफूल अरु बेंदा लसै । भाग सुहाग मनों शिर बसै ॥ पाटिन चमक चित्त-चौंधिनी । मानों दमकति घन दामिनी ॥ ८ ॥ सेंदुर माँग भरी अति भली । तिन पर मोतिन की अवली ॥ गंग गिरा तन सों तन जोरि । निकसी जनु जमुना

जल फोरि ॥ ६ ॥ शीशफूल शुभ जस्यो जराय । माँगफूल शोभै शुभ भाय ॥ बेनी फूलन की बर माल । भाल भले बेंदायुत लाल ॥ तम-नगरी पर तेजनिधानु । बैठे मनों बारहौ भानु ॥ १० ॥ भ्रुकुटि कुटिल बहु भायन भरी । भाल लाल दुति दीसति खरी ॥ मृगमद-तिलक रेख युग बनी । तिनकी शोभा शोभति घनी ॥ जनु जमुना खेलति शुभगाथ । परसन पितहि पसास्यो हाथ ॥ ११ ॥

बेंदा भाल में रहत है, सो भाग कहे भाग्यसम है, शीशफूल सोहागसम है। इहाँ स्थान में बसिबे की उत्प्रेक्षा है । तासों क्रमहीन दूषण नहीं है ॥ ८ ॥ ६ ॥ तम नगरीसम शीश के बार हैं । बारहौ भानुसम शीशफूल आदि हैं । इहाँ संख्या करि उत्प्रेक्षा नहीं है, बाहुल्य की उत्प्रेक्षा है ॥१०॥ यमुनासम भ्रुकुटी हैं । हाथसम कस्तूरी के तिलक की द्वै ऊर्ध्वरेखा हैं । पिता जे सूर्य हैं, तिनके सम लाल भाल है । भ्रुकुटिन को बहुभायन भरी कह्यो है, तासों यमुना को खेलत कह्यो ॥ ११ ॥

पंकजवाटिका छन्द ॥ लोचन मनहुँ मनोभवमन्त्रनि । भ्रू-युग उपर मनोहर मन्त्रानि ॥ सुंदर सुखद सुअंजन अंजित । बाण मदन बिष सों जनु रंजित ॥ १२ ॥ चौपाई ॥ सुखद नासिका जग मोहियो । मुक्ताफलनि युक्त सोहियो ॥ आनँद-लतिका मनहुँ सफूल । सूधि तजत शशि सकल कुशूल ॥ १३ ॥ पद्धटिका छन्द ॥ जनु भाल तिलक रबि ब्रतहि लीन । नृप रूप अकाशहि दीप दीन ॥ ताटंक जटितमणि श्रुति बसंत । रबि एकचक्र रथ-से लसंत ॥ अति झुलझुलीन सह झलक लीन । फहरात पताका जनु नवीन ॥ १४ ॥

॥ १२ ॥ मुक्ताफलनयुक्त, अर्थात् मुक्ताफल-सहित नासिका-भूपणयुक्त फल-सहित आनन्दलतिका को कै मानों शशि जो चन्द्र हैं सो सब शूल जो दुःख है ताको दूरि करत हैं । आनन्दलतिकासम नासिकाभूषण हैं,

फूलसम मोती हैं, शशिसम मुख है ॥ १३ ॥ भाल में तिलक कहे टीका मणिजटित-ऊर्ध्वपुंड्र होत है, सो जानो । रूप कहे सौंदर्य्यरूपी जो नृप राजा है, सो रवि के व्रत में लीन है कै रवि के अर्थ आकाश को दीपक दीन्हो है । जे प्रथम शीशफूल कह्यो है तेई रवि हैं, केशयुक्त शीश आकाश है । और मणिजटित ताटंक कहे ढार श्रुति में श्रवण में लसत हैं, ते मानों रवि के एकचक्र कहे एक पहिया के रथ-से हैं । रवि को रथ एक ही पहिया को है । और झुलझुली जे पात नामके कर्णभूषण हैं, तिनकी झलक शोभा, सह कहे साथ, अर्थात् ताटंकन के साथ लीन है, युक्त है । सो मानों ताही एकचक्र रथ के पताका हैं । अथवा रूप-नृप जो है, सो रवि को दीप दीन्हो है । और या प्रकार के पताका सों युक्त एकचक्र रथ हू दीन्हो समर्पण कर्यो है, इत्यर्थः ॥ १४ ॥

अतितरुण अरुण द्विजद्युति लसंति । निज दाड़िमबीजन को हसंति ॥ संध्याहि उपासत भूमिदेव । जनु बाकदेव की करत सेव ॥ शुभ तिनके सुख मुख के विलास । भयो उपवन मलयानिल-निवास ॥ १५ ॥ चौपाई ॥ मृदु मुसकानि लता मन हरैं । बोलत बोल फूल-से झरैं ॥ तिनकी बानी सुनि मनहारि । बानी बीना धरेउ उतारि ॥ १६ ॥ लटकैं अलिक अलक चीकनी । सूच्छम अमल चिलक सों सनी ॥ नकमोती दीपकद्युति जानि । पाटी रजनी ही उनमानि ॥ १७ ॥ ज्योति बढ़ावत दशा उतारि । मानहुँ स्याम लसींक पसारि ॥ जनु कवि हित रवि रथ ते छोरि । श्यामपाट की बाँधी डोरि ॥ १८ ॥

तरुण कहे नवीन द्विज दंत मानों भूमिदेव ब्राह्मण हैं, ते मुख में वास किये वाक्देव जो सरस्वती हैं, तिनकी सेवा करत हैं, ते ब्राह्मण संध्या-समय में सन्ध्या की उपासना करत हैं । इहाँ दाँतन को और ब्राह्मणन को द्विज-शब्द सों साम्य है । संध्यासम दाँतन की अरुण द्युति है । दाँतन के पक्ष में वाक्देव जिह्वा जानौ ॥ १५ ॥ ताही मुसकानि लता के फूल-

से जानौ ॥ १६ ॥ द्वै छन्द को अन्वय एक है । अलिक, लिलार । दशा, बाती । मानों रवि सींक पसारिकै ज्योति वढ़ावत है । रवि पद को सम्बन्ध याहू में है । कवि जे शुक्र हैं, तिनके हित कहे चढ़ाइ लीबे के अर्थ इत्यर्थः । शुक्रसम नाक को मोती है । रविसम शीशफूल है ॥ १७ । १८ ॥

रूप अनूप रुचिर रस-भीनि । पातुर नैनन की पुतरीनि ॥ नेह नचावत हित रति-नाथ । मरकत-लकुटि लिए जनु हाथ ॥ १९ ॥ दोहा ॥ गगन-चन्द्र ते अति बड़ो तिय मुख-चन्द्र बिचारु ॥ दई बिरंचि बिचारि चित कला चौगुनी चारु ॥२०॥

ताही अलक में दूसरी उत्प्रेक्षा करत हैं । पुतरिन को जो अनूप रूप है, ता प्रति जो रुचिर रस कहे प्रेम है, तामें भीनि कहे भीजि कै, अर्थात् वश ह्वै क, पातुर कहे वेश्या, अर्थात् काम की वेश्यारूपी जे नयन की पुतरी हैं, तिनको रतिनाथ जो काम है, ताके हित सों मानों मर्कत कहे नीलम की श्याम लकुट हाथ में लै कै स्नेह सहित नचावत है । शिक्षक लकुट के ताल में वेश्या को नृत्य सिखावत हैं, यह प्रसिद्ध है । अथवा कहूँ भीनी पाठ है, तौ अनूपरूप कहे अतिसुंदर और रुचिर जो रस प्रेम है, तामें भीनी कहे युक्त पातुररूपी जे नयन की पुतरी हैं, तिन को रतिनाथ के हित सों नेह नचावत है, इत्यर्थः ॥ १९ ॥ चन्द्रमा में सोरह कला हैं, मुख में चौंसठि हैं । चौंसठि कला प्रसिद्ध हैं ॥ २० ॥

दण्डक ॥ दीन्हो ईश दंडबल दलबल द्विजबल तपबल प्रवल समेति कुलबल की । केशव परमहंसबल बहु कोषबल कहा कहौं बड़ीयै बड़ाई दुर्गजल की ॥ बिधिबल चन्द्रबल श्री को बल श्रीशबल करत हैं मित्रबल रक्षा पल-पल की । मित्रबल-हीन जानि अबला-मुखनि बल नीके ही छड़ाइ लई कमला कमल की ॥ २१ ॥ दोहा ॥ रमणीमुखमंडल निरखि राकारमण लजाइ ॥ जलद जलधि शिव सूर में राखत बदन दुराइ ॥ २२ ॥

ईश जे ईश्वर हैं, तिन दण्ड जो नाल है ताको बल दीन है । श्लेष

सों परिवादि दण्ड आयुध जानो। दल, पत्र और चमू। द्विज, चक्रवाक आदि पक्षी अथवा दंत। इहाँ दंत पद ते वीज जानो। और ब्राह्मण के जलशायित्वादि तप जानो। कुल कहे ज्ञाति-समूह। परमहंस, पक्षी और तपस्वी-विशेष। कोष कहे सिफाकन्द और खज़ाना। और दुर्ग कोटरूपी जो लता है, ताके वल की कहा बड़ाई कहौं इत्यर्थः। विधि ब्रह्मा को आसन है, ता सम्बन्ध सों विधिवल जानो। जलज चन्द्र हू है, कमल हू है, तासों ता सम्बन्ध सों चन्द्रवल जानो। लक्ष्मी को कमल में सदा वास रहत है, ता सम्बन्ध सों श्री को वल जानो। श्रीश विष्णु सदा कर में लिये रहत हैं, तासों श्रीशवल जानो। और मित्र जे सूर्य हैं तिन हू को वल पल-पल में रक्षा करत है। यद्यपि एते सब वल हैं, परन्तु मित्र जे तुम हौ, तिनके वल सों कमलन को हीन जानि कै ये जे अवला सीयदासी हैं, तिनके मुखन वल सों कमल की जो कमला कांतिरूपी लक्ष्मी है, ताहि छड़ाय लीन्हो है। अवला पद कहि रामवल की अति उत्कृष्टता जनायो ॥ २१ ॥ पूर्णचन्द्रयुक्त जो पूर्णिमा की रात्रि है, सो राका कहावति है। "पूर्णे राका निशाकरे, इत्यमरः"। याहू में असिद्ध-विषय-हेतूत्प्रेक्षा है ॥ २२ ॥

विशेषक छन्द ॥ भूषन ग्रीवन के बहु भाँतिन सोहत हैं। लाल सितासित पीत प्रभा मन मोहत हैं ॥ सुन्दर रागन के बहु बालक आनि बसे। सीखन को बहु रागिनि केशवदास लसे ॥ २३ ॥ चौपाई ॥ हरिपुर-सी सुरपूरदूषिता। मुक्ताभरणप्रभाभूषिता ॥ कोमलशब्दनिवन्त सुवृत्त। अलङ्कारमय मोहन मित्र ॥ काव्यापद्धति-शोभा गहे। तिनके बाहुपाश कबि कहे ॥ २४ ॥

राग, भैरव आदि ॥ २३ ॥ आपनी छवि करिकै सुरपुर की अर्थात् सुरपुर की स्त्रियन की दूषिता कहे निन्दा करनहारी हैं। और मुक्ता जे मोती हैं, तिनके जे आभरण भूषण हैं, तिनकी प्रभा सों भूषित हैं। तासों हरिपुर विष्णुलोक-सी हैं। हरिपुर कैसो है कि आपनी छवि सों देवलोक को निन्दत है। अर्थात् देवलोक सों अधिक है। और मुक्त कहे मुक्ति को प्राप्त जे जीव हैं, तेई हैं आभरण भूषण, तिनकी प्रभा सों भूषित है।

अर्थात् अनेक मुक्तजीवन सों युक्त हैं। फेरि कैसी हैं कोमलशब्दनिवंत हैं, अर्थात् मधुर वचन बोलति हैं। और सुष्ठु हैं सुवृत्त कहे चरित्र जिनके। और माल्य आदि अलङ्कारयुक्त हैं। और मित्र जो स्वामी है, ताको मोहनें कहे मोहकर्त्ता हैं। और तिनके बाहुन को पाश कहे फाँससम कविजन कहत हैं। यासों काव्य की जो पद्धति रीति है ताकी शोभा कों गहे हैं। काव्य-पद्धति कैसी है कि कोमल कहे कोमल अक्षरयुक्त जे शब्द हैं तिनसों युक्त हैं, सुष्ठु वृत्त पद जाके। और उपमा आदि अलङ्कार सों युक्त है। और मित्र जे काव्यपाठी हैं, तिनको मोहन है। और तिनके बाहुन को कवि पाशसम कहत हैं। अर्थात् बाहु पाशसम होत नहीं है, परन्तु कविन को नियम है कि काव्य-रीति में स्त्री-पुरुष के बाहुन को पाशसम कहत हैं। "वृत्तश्छन्दश्चारित्रवृत्तिष्विति मेदिनी" ॥ २४ ॥

नवरँग बहु अशोक के पत्र। तिनमें राखत राजकलत्र ॥
देखहु देव दीन के नाथ। हरत कुसुम के हारत हाथ ॥ २५ ॥
सुन्दर अँगुरिन मुँदरी बनी। मनिमय सुवरन सोभा-सनी ॥
राजलोक के मन रुचि-रये। मानों कामिनि कर करि लये ॥ २६ ॥
अतिसुन्दर उर में उरजात। सोभा-सर में जनु जलजात ॥
अखिल लोक जलमय करि धरे। बशीकरणचूरणचयभरे ॥
कामकुँअर-अभिषेक निमित्त। कलश रचे जनु जोबन मित्त ॥ २७ ॥ दोहा ॥ रोमराजि सिंगार की ललित लता-सी राज ॥ ताहि फले कुचरूप फल लै जग ज्योति समाज ॥ २८ ॥

द्वै छन्द को अन्वय एक है। हे देव, हे दीन के नाथ, यह देखो, जे हाथ कुसुम फूलन के हरत में तोरत में हारत कहे थकत हैं, अर्थात् जिनसों फूलऊ नहीं तोरि जात, ऐसे कोमल जे हाथ हैं, तेई नवरंग जे बहुत अशोक के पत्र हैं, तिनमें कहे तिन हाथन में राजकलत्र जे सीता हैं तिनको राखति हैं। तासों मानों सुन्दर जे अँगुरी हैं, तिनमें सुवर्ण शोभा सों सनी मणिमय मुँदरी बनी हैं, तेई रुचि कहे सुन्दरता सों रये युक्त राजलोक कहे अन्तःपुर के अर्थात् सीतादिकन के मन हैं, तिनको मानों

कर में हाथ में करि लीन्हो है । अतिसेवा करि सीतादिकन के मन मानों अपने हाथ में करि-लीन्हो है; इत्यर्थः ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

चौपाई ॥ सूक्ष्म रोमावली सुवेष । उपमा दीन्ही शुक सविशेष ॥ उर में मनहुँ मदन की रेख । ताकी दीपति दिपति असेख ॥ २९ ॥ दोहा ॥ कटि के तत्त्व न जानिये सुनि प्रभु त्रिभुवनराव ॥ जैसे सुनियत जगत के सत अरु असत सुभाव ॥ ३० ॥ नाराच छन्द ॥ नितम्ब-विम्ब फूल-से कटिप्रदेश छीन हैं । विभूति लूटि ली सबै सु लोक-लाज-लीन हैं ॥ अमोल ऊजरे उदार जंघजुग्म जानिये । मनोज के प्रमोद सों विनोदयन्त्र मानिये ॥ ३१ ॥

रेख कहे लीक । अर्थ यह कि हृदयमें मदन वस्यो है; ताकी छवि बाहर कढ़ि कै देखि परति है । काम को रूप श्याम है ॥ २९ ॥ तत्त्व; स्वरूप । "तत्त्वं स्वरूपे परमात्मनीति मेदिनी" ॥ सत्स्वभाव, पुण्य आदि ॥ ३० ॥ नितम्बविम्ब कहे नितम्बमण्डल; नितम्बस्वरूप इति । "विम्बं तु प्रतिविम्बे स्यान्मण्डले पुंनपुंसकमिति मेदिनी" । फूल-से कहे प्रफुल्लित हैं; अर्थात् आनन्द-सहित हैं । और कटिप्रदेश अति क्षीण है; सो मानों नितम्बन कटि की विभूति संपत्ति लूटि लीन्ही है; तासों आनंद-सहित हैं; और कटि लोक की लाज सों लीन कहे छपी है । ऊजरे; मलरहित । प्रमोदसों कहे प्रसन्नतासहित; अर्थात् अति प्रशस्त मनोज जो काम है, ताके मानों विनोदयंत्र कहे विनोद के लिये यंत्र हैं । और यंत्र के बंधन सों आनन्द होत है; इन के देखत ही आनन्द होत है ॥ ३१ ॥

छवान की छुई न जाति सुभ्र साधु माधुरी । विलोकि भूलि भूलि जाति चित्त चालि आतुरी ॥ विशुद्ध पादपद्म चारु अंगुली नखावली । अलक्त्युक्त मित्र की सु चित्रबैठकी भली ॥ ३२ ॥ दोहा ॥ कठिन भूमि अति कोवरे जावकजुत शुभ पाइ ॥ जनु मानिक तनत्रान की पहिरी तरी वनाइ ॥ ३३ ॥

चौपाई॥ बरनबरन अँगिया उर धरे। मदन मनोहर के मन हरे॥ अंचल अतिचंचल रुचि रचैं। लोचन चल जिनके सँग नचैं॥ ३४॥ दोहा॥ नखसिख भूषित भूषनन पढ़ि सुबरनमय मन्त्र॥ यौवनश्री चल जानि जनु बाँधे रक्षायन्त्र॥ ३५॥ चित्रपदा छन्द॥ मोहनशक्ति न ऐसी। मकरध्वजध्वज जैसी॥ मन्त्र बशीकर साजैं। मोहनमूरि बिराजैं॥ ३६॥

छवा कहे एँड़ी, तिनकी शुभ्र कहे मलरहित, साधु कहे श्रेष्ठ, माधुरी कहे सुन्दरता, नयनन करि छुई नहीं जाति। अतीन्द्रिय है अति सुन्दरता है इति भावार्थः। जिनको विलोकि कै चित्त की जो आतुरी शीघ्र चालि कहे चालु है, सो भूलि जात है। अर्थात् चित्त अचल है जात है। पाद और अंगुली और नखावली चित्र-विचित्र अलक्त कहे महावर सों युक्त हैं। ते मानों मित्र को कहे मित्र जो स्वामी है ताके मन की बैठकी हैं, इत्यर्थः। अथवा मित्र कहे सूर्य। कि सूर्यसम नख हैं॥ ३२॥ जानो मानिक की तनत्राण के अर्थ पहिरे हैं, इत्यर्थः॥ ३३॥ ३४॥ भूषण सुवर्णमय कहे कंचनमय हैं, और मंत्र-पक्ष में सुष्ठुवर्णमय अक्षरमय जानौ॥ ३५॥ ३६॥

रूपमाला छन्द॥ भाल में भव राखियो शशि की कला भृत एक। तोषता उपजावहीं मृदुहास-चन्द अनेक॥ मार एक बिलोकि कै हर जारि कै किय छार। नैनकोर चितै करैं पति-चित्त मार अपार॥ ३७॥ चौपाई॥ कंटक अटकत फटि कटि जात। उड़ि उड़ि बसन जात बश बात॥ तऊ न तिनके तन लखि परे। मणिगण अंग अंग प्रति धरे॥ ३८॥ दोहा॥ उपमागण उपजाइ हरि बगराये संसार॥ तिनको परसपरोपमा रचि राखी करतार॥ ३९॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणि श्रीरामचन्द्र-चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां सीतासखीजनवर्णनन्नामैकत्रिंशः प्रकाशः॥ ३१॥

तोपता कहे संतोष के लिये इत्यर्थः । प्रतिवादी सों अधिक को करिये तब संतोष होत है, यह प्रसिद्ध है । महादेव एक मार जाल्यो, ता लिये नयनकोर सों चितै कै पतिन के चित्त में अपार मार कहे काम उत्पन्न करती हैं । अथवा महादेव काम को एकई मार कस्यो कि जारि ही डास्यो, और ये काम-सरिस जे पति हैं, तिनके चित्त में अपार कहे अनेक विधि को मार ताड़न करती हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे हरि, कर्त्ता और उपमागण उपजाइ कै संसार में बगरायो फैलायो है । तिन दासिन को परस्परोपमा कहे एक दासी की उपमा एक को एक की एक को रचि राख्यो हैं । और उपमा इनके सदृश नहीं हैं, इत्यर्थः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकी-प्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामेकत्रिंशः प्रकाशः ॥३१॥

दोहा ॥ बत्तीसयें प्रकाश में उपवनवर्णन जानि ॥ अरु बहु विधि जलकेलि को करेहु राम सुखदानि ॥ १ ॥ सुन्दरी छन्द ॥ अचानक दृष्टि परे रघुनायक । जानकि के जिय के सुखदायक ॥ ऐसे चले सबके चल लोचन । पंकज बात मनों मनरोचन ॥ २ ॥ राम सों रामप्रिया कह यों हँसि । बाग देखावहु लोकन के ससि ॥ राम बिलोकत बाग अनन्तहि । ज्यों अवलोकत कामद सन्तहि ॥ ३ ॥ बोलत मोर तहाँ सुखसंयुत । ज्यों बिरदावलि भाटन के सुत ॥ कोमल कोकिल के कुल बोलत । ज्ञानकपाट कुँजी जनु खोलत ॥ ४ ॥ फूल तजै बहु बृक्षन को गनु । छोड़त आनँद आँसुन को जनु ॥ दाड़िम की कलिका मन मोहति । हेमकुपी जनु बंदन सोहति ॥ ५ ॥ दोहा ॥ मधुबन फूल्यो देखि शुक बर्णत हैं निश्शंक ॥ सोहत हाटकघटित ऋतु-युवतिन के ताटंक ॥ ६ ॥ दोधक छन्द ॥ बेल के फूल लसैं अति फूले । भौंर भवैं तिनके रस भूले ॥ यों करबीर करी बन राजै । मन्मथबानन की गति साजै ॥ ७ ॥ केतक

पुंज प्रफुल्लित सोहैं। भौंर उड़ैं तिनमें अति मोहैं॥ श्रीरघुनाथहिं आवत भागे। जे अपलोक हुते अनुरागे॥ ८॥ दोहा॥ श्याम शोण द्युति फूल की फूले बहुत पलास॥ जरे काम कैला मनों मधुऋतु बात-बिलास॥ ९॥

॥ १ ॥ रामचन्द्र भूपरूप दुराय कै ये छपे जो युवतिन को देखत रहे, सो उपवन की छवि निरखत अचानक सीतादिकन की दृष्टि में परे, सो रामचन्द्र की ओर सबके चंचल लोचन ऐसे चलत भये, जैसे वात कहे वायु सों मनरोचन कहे मन को सुखद पंकज कमल चलै ॥ २॥ ३ ॥ कुंजी सों मानों ज्ञान के कपाट खोलत हैं। ज्ञानिन के कामोद्भव करि ज्ञान को दूरि करत हैं। इत्यर्थः ॥ ४ ॥ चन्दन, रोरी ॥ ५ ॥ मधु जो वसन्त है, तामें वन जो वाग है, ताके मध्य दाड़िम को फूले देखि कै शुक निश्शंक वर्णत हैं। दाड़िम पद को संबंध इहाँऊ है। मानों हाटक जो सुवर्ण है, तासों घटित कहे रचित पट्ऋतुरूपी जे युवती स्त्री हैं, तिनके ताटंक ढार हैं। भाषा में ऋतु शब्द स्त्रीलिंग है। यथा रसराजकाव्ये ॥ "आई ऋतु सुरभि सुहाई प्रीति वाके चित्त ऐसे में चलौ तौ लाल रावरी बड़ाई है।" अथवा ऋतु करिकै घटित बनाये ॥ ६ ॥ वेल कहे वेला। करवीर, कनैर ॥ ७ ॥ केतक कहे केवरा। ते भ्रमर श्रीरामचन्द्र को निकट आवत देखिकै भागत भये, जे भ्रमर भाणी में अपलोक पाप के सम केतक पुंज में अनुरागे हैं, जैसे ध्यान में। अथवा साक्षात् राम के आगमन सों भाणी के अपलोक दूरि होत हैं, ते केतक के निकट आवत भ्रमर भागत भये, इत्यर्थः ॥ ८ ॥ शोण, अरुण। मधु कहे वसंत-ऋतुरूपी जो वायु है, ताके विलास सों मानों महादेव करिकै जार्‍यो जो काम है ताके कैला फेरि जरैं कहे सुलगत हैं ॥ ९ ॥

तोटक छन्द॥ बहु चम्पक की कलिका हुलसी। तिनमें अलि श्यामल ज्योति लसी॥ उपमा सुक सारिक चित्त धरी। जनु हेमकुपी रससोंधु-भरी॥ १०॥ चौपाई॥ अलि उड़ि धरत मञ्जरी-जाल। देखि लाज साजति सब बाल॥ अलि अलिनी के देखत भाई। चुम्बत चतुर मालती जाई॥ ११॥ अद्भुतगति सुन्दरी बिलोकि। बिहँसति हैं घूँघुट पट रोकि॥

गिरत सदाफल श्रीफल ओज । जनु धर धरत देखि वक्षोज ॥ १२ ॥ तारक छन्द ॥ उदरे उर दाड़िम दीह विचारे । सुदतीन के सोभन दन्त निहारे ॥ अतिमंजुल वंजुल कुंज विराजैं । वहु गुंजनि के तन पुंजनि साजैं ॥ नर अन्ध भये दरसे तरु मौरे । तिनके जनु लोचन हैं यकठौरे ॥ १३ ॥

हुलसी कहे फूली । शृंगाररस सदृश भ्रमर हैं, और सोंधु सुगंध है ही । चंपक पै भँवर बैठिबे को वर्णन कविनियम विरुद्ध है, परन्तु केशव बड़े कवि हैं, कछू विचार ही कै कह्यो है है, तासों दोष नहीं है । अथवा गंध-हीन होति है कली, तासों कह्यो है ॥ १० ॥ ११ ॥ सदाफल जे श्रीफल विल्व हैं ते गिरत हैं, सो मानों तिन स्त्रियन के वक्षोज को ओज कहे प्रताप कांति को देखि कै भय सों उन्नत आसन को त्याग करि धर पृथ्वी को धरत हैं, अर्थात् नत होत हैं ॥ १२ ॥ दाड़िमफलन के उर पाकि कै उदरे कहे फाटि गये हैं, सो मानों सुदती कहे सुन्दर हैं दंत जिनके, ऐसी जे सीता की दासी हैं, तिनके सुन्दर दन्त ही निहारि कै स्पर्धा सों फाटि गये हैं । वंजुल, अशोक । गुंजनिकेतन कहे भ्रमर । मौरे कहे बौरे । अर्थात् अशोक-वृक्षन के दरशे नर अंध कहे कामान्ध भये । तिन नरन के मानों लोचन ही एकठौरे हैं । बौरे अशोक-वृक्षन को जनु देखि तिनके लोचन तहाँई लागि रहे, ताही सों ते अधम भये हैं, इत्यर्थः ॥ १३ ॥

थल सीतल तप्त स्वभावनि साजैं । ससि सूरज के जनु लोक विराजैं ॥ जल-जंत्र विराजत भाँति भली है । धर ते जल-धार अकास चली है ॥ जमुनाजल सूक्ष्म वेष सँवाख्यो । जनु चाहत है रविलोक विहाख्यो ॥ १४ ॥ चंचरी छन्द ॥ भाँति भाँति कहौं कहाँ लगि वाटिका वहुधा भली । ब्रह्मघोष घने तहाँ जनु हैं गिरा वन की थली ॥ नीलकंठ नचैं वने जनु जानिये गिरिजा वनी । सोभिजैं वहुधा सुगन्ध मनों मलैघन की धनी ॥ १५ ॥ चौपाई ॥ करुणामय वहु कामनि फली ।

जनु कमला की बासस्थली ॥ सोभै रम्भा सोभासनी। मनों सची की आनँदबनी ॥ १६ ॥

उष्ण समय बैठिबे के जे स्थल हैं ते शीतल स्वभाव को साजत हैं, शीत समय बैठि कहे तप्त स्वभाव साजत हैं। शशि को लोक शीतल है, सूर्य को तप्त है। जलयंत्र, फुहारे ॥ १४ ॥ वाटिका में, ब्रह्मघोष कहे वेदशब्द, पाठशाला बनी हैं, तिनमें शिष्य पढ़त हैं। अथवा तपस्वी टिके हैं, ते वेदपाठ करत हैं। अथवा अन्यत्र ऋषि के आश्रमन सों सीखि कै शुक आदि पक्षी इहाँ आइ वेद पढ़त हैं। और गिरा सरस्वती के उपवन में ब्रह्मा को शब्द। नीलकण्ठ, वाटिका में मोर। गिरिजाबनी में महादेव। धनी कहे रानी ॥ १५ ॥ वाटिका करुणा जे वृक्ष-विशेष हैं तिनसों युक्त है। और बहुत जे काम कहे अभिलषित फल हैं, तिनसों फली है। कमला की वासस्थली कैसी है कि करुणामय जे भगवान् हैं, ते जहाँ हैं। और बहुत जे काम्य पदार्थ, तिनसों फली युक्त है। अर्थात् जहाँ सब अभिलषित पदार्थ मिलत हैं। "कामः स्मरेच्छाकाम्येषु इति हेमचन्द्रः"। वाटिका-पक्ष में रंभा, केरा। आनंदवनी पक्ष में अप्सरा ॥ १६ ॥

कमल छन्द ॥ तरु चन्दन उज्ज्वलता तन धरे। लपटी नव नागलता मन हरे ॥ नृप देखि दिगम्बर बन्दन करे। चित चन्द्रकलाधररूपनि भरे ॥ १७ ॥ अतिउज्ज्वलता सब कालहु बसै। शुक केकि पिकादिक कंठहु लसै ॥ रजनी दिन आनँदकन्दनि रहै। मुखचन्दन की जनु चाँदनि अहै ॥ १८ ॥

जा वाटिका में चन्दनवृक्ष चिर कहे बहुत काल सों, चन्द्रकलाधर जे महादेव हैं, तिनके रूपन को धरे हैं। कैसे हैं चंदनवृक्ष और महादेव, उज्ज्वलता जो श्वेतता है ताको तनमें धारण करे हैं। चंदनवृक्ष हू श्वेत हैं, महादेव के अंग हू श्वेत हैं। नागलता कहे नागबेलि, और नाग सर्परूपी लता। और दिगम्बर नग्न हुवौ हैं। महादेव को ईश्वरता सों और वृक्षन को अति अद्भुतता सों नृप सब वन्दना करत हैं ॥ १७ ॥ फेरि वाटिका कैसी है कि मानों सीता की दासिन के मुखचंदन की चाँदनी है। कैसी है वाटिका और चाँदनी, सब कालहु कहे सब समय में उज्ज्वलता कहे स्वच्छता और शुक्लता बसति है। कैसी है वाटिका, शुक आदि पक्षिन के

कंठ कहे शब्दसहित लसति है। अर्थात् अनेक शुक आदि पक्षी जामें बोलत हैं। और चाँदनी शुक आदिकन के शब्द सरिस जे अनेक विधि परस्पर बोलती हैं तिन सहित है। और रातौदिन दुवौ आनंद की कंदनि कहे जर है। अर्थात् रातौदिन सुखद है। वा चंद की चाँदनी राति ही को सुखद होति है, मुखचंद की चाँदनी रातौदिन सुख देति है, इति भावार्थः। शुक केकि पिकादिक के मुख बसै, कहूँ यह पाठ है। तहाँऊँ मुख कहे शब्द जानौ। अर्थ वही है। "मुखं निस्सरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि। संध्यन्तरे नाटकादेः शब्देऽपि च नपुंसकमिति मेदिनी" ॥ १८ ॥

तोटक छन्द ॥ सब जीवन को बहु सुक्ख जहाँ। बिरही जन ही कहँ दुःख तहाँ॥ जहँ आगम पौनहि को सुनिये। नित हानि असौंधहि की गुनिये ॥ १९ ॥ दोहा ॥ तप ही को ताउन जहाँ तृष चातक के चित्त ॥ पात फूल फल दलनि को भ्रम भ्रमरनि के मित्त ॥ २० ॥ तारक छन्द ॥ तिनमें इक कृत्रिम पर्बत राजै। मृग पक्षिन की सब शोभहि साजै ॥ बहु भाँति सुगंध मलैगिरि मानो। कल धौतस्वरूप सुमेरु बखानो ॥ २१ ॥ अति शीतल शंकरको गिरि जैसो। शुभ श्वेत लसै उदयाचल ऐसो ॥ द्युतिसागर में मइनाक मनो है। अजलोक मनों अजलोक बनो है ॥ २२ ॥ तोटक छन्द ॥ सरिता तिनते शुभ तीनि चली। सिगरी सरितान कि सोभ दली ॥ इक चन्दन के जल उज्ज्वल है। जग जह्नुसुता शुभ शील गहै ॥ २३ ॥ चौपाई ॥ सुरगज को मारग छबि छायो। जनु दिवि ते भूतल पर आयो ॥ जनु धरणी में लसति बिशाल। त्रुटित जुही की घन बनमाल ॥ २४ ॥ दोहा ॥ तज्यो न भावै एक पल केशव सुखद समीप। जासों सोहत तिलक-सो दीन्हे जम्बूद्वीप ॥ २५ ॥ दोधक छन्द ॥ एणन के मद कै जनु दूजी। है यमुनाद्युति कै जनु पूजी ॥ धार मनौं रसराज बिशाला। पंकजजालमयी जनु

माला ॥ २६ ॥ दोहा ॥ दुखखंडन तरवारि-सी किधौं शृंखला चारु ॥ क्रीड़ा गिरि मातंग की यहै कहै संसारु ॥ २७ ॥ क्रीड़ा-गिरि ते अलिन की अवली चली प्रकास ॥ किधौं प्रतापान-लन की पदवी केशवदास ॥ २८ ॥ दोधक छन्द ॥ और नदी जलकुंकुम सोहै । शुद्ध गिरा मन मानहुँ मोहै ॥ कंचन के उप-बीतहि साजै । ब्राह्मण-सो यह खंड बिराजै ॥ २९ ॥ स्वागता छन्द ॥ लौंग फूलमय सेवटि लेखी । एलबीज बहु बालक देखी ॥ केरिफूलदल-नावन माहीं । श्री सुगन्ध तहँ है बहुधाहीं ॥ ३० ॥

सब जीवन को असौंध, दुर्गन्ध ॥ १९ ॥ पात कहे पतन ॥ २० ॥ कृत्रिम कहे बनायो । कलधौत-स्वरूप कहे सुवर्णमय है । अर्थात् सुवर्ण ही को बन्यो है ॥ २१ ॥ मैनाक सागर में है और यह द्युति शोभारूपी सागर में है। अज जे दशरथ के पिता हैं, तिनके लोक में मानों अज जे ब्रह्मा हैं तिन-को लोक ब्रह्मलोक बन्यो है ॥ २२ ॥ शील कहे स्वभाव, ताप-दूरि-करन आदि ॥ २३ ॥ सुरगज ऐरावत की राह आकाश में रात्रि को उवति है, प्रसिद्ध है । जुही कहे जाहीजूही, पुष्प-विशेष हैं ॥ २४ ॥ तिलक सो, अर्थात् राज्याभिषेक-तिलक सो ॥ २५ ॥ एणन मृगन को मद कस्तूरी, पूजी कहे पूरित, अर्थात् मानों यामें यमुना की शोभा आइ बसी है । रसराज, शृंगाररस। पंकज सों इहाँ श्याम कमल जानौ ॥ २६ ॥ क्रीड़ागिरिरूपी जो मातंग है, ताकी शृंखला क्षुद्रघंटिका अथवा आँदू है ॥ २७ ॥ किधौं, रघुवंशिन के इति शेषः, प्रतापाग्नि की पदवी राह है । अग्नि की राह श्याम होति है ॥ २८ ॥ नदिन में सेवटि परि जाति है । कहूँ सेवटा करि प्रसिद्ध है । एला, इलायची । केरि कहे केरा के फूल के जे दल पत्र हैं, तेई नाव हैं । तिनमें सुगंध जो है सोई श्री कहे वाणिज्य-द्रव्य है ॥ २९ ॥ ३० ॥

दो० ॥ खेवत मत्त मलाह अलि को बरनै वह ज्योति ॥ तीनिहु सरिता मिलित जहँ तहाँ त्रिबेणी होति ॥ ३१ ॥ सीता श्रीरघुनाथजू देखी अमित शरीर ॥ द्रुम अवलोकन

छोड़िकै गये जलाशय-तीर ॥ ३२ ॥ चौपाई ॥ आई कमलबासु सुखदेन । मुखबासन आगे ह्वै लेन ॥ देख्यो जाइ जलाशय चारु । सीतल सुखद सुगन्ध अपारु ॥ ३३ ॥ मरहट्टा छन्द ॥ बनश्री को दर्पनु चन्द्रातप जनु किधौं शरद-आवास । मुनि-जनगन-मन-सो बिरही जन-सो विस-वलयानि बिलास ॥ प्रतिबिम्बित थिर चर जीव मनोहर मनु हरि-उदर अनन्त । बन्धुन युत सोहैं त्रिभुवन मोहैं मानो बलि यशवन्त ॥ ३४ ॥

॥ ३१ ॥ जलाशय, तड़ाग ॥ ३२ ॥ जब कोऊ बड़ो आपने इहाँ आवत है, ताको आगे चलिकै लेबो उचित है ॥ ३३ ॥ वन की जो श्री लक्ष्मी है, ताको दर्पण है, कि चन्द्रातप कहे चाँदनी है, कि शरद् ऋतु को आवास घर है । मुनिजन के मन सम विमल है, इत्यर्थः । तड़ाग विस जो कमल की जर है ताके वलय समूह सों युक्त है, और विरही शीतलता के लिये अनेक कमलन की जर धारण करे हैं । हरि के उदर हू में चौदहौ लोक बसत हैं । तड़ाग पाषाणादि सों बाँध्यो है, बलि को वामन बाँध्यो है ॥ ३४ ॥

चौपाई ॥ बिषमय यह सब सुख को धाम । शम्बररूप बढ़ावै काम ॥ कमलन मध्य भ्रमर सुख देत । सन्तहृदय जनु हरिहि समेत ॥ ३५ ॥ बीच बीच सोहैं जलजात । तिनते अलिकुल उड़ि उड़ि जात ॥ सन्तहियन सों मानहुँ भाजि । चंचल चली अशुभ की राजि ॥ ३६ ॥ दण्डक ॥ एक दमयन्ती ऐसी हरै हँसि हंसबंस एक हंसिनी-सी बिसहार हिये रोहिये । भूषण गिरत एकै लेतीं बूड़ि बूड़ि बीच मीनगति लीन हीन उपमा न टोहिये ॥ एक पतिकंठ लागि लागि बूड़ि बूड़ि जाति जल देवता-सी दृग देवता बिमोहिये । केशौदास आसपास भँवर भँवत जल केलि में जलजमुखी जलज-सी सोहिये ॥ ३७ ॥ दोहा ॥ क्रीड़ासरवर में नृपति कीन्ही बहुबिधि केलि ॥ निकसे तरुनिसमेत जनु सूरज किरनि सकेलि ॥ ३८ ॥ हाक-

लिका छन्द ॥ नीरनि ते निकसीं तिय सबै। सोहति हैं बिन भूषण तबै ॥ चन्दनचित्र कपोलन नहीं। पङ्कजकेशर शोभत तहीं ॥ ३९ ॥

द्वै चरण में विरोधाभास है। विष, जल। शम्बररूप कहे शम्बर जो मत्स्यभेद है तन्मय है, अर्थात् अति-शम्बर-मत्स्ययुक्त है। "शम्बरोदैत्यहरिणमत्स्यशैलजिनान्तरे इति मेदिनी" ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हरैं कहे गहि लेती हैं। दमयन्ती हू राजा नल को जो हंस पठायो है, ताको गहि लियो है। हंस हू पौनारी को काढ़ि गरे में डारि लेत है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ताही अर्थ कपोलन में लगे कमलन के केशर किंजल्क सोहत हैं ॥ ३९ ॥

मोतिन की बिथुरी शुभ छटैं। हैं उरझीं उरजातन लटैं ॥ हास सिंगारलता मनु बनी। भेंटति कल्पलता हित घनी ॥ ४० ॥ केशनि ओरनि सीकर रमैं। ऋक्षन को तमयी जनु बमैं ॥ सज्जल अम्बर छोड़त बने। छूटत हैं जल के कन घने ॥ भोग भले तिनसों मिलि करे। बिछुरत जानि ते रोवत खरे ॥ ४१ ॥ भूषण जे जल-मध्यहिं रहे। ते बनपाल-बधूटिन लहे ॥ भूषण बस्त्र जबै सजि लये। चारिहु द्वारन दुन्दुभि भये ॥ ४२ ॥ दोहा ॥ गूँगे कुबरे बावरे बहिरे बामन बृद्ध ॥ यान लये जन आइगे खोरे खंज प्रसिद्ध ॥ ४३ ॥ चौपाई ॥ सुखद सुखासन बहु पालकी। फीरकबाहिनि सुख चाल की ॥ एकन जोते हय सोहिये। बृषभ कुरङ्ग अङ्ग मोहिये ॥ तिन चढ़ि राजलोक सब चल्यो। नगर-निकट शोभाफल फल्यो ॥ ४४ ॥

हासरस-लतासम मोतिन की लरैं हैं, शृङ्गाररस-लतासम लटैं हैं, कल्पलतासम स्त्री हैं ॥ ४० ॥ केशन के ओरन कहे अन्त में सीकर जे अंबुकण हैं, ते रमैं कहे शोभित हैं। ऋक्ष, नक्षत्र ॥ ४१ ॥ वाटिका के चारिहू द्वारन में कूच के नगारे भये इत्यर्थः ॥ ४२ ॥ स्त्री-जन के निकट ऐसे ही जन चाहिये, जिनपै स्त्रीजन प्रीति न करैं ॥ ४३ ॥ सुखासन कहे कोमल बिछावने युक्त फिरकबाहिनी सेजगाड़ी। एकन फिरकबाहिनीन में जोते हय

घोड़ा शोभित हैं । एकन में वृषभ शोभित हैं । ते आपने अङ्गन करि कुरङ्ग अङ्गन को मोहत हैं । अर्थात् अतिचञ्चल हैं ॥ ४४ ॥

मनिमय कनकजालिका घनी । मोतिन की झालरि अति बनी ॥ घंटा बाजत चहुँ दिशि भले । रामचन्द्र त्यहि गज चढ़ि चले ॥ चपला चमकत चारु अगूढ़ । मनहुँ मेघ मघवा आ-रूढ़ ॥ ४५ ॥ आसपास नरदेव अपार । पाँइ-पियादे राज-कुमार ॥ बन्दीजन जस पढ़त अपार । यहि विधि गये राजदर-बार ॥ ४६ ॥ विजया छन्द ॥ भूषित देह विभूति दिगम्बर नाहिंन अम्बर अङ्ग नवीने । दूरि कै सुन्दर सुन्दरि केशव दौरि दरीन में आसन कीने ॥ देखिये मंडित दंडन सों भुज-दंड दुवौ असिदंड-विहीने । राजन श्रीरघुनाथ के बैर कुमंडल छोड़ि कमंडल लीने ॥ ४७ ॥ दोहा ॥ कमलकुलन में जात ज्यों भँवर भयो रस-चित्र ॥ राजलोक में त्यों गये रामचन्द्र-जगमित्र ॥ ४८ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्र-चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां वनविहार वर्णनन्नामद्वात्रिंशः प्रकाशः ॥ ३२ ॥

हौदा में मणिमयी कनकजालिका झाँझरी बनी हैं, इत्यर्थः । अथवा झालरि की जारी मणिमयी कनक की घनी बनी हैं । अगूढ़, प्रसिद्ध ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ असिदण्ड, तरवारि । कुमण्डल, पृथ्वीमंडल ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां द्वात्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३२ ॥

दोहा ॥ तेंतीसयें प्रकाश में ब्रह्मा-विनय बखानि ॥ शम्बुक-बध *सिय-त्याग अरु कुश-लव-जन्म सु जानि ॥ १ ॥

---

* शंबुक-नामक शूद्र ।

त्रिभंगी छंद ॥ दुर्जनदलघायक श्रीरघुनायक सुखदायक त्रिभुवन शासन । सोहैं सिंहासन प्रभाप्रकासन कर्मबिनासन दुखनासन ॥ सुग्रीव विभीषण सुजन बंधुजन सहित तपोधन भूपतिगन । आये सँग मुनिजन सकल देवगन मृग तप-कानन चतुरानन ॥ २ ॥ तोटक छंद ॥ उठि आदर सों अकुलाइ लयो । अति पूजन कै बहुधा बिनयो ॥ सुखदायक आसन शोभ-रये । सबको सुयथाबिधि आनि दये ॥ ३ ॥

दोहा ॥ सबन परस्पर बूझियो कुशलप्रश्न सुख पाय ।
चतुरानन बोले बचन श्लाघा बिनय बनाय ॥ ४ ॥

ब्रह्मा—मनोरमा छन्द ॥ सुनिये चित दै जग के प्रतिपालक । सबके गुरु हौ हरि यद्यपि बालक ॥ सबको सब भाइ सदा सुखदायक । गुण गावत बेद मनोबचकायक ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ त्रिभुवन के शासन कहे शिक्षक । पाप-पुण्य कर्म को नाश कै आपने धाम पठावत हैं, इत्यर्थः । तपरूपी जो कानन वन है, ताके मृग कहे वन-पशु । जैसे वन को मृग अवगाहन करत है, तैसे अनेक तपस्या के अवगाहनकर्त्ता इत्यर्थः ॥ २ ॥ आनि कहे मँगाइ कै ॥ ३ ॥ श्लाघा, स्तुति ॥ ४ ॥ ५ ॥

तुम लोक रचे बहुधा रुचिकै तब । सुनिये प्रभु ऊजर हैं सिगरे अब ॥ जग कोउ न भूलिहु जाइ निरै-मग । मिटिगे सब पापन पुण्यन के नग ॥ ६ ॥ दोहा ॥ बरुणपुरी धनपतिपुरी सुरपतिपुर सुखदानि ॥ सप्त लोक बैकुंठ सब बस्यो अवध में आनि ॥ ७ ॥ तोमर छन्द ॥ हँसि यों कह्यो रघुनाथ । समुझी सबै बिधि गाथ ॥ मम इच्छ एक सु जानि । कबहूँ न होय सु आनि ॥ ८ ॥ तव पुत्र जे सनकादि । मम भक्त जानहु आदि ॥ सुत मानसिक तिनकेति । भुवदेव भुव प्रगटेति ॥ ९ ॥ हम दियो तिन शुभ ठाउँ । कछु और दीबे गाँउँ ॥ अब देहिं

हम किहि ठौर । तुम कहौ सुरसिरमौर ॥ १० ॥ ब्रह्मा–मरहट्टा छन्द ॥ सब वै मुनि रूरे तपबल-पूरे बिदित सनाढ्य सुजाति । बहुधा बहुबारनि प्रति अवतारनि दै आये बहु भाँति ॥ मुनि प्रभु आखंडल मथुरामंडल में दीजै शुभ ग्राम । बाढ़ै बहु कीरति लवणासुर हति अति अजेय संग्राम ॥ ११ ॥ दोहा ॥ जिनके पूजे तुम भये अंतर्यामी श्रीप ॥ तिनकी बात हमैं कहा पूछत त्रिभुवन-दीप ॥ १२ ॥ द्विज आयो ताही समै मृतक पुत्र के साथ ॥ करत बिलाप-कलाप हा रामचन्द्र रघुनाथ ॥ १३ ॥ मल्लिका छन्द ॥ बालकै मृतै सु देखि । धर्मराज सों बिसेखि ॥ बात यों कही नि-हारि । कर्म कौन को बिचारि ॥१४॥ धर्मराज–मनोरमा छन्द ॥ निज शूद्रन की तपसा शिशुघालक । बहुधा भुवदेवन के सब बालक ॥ करि बेगि बिदा सिगरे सुर-नायक । चढ़ि पुष्पक आशु चले रघुनायक ॥ १५ ॥

नग, पर्वत ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ आखण्डल, इन्द्र ॥ ११ ॥ श्रीपति कहे लक्ष्मीपति ॥ १२ ॥ कलाप कहे समूह ॥ १३ ॥ धर्मराज, न्यायदर्शी, अथवा यमराज ॥ १४ ॥ १५ ॥

दोधक छन्द ॥ राम चले सुनि शूद्र कि गीता । पंकजजोनि गये जहँ सीता ॥ देखि लगी पग राम कि रानी । पूजि कै बूझति कोमल बानी ॥ १६ ॥ सीता–कौनहुँ पूरब पुण्य हमारे । आजु फले जु इहाँ पगु धारे ॥ ब्रह्मा–देवन को सब कारज कीन्हो । रावण मारि बड़ो यश लीन्हो ॥ १७ ॥ मैं बिनती बहु भाँतिन कीनी । लोकन की करुना रस-भीनी ॥ ऊतरु मोहिं दियो सुनि सीता । जा कि न जानि परै जिय गीता ॥ १८ ॥ माँगत हौं बर मो कहँ दीजै । चित्त में और बिचार न कीजै ॥ आजु ते चाल चलौ तुम ऐसे । राम चलैं

बइकुंठहि जैसे ॥ १६ ॥ सीय जहीं कछु नैन नवाये। ब्रह्म तहीं निज लोक सिधाये ॥ राम तहीं शिर शूद्र को खंड्यो। ब्राह्मण को सुत जीवन मंड्यो ॥ २० ॥ सुन्दरी छन्द ॥ एक समै रघुनाथ महामति। सीतहि देखि सगर्भ बढ़ी रति ॥ सुंदरि माँगु जु जी महँ भावत। मो मन तो निरखे सुख पावत ॥२१॥ सीता-जो तुम होत प्रसन्न महामति। मेरे बढ़ै तुम ही सो सदा रति ॥ अंतर की सब बात निरंतर। जानत हौ सबकी सबते पर ॥ २२ ॥ राम-दोहा ॥ निर्गुण ते सगुणो भयो सुनि सुंदरि तुव हेत ॥ और कछू माँगौ सुमुखि रुचै जु तुम्हरे चेत ॥ २३ ॥

॥ १६ ॥ द्वै छन्द को अन्वय एक है। ऊतरु कहे जवाब दियो, अर्थात् वैकुण्ठ चलिबे को न कह्यो ॥ १७ ॥ १८ ॥ १६ ॥ नयन नवाये ते ब्रह्मा को कह्यो अङ्गीकार कर्‌यो जानो ॥ २० ॥ यह कह्यो इति शेषः ॥ २१ ॥ हमारे तुम ही सों सदा रति प्रीति बढ़ै, यह वर हमको दीजै, इत्यर्थः ॥ २२ ॥ २३ ॥

सीता-सुंदरी छन्द ॥ जो सबते हित मो कहँ कीजत। ईश दया करिकै बरु दीजत ॥ हैं जितने ऋषि देवनदी-तट। हौं तिनको पहिराय फिरौं पट ॥ २४ ॥ राम-दोहा ॥ प्रथम दोहदै क्यों करौं निष्फल सुनि यह बात ॥ पट पहिरावन ऋषिन को जैयो सुंदरि प्रात ॥ २५ ॥ सुन्दरी छन्द ॥ भोजन कै तब श्रीरघुनंदन। पौढ़ि रहे बहुदुष्टनिकंदन ॥ बाजे बजे अधरात भई जब। दूतन आइ प्रणाम कियो तब ॥ २६ ॥ चंचला छन्द ॥ दूत भूत भावना कही कही न जाय बैन। कोटिधा बिचारियो परै कछू बिचार मैं न ॥ सूर के उदोत होत बंधु आइयो सुजान। रामचन्द्र देखियो प्रभात-चंद्र के समान ॥ २७ ॥

संयुता छन्द ॥ बहु भाँति वंदन ता करी। हँसि बोलियो न दयाधरी ॥ हम ते कछू द्विजदोष है। जेहि ते कियो प्रभु रोष है ॥ २८ ॥ दोहा ॥ मनसा बाचा कर्मणा हम सेवक सुनु तात ॥ कौन दोष नहिं बोलियत ज्यों कहि आये बात ॥ २९ ॥

देवनदी, गंगा ॥ २४ ॥ दोहद कहे गर्भ ॥ २५ ॥ २६ ॥ यामें केशव कहत हैं कि दूत की कही जो भूत कहे व्यतीत भावना कहे क्रिया है, रजक वचनआदि कथा, सो कहिबे को हम कोटि प्रकार सों विचारयो, कछू विचार में नहीं परत, तासों वैन सों हम सों नहीं कही जाति, इत्यर्थः ॥२७॥ २८ ॥ २९ ॥

राम—संयुता छन्द ॥ कहिये कहा न कही परै। कहिये तौ ज्यों बहुतै उरै ॥ तब दूत बात सबै कही। बहु भाँति देहदशा दही ॥ ३० ॥ भरत—दोहा ॥ सदा शुद्ध अति जानकी निन्दत त्यों खलजाल ॥ जैसे श्रुतिहि स्वभाव ही पाखंडी सब काल ॥ ३१ ॥ अब-अपवादनि ते तज्यो त्यों चाहत सीताहि ॥ ज्यों जग के संजोग ते जोगीजन समताहि ॥ ३२ ॥ झूलना छन्द ॥ मन मानि कै अति शुद्ध सीतहि आनियो निज धाम। अवलोकि पावक-अंक ज्यों रवि-अंक पंकजदाम ॥ क्यहि भाँति ताहि निकारिहौ अपवाद वादि वखानि। शिव ब्रह्म धर्म समेत श्रीपितु साखि बोल्यहु आनि ॥ ३३ ॥ यवनादि के अपवाद क्यों द्विज छोड़िहै कपिलाहि। बिरहीन कों दुख देत क्यों हर डारि चंद्रकलाहि ॥ यह है असत्य जु होइगो अपबाद सत्य सु नाथ। प्रभु छोड़ि शुद्ध सुधा न पीवहु आपने बिष हाथ ॥ ३४ ॥ दोहा ॥ प्रिय पावनि प्रियबादिनी पतिव्रता अति शुद्ध ॥ जग को गुरु अरु गुर्विणी छाँड़त वेद-बिरुद्ध ॥ ३५ ॥ वे माता वैसे पिता तुम-सो भैया पाइ ॥ भरत भयो अपवाद को भाजन भूतल आइ ॥ ३६ ॥

॥ ३० ॥ पाखंडी, नास्तिक ॥ ३१ ॥ अपवाद, निंदा । समता को लक्षण पचीसयें प्रकाश में कह्यो है ॥ ३२ ॥ दाम, जेवरी । वादि, वृथा ॥ ३३ ॥ यह जो ब्रह्मादिकन की साक्षी है, सोई जो असत्य है, तो हे नाथ, रजककृत यह अपवाद कैसे सत्य है है, इत्यर्थः ॥ सुधासम ब्रह्मादिकन की साक्षी है, विषसम रजक को अपवाद है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

राम—हरिलीला छन्द ॥ साँची कही भरत बात सबै सुजान । सीता सदा परम शुद्ध कृपानिधान ॥ मेरी कछू अबहिं इच्छ यहै सु हेरि । मोको हतो बहुरि बात कहो जु फेरि ॥ ३७ ॥ लक्ष्मण—दोधक छन्द ॥ दूखत जैन सदा शुभ गङ्गा । छोड़हुगे बहु तुंग तरङ्गा ॥ मायहि निन्दत हैं सब योगी । क्यों तजि हैं भव भूपति भोगी ॥ ३८ ॥ ग्यारसि निन्दत हैं मठधारी । भावति है हरिभक्तनि भारी ॥ निन्दत हैं तुव नामनि बामी । का कहिये तुम अन्तरजामी ॥ ३९ ॥ दोहा ॥ तुलसी को मानत प्रिया गौतमतिय अति अज्ञ ॥ सीता को छोड़न कहौ कैसे कै सर्वज्ञ ॥ ४० ॥ शत्रुघ्न—रूपमाला छन्द ॥ स्वप्न हू नहिं छोड़िये तिय गुर्बिणी पल दोइ । छोड़ियो तब शुद्ध सीतहि गर्भमोचन होइ ॥ पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ । लोकलोकन में अलोक न लीजिये रघुराइ ॥ ४१ ॥ दोहा ॥ रामचन्द्र जग चन्द्र तुम फलदलफूलसमेत ॥ सीता या बन-पद्मिनी न्यायन ही दुख देत ॥ ४२ ॥

फेरि कहे पलटि कै ॥ ३७ ॥ जैन, नास्तिक ॥ ३८ ॥ ग्यारसि, एकादशी । वामी, वाममार्गी ॥ ३९ ॥ ४० ॥ अलोक, निंदा ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

घर घर प्रति सब जग सुखी राम तुम्हारे राज ॥ अपने ही घर करत कत शोक अशोक समाज ॥ ४३ ॥ राम—तोटक छन्द ॥ तुम बालक हौ बहुधा सब मैं । प्रतिउत्तर देहु न फेरि हमैं ॥ जु कहैं हम बात सु जाइ करो । मन मध्य न और बिचार

धरो ॥४४॥ दोहा ॥ और होइ तौ जानिजे प्रभु सों कहा बसाइ॥ यह बिचारि कै शत्रुहा भरत उठे अकुलाइ ॥४५॥ राम—दोधक छन्द ॥ सीतहि लै अब सत्वर जैये । राखि महाबन में पुनि ऐये ॥ लक्ष्मण जो फिरि उत्तर दैहौ । शासनभङ्ग को पातक पैहौ ॥ ४६ ॥ लक्ष्मण लै बन सीतहि धाये । स्थावर जंगम हू दुख पाये ॥ गङ्गहि देखि कह्यो यह सीता । श्रीरघुनायक की जनु गीता ॥ ४७ ॥

अशोक जो आनन्द है, ताके समाज कहे समूह में ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ जानिजै अर्थात् दोप-अदोष को निर्णय समुझिये ॥ ४५ ॥ शासन, आज्ञा । राजा को आज्ञाभङ्ग वध के सम होत है । यथा माधवानलनाटके—"आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखण्डनम् । पृथक्शय्या वरस्त्रीणामशस्त्रवधउच्यते" ॥ ४६ ॥ सीता को लै कै लक्ष्मण वनहू को गये, तहाँ पर्यंत कहूँ कौशल्या वशिष्ठ आदि के वचन नहीं हैं, सो ऋष्यशृंग ऋषि के यज्ञ रह्यो, तहाँ कौशल्या आदि माता और अरुंधती-सहित वशिष्ठ सब निमन्त्रण में गये रहैं, यह कथा उत्तर-रामचरित्र नाटक में लिखी है, सो जानौ ॥ ४७ ॥

पार भये जब ही जन दोऊ । भीम बनी जन जन्तु न कोऊ ॥ निर्जल निर्जन कानन देख्यो । भूत-पिशाचन को घर लेख्यो ॥ ४८ ॥ सीता—नगस्वरूपिणी छन्द ॥ सुनों न ज्ञान कारिका । शुकी पढ़ैं न सारिका ॥ न होमधूम देखिये । सुगंधबंधु लेखिये ॥ ४९ ॥ सुनों न बेद की गिरा । न बुद्धि होति है थिरा ॥ ऋषीन की कुटी कहाँ । पतिब्रता बसैं जहाँ ॥ ५० ॥ मिले न कोउ वे कहूँ । न आवते न जात हूँ ॥ चले हमैं कहाँ लिये । डराति हैं महा हिये ॥ ५१ ॥ दोहा ॥ सुनि सुनि लक्ष्मण भीत अति सीताजू के बैन ॥ उत्तर मुख आयो नहीं जल भरि आये नैन ॥ ५२ ॥ नाराच छन्द ॥ बिलोकि लक्ष्मणै भई विदेहजा बिदेह-सी । गिरी अचेत ह्वै मनों घनै बनै तड़ित्

त्रसी ॥ कस्यो जु छाँह एक हाथ एक बात बास सों। सिंच्यो सरीर बीर नैन-नीर ही प्रकास सों ॥ ५३ ॥

जन कहे मनुष्य, जंतु कहे जीव। अर्थात् मनुष्य जीव नहीं, केवल वन-जीव ही देखि परत हैं, इति भावार्थः ॥ ४८ ॥ सुगन्ध को वंधु कहे हित, अर्थात् सुगन्धयुक्त होमधूम नहीं देखियत। अथवा सुगंधवंधु कहे दुर्गंध। कहूँ सुगंधवंध पाठ है। तहाँ अर्थ यह कि सुगंध को बंध कहे बंधन है, यामें ऐसो होमधूम नहीं देखियत ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ मानों घनै बनै कहे घने वन को देखि तड़ित् जो बिजुरी है सोई त्रसी कहे डरी है। सो डरिकै अचेत ह्वै गिरि परी है, इत्यर्थः। कहूँ 'घने घने तड़ी त्रसी' पाठ है। अर्थात् मानों घने जे घन मेघ हैं तिनमें त्रसी कहे डेरानी, तड़ी अचेत ह्वै गिरी है। मेघसम वन है, बिजुरीसम सीता हैं ॥ ५३ ॥

रूपमाला छन्द ॥ राम की जपसिद्धि-सी सिय को चले बन छाँड़ि। छाँह एक फनी करी फन दीह मालनि माँड़ि ॥ बालमीकि बिलोकियो बनदेवता जनु जानि। कल्पबृक्ष-लता किधौं दिवि ते गिरी भुव आनि ॥ ५४ ॥ सींचि मन्त्र सजीव-जीवन जी उठी तेहि काल। पूछियो मुनि कौन की दुहिता बहू अरु बाल ॥ सीताजू—हौं सुता मिथिलेश की दशरत्थपुत्र-कलत्र। कौन दोष तजी न जानति कौन आपुन अत्र ॥ ५५ ॥ मुनि—पुत्रिके सुनि मोहिं जानहि बालमीकि द्विजाति। सर्वथा मिथिलेश को गुरु सर्वदा शुभ भाँति ॥ होहिंगे सुत द्वै सुधी पगु धारिये मम ओक। रामचन्द्र क्षितीशके सुत जानिहैं तिहुँ लोक ॥ ५६ ॥ सर्वथा शुनि सुद्ध सीतहि लै गये मुनिराइ। आपनी तपसान की सुभ सिद्धि-सी सुख पाइ ॥ पुत्र द्वै भये एक श्रीकुश दूसरो लव जानि। जातकर्महि आदि दै किय बेद-भेद बखानि ॥ ५७ ॥ दोहा ॥ बेद पढ़ायो प्रथम ही धनु-

बेंद सविशेष। अस्त्र शस्त्र दीन्हे घने दीन्हे मंत्र अशेष॥ ५८॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्री-
रामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां जानकी-
त्यागवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्प्रकाशः॥ ३३॥

॥ ५४॥ संजीवन-मंत्र सों जीवन जल सींच्यो, तव सीता जी उठीं। अत्र कहे या स्थान में। आपनो कौन दोष है, जासों मोको तजी, यह हौं नहीं जानति इत्यर्थः॥ ५५॥ ओक कहे घर॥ ५६॥ ५७॥ ५८॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-
निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां त्रयस्त्रिंशत्प्रकाशः॥ ३३॥

दोहा॥ आयो श्वान फिर्य्यादि को चौंतीसयें प्रकाश॥ अरु सनाढ्य द्विज आगमन लवणासुर को नाश॥१॥ दोधक छन्द॥ एक समै हरि धर्मसभा में। बैठे हुते नरदेव-प्रभा में॥ संग सबै ऋषिराज बिराजैं। सोदर मन्त्रिन मित्रन साजैं॥ २॥ कूकर एक फिर्य्यादिहि आयो। दुन्दुभि धर्मदुवार बजायो॥ बाजत ही उठि लक्ष्मण धाये। श्वानहि कारण बूझन आये॥३॥ कूकर—काहू के क्रोध बिरोध न देखो। राम को राज तपोमय लेखो॥ तामहँ मैं दुख दीरघ पायो। रामहि हौं सु निवेदन आयो॥ ४॥ लक्ष्मण—धर्मसभा महँ रामहि जानो। श्वान चलो निज पीर बखानो॥ श्वान—हौं अब राजसभा नहिं आऊँ। आऊँ तो केशव शोभ न पाऊँ॥ ५॥ दोहा॥ देव अदेव नृदेव घर पावन थल सुखदाइ॥ बिन बोले आनन्दमति कुत्सित जीव न जाइ॥ ६॥

॥ १॥ धर्मसभा, न्यायसभा॥ २॥ ३॥ निवेदन, कहनो॥ ४॥ ५॥ ६॥

दोधक छन्द॥ राजसभा महँ श्वान बुलायो। रामहि देखत

ही शिर नायो ॥ राम कह्यो जु कछू दुख तेरे। श्वान निशंक कहो पुर मेरे ॥ ७ ॥ श्वान—तारक छन्द ॥ तुम हौ सरवज्ञ सदा सुखदाई। अरु हौ सब को समरूप सदाई ॥ जग सोहत है जगतीपति जागे। अपने अपने सब मारग लागे ॥ ८ ॥ नरदेव न पाँय परै परजा को। निसि बासर होइ न रच्छक ताको ॥ गुन दोषन को जब होइ न दर्सी। तब ही नृप होइ निरै-पदपर्सी ॥ ९ ॥ दोहा ॥ निजस्वारथ ही सिद्धि द्विज मोको कस्यो प्रहार ॥ बिन अपराध अगाधमति ताको कहा बिचार ॥ १० ॥ तारक छन्द ॥ तब ताकहँ लेन तबै जन धाये। तब ही नगरी महँ ते गहि ल्याये ॥ राम—यह कूकर क्यों बिन दोषहि मास्यो। अपने जिय त्रास कछू न बिचास्यो ॥ ११ ॥ ब्राह्मण–दोहा ॥ यह सोवत हो पंथ में हौं भोजन को जात ॥ मैं अकुलाइ अगा-धमति याको कीन्हो घात ॥ १२ ॥ राम–स्वागता छन्द ॥ ब्रह्म ब्रह्म ऋषिराज बखानो। धर्म-कर्म बहुधा तुम जानो ॥ कौन दंड द्विज को द्विज दीजै। चित्त चेति कहिये सोइ कीजै ॥ १३ ॥

पुर कहे, आगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे ब्रह्म ऋषिराज, जो वेद वदै है ताके मत सों बखानौ कहौ ॥ १३ ॥

कश्यप– है अदंड्य भुवदेव सदाई। यत्र तत्र सुनिये रघु-राई ॥ ईस सीख अब या कहँ दीजै। चूकहीन अरि कोउ न कीजै ॥ १४ ॥ राम–तोमर छन्द ॥ सुनि श्वान कहि तू दंड। हम देहिं याहि अखंड ॥ कहि बात तू डर डारि। जिय मध्य आपु बिचारि ॥ १५ ॥ श्वान–दोहा ॥ मेरो भायो करहु जो रामचन्द्र हित मंडि ॥ कीजै द्विज यहि मठपती और दंड सब छंडि ॥ १६ ॥ निशिपालिका छन्द ॥ पीत पहिराइ पट बाँधि

शिर सों पटी। बोरि अनुराग अरु जोरि बहुधा गटी॥ पूजि परि पायँ मठ ताहि तब हीं दियो। मत्त गजराज चढ़ि बिप्र मठ को गयो॥ १७॥ दोहा॥ भयो रंक ते राज द्विज श्वान कीन करतार॥ भोगन लाग्यो भोग वै दुन्दुभि बाजत द्वार॥ १८॥ सुंदरी छन्द॥ बूझत लोग सभा महँ श्वानहि। जानत नाहिंन या परिमानहि॥ विप्रहि तैं जु दई पदवी वह। है यह निग्रह कै धौं अनुग्रह॥ १९॥ श्वान–दोधक छन्द॥ एक कनौज हुतो मठधारी। देव चतुर्भुज को अधिकारी॥ मंदिर कोउ बड़ो जब आवै॥ अंग भली रचनानि बनावै॥ २०॥ जा दिन केशव कोउ न आवै। ता दिन पालिक ते न उठावै॥ भेंटनि लै बहुधा धन कीनो। नित्य करै बहु भोग नबीनो॥ २१॥ एक दिना इक पाहुन आयो। भोजन तौ बहु भाँति बनायो॥ ताहि परोसन को पितु मेरो। बोलि लियो हित हौं सब केरो॥ २२॥ ताहि तहाँ बहु भाँति परोस्यो। केहू कहूँ नख माहँ रह्यो स्यो॥ ताहि परोसि जहीं घर आयो। रोवत हौं हँसि कंठ लगायो॥ २३॥ चामर छन्द॥ मोहिं मातु तप्त दूध भात भोज को दियो। बात सों सिराइ तात छीर अंगुली छियो॥ घ्यो द्रयो भख्यो गयो अनेक नर्क बास भो। हौं भ्रम्यो अनेक योनि औध आनि श्वान भो॥ २४॥ दोहा॥ वाको थोरो दोष में दीन्हो दंड अगाध॥ राम चराचर ईश तुम छमियो यह अपराध॥ २५॥ लोक करेउ अपवित्र वहि लोक नरक को बास॥ छुवै जु कोऊ मठपती ताको पुन्यबिनास॥ २६॥

बिना दोष काहू को घात न करै॥ १४॥ १५॥ १६॥ गज-रथ-अश्वादि की गढ़ी कहे समूह जोरि यत्न करिकै दियो, और मठ दियो। कृपा दुहूँ ओर लागति है। अथवा मठधारिन की गढ़ी में जोरि कहे मिलाइ

कै, कालंजर दुर्ग जो प्रसिद्ध है, ताको मठपति कियो । यह वाल्मीकीय रामायण में लिख्यो है। यथा—"कालंजरे महाराज कौलपत्यं प्रदीयताम्। एतच्छ्रुत्वा तु रामेण कौलपत्येभिषेचितः" ॥ १७ ॥ १८ ॥ या जो मठपति है, ताके प्रमाण को नहीं जानत ॥१६॥२०॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥२६॥

रामायणे यथा—"ब्रह्मस्वं देवद्रव्यं च स्त्रीणां बालधनं च यत् ॥ दत्तं हरति यो मोहात्स पचेन्नरके ध्रुवम्" ॥ २७ ॥ स्कन्दपुराणे यथा—"हरस्य चान्यदेवस्य केशवस्य विशेषतः ॥ मठपत्यं च यः कुर्य्यात्सर्वधर्म्मबहिष्कृतः" ॥ २८ ॥ पद्मपुराणे यथा—"पत्रं पुष्पं फलन्तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य च ॥ योऽश्नाति स पचेद्घोरान्नरकानेकविंशतिः" ॥ २९ ॥ देवीपुराणे यथा—"अभोज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ स्पृष्ट्वा मठपतिं विप्रं सवासा जलमाविशेत्" ॥ ३० ॥ दोहा ॥ औरौ एक कथा कहौं बिकल भूप की राम ॥ वहौ अयोध्या बसत हैं बंशकार के धाम ॥ ३१ ॥ वसन्ततिलका छन्द ॥ राजा हुतो प्रबल दुष्ट अनेकहारी । बारानसी बिमल क्षेत्र निबासकारी ॥ सो सत्यकेतु यह नाम प्रसिद्ध सूरो । बिद्याबिनोदरत धर्म-बिधान पूरो ॥ ३२ ॥

ब्रह्मस्व ब्राह्मण को द्रव्य, देवता को द्रव्य, स्त्री को द्रव्य, बालक को द्रव्य और आपनो दीन्हो जो द्रव्य है, इनको मोहवश ह्वै कै जो हरत है, सो प्राणी ध्रुव कहे निश्चय करि, नरके कहे नरक में पचेत् कहे पाकत है, अर्थात् जरत है, दुख पावत है इति। कहिबेको हेतु यह कि देवद्रव्यहारी मठपति है, सो नरक को प्राप्त होत है ॥ २७ ॥ जो प्राणी काहू देव को मठपति होइ, सो धर्मरहित ह्वै जात है, इत्यर्थः ॥ २८ ॥ अश्नाति कहे भोग करत है। घोर भयानक जे एकविंशति नरक हैं, तिनमें पाकत है ॥ २९ ॥ मठिन को अन्न अभोज्य है, खाइबे योग्य नहीं है। जो खाइये तो चान्द्रायण व्रत को करिये। और मठपति ब्राह्मण को स्पृष्ट्वा कहे छुइ कै, सवासा कहे वस्त्रसहित, जलं कहे जल में, आविशेत् कहे प्रवेश करिये। वस्त्रसहित

स्नान करि डारिये, इत्यर्थः ॥ ३० ॥ जो पाछे कह्यो है कि "गुन दोषन को जबैं होइन दर्सी । तबहीं नृप होइ निरैपद पर्सी," सो बात पुष्ट करिबे के लिये सत्यकेतु की कथा कहत हैं । जो वंशकार कहे डोम के घर में विकल कष्टयुक्त बसत है, ता भूप की कथा कहत हौं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

धर्माधिकार पर एक द्विजाति कीन्हो । संकल्पद्रव्य बहुधा त्यहि चोरि लीन्हो ॥ बन्दीविनोद गनिकादि बिलासकर्त्ता । पावै दसांस द्विज दान असेष हर्त्ता ॥ ३३ ॥ राजा बिदेस बहु साजि चमू गये हो । जूझ्यो तहाँ समर जोधन सों भये हो ॥ आये कराल किल दूत कलेसकारी । लीन्हे गये नृपति को जहँ दंडधारी ॥ ३४ ॥ धर्मराज—भुजंगप्रयात छन्द ॥ कहा भोगवैगो महाराज दू में । कि पापै कि पुन्यै कस्यो भूरि भू में ॥ राजा—सुनो देव मोको कछू सुद्धि नाहीं । कहौ आप ही पाप जो मोहिं माहीं ॥ ३५ ॥ धर्मराज—कियो तैं द्विजाती जु धर्माधिकारी । सु तो नित्य संकल्पवित्तापहारी ॥ दियो दुष्ट रंडानि-मुंडानि लै लै । महापाप माथे तिहारे सु दै दै ॥ ३६ ॥

बन्दीजनन की जो विनोद कहे स्तुति है, तामें, और गणिकादिकन को अनेक विलास को कर्त्ता रह्यो । और जो दान द्रव्य राजा के इहाँ से कढ़त रह्यो है, तामें दशांश ब्राह्मण पावैं, और अशेष सम्पूर्ण को हर्त्ता आपु रह्यो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हुतो तैं सबै देश ही को नियंता । भले की बुरे की करी तैं न चिंता ॥ महासूक्ष्म है धर्म की बात देखो । जितो दान दीन्हो तितो पाप लेखो ॥ ३७ ॥ दोहा ॥ कालसर्प से समुझिये सबै राज के कर्म ॥ ता हू ते अति कठिन है नृपति दान को धर्म ॥ ३८ ॥ भुजंगप्रयात छन्द ॥ भयो कोटिधा नर्क सम्पर्क ताको । हुते दोष संसर्ग के शुद्ध जाको ॥ सबै पाप भे क्षीण भो सुक्क लेखी । रह्यो औध में आनि है कोलबेखी ॥ ३९ ॥

तारक छन्द ॥ तब बोलि उठो दरबारबिलासी । द्विज द्वार लसै यमुनातटबासी ॥ अति आदर सों ते सभा महँ बोल्यो । बहु पूजन कै मग को श्रम खोल्यो ॥ ४० ॥ राम—रूपमाला छन्द ॥ शुद्ध देश ये रावरे सु भये सबै यहि बार । ईशआगम संगमादिक ही अनेक प्रकार ॥ धाम पावन ह्वै गये पदपद्म को पय पाय । जन्म शुद्ध भये छुये कछु दृष्टि ही मुनिराय ॥ ४१ ॥

॥ ३७ ॥ ३८ ॥ जाको जा शुद्ध राजा को केवल संसर्ग ही के दोष रहे, तासों नरक को संपर्क कहे संयोग भयो । यासों राजा को भले-बुरे की चिन्ता करिबो उचित है, इति भावार्थः । जब नरक-भोग सों सबै पाप क्षीण भये तब नरक ते मुक्त भयो, छूट्यो । तब अवध में कोल कहे चांडाल-भेद अथवा शूकर-रूपधारी रह्यो है ॥ ३९ ॥ दरबार जो बहिर्द्वार है, ताको विलासी द्वारपाल । खोल्यो, दूरि कर्यो ॥ ४० ॥ रामचन्द्र ब्राह्मणन सों कहत हैं कि हे ईश, रावरे आगम आइबे सों और संगम बैठिबे-पौढ़िबे आदि सों, तिन्हैं आदि जे और स्नान-भोजनादि हैं तिनसों, ये हमारे देश अनेक प्रकार सों शुद्ध भये । और तुम्हारे पदपद्म के छुये सों जन्म शुद्ध भये । और तुम्हारी दृष्टि सों कुल शुद्ध भये । अथवा आगम सों देश शुद्ध भये, संगम जो स्पर्श है त्यहि आदि दै, सो जन्मादि अनेक प्रकार सों शुद्ध भये । ते आगे कहत हैं ॥ ४१ ॥

पादपद्म प्रणाम ही भये शुद्ध सीस हाथ । शुद्ध लोचन रूप देखत ही भये मुनिनाथ ॥ नासिका रसना बिसुद्ध भये सुगंध सु नाम । कर्ण कीजत शुद्ध शब्द सुनाय पीयुषधाम ॥ ४२ ॥ दोधक छन्द ॥ आये कहँ सोइ आयसु दीजै । आजु मनोरथ पूरन कीजै ॥ ब्राह्मण—जीवति सो सब राज्य तिहारी । निर्भय ह्वै भुवलोकबिहारी ॥ ४३ ॥ ऋषि—मरहट्टा छन्द ॥ तुम हौ सब लायक श्रीरघुनायक उपमा दीजै काहि । मुनिमानसरंता जगतनियंता आदि न अन्त न जाहि ॥ मारौ लवणा-

सुर जैसे मधु, मुर मारे श्रीरघुनाथ । जग-जय-रस-भीने श्री-शिव दीने शूलहि लीने हाथ ॥ ४४ ॥ दोहा ॥ जाके मेलत शूल यह सुनिये त्रिभुवनराय । ताहि भस्म करि सर्वथा वाही के कर जाय ॥ ४५ ॥ दोधक छन्द ॥ देव सबै रण हारि गये जू । और जिते नरदेव भये जू ॥ श्रीभृगुनन्दन युद्ध न माँड्यो । श्रीशिव को गनि सेवक छाँड्यो ॥ ४६ ॥

॥ ४२ ॥ तुम्हारो जो सब राज्य है, अर्थात् राजवासी हैं, सो जीवति जीवन सों निर्भय ह्वै कै भुवलोक में विहारी कहे विहार करत हैं । अर्थात् तुम्हारे राजवासी को कहूँ भय नहीं है । तामें हमको जीवित की भय प्राप्त है, इति भावार्थः ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

दोहा ॥ पादारघ हमको दियो मथुरामंडल आप । वासों बसन न पावहीं बिना बसे अतिपाप ॥ ४७ ॥ राम—रच्छ-हिं गे शत्रुघ्नसुत ऋषि तुमको सब काल । वासुदेव ह्वै रच्छिहौं हँसि कह दीनदयाल ॥ ४८ ॥ भुजंगप्रयात छन्द ॥ चलौ बेगि शत्रुघ्न ताको सँहारो । वहै देस तौ भावतो है हमारो ॥ सदा सुद्ध बृन्दाबनो भू भली है । तहाँ नित्य मेरी बिहारस्थली-है ॥ ४९ ॥ यहै जानि भू मैं द्विजन्मान दीनी । बसै यत्र बृन्दा प्रिया प्रेमभीनी ॥ सनाढ्यान की भक्ति जो जीय जागै । महादेव को शूल ताके न लागै ॥ ५० ॥ बिदा ह्वै चले राम पै शत्रुहन्ता । चले साथ हाथी रथी युद्धरन्ता ॥ चतुर्द्धा चमू चारि हू ओर गाजैं । बजैं दुन्दुभी दीह दिग्देव लाजैं ॥ ५१ ॥ दोहा ॥ केशव बासर बारहैं रघुपति के सब बीर । लवणासुर के जमनि ज्यों मेले जमुनातीर ॥ ५२ ॥ मनोरमा छन्द ॥ लवणासुर आइ गयो यमुनातट । अवलोकि हँस्यो रघुनन्दन के भट ॥ धनु बाण लिये निकसे रघुनन्दनु । मद के गज को सुत केहरि को

जनु ॥ ५३ ॥ लवणासुर–भुजंगप्रयात छन्द ॥ सुन्यो तैं नहीं जो इहाँ भूलि आयो । बड़ो भाग मेरो बड़ो भक्ष्य पायो ॥ शत्रुघ्न–महाराज श्रीराम हैं क्रुद्ध तोसों । तजौ देश को कै सजौ जुद्ध मो सों ॥ ५४ ॥

पाप कष्ट, अथवा पातक ॥ ४७ ॥ वासुदेव, कृष्ण ॥ ४८ ॥ वृन्दा, तुलसी ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ लवणासुर के यमनि कहे यमराजन के सम ॥ ५२ ॥ मद के गज को कहे मदयुक्त गज को ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

लवणासुर–वहै राम राजा दशग्रीवहन्ता । सु तो बन्धु मेरो सुरस्त्रीन रन्ता ॥ हतौ तोहिं वाको करौं चित्तभायो । महादेव की सौं बड़ो भक्ष्य पायो ॥ ५५ ॥ भये क्रुद्ध दोऊ दुवौ युद्धरन्ता । दुवौ अस्त्रशस्त्रप्रयोगी निहन्ता ॥ बली बिक्रमी धीर शोभाप्रकाशी । नस्यो हर्ष दोऊ सबर्षै बिनाशी ॥ ५६ ॥ शत्रुघ्न–दोहा ॥ लवणासुर शिव-शूल बिन और न लागै मोहिं । शूल लिये बिन भूलि हू हौं न मारिहौं तोहिं ॥ ५७ ॥

रन्ता, भोगी । सरस्वती-उक्तार्थ—सुरस्त्रीनरन्ता कहि या जनायो जो रावण इन्द्र हू को जीति देवांगनन को लै आयो, ताहू को रामचन्द्र मास्यो, तो अतिबली हैं । तिनके तुम बन्धु ही हौ, तो कहे तौ ही कहे निश्चय करि हमको हतौ मारौ । वाको रामचंद्र को चित्तभायो करो । महादेव की सौंह है, जो तू रामचन्द्र को बन्धु ही है तो बड़ो भक्ष्य कहे मेरे जे भक्ष्य या ठौर के वासी हैं तिनको पालनहार तू आयो है ॥ ५५ ॥ प्रयोगी कहे चलावनहार । सबर्षै कहे बाण-वर्षासहित जे दोऊ विनाशी कहे परस्पर हन्ता हैं, तिनको हर्ष नशि गयो है, अर्थात् विकल हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

मोटनक छन्द ॥ लीन्हो लवणासुर सूल जहीं । मारेउ रघुनन्दन बाण तहीं ॥ काट्यो सिर सूलसमेत गयो । सूलीकर सुःख त्रिलोक भयो ॥ ५८ ॥ बाजे दिबि दुन्दुभि दीह तबै । आये सुर इन्द्रसमेत सबै ॥ देव–कीन्हो बहु बिक्रम या रन में । माँगो

बरदान रुचै मन में ॥ ५६ ॥ शत्रुघ्न–प्रमाणिका छन्द ॥ सनाढ्यबृत्ति जो हरै। सदा समूल सो जरै॥ अकालमृत्यु सों मरै। अनेक नर्क सो परै ॥ ६० ॥ सनाढ्य जाति सर्बदा। यथा पुनीत नर्मदा ॥ भजैं सजैं जे संपदा। बिरुद्ध ते असंपदा ॥ ६१ ॥ दोहा ॥ मथुरामण्डल मधुपुरी केशव स्वबस बसाइ। देखे तब शत्रुघ्नजू रामचन्द्र के पाइ ॥ ६२ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीराम-
चन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां लवणासुरवध-
वर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३४ ॥

॥ ५८ ॥ ५६ ॥ ६० ॥ कहिबे को हेतु यह कि ऐसे जे सनाढ्य हैं, तिनकी भक्ति हमको वर दीजै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-
निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां चतुस्त्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३४ ॥

दोहा ॥ पैंतीसयें प्रकाश में अश्वमेध किय राम। मोहन लव शत्रुघ्न को ह्वै है संगरधाम ॥ १ ॥ बिश्वामित्र बशिष्ठ सों एक समय रघुनाथ। आरंभो केशव करन अश्वमेध की गाथ ॥ २ ॥ राम–चामर छन्द ॥ मैथिलीसमेत तौ अनेक दान मैं दियो। राजसूय आदि दै अनेक यज्ञ मैं कियो॥ सीय-त्याग-पाप ते हिये सु हौं महा डरौं। और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं ॥ ३ ॥

सङ्गरधाम कहे समरभूमि में ॥ १ ॥ २ ॥ सो ताके त्याग-पाप के मोचनार्थ बिना जानकी एक अश्वमेध करत हौं, इत्यर्थः ॥ ३ ॥

कश्यप–दोहा ॥ धर्म-कर्म कछु कीजई सफल तरुणि के साथ। ता बिन जो कछु कीजई निष्फल सोई नाथ ॥ ४ ॥ तोटकछन्द ॥ करिये युत भूषण रूपरई। मिथिलेशसुता इक स्वर्णमई ॥ ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये। शुचि सों सब यज्ञ-

बिधान किये ॥ ५ ॥ हयशालन ते हय छोरि लियो। शशिबर्ण सु केशव शोभरयो ॥ श्रुति-श्यामल एक बिराजत है। अलि स्यो सरसीरुह लाजत है॥ ६ ॥ रूपमाला छन्द ॥ पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत पट्ट बाँधिय भाल। भूषि भूषण शत्रुदूषण छाँड़ियो तेहि काल ॥ संग लै चतुरंग सेनहि शत्रुहन्ता साथ। भाँतिभाँतिन मान दै पठये सु श्रीरघुनाथ ॥ ७ ॥ जात है जित बाजि केशव जात हैं तित लोग। बोलि बिप्रन दानँ दीजत जत्र-तत्र सभोग ॥ बेनु बीन मृदंग बाजत दुन्दुभी बहु भेव। भाँति भाँतिन होत मंगल देव-से नरदेव ॥ ८ ॥ कमल छन्द ॥ राघव की चतुरंग-चमू-चय को गनै केशव राजसमाजनि। शूर तुरंगन के उरझैं पग तुंग पताकन की पटसाजनि ॥ टूटि परैं तिनते मुकता धरनी उपमा बरनी कबिराजनि। बिंदु किधौं मुख फेनन के किधौं राजसिरी स्रवै मंगललाजनि ॥ ९ ॥

॥ ४ ॥ शुचि सों, पवित्रता सों ॥ ५ ॥ इहाँ श्वेत कमल जानो ॥ ६ ॥ शत्रुदूषण, रामचन्द्र ॥ ७ ॥ सभोग कहे अनेक भोग्य वस्तु सहित ॥ ८ ॥ समाज, समूह। स्रवै कहे वरसति है। राजन के प्रयाण में पुरस्त्री लाजनि कहे लावा मंगलार्थ बरसावति हैं, यह प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥

राघव की चतुरंग चमू चपि धूरि उठी जल हू थल छाई। मानों प्रताप-हुतासन-धूम सो केशवदास अकास न माई ॥ मेटि कि पंच प्रभूत किधौं बिधु रेनुमयी नव रीति चलाई। दुःखनिबेदन को भवभार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई ॥ १० ॥ दण्डक ॥ नाद पूरि धूरि-पूरि तूरि बन चूरि गिरि सोखि सोखि जल भूरि भूरि थल गाथ की। केसौदास आसपास ठौर ठौर राखि जन तिनकी संपति सब आपने ही हाथ की ॥ उन्नत नवाइ नत उन्नत बनाइ भूप शत्रुन को जीविका तिमित्रन के

हाथ की। मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै आई दिसि दिसि जीति सेना रघुनाथ की ॥ ११ ॥

पंचप्रभूत, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश ॥ १० ॥ नाद, कोलाहल। नदी-तड़ाग आदिकन को भूरि जल सोखिकै। और भूरि जल ही की थल में गाथ प्रसिद्धता कस्यो। अर्थात् चमू के चरण सों चपि मेघादिकन को जल सोखि गयो और थल द्रवत भये, तासों पाताल सों जल कढ़ि आयो। ठौर-ठौर कहे देश-देश में जन कहे आमिल राखि कै तिन देशन की संपत्ति आपने हाथ कहे काबू में कीन्हो। अर्थात् तिन देशन में अमल कियो। तिन देशन के जे उन्नत कहे बड़े भूप रहैं, तिन्हैं नवाइ दियो, जासों समय पाय विरुद्ध होइवे लायक न रहैं। और नत कहे छोटे जे भूप रहैं, तिन्हैं उन्नत बनायो, जासों तावेदार बने रहैं। शत्रु राजन की जीविका राज्य अतिमित्र जे राजा हैं तिन्हैं सौंपि दियो। और सातों समुद्रन सों मुद्रित चिह्नित जो पृथ्वी है, अर्थात् सप्तसमुद्रपर्यंत पृथ्वी, तामें आपनी मुद्रा जो मोहर है ताको मुद्रित कै कहे छापि कै, अर्थात् राज-सिक्का चलाइ कै रामचन्द्र की विजयी सेना आई ॥ ११ ॥

दोहा ॥ दिसि-बिदिसनि अवगाहि कै सुख ही केशवदास। बालमीकि के आश्रमहि गयो तुरंग प्रकास ॥ १२ ॥ दोधक छन्द ॥ दूरि हि ते मुनिबालक धाये। पूजित बाजि बिलोकन आये ॥ भाल को पट्ट जहाँ लव बाँच्यो। बाँधि तुरंगम जै-रस राच्यो ॥ १३ ॥ श्लोक ॥ "एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः ॥ तेन रामेण मुक्तोसौ वाजी गृह्णातिविमम्बली" ॥ १४ ॥ दोधक छन्द ॥ घोर चमू चहुँ ओर ते गाजी। कौनेहि रे यह बाँधिय बाजी ॥ बोलि उठे लव मैं यह बाध्यो। यों कहि कै धनुसायक साध्यो ॥ मारि भगाइ दिये सिगरे यों। मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यों ॥ १५ ॥

अवगाहि, मँझाइ कै ॥ १२ ॥ १३ ॥ एको वीरः पतिर्यस्याः सा एकवीरा। अर्थात् भूमंडल में जेते प्रसिद्ध वीर हैं, तिनके मध्य में एकवीर

मुख्यवीर, अर्थ यह कि सबसों अधिक वीर है पति जाको। और फेरि कैसी हैं कौशल्या, कोशलाधिप की कन्या हैं। तिनके पुत्र रघूद्वह कहे रघुवंश के राज्यादि भार के धारणकर्त्ता। रामचन्द्र हैं इति शेषः। इन तीनों पदन सों एकवीरात्मजत्व, सुकुलजात्मजत्व, और राज्याभिषिक्तत्व जनायो। तेन रामेण कहे तिन राम करि कै असौ कहे यह वाजी मुक्तः कहे छोड़्यो गयो है। जो बली होय सो इमं कहे याको गृह्णातु कहे ग्रहण करै। अथवा बाँधै ॥ १४ ॥ १५ ॥

धीर छन्द ॥ जोधा भगे बीर शत्रुघ्न आये। कोदंड लीन्हे महा रोष छाये ॥ ठाढ़े तहाँ एक बालै बिलोक्यो। रोक्यो तहीं जोर नाराच मोक्यो ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न–सुन्दरी छन्द ॥ बालक छाँड़ि दे छाँड़ि तुरंगम। तोसों कहा करौं संगर-संगम ॥ ऊपर बीर हिये करुणारस। बीरहि बिप्र हते न कहूँ जस ॥ १७ ॥ लव–तारक छन्द ॥ कछु बात बड़ी न कहौ मुख थोरे। लव सों न जुरौ लवणासुर-भोरे ॥ द्विजदोषन ही बल ताको सँहास्यो। मरिही जु रह्यो सु कहा तुम मास्यो ॥ १८ ॥ चामर छन्द ॥ रामबन्धु बान तीनि छोड़िये त्रिसूल-से। भाल में बिशाल ताहि लागियो ते फूल-से ॥ लव–घात कीन राजतात गात तैं कि पूजियो। कौन शत्रु तैं हत्यो जु नाम शत्रुहा लियो ॥ १९ ॥

मोक्यो कहे छोड़ि ही से चुके रहैं, ता नाराच को रोंक्यो ॥ १६–१९ ॥

निशिपालिका छन्द ॥ रोष करि बाण बहु भाँति लव छंडियो। एक ध्वज सूत जुग तीनि रथ खंडियो ॥ शस्त्र दशरत्थ-सुत अस्त्र कर जो धरै। ताहि सियपुत्र तिलतूल सम खंडरै ॥ २० ॥ तारक छन्द ॥ रिपुहा कर बाण वहै करि लीन्हो। लवणासुर को रघुनन्दन दीन्हो ॥ लव के उर में उरझ्यो वह पत्री। मुरझाइ गिस्यो धरणी महँ क्षत्री ॥ २१ ॥ मोटनक छन्द ॥ मोहे

लव भूमि परे जबहीं । जयदुन्दुभि बाजि उठे तबहीं ॥ भुव ते रथ ऊपर आनि धरे । शत्रुघ्न सु यों करुनानि भरे ॥ २२ ॥ घोड़ो तबहीं तिन छोरि लयो । शत्रुघ्नहि आनँद चित्त भयो ॥ लै कै लव को ते चले जबहीं । सीता पहँ बाल गये तबहीं ॥ २३ ॥ बालक—झूलना छन्द ॥ सुनु मैथिली नृप एक को लव बाँधियो बर बाजि । चतुरंग सेन भगाइ कै तब जीतियो वह आजि ॥ उर लागिगो शर एक को भुव में गिस्यो मुरझाइ । वह बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुंदुभीन बजाइ ॥ २४ ॥ दोहा ॥ सीता गीता पुत्र को सुनि-सुनि भई अचेत । मनों चित्र की पुत्रिका मन-क्रम-बचन-समेत ॥ २५ ॥ सीता—झूलना छन्द ॥ रिपुहाथ श्रीरघुनाथ के सुत क्यों परे करतार । पति-देवता सब काल जो लव जो मिलै यहि बार ॥ ऋषि हैं नहीं कुश है नहीं लव लेइ कौन छड़ाइ । बन माँझ टेर सुनी जहीं कुश आइयो अकुलाइ ॥ २६ ॥

एक बाण सों ध्वजा खण्ड्यो, और द्वै बाण सों सूत सारथी खण्ड्यो, और तीन बाण सों रथ खण्ड्यो । तिल और तूल रुई सम खण्डरै कहे खण्डन करत है ॥ २० ॥ पत्री, बाण ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

कुश—दोहा ॥ रिपुहि मारि संहारि दल यम ते लेउँ छँड़ाइ । लव हि मिलैहौं देखि हौं माता तेरे पाँइ ॥ २७ ॥ सवैया ॥ गाहियो सिंधु सरोवर-सो जेहि बालि बली बर सो-बर पेस्यो । दाहि दिये शिर रावण के गिरि-से गुरु जा तन जात न हेस्यो ॥ सूल समूल उखारि लियो लवणासुर पीछे ते आइ सो टेस्यो । राघव को दल मत्त करी सुरअंकुश दै कुश कै सब फेस्यो ॥२८॥ दोहा ॥ कुश की टेर सुनी जहीं फूलि फिरे शत्रुघ्न । दीप बिलोकि पतंग ज्यों जदपि भयो बहु विघ्न ॥ २९ ॥ मनोरमा

छन्द ॥ रघुनन्दन को अवलोकत ही कुश। उर माँझ हयो शर शुद्ध निरंकुश ॥ ते गिरे रथ ऊपर लागत ही शर। गिरि ऊपर ज्यों गजराज-कलेवर ॥ ३० ॥ सुन्दरी छन्द ॥ जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन। भाजि गये तबहीं भट के गन ॥ काढ़ि लियो जबहीं लव को शर। कंठ लग्यो तबहीं उठि सोदर ॥ ३१ ॥ दोहा ॥ मिले जु कुश-लव कुशल सों बाजि बाँधि तरुमूल। रण-महि ठाढ़े सोभिजैं पशुपति गणपति तूल ॥ ३२ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां शत्रुघ्नसम्मोहो नाम पञ्चत्रिंशः प्रकाशः ॥ ३५ ॥

यम ते लेउँ छड़ाइ कहि या जनायो कि जो मस्यो है है तो यमपुर ते फेरि ल्याइ हौं ॥ २७ ॥ मत्त करि-सम कह्यो, सो मत्त करी को कृत राघवदल में स्थापित करत हैं। गाहियो, मँझाइयो। बालि बली को जो वर बल है ताहि वर कहे वट-वृक्ष सो पेस्यो कहे मर्दैव। और शूलरूपी जो मूल जर रह्यो त्यहि सहित लवणासुर को, वृक्ष सो इति शेषः, उखारि लीन्हो। जैसे वृक्ष मूल के आधार सों सबल रहत है, तैसे शूल सों लवणासुर सबल रह्यो, तासों मूल-सम कह्यो ॥ २८ ॥ पतंग, पाँखी ॥ २९ ॥ निरंकुश, निर्भय। कलेवर, देह ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसादनिर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां पञ्चत्रिंशः प्रकाशः ॥ ३५ ॥

दोहा ॥ छत्तीसयें प्रकाश में लक्ष्मण-मोहन जानि। आयसु लहि श्रीराम को आगम भरत बखानि ॥ १ ॥ रूपमाला छन्द ॥ यज्ञमंडल में हुते रघुनाथ जू तेहि काल। चर्म अंग कुरंग को सुभ स्वर्णकी सँग बाल ॥ आसपास ऋषीस सोभित सूर सोदर साथ। आइ भग्गुल लोग बरनी

युद्ध की सब गाथ ॥ २ ॥ मञ्जुल–स्वागता छन्द ॥ बालमीकि-थल बाजि गयो जू। विप्रबालकन घेरि लयो जू ॥ एक बाँधि पट घोटक बाध्यो। दौरि दीह धनु सायक साध्यो ॥ ३ ॥ भाँति-भाँति सब सेन सँहास्यो। आपु हाथ जनु ईस सँवास्यो ॥ अस्त्र-शस्त्र तब बन्धु जु धास्यो। खंड-खंड करि ता कहँ डास्यो ॥ ४ ॥ रोषवेष वह बाण लयोजू। इन्द्रजीत लगि आपु दयो जू ॥ कालरूप उर माँह हयो जू। वीर मूर्च्छि तब भूमि भयो जू ॥ ५ ॥ तोमर छन्द ॥ बहु बीर लै अरु बाजि। जबहीं चल्यो दल साजि ॥ तब और बालक आनि। मग रोकियो तजि कानि ॥ ६ ॥ तेहि मारियो तब बन्धु। तब है गयो सब अन्धु ॥ वह बाजि लै अरु वीर। रण में रह्यो रुपि धीर ॥ ७ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ घोटक, घोड़ो ॥ ३ ॥ ४ ॥ पैंतीसयें प्रकाश में कह्यो है कि "रिपुहा कर बाण वहै करि लीन्हो। लवणासुर को रघुनन्दन दीन्हो" और इहाँ कह्यो है कि "इंद्रजीत लागि आप दयोजू।" तहाँ या जानौ कि वहै बाण इंद्रजीत के मारिबे को लक्ष्मण को दियो रहै, और वहै लवणासुर के मारिबे को शत्रुघ्नहू को दियो रहै। अथवा इंद्रजीत लवणासुर ही को नाम जानौ। इंद्र को लवणासुरहू जीत्यो है, सो चौंतीसयें प्रकाश में कह्यो है कि "देव सबै रण हारि गयेजू।" भूमि भयो कहे भूमि में पस्यो। कानि, मर्यादा ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

दोहा ॥ बुधि बल विक्रम रूप गुण शील तुम्हारे राम ॥ काकपक्षधर बाल द्वै जीते सब संग्राम ॥ ८ ॥ राम–चतुष्पदी छन्द ॥ गुणगणप्रतिपालक रिपुकुलघालक बालक ते रणरन्ता। दशरथ नृप को सुत मेरो सोदर लवणासुर को हन्ता ॥ कोऊ द्वै मुनिसुत काकपक्षयुत सुनियत है जिन मारे। यहि जगतजाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे ॥ ९ ॥

काकपक्ष, जुलुफ ॥ ८ ॥ बालकते बालअवस्था ही सों रणरन्ता कहे

रण में रमत रह्यो है। यह जो जगत्-जाल कहे संसार-समूह है, अथवा जगत रूपी जाल फाँस है, और काल कहे समय है, तिनके जे कुटिल कहे टेढ़े कर्म हैं, ते भारे कहे अतिभयानक हैं। या जगत् में समय के फेर सों ऐसी अनुचित बात ह्वै जाति है, जाको देखि कै बड़ो भय होत है, इत्यर्थः ॥ ९ ॥

मरहट्टा छन्द ॥ लक्ष्मण शुभ-लक्षण बुद्धिविचक्षण लेहु बाजि कर शोधु। मुनि-शिशु जनि मारहु बन्धु उधारहु क्रोध न करहु प्रबोधु ॥ वहु सहित दक्षिणा दै प्रदक्षिणा चल्यो परम रणधीर। देख्यो मुनिबालक सोदर उपज्यो करुणा अद्भुत वीर ॥ १० ॥ कुश–दोधक छन्द ॥ लक्ष्मण को दल दीरघ देख्यो। काल हु ते अति भीम विसेख्यो ॥ द्वै में कहौ सु कहा लव कीजे। आयुध लेहौ कि घोटक दीजे ॥ ११ ॥

प्रबोध, क्षमा। मुनिबालकन को लघु वेष देखि करुणा रस भयो, और सोदर शत्रुघ्न को मूर्च्छित देखि आश्चर्य भयो कि एतो बड़ो वीर ताको बालकन मूर्च्छित कर्यो। शत्रुघ्न को मूर्च्छित कर्यो है, तासों इनको मारो चाहिये, या सों वीर-रस भयो ॥ १० ॥ ११ ॥

लव–बूझत हौ तौ यहै प्रभु कीजे। मो असु दै वरु अश्व न दीजे ॥ लक्ष्मण को दल सिन्धु निहारो। ता कहँ बाण अगस्त्य तिहारो ॥ १२ ॥ कौन यहै घटि है अरि घेरे। नाहिंन हाथ सरासन मेरे ॥ नेकु जहीं दुचितो चित कीन्हो। सूर बड़ो इषुधी धनु दीन्हो ॥ १३ ॥ लै धनु-बाण बली तब धायो। पल्लव ज्यों दल मारि उड़ायो ॥ यों दोउ सोदर सेन सँहारैं। ज्यों बन पावक पौन बिहारैं ॥ १४ ॥ भागत हैं भट यों लव आगे। राम के नाम ते ज्यों अघ भागे ॥ यूथप-यूथ यों मारि भगायो। बात बढ़े जनु मेघ उड़ायो ॥ १५ ॥ सवैया ॥ अति रोष रसे कुश केशव श्रीरघुनायक सों रणरीति रचै। त्यहि बार न बार भई वहु बारन खड्ग हनै न गनै बिरचै ॥ तहँ कुंभ फटैं

गजमोती कटैं ते चले बहु शोणित रोचि रचै। परिपूरन पूर पनारन ते जनु पीक कपूरन की किरचै॥ १६॥

बूझत कहे पूछत। असु, प्राण॥ १२॥ कौन कहे कहा अरि के घेरे में याही बात ना घटि है कि हमारे हाथ में शरासन धनुष नहीं है। या प्रकार कहत लव नेक चित्त को दुचित्तो कस्यो, अर्थात् युद्ध हू को विचार विचारत रहे, और सूर्य की स्तुति हू में चित्त को लायो। तब सूर कहे सूर्य बड़ो इषुधी तर्कस और धनुष दीन्हो। यथा जैमिनिपुराणे—"जैमिनिरुवाच। स्तोत्रेणानेन संतुष्टो रविर्दिव्यं शरासनम्॥ ददौ लवाय सौरं च जयति श्रेयमुत्तमम्॥१॥ सुवर्णपट्टैरुचिरैर्निबद्धं सगुणं दृढम्॥ धनुः प्राप्य महाबाहुर्लवः कुशमथाब्रवीत्॥ २॥ उपदिष्टं हि यत्स्तोत्रं मुनिना करुणात्मना॥ सौरं तज्जपितं भ्रातस्तस्माल्लब्धं मया धनुः"॥१३॥१४॥ रसे कहे युक्त। तेहि बार कहे समय में बार कहे बेर ना भई। अर्थात् थोरि ही बेर में बहुत वारण जे हाथी हैं, तिनको खड्ग तरवारि सों हनत हैं। और काहू को गनत नहीं हैं। और बिरचै कहे बिरुभात हैं। पीक के पूर कहे धार सम रुधिर है। कपूर-किरच सम मोती हैं॥ १५॥ १६॥

नाराचछन्द॥ भगे चये चमू चमूप छोड़ि छोड़ि लछ्मनै। भगे रथी महारथी गयन्द बृन्द को गनै॥ कुसै लवै निरंकुसै बिलोकि बंधु राम को। उठ्यो रिसाइ कै बली बँध्यो सु लाज-दाम को॥ १७॥ कुश—मौक्तिकदामछन्द॥ न हौं मकराक्ष न हौं इंद्रजीत। बिलोकि तुम्हैं रन होहुँ न भीत॥ सदा तुम लक्ष्मण उत्तमगाथ। करौ जनि आपनि मातु अनाथ॥ १८॥ लक्ष्मण—कहौ कुश जो कहि आवति बात। बिलोकतहौं उपबीतहि गात॥ इते पर बाल बहिक्रम जानि। हिये करुणा उपजै अति आनि॥१९॥ बिलोचन लोचत हैं लखि तोहिं। तजौ हठ आनि भजौ किन मोहिं॥ छम्यो अपराध अजौं घर जाहु। हिये उपजाउ न मातहि दाहु॥ २०॥ दोधक छन्द॥ हौं हतिहौं कबहूँ

नहिं तोहीं । तू बरु बाणन बेधहि मोहीं ॥ बालक बिप्र कहा हनिये जू । लोक अलोकन में गनिये जू ॥ २१ ॥

महारथी यथा—"एको दशसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् ॥ शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च स महारथ उच्यते" ॥ १७ ॥ १८ ॥ १६ ॥ हमारे लोचन तुम्हारे देखिबे को लोचत कहे चाहत हैं । भजौ, मिलौ ॥ २० ॥ २१ ॥

कुश—हरिणी छन्द ॥ लक्ष्मण हाथ हथ्यार धरौ । यज्ञ बृथा प्रभु को न करौ ॥ हौं हय को कबहूँ न तजौं । पट्ट लिख्यो सोइ बाँचि लजौं ॥ २२ ॥ स्वागता छन्द ॥ बाण एक तब लक्ष्मण छंड्यो । चर्म बर्म बहुधा तिन खंड्यो ॥ ताहि हीन कुश चित्त हि मोहे । धूमभिन्न जनु पावक सोहे ॥ २३ ॥ रोषबेष कुश बाण चलायो । पौनचक्र जिमि चित्त भ्रमायो ॥ मोह मोहि रथ ऊपर सोये । ताहि देखि जड़ जंगम रोये ॥ २४ ॥ नाराच छन्द ॥ बिराम राम जानि कै भरत्थ सों कथा कहैं । बिचारि चित्त माँझ बीर बीर वे कहाँ रहैं ॥ सरोष देखि लक्ष्मणै त्रिलोक तौ बिलुप्त है । अदेव देवता त्रसैं कहा ते बाल दीन हैं ॥ २५ ॥ राम—रूपमाला छन्द ॥ जाहु सत्वर दूत लक्ष्मण हैं जहाँ यहि बार । जाइ कै यह बात बर्नहु रच्छियो मुनि-बार ॥ हैं समर्थ सनाथ वे असमर्थ और अनाथ । देखिबे कहँ ल्याइयो मुनिबाल उत्तमगाथ ॥ २६ ॥ सुन्दरी छन्द ॥ भग्गुल आइ गये तबहीं बहु । बार पुकारत आरत रच्छहु ॥ वे बहु भाँतिन सेन सँहारत । लक्ष्मण तो तिनको नहिं मारत ॥ २७ ॥ बालक जानि तजैं करुणा करि । वे अति ढीठ भये दल संहरि ॥ केहुँ न भाजत गाजत हैं रण । बीर अनाथ भये बिन लक्ष्मण ॥ २८ ॥ जानहु जै उनको मुनि-बालक । वे कोउ हैं जगतीप्रतिपालक ॥ हैं कोउ रावण के कि सहायक । कै लवणासुर के हित लायक ॥ २६ ॥

या छन्द को सारवती हू कहत हैं ॥ २२ ॥ तिनको कुश को धूमसम चर्म-वर्म खण्डित ह्वै गयो । क्रोध और प्रताप सों अग्निसम कुश के अंग शोभित हैं ॥ २३ ॥ पवनचक्र, वौंड़र ॥ २४ ॥ विराम, बेर । त्रैलोक्य के अदेव दैत्य और देवता विलुप्त ह्वै कहे लुकि कै त्रसैं कहे डरात हैं । अर्थात् लुकि हू रहत हैं, ताहू पै भय नहीं मिटत । यासों अतिभय जानौ ॥ २५ ॥ २६ ॥ बार कहे बारबार ॥ २७ ॥ २८ ॥ जै कहे जनि । जगती-प्रतिपालक, ईश्वर अथवा राजा । सहायक कहे बली ॥ २९ ॥

भरत—बालक रावण के न सहायक । ना लवणासुर के हित लायक ॥ हैं निजपातक-बृक्षन के फल । मोहत हैं रघुबंशिन के बल ॥ ३० ॥ जीतहिं को रण माँझ रिपुघ्नहि । को करै लक्ष्मण के बल बिघ्नहि ॥ लक्ष्मण सीय तजी जब ते वन । लोक-अलोकन पूरि रहे तन ॥ ३१ ॥ छोड़ाइ चाहत ते तब ते तन । पाइ निमित्त कस्यो मन पावन ॥ शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर-लाजनि । पूत भये तजि पापसमाजनि ॥ ३२ ॥ दोधक छन्द ॥ पातक कौन तजी तुम सीता । पावन होत सुने जग गीता ॥ दोषबिहीन हि दोष लगावै । सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥ ३३ ॥ हमहूँ तिहि तीरथ जाइ मरैंगे । सतसंगति दोष अशेष हरैंगे ॥ बानर राक्षस ऋक्ष तिहारे । गर्ब चढ़े रघुबंशहि भारे ॥ ता लगि कै यह बात बिचारी । हौ प्रभु संतत गर्बप्रहारी ॥ ३४ ॥ चंचरी छन्द ॥ क्रोध कै अति भरत अंगद संग संगर को चले । जामवन्त चले बिभीषण और बीर भले-भले ॥ को गनै चतुरंग सेनहि रोदसी नृपता भरी । जाइ कै अवलोकियो रण में गिरे गिरि से करी ॥ ३५ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्र-चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां भरतसमागमोनाम षट्त्रिंशः प्रकाशः ॥ ३६ ॥

मोहत कहे मूर्च्छित करत हैं, अर्थात् संज्ञाहीन करत हैं ॥ ३० ॥ लोक में घातन करिकै अपलोकन दोषन सों पूरि रहे हैं ॥ ३१ ॥ जब ते अलोक प्राप्त भयो, तब ते ता अलोक के मिटिबे के लिये तन को छोड़ोई चहत रहे, सो युद्धरूपी निमित्त कारण पाइ कै तन को छोड़ि मन को पावन कस्यो। शत्रुघ्न के बन्धु लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ि आये, या विधि लोकापवादलाजन सों शत्रुघ्न हू तन को छोड़चो। पूत, पवित्र। छन्द उपजाति है ॥ ३२ ॥ पातक कौन एतो, यह भरत सों रामचन्द्र को प्रश्न है ॥ ३३ ॥ तेहि तीर्थ, अर्थात् युद्ध-तीर्थ में। छन्द उपजाति गाथा है ॥ ३४ ॥ संगर, युद्ध। रोदसी कहे भू-आकाश। नृपता कहे नृपसमूहन सों भरी। "द्यावाभूमी च रोदसी" इत्यमरः ॥ ३५ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां षट्त्रिंशः प्रकाशः ॥ ३६ ॥

दोहा ॥ सैंतीसयें प्रकाश में लव कटु बैन बखान ॥ मोहन बहुरि भरत्त को लागे मोहन बान ॥ १ ॥ रूपमाला छन्द ॥ जामवंत बिलोकि कै रण भीम भू हनुमंत। शोण की सरिता बही सु अनंतरूप दुरंत ॥ यत्रतत्र ध्वजापताका दीह देहनि भूप। टूटि-टूटि परे मनों बहु बात बृक्ष अनूप ॥ २ ॥ पुंज कुंजर सुभ्र स्यंदन सोभिजै सुठि सूर। ठेलि-ठेलि चले गिरीसनि पेलि सोनित-पूर ॥ ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म बिशाल। चक्र से रथचक्र पैरत गृद्ध बृद्ध मराल ॥ ३ ॥ केंकरे कर बाहु मीन गयंद-शुंड भुजंग। चीर चौंर सुदेश के शशिबाल जानि सुरंग ॥ बालुका बहु भाँति हैं मणिमाल-जाल प्रकास। पैरि पार भये ते द्वै मुनिबाल केशवदास ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ जामवंत और हनुमंत। दुरंत कहे दुःख करि कै पाइयत है अंत पार जिनको, अर्थात् अति बड़ी, और अनंत कहे अनेक, शोण रुधिर की सरिता बही हैं जामें, ऐसी जो रण की भीम भयानक भू है, ताको वि-लोक्यो। बड़े पताका ध्वजा कहावत हैं, छोटे पताका कहावत हैं ॥ २ ॥ सुठि शूर, अर्थात् अतिशूर जे सन्मुख घाव सहि मरे हैं। ठेलि कहे टारि।

पेलि कहे दबाइ कै। जैसे शिलान को टारि नदिन को पूर प्रवाह चलत है, तैसे इहाँ पर्वतसम जे गज रथ हैं, तिनको टारि कै, शोणित के पूर चले। यासों अतिगंभीरता और अति वेग जनायो। नदी-तीर हू गृध्र रहत हैं, इहाँऊ हैं। और श्वेत ह्वै रहे हैं अंगलोम जिनके, ऐसे जे वृद्ध प्राणी हैं तेई हंस हैं॥ ३॥ केकरे, गेंगटा। भुजंग, सर्प॥ ४॥

दोहा॥ नामबरन लघु बेष लघु कहत रीझि हनुमन्त॥ इतो बड़ो बिक्रम कियो जीते युद्ध अनन्त॥ ५॥ भरत–तारक छन्द॥ हनुमन्त दुरन्त नदी अब नाखौ। रघुनाथसहोदर जी अभिलाखौ॥ तब जो तुम सिंधुहि नाँघि गये जू। अब नाँघहु काहे न भीत भये जू॥ ६॥ हनुमान्–दोहा॥ सीतापद सम्मुख हुते गयों सिंधु के पार॥ बिमुख भये क्यों जाहुँ तरि सुनो भरत यहि बार॥ ७॥ तारक छन्द॥ धनु-बाण लिये मुनि-बालक आये। जनु मन्मथ के जुग रूप सुहाये॥ करिबे कहँ शूरन के मद हीने। रघुनायक मानहुँ द्वै बपु कीने॥ ८॥ भरत॥ मुनिबालक हौ तुम यज्ञ कराओ। सु किधौं बरबाजिहि बाँधन धाओ॥ अपराध छमौ सब आशिष दीजै। बर बाजि तजो जिय रोष न कीजै॥ ९॥ दोहा॥ बाँध्यो पट्ट जु सीस यह छत्रिन काज प्रकास॥ रोष कस्यो बिन काज तुम हम बिप्रन के दास॥ १०॥

वर्ण कहे नाम के अक्षर॥ ५॥ रघुनाथ-सहोदर जे शत्रुघ्न और लक्ष्मण हैं, तिनको जी में अभिलाषौ, अर्थात् या नदी नाँघि लक्ष्मण शत्रुघ्न को देखो जाय॥ ६॥ ७॥ ८॥ मुनिन के बालकन को यज्ञ कराइबो उचित है, अश्व बाँधि यज्ञ रोकिबो उचित नहीं है, इति भावार्थः॥ ९॥ १०॥

कुश–दोधक छन्द॥ बालक बृद्ध कहौ तुम काको। देहन को किधौं जीव-प्रभा को॥ है जड़ देह कहै सब कोई। जीव सु बालक बृद्ध न होई॥ ११॥ जीव जरै न मरै नहिं छीजै।

ता कहँ शोक कहा करि कीजे॥ जीवहि बिप्र न क्षत्रिय जानो। केवल ब्रह्म हिये महँ आनो॥ १२॥ जो तुम देहु हमैं कछु शिक्षा। तौ हम देहिं तुम्हैं यह भिक्षा॥ चित्त बिचार परै सोइ कीजै। दोष कछू न हमैं अब दीजै॥ १३॥ स्वागता छन्द॥ बिप्र-बालकन की सुनि बानी। क्रुद्ध सूर-सुत भो अभिमानी॥ १४॥ सुग्रीव—बिप्र-पुत्र तुम सीस सँभारो। राखि लेहि अब ताहि पुकारो॥ १५॥ लव—गौरी छन्द॥ सुग्रीव कहा तुम सों रण माँड़ों। तोको अति कायर जानि कै छाँड़ों॥ बालि तुम्हैं बहु नाच नचायो। का रन मंडन मो सन आयो॥ १६॥

भरत मुनि-बालक पद कह्यो है, तासों कुश यह कहत हैं॥ ११॥१२॥ शिक्षा दै हमारो बोध करो इत्यर्थः॥ १३॥ १४॥ छन्द उपजाति है॥ १५॥ १६॥

तारक छंद॥ फलहीन सु ता कहँ बाण चलायो। अति बात भ्रम्यो बहुधा मुरझायो॥ तब दौरि कै बाण बिभीषण लीन्हो। लव ताहि बिलोकत ही हँसि दीन्हो॥ १७॥ सुन्दरी छन्द॥ आउ बिभीषण तू रणदूषण। एक तुही कुल को कुलभूषण॥ जूझ जुरे जे भले भय जी के। शत्रुहि आइ मिले तुम नीके॥ १८॥ दोधक छंद॥ देव-बधू जब ही हरि ल्यायो। क्यों तब ही तजि ताहि न आयो॥ यों अपने जिय के उर आये। छुद्र सबै कुल छिद्र बताये॥ १९॥ दोहा॥ जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान॥ ता की पत्नी तू करी पत्नी मातु-समान॥ २०॥ को जानी कै बार तू कही न ह्वैहै माइ॥ सोई तैं पत्नी करी सुनु पापिन के राइ॥ २१॥ तोटक छन्द॥ सिगरे जग माँझ हँसावत है। रघुबंसिन पाप नसावत है॥ धिक तो कहँ तू अजहूँ जु जिये। खल जाइ हलाहल क्यों न पिये॥ २२॥

फल कहे गाँसी। ता बाण के लागे, बात सम अर्थात् बौंडर सम बहुत भ्रमत

भये, और मुरझात भये ॥ १७ ॥ जूझ जुरे पर भले जीके भय सों शत्रु को आइ मिलै ॥ १८ ॥ देववधू, सीता ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

कछु है अब तो कहँ लाज हिये। कहि कौन विचार हथ्यार लिये ॥ अब जाइ करीष कि आगि जरौ। गरु बाँधि कै सागर बूड़ि मरौ ॥ २३ ॥ दोहा ॥ कहा कहौं हौं भरत को जानत है सब कोय ॥ तो-सो पापी संग है क्यों न पराजय होय ॥ २४ ॥ बहुत युद्ध भो भरत सों देव अदेव समान ॥ मोहि महारथ पर गिरे मारे मोहन बान ॥ २५ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्र-
चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां भरतमोहनोनाम
सप्तत्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३७ ॥

करीष, सूख्यो गोबर, बिनुआ कण्डा करि प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-
निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायां सप्तत्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३७ ॥

दोहा ॥ अड़तीसयें प्रकाश में अंगद-युद्ध बखान ॥ ब्याज सैन रघुनाथ को कुश लव आश्रम जान ॥ १ ॥ भरतहि भयो बिलम्ब कछु आये श्रीरघुनाथ ॥ देख्यो वह संग्राम-थल जूझि परे सब साथ ॥ २ ॥ तोटक छन्द ॥ रघुनाथहि आवत आइ गये। रण में मुनिबालक रूपरये ॥ गुण रूप सुशीलन सों रण में। प्रतिबिम्ब मनो निज दर्पण में ॥ ३ ॥ मधुतिलक छन्द ॥ सीता समान मुख-चन्द्र-बिलोकि राम। बूझ्यो कहाँ बसत हौ तुम कौन ग्राम ॥ माता पिता कवन कौनहि कर्म कीन। विद्या-बिनोद सिख कौन्यहि अस्त्र दीन ॥ ४ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ गुण, रूप और शील स्वभावन सहित रण में अर्थात् रण करिबे में। मानों दर्पण में आपने प्रतिबिम्ब ही आइ गये हैं। जैसे दर्पण के निकट जात ही दर्पण में आपने ही स्वभावादि सों युक्त आपने प्रतिबिम्ब

आइ जात हैं, ता विधि रणभूमिरूपी दर्पण के निकट रामचन्द्र के आवत ही रामचन्द्र ही के स्वभावादि सों युक्त प्रतिबिम्ब सम लव कुश आये, इत्यर्थः ॥ ३ ॥ भाग्यवान् पुत्र को मुख माता को ऐसो होत है। "धन्यो मातृमुखः सुतः" इति प्रमाणात्। कहो कहे कौन स्थान में। कर्म, जातकर्म आदि॥ ४॥

कुश—रूपमाला छन्द ॥ राजराज तुम्हैं कहा मम बंश सों अब काम। बूझि लीन्हेहु ईश लोगन जीति कै संग्राम॥ राम—हौं न युद्ध करौं कहे बिन बिप्र-बेष बिलोकि ॥ बेगि बीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि ॥ ५ ॥ कुश—कन्यका मिथिलेश की हम पुत्र जाये दोइ। बालमीकि अशेष कर्म करे कृपा-रस भोइ ॥ अस्त्र शस्त्र सबै दये अरु बेद-भेद पढ़ाइ। बाप को नहिं नाम जानत आजु लौं रघुराइ ॥ ६ ॥ दोधक छन्द ॥ जानकि के मुख अक्षर आने। राम तहीं अपने सुत जाने ॥ बिक्रम साहस शील उचारे। युद्ध-कथा कहि आयुध डारे॥ ७॥ राम—अंगद जीति इन्हैं गहि ल्याओ। कै अपने बल मारि भगाओ॥ बेगि बुझावहु चित्त-चिता को। आजु तिलोदक देहु पिता को ॥ ८ ॥ अंगद तौ अँग-अंगनि फूले। पौन के पुत्र कह्यो अति भूले॥ जाइ जुरे लव सों तरु लै कै। बात कही शत खंडन कै कै ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ ६ ॥ जानकी को नाम लीन्हो, तासों और अपने सदृश विक्रम साहस शील हू सों बिचार्‌यो कि हमारे ही पुत्र हैं ॥ ७ ॥ हम तुमसों कहि राख्यो है कि कोऊ हमारे वंश में तुमसों युद्ध करि है, सो ये हमारे ही पुत्र हैं, तासों इनको जीति कै ता समय सों क्रोधाग्नि सों जरत चित्तरूपी जो चिता है, ताको बुझाओ। और रघुवंशिन सों युद्ध करि पिता को तिलोदक देन कह्यो है, सो देव। अथवा हमारे ही पुत्र है कै हमारे अश्व बाँधि वृथा युद्ध कर्‌यो, ता क्रोध सों जरत जो चित्तरूपी चिता है, ताको बुझाओ और पिता को तिलोदक देहु ॥ ८ ॥ ९ ॥

लव—अंगद जो तुम पै बल होतो। तौ वह सूरज को सुत को

तो ॥ देखत ही जननी जु तिहारी। वा सँग सोवति ज्यों बर-नारी ॥ १० ॥ जा दिन ते युवराज कहाये। बिक्रम बुद्धि विवेक बहाये॥ जीवत पै कि मरे पहँ जैहै। कौन पिताहि तिलोदक दैहै॥ ११ ॥ अंगद हाथ गहै तरु जोई। जात तहीं तिल-सो कटि सोई ॥ पर्वतपुंज जिते उन मेले। फूल के तूललै बाणन झेले॥ १२॥ बाणन बेधि रही सब देही। वानर ते जु भये अब सेही॥ भूतल ते शर मारि उड़ायो। खेलि के कंदुक को फल पायो॥ १३॥ सोहत है अध-ऊरध ऐसे। होत बटा नट को नभ जैसे॥ जान कहूँ न इतै उत पावै। गो बल चित्त दशो दिशि धावै॥ १४॥ बोल घट्यो सु भयो सुरभंगी। ह्वै गयो अंग त्रिशंकु को संगी॥ हा रघुनायक हौं जन तेरो। रक्षहु गर्व गयो सब मेरो॥ १५॥ दीन सुनी जनकी जब बानी। जो करुणा लव बाणन आनी॥ छाँड़ि दियो गिरि भूमि पस्योई। बिह्वल ह्वै अति मानो मस्योई॥ १६॥

वरनारी अर्थात् विवाहिता स्त्री, अथवा बारनारी वेश्या ॥ १० ॥ जो रामचन्द्र कह्यो कि इनको जीति कै आजु पिता को तिलोदक देहु, सो सुनिकै लव कहत हैं कि हमको जीति कै जो तिलोदक तुम देहौ, सो जीवत पिता जे सुग्रीव हैं, तिनको प्राप्त ह्वै है कि मरे पिता जे बालि हैं, तिनको प्राप्त ह्वै है॥ ११ ॥ झेले, दूरि किये॥ १२ ॥ सेही, शल्लकी नाम वनजन्तुविशेष, स्याही ॥ १३ ॥ १४॥ त्रिशंकु को संगी अर्थात् त्रिशंकु सम। शीश नीचे चरण ऊपर भये॥ १५॥ १६॥

विजय छन्द ॥ भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खड़े करतार करे कै। भारे भिरे रण भूधर भूप न टारे टरे इभ कोटि अरे कै। रोप सों खड्ग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहू गरे कै। राम विलोकि कहैं रस अद्भुत खाये मरे नग नाग मरे कै॥ १७॥ दोधक छन्द ॥ वानर ऋक्ष जिते निशिचारी। सेन सबै यक बाण

सँहारी ॥ बाण-बिंधे सब ही जब जोये। स्यन्दनमें रघुनन्दन सोये ॥ १८ ॥ गीतिका छन्द ॥ रण जोइ कै सब सीस-भूषन सँग रहे जे जे भले। हनुमंत को अरु जामवंतहि बाजि सों असि लै चले ॥ रण जीति कै लव साथ लै करि मातु के कुश पाँ परे। सिर सूँघि कंठ लगाय आनन चूमि गोद दुवौ धरे ॥ १९ ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीराम-
चन्द्रचन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां कुशलव-
जयवर्णनन्नामाष्टत्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३८ ॥

भैरव ऐसे जे भूरि भट हैं, ते बल सों भिरे हैं। सो इन भटन को कैधौं अति विकट खेत कहे युद्ध के लिये कर्तार विधातैं करे कहे बनायो है। अर्थात् त्रिकालज्ञ विधाता यह अतिविकट युद्ध भावी जानि कै, ताके लिये ऐसे प्रबल वीर आपने हाथसों बनायो है। या युद्ध में येई वीर भिरे हैं, और वीर न भिर सकते, इति भावार्थः। अथवा बल सों खड़े जे खेत हैं, तिनके करे कहे कर्त्ता। अर्थात् जिन रावणादि सों रण कीन्हो है, ऐसे जे भैरव ऐसे भूरि भट हैं, ते करे कहे अति कठोर मारु-मारु इत्यादि, तार कहे उच्च स्वर, कै कहे करि कै, रण में भिरे हैं। कोऊ कादर स्वर नहीं बोलत इति भावार्थः। और भूधर पर्वत सम अचल जे भारे भूप हैं, अथवा भूधर कहे भूमि के धरनहार अर्थात् जेती भूमि धरैं तेती कैसे हू न छोड़ैं ऐसे जे भारे भूप हैं, ते कोटिन इभ जे हाथी हैं, तिनको अरे कहे हठै करिकै अर्थात् पगन में जंजीर आदि डारि, जामें टरैं नहीं ऐसे करिकै युद्ध में भिरे हैं। ते भट और भूप मरे कै कटेहू अर्थात् शिर कटि गयो है, ताहू पै भूमि में न गिरे। अर्थात् जिनको कबंध हू लरत रह्यो। और तिन हाथिन को परे देखि कै अद्भुत-रस-युक्त ह्वै रामचन्द्र कहत हैं कि नग जे पर्वत हैं, तिनके खायें कहे खावाँ मारे हैं। कि नाग कहे हाथी मरे हैं। अर्थात् ऐसे मरे हाथिन के कतारे परे हैं, मानों पर्वतन के खावाँ मारे हैं। अथवा नागनग जे गजमुक्ता हैं तिनके खायें सम मारि गये हैं। अर्थात् यह कि जहाँ गजमुक्तन के खावाँ मारि गये हैं, तहाँ हाथिन की कौन कहै ॥ १७ ॥ तेंतीसयें प्रकाश में कह्यो है कि "राम की जय-सिद्धि सो सिय को चले बनछाँड़ि", सो जय-सिद्धिरूप जे सीता हैं, तिनको तौ वन में

छोंड़यो, तब जय-सिद्धि कैसे प्राप्त होय ? सो त्रिकालज्ञ जे रामचन्द्र हैं, ते यह बिचारि कै सोइ रहे ॥ १८ ॥ १९ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामष्टत्रिंशत्प्रकाशः ॥ ३८ ॥

दोहा ॥ नवतीसयें प्रकास सिय-राम-सँजोग निहारि ॥ यज्ञ पूरि सब सुतन को दीन्हो राज बिचारि ॥ १ ॥ रूपमाला छन्द ॥ चीन्हि देवर को बिभूषण देखि कै हनुमन्त । पुत्र हौं बिधवा करी तुम कर्म कीन दुरन्त ॥ बाप को रण मारियो अरु पितृभ्रातृ सँहारि । आनियो हनुमन्त बाँधि न आनियो म्वहिं गारि ॥ २ ॥ दोहा ॥ माता सब काकी करी बिधवा एकहि बार ॥ मोसे और न पापिनी जाये बंशकुठार ॥ ३ ॥ दोधक छन्द ॥ पाप कहाँ हति बापहि जैहौ । लोक चतुर्दश ठौर न पैहौ ॥ राजकुमार कहै नहिं कोऊ । जारज जाइ कहावहु दोऊ ॥ ४ ॥ कुश—मो कहँ दोष कहा सुनि माता । बाँधि लियो जु सुन्यो उन भ्रांता ॥ हौं तुम ही त्यहि बार पठायो । राम पिता कब मोहिं सुनायो ॥ ५ ॥ दोहा ॥ मोहिं बिलोकि बिलोकि कै रथ पर पौढ़े राम ॥ जीवत छोड़यो युद्ध में माता करि विश्राम ॥ ६ ॥

॥ १ ॥ दुरन्त, अनुत्तम । गारि, कलङ्क ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ विश्राम, क्षमा ॥ ६ ॥

सुन्दरी छन्द ॥ आइ गये तब ही मुनिनायक । श्रीरघुनन्दन के गुणगायक ॥ बात बिचारि कही सिगरी कुश । दुःख कियो मन में कलि-अंकुश ॥ ७ ॥ रूपवती छन्द ॥ कीजै न बिडम्बन संतत सीते । भावी न मिटै सु कहूँ जग-गीते ॥ तू तो पति-देवन की गुरु बेटी । तेरी जग-मृत्यु कहावत चेटी ॥ ८ ॥ तोटक छन्द ॥ सिगरे रणमंडल माँझ गये । अवलोकत ही

अति भीत भये ॥ दुहुँ बालन को अति अद्भुत बिक्रम। अव-लोकि भयो मुनि के मन संभ्रम ॥ ६ ॥

कैसे हैं मुनिनायक, कलि जो कलियुग है, ताके अंकुश हैं ॥ ७ ॥ विडम्बन, दुःख। हे बेटी, तू पतिदेव कहे पतिव्रतन की गुरु है। चेटी, दासी। तेरी आज्ञा सों मृत्यु मरे वीरन को जिआइ है इति भावार्थः ॥ ८ ॥ छंद उपजाति है ॥ ६ ॥

दण्डक ॥ सोनित सलिल नर बानर सलिलचर गिरि बालिसुत बिष बिभीषण डारे हैं। चमर पताका बड़ी बड़वा-अनलसम रोगरिपु जामवंत केशव बिचारे हैं ॥ बाजि सुर-बाजि सुरगज-से अनेक गज भरत सबंधु इंदु अमृत निहारे हैं। सोहत सहित शेष रामचन्द्र कुश लव जीति कै समर सिंधु साँचे हू सुधारे हैं ॥ १० ॥ सीता—दोहा ॥ मनसा बाचा कर्मणा जो मेरे मन राम ॥ तौ सब सेना जी उठै होहि घरी न बिराम ॥ ११ ॥ दोधक छन्द ॥ जीय उठी सब सेन सभागी। केशव सोवत ते जनु जागी ॥ स्यो सुत सीतहि लै सुखकारी। राघव के मुनि पाँयन पारी ॥ १२ ॥ मनोरमा छन्द ॥ शुभ सुंदरि सोदर पुत्र मिले जहँ। वर्षा बर्षैं सुर फूलन की तहँ ॥ बहुधा दिवि दुंदुभि के गन बाजत। दिगपाल-गयंदन के गन लाजत ॥ १३ ॥

कविजन समर को सिंधुसम कहतई हैं, पै कुश लव समर जीति कै अंगनन सहित साँचो सिंधु सँवास्यो इत्यर्थः। सो कहत हैं सलिलचर ग्राह आदि। गिरि, मैनाक। रुधिर-रंग सों अरुण चमर जानो। रोगरिपु, धन्वंतरि। अड़तीसयें प्रकाश में कह्यो है कि "हनुमंत को अरु जामवंतहि बाज सों ग्रसि लै चले," तासों इहाँ दूसरे जामवंत जानो। अथवा प्रथम ग्रसि लै गये हैं, फेरि छोड़ि दिये हैं, तेऊ तहाँ हैं। भरत चन्द्रमा हैं, शत्रुघ्न अमृत हैं ॥ १० ॥ विराम, वेर ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

अंगद—स्वागता छन्द ॥ रामदेव तुम गर्बप्रहारी। नित्य तुच्छ

अति बुद्धि हमारी ॥ युद्ध देव भ्रम तैं कहि आयो। दास जानि प्रभु मारग लायो॥ १४ ॥ रूपमाला छन्द ॥ सुन्दरी सुत लै सहोदर बाजि लै सुख पाइ। साथ लै मुनि वालमीकिहि दीह दुःख नसाइ॥ राम धाम चले भले यश लोक-लोक बढ़ाइ। भाँति भाँति सुदेश केशव दुंदुभीन बजाइ ॥ १५॥ भरत लक्ष्मण शत्रुहा पुर भीर टारत जात। चौंर ढारत हैं दुवौ दिशि पुत्र उत्तमगात॥ छत्र है कर इन्द्र के सुभ सोभिजै बहु भेव। मत्त दन्ति चढ़े पढ़ैं जयशब्द देव नृदेव ॥१६॥ दोधक छन्द॥ यज्ञथली रघुनन्दन आये। धामनि धामनि होत बधाये॥ श्रीमिथिलेश-सुता बड़ भागी। स्यो सुत सासुन के पग लागी ॥ १७ ॥

पचीसयें प्रकाश में अंगद कह्यो है कि "देव हौ नरदेव वानर नैर्ऋतादिक वीर हौ", ता बात को ते कहत हैं कि हे देव, तब जो हम सों युद्ध करिबे को कहि आयो रहै, अर्थात् हम युद्ध करिवे को कह्यो रहै, सो भ्रम सों कह्यो रहै, सो दास जानि कै हमारो गर्व दूरि करि कै हमको मार्ग राह लगायो। रामचन्द्र हू को वचन रह्यो कि कोऊ मेरे वंश में तोसों युद्ध करि है, तब तेरो मन मोसों शुद्ध ह्वै है; सो इहाँ अंगद को मन शुद्ध भयो जानो॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

दोहा ॥ चारि पुत्र द्वै पुत्रसुत कौशल्या तब देखि॥ पायो परमानंद मन दिगपालनसम लेखि ॥ १८ ॥ रूपमाला छन्द ॥ यज्ञ पूरन कै रमापति दान देत अशेष। हीर नीरज चीर मानिक बर्षि बर्षा बेष ॥ अंगराग तड़ाग बाग फले भले बहु भाँति। भवन भूषण भूमि भाजन भूरि बासर राति ॥ १९ ॥ दोहा ॥ एक अयुत गज बाजि द्वै तीनि सुरभि शुभवर्ण॥ एक एक विप्रहि दई केशव सहित सुबर्ण ॥ २० ॥ देव अदेव नृदेव अरु जितने जीव त्रिलोक॥ मनभायो पायो सबन कीन्हे सबन

अशोक ॥ २१ ॥ अपने अरु सोदरन के पुत्र बिलोकि समान ॥ न्यारे न्यारे देश दै नृपति करे भगवान ॥ २२ ॥ कुश लव अपने भरत के नंदन पुष्कर तक्ष ॥ लक्ष्मण के अंगद भये चित्रकेतु रणदक्ष ॥ २३ ॥ भुजंगप्रयात छन्द ॥ भले पुत्र शत्रुघ्न द्वै दीप जाये । सदा साधु शूरे बड़े भाग पाये ॥ सदा मित्रपोषी हनैं शत्रु-श्राती । सुबाहै बड़ो दूसरो शत्रुघाती ॥ २४ ॥ दोहा ॥ कुश को दई कुशावती नगरी कौशलदेश ॥ लव को दई अवंतिका उत्तर उत्तमवेश ॥ २५ ॥ पश्चिम पुष्कर को दई पुष्करवति है नाम ॥ तक्षशिखा तक्षहि दई लई जीति संग्राम ॥ २६ ॥ अंगद कहँ अंगदनगर दीन्हो पश्चिम ओर ॥ चन्द्रकेतु चन्द्रावती लीन्हो उत्तर जोर ॥ २७ ॥

॥ १८ ॥ नीरज, मोती । वासरराति कहे रातो दिन । देत कहे देतभये ॥ १९ ॥ अयुत, दशहजार । सुवर्ण, दस माशे का स्वर्णमुद्रा, सुवर्ण-दश मांशिक ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

मथुरा दई सुबाहु को पूरन पावनगाथ ॥ शत्रुघात को नृप कस्यो देशहि को रघुनाथ ॥ २८ ॥ तोटक छन्द ॥ यहि भाँति सों रक्षित भूमि भई । सब पुत्र भतीजन बाँटि दई ॥ सब पुत्र महाप्रभु बोलि लिये । बहु भाँतिन के उपदेश दिये ॥ २९ ॥ चामर छन्द ॥ बोलिये न झूठ ईढ़ि मूढ़ पै न कीजई । दीजिये जु बात हाथ भूलि हू न लीजई ॥ नेहु तोरिये न देहु दुःख मंत्रि मित्र को । यत्र तत्र जाहु पै पत्याहु जै अमित्र को ॥ ३० ॥ नाराच छन्द ॥ जुवा न खेलिये कहूँ जुबान-भेद रक्षिये । अमित्र भूमि माँह जै अभक्ष भक्ष भक्षिये ॥ करौ न मंत्र मूढ़ सों न गूढ़ मंत्र खोलिये । सुपुत्र होहु जै हठी मठीन सों न बोलिये ॥ ३१ ॥ वृथा न पीड़िये प्रजाहि पुत्रमान पारिये । असाधु साधु बूझि

कै यथापराध मारिये ॥ कुदेव देव नारि को न बाल वित्त लीजिये। बिरोध बिप्रबंश सों सु स्वप्न हू न कीजिये ॥ ३२ ॥

देशहि के अर्थात् अयोध्या के समीप देश को ॥ २८ ॥ २६ ॥ मित्र ताको जो वस्तु बात करि कै अथवा हाथ करि कै दीजिये, ताको फेरि न लीजै ॥ ३० ॥ वेद को जुवान कहे वचन। भूमि कहे स्थान ॥ ३१ ॥ पुत्रमान कहे पुत्रसम। असाधु, सदोप। साधु, निर्दोप। कुदेव, ब्राह्मण ॥ ३२ ॥

भुजंगप्रयात छन्द ॥ परद्रव्य को तौ बिषप्राय लेखौ। परस्त्रीन सों ज्यों गुरुस्त्रीन देखौ ॥ तजौ कामक्रोधौ महामोहलोभौ। तजौ गर्ब को सर्बदा चित्त छोभौ ॥ ३३ ॥ यशै संग्रहौ निग्रहौ जुद्ध जोधा। करौ साधुसंसर्ग जो बुद्धिबोधा ॥ हितू होइ सो देइ जो धर्मशिक्षा। अधर्मीन को देहु जै बाकभिक्षा ॥ ३४ ॥ कृतघ्नी कुबादी परस्त्रीबिहारी। करौ बिप्र लोभी न धर्माधिकारी ॥ सदा द्रव्य संकल्प को रक्षि लीजै। द्विजातीन को आपु ही दान दीजै ॥ ३५ ॥ सवैया ॥ तेरह मंडल मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै। कैसेहु ता कहँ शत्रु न मित्र सु केशवदास उदासन बाधै ॥ शत्रु समीप परे त्यहि मित्र से तासु परे जु उदास कै जोवै। बिग्रह संधिन दाननि सिंधु लौं लै चहुँ ओरन तौ सुख सोवै ॥ ३६ ॥

काम, क्रोध, मोह, लोभ, गर्व कहे मद और क्षोभ कहे मात्सर्य, ये जे छः हैं तिनको त्याग करिये ॥ ३३ ॥ योधा कहे शत्रु। अथवा जो लरिबे को सन्मुख होइ। भीतादि को न मारियो, इति भावार्थः। बुद्धिबोधा, बुद्धियुक्त। जो धर्म शिक्षा देइ, सोई तुम्हारो हितू होइ। अर्थात् ताही को हितू करियो। अधर्मीन सों न बोलियो इत्यर्थः ॥ ३४ ॥ ये जो पाँच हैं, तिनको धर्माधिकारी न करियो। सङ्कल्प को द्रव्य जे दिये ग्रामादि हैं, तिनकी रक्षा करियो। आपुही अर्थ आपने ही हाथ सों ॥ ३५ ॥ आपने देशके समीप को जो राजा है, ताको शत्रुता के आगे को मित्रता के आगे को उदासीन जोवै देखै जानै इति। याही भाँति चारिहूँ ओर तीन तीन राज-

मण्डल, सब द्वादश राजमण्डल जानो। और मध्य में आपनो राजमण्डल जोरि सब तेरह मण्डल प्रसिद्ध हैं। तिनसों युक्त जो भूतल है, ताको या प्रकार क्रम ही क्रम साधै। तौ ताको शत्रु, मित्र, उदासीनता बाधै। कैसे साधै सो कहत हैं कि शत्रु को विग्रह कहे दण्ड उपाय सों, और मित्र को संधि कहे साम उपाय सों, उदासीन को दान-उपाय सों युक्त करै, इति शेषः। तो सिंधुपर्यंत चारों ओर लैकै सुखसों सोवै। "विषयानन्तरो राजा शत्रुर्मित्रमतः परम्। उदासीनः परतर इत्यमरः" ॥ ३६ ॥

दोहा ॥ राजश्रीबश कैसेहू होहु न उर अवदात ॥ जैसे-तैसे आपुबश ताकहँ कीजै तात ॥ ३७ ॥ यहिबिधि सिख दै पुत्र सब बिदा करे दै राज ॥ राजत श्रीरघुनाथ-सँग शोभन बन्धु-समाज ॥ ३८ ॥ रूपमाला छंद ॥ रामचंद्रचरित्र को जु सुनै सदा सुख पाइ। ताहि पुत्र कलत्र सम्पति देत श्रीरघुराइ ॥ यज्ञ दान अनेक तीरथ-न्हान को फल होइ। नारि का नर बिप्र क्षत्रिय बैश्य शूद्र जु कोइ ॥ ३९ ॥ रूपक्रान्ता छंद ॥ अशेष पुण्य पापके कलाप आपने बहाइ। बिदेहराज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाइ ॥ लहै सु भुक्ति लोकलोक अंत मुक्ति होहि ताहि। कहै सुनै पढ़ै गुनै जु रामचन्द्रचन्द्रिका हि ॥ ४० ॥

इति श्रीमत्सकललोकलोचनचकोरचिन्तामणिश्रीरामचन्द्र-
चन्द्रिकायामिन्द्रजिद्विरचितायां कुशलवसमागमो
नामैकोनचत्वारिंशत्प्रकाशः ॥ ३९ ॥

॥ ३७ ॥ शोभन, सुंदर ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ कलाप, समूह। पुण्य पाप के नाश सों मुक्ति होति है। "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्", इति प्रमाणात्। अथवा याके धारण सों प्राप्त जो यज्ञादि को अशेष सम्पूर्ण पुण्य है, तासों पाप के कलाप बहाइकै ॥ ४० ॥ कवित्त ॥ कैधौं सुभ-सागर विराजमान जामें पैठि पाइयत परमपदारथ की रासिका। कण्ठमें करत सोभ धरत सभा के मध्य कैधौं सोहै माल उर बिमल उजासिका ॥ सेवत ही जाको लहै सु मन प्रवीनताई जानकीप्रसाद कैधौं भारती हुलासिका।

ज्ञान की प्रकासिका मुकुतिप्रद कासिका है सेइये सुजन रामभगति-प्रकासिका ॥ १ ॥ दोहा ॥ रामभक्ति उर आनिकै रामभक्तजन हेतु । रामचंद्रिका-सिंधु में रच्यो तिलक को सेतु ॥ २ ॥ जो सुपंथ तजि सेतु को चलहि और मग जोर । रामचन्द्रिकासिंधु को लहहि कौन विधि ओर ॥ ३ ॥

इति श्रीमज्जगज्जननिजनकजानकीजानकीजानिप्रसादाय जनजानकीप्रसाद-निर्मितायां रामभक्तिप्रकाशिकायामेकोनचत्वारिंशत्प्रकाशः ॥ ३९ ॥

कवित्त ॥ तूर्‌यो शंभु-धनु, भृगुनाथ को गरव चूर्‌यो, ढर्‌यो निज राज, पूर्‌यो पितु को परन है । बन बर बास कीन्हे, निसिचर-नास कीन्हे, रविसुत आस कीन्हे आवत सरन है ॥ कपि कर लंक जार्‌यो, पार्‌यो सेतु सिंधु महँ, मार्‌यो दससीस बंधु धार्‌यो नृपधन है । ख्यालसम कीन्हे जिन अद्भुत काम बंदियत अभिराम नृप रामके चरन हैं ॥

॥ इति ॥

विनय-पत्रिका

विनय-पत्रिका श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासजी के हृदय का सच्चा प्रतिबिंब है। इसमें वे अपने उपास्य-देव के आगे कभी बालक की भाँति रोते हैं, आग्रह करते हैं, मचल जाते हैं; कभी अत्यंत विनीत हो दीन दास की तरह अनुनय-विनय करते हैं; कभी प्रौढ़ प्रेमिक की तरह ओलाहना देते हैं; कभी प्रेम में पुलकित हो नाचने लगते हैं; कभी भक्ति-भाव में विभोर हो उन्मत्त हो जाते हैं; कभी अपनी दीन-हीन और अति खीन दशा पर खेद प्रकट करके अपने इष्ट-देव से करुणा करने की प्रार्थना करते हैं; कभी अपने उपास्य-देव की अपने ऊपर अतिशय कृपा का अनुभव करके अपने कृतज्ञ-कातर अंतःकरण से प्रभु को धन्यवाद देते हैं; और कभी एक अत्यंत त्यागी विरक्त की भाँति, संसार से नाता तोड़ मुख मोड़कर एक ओर बैठ जाते हैं। यदि आप राग और द्वेष की भयंकर अग्नि से निरंतर प्रज्वलित संसार के महा-विदाहक ताप से त्राण पाना चाहते हैं, तो हमारा नम्र निवेदन है कि आप इसको अवश्य पढ़िये और श्रीगोस्वामीजी के विमल मानस की मधु-मधुर माधुरी का रसास्वादन कीजिये। हमारे यंत्रालय में यह पवित्र ग्रंथ कई प्रकार से छापा गया है। नीचे-लिखे संस्करणों में से किसी एक संस्करण को मँगा लीजिए और जब सांसारिक चिंताओं से आपका मन बहुत घबरा जाय, तो इस ग्रंथ को पढ़कर शांति-सुख का अनुभव कीजिए।

विनय-पत्रिका मूल-मात्र। पृष्ठ-संख्या १६६, मूल्य ।=)

विनय-पत्रिका सटीक। बा० बैजनाथजी कृत। पृष्ठ-संख्या ५१६; मूल्य २॥)

विनय-पत्रिका सटीक। डुमराँव-निवासी बाबू शिवप्रकाश-कृत। पृष्ठ-संख्या ३५६; मूल्य ॥=)

विनय-पत्रिका सटीक। पं० सूर्यदीन शुक्ल-कृत। पृष्ठ-संख्या ३०८; मूल्य १॥)